कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययनः सुशासन के विशेष संदर्भ में

A Comparative Study of Administrative System in Kautilya's Arthashastra and Present Indian Administrative System with Special Reference to Good Governance

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की

सामाजिक विज्ञान (लोक प्रशासन) में

पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोधार्थीः

मीना अग्रवाल

शोध पर्यवेक्षकः

डॉ. राज कुमार गर्ग

सह आचार्य, लोक प्रशासन विभाग

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2019-20

Certificate

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled "कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययनः सुशासन के विशेष संदर्भ में" by Meena Agrawal carried out under my guidance. She has completed the following requirements as per Ph.D. regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented her work in the departmental committee.

(e) Published minimum of one research paper in a referred research Journal.

I recommend the submission of thesis.

Date:

Dr. Raj Kumar Garg
Associate Professor
(Department of Public Administration)
Government Arts College, Kota, Rajasthan

Anti-Plagiarism Certificate

It is certified that Ph.D. thesis titled "कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययनः सुशासन के विशेष संदर्भ में" by **Meena Agarwal** (**RS/1111/13**) has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/Knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim for previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.
b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of other have been presented as author's own work.
c. There is no fabrication of data or result which have been compiled and analyzed.
d. There is no falsification by manipulation research materials, equipment or processes, or changing or omitting data or result such that the research is not accurately represented in the research record.
e. The thesis has been checked using **Plagiarism Checker X Professional** and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Meena Agarwal) (Dr. Raj Kumar Garg)
(Research Scholar) (Research Supervisor)

Place : Kota Place : Kota
Date : Date:

शोध सार

(Abstract)

भारतीय प्रशासनिक परम्परा जो प्राचीन वैदिक एवं संस्कृत साहित्य, रामायण, भगवद्गीता, महाभारत के शांतिपर्व एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र इत्यादि से होते हुए वर्तमान समय में सल्तनत, मुगल एवं ब्रिटिशकालीन विरासत के रूप में दृष्टिगत होती है। समय चक्र में परिवर्तन के के साथ अनेक भारतीय सुशासन परम्पराएँ लुप्त प्राय एवं विलोपित होती गई। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययन इन विलोपित हो चुकी सुशासन परम्पराओं को पुनःस्थापित कर परिवर्तित रूप में क्रियान्वित करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

छः अध्यायों में विभक्त उक्त शोध ग्रंथ में प्रथम अध्याय शोध प्ररचना, शोध विषय के संक्षिप्त परिचय, शोध के उद्देश्यों, उसके क्षेत्र एवं योगदान को स्पष्ट करता है तथा साथ ही साथ शोध पूर्व उपलब्ध साहित्य की समीक्षा एवं शोध के लिए अपनायी गई ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक प्रविधि एवं तथ्य संकलन स्रोतों (द्वितीयक स्रोत) पर प्रकाश डालता है। द्वितीय अध्याय दोनों प्रशासनिक व्यवस्थाओं (कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र वर्णित प्रशासन एवं वर्तमान भारतीय प्रशासन) के समकालीन पर्यावरणीय परिदृश्य विशेष कर संवैधानिक एवं राजनीतिक मान्यताओं एवं अवधारणाओं तथा उनके आधारभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट करता है। अध्याय तृतीय एवं चतुर्थ क्रमशः दोनों व्यवस्थाओं के कार्मिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रशासन के विभिन्न आयामों का सुशासन के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते है। उक्त अध्यायों में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतनमान एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही जैसे पक्षों का तथा वित्तीय प्रशासन में कोष, वित्त प्रशासन सम्बन्धी संगठनात्मक संरचना, बजट निर्माण इसकी स्वीकृति प्रक्रिया, लेखांकन, लेखा परीक्षण इत्यादि का विवेचन करते हुये भ्रष्टाचार के विषय को विशेष रूप से उल्लेखित किया है।

अध्याय पाँच विशिष्ट रूप से उन प्रशासकीय नीति मूल्यों, आचरण नियमों (संहिता) तथा उनके अनुपालन को सुनिश्चित करने वाली संस्थाओं के तुलनात्मक विवेचन को स्पष्ट करता है जो कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय व्यवस्थाओं में अपनाये गये थे।

शोध ग्रन्थ के उपसंहार षष्टम् अध्याय में शोध का सारांश एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है साथ ही कौटिल्यकालीन व्यवस्था के सुशासन सम्बन्धी तत्वों को विशिष्ठ रूप से उल्लेखित करते हुये वर्तमान भारतीय प्रशासन में उनके समायोजन की भावी सम्भावनाओं पर विचार किया गया है।

Candidate's Declaration

I, hereby certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled "कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से तुलनात्मक अध्ययनः सुशासन के विशेष संदर्भ में" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of **Dr. Raj Kumar Garg,** Associate Professor, Department of Public Administration, Govt. Arts College, Kota and submitted to the University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included, I have adequately cited and referenced the original source. The work presented in this thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institution. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the source which has thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

(Meena Agrawal)
Date: Research Scholar

This is to certify that the above statement made by Meena Agrawal (Enrolment No.: 94/68073) is correct to the best of my knowledge.

Date: ……… Dr. Raj Kumar Garg
Research Supervisor & Associate Professor
(Department of Public Administration)
Government Arts College, Kota, Rajasthan

प्राक्कथन
(Acknowledgement)

मानव सभ्यता व संस्कृति का वर्तमान स्वरूप उन सभी वैज्ञानिकों, चिन्तकों, ऋषियों, तपस्वियों तथा विद्वानों की कठोर साधना का सुपरिणाम है, जिन्होंने मानवता के कल्याण हेतु नये ज्ञान की खोज की तथा उपलब्ध ज्ञान के भण्डार को समृद्ध बनाया। भारतीय इतिहास में वर्णित गौरवपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन एक प्रेरणा जगाता है। पुरातन राज्य व्यवस्थाओं के आदर्श विशेषतः सुशासन के सन्दर्भ में आज भी उपयोगी सिद्ध हो सकते है, बस आवश्यकता है उनके अध्ययन, चिंतन, मनन एवं व्यवहार में उतारने की। लोक प्रशासन के साहित्य में उन सभी चिन्तकों को सम्मानित स्थान दिया जाता रहा है। जिन्होंने राज्य शासन, प्रशासन, लोक सेवाओं तथा सुशासन इत्यादि के सन्दभ में अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत कर प्रशासनिक व्यवस्थाओं को सुदृढ़ प्रभावी एवं व्यावहारिक बनाने में अपना अद्वितीय योगदान दिया है।

आचार्य कौटिल्य महान सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के राजनैतिक गुरू, प्रशासनिक प्रधान एवं प्रमुख परामर्शदाता थे। कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र संस्कृत भाषा में लिखा भारतीय राजनीति एवं प्रशासनिक चिन्तन का एक महान ग्रन्थ है। कौटिल्य ने इस महान ग्रन्थ की रचना कर न केवल मौर्य वंश वरन् भारत की भावी पीढ़ियों को शासन कला में दक्ष एवं पारंगत करने में अपना योगदान देकर प्रशासक–वर्ग को हमेशा के लिए अपना ऋणी बना लिया। अर्थशास्त्र में राजनीति, प्रशासन, कूटनीति, समाज के मार्गदर्शन के लिये धर्म, अर्थ, कर्म, न्याय, दण्ड, शासन, सुरक्षा, कृषि, व्यापार, सामाजिक विकास व नैतिकता आदि विषयों का गहन अध्ययन किया गया है। आचार्य कौटिल्य ने इस ग्रन्थ में राज्य के सफल संचालन तथा समाज के उत्थान के लिये सुशासन की अवधारणा को विकसित करने के लिये महत्वपूर्ण विचारों को प्रतिपादित किया है। ये श्रेष्ठ व्यवस्थायें पुरातन काल से आज तक शासन और समाज को किसी न किसी प्रकार अनुप्राणित करती रही हैं।

वर्तमान में आवश्यकता है कि उक्त प्राचीन प्रशासनिक धरोहर (कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र) में नीहित मूल्यों एवं संकल्पनाओं को अपना कर वर्तमान व्यवस्था को सुदृढ़, सशक्त एवं सुशासित बनाया जाए। इसी उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान शोध प्रबन्ध का प्रवर्तन किया गया है तथा कौटिल्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से सुशासन के विशिष्ट सन्दर्भों के तुलनात्मक अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिये मैं सर्वप्रथम ईश्वर को नमन करती हूँ। जिसकी ईश्वरीय और असीम अनुकम्पा से यह कार्य सम्पन्न हो पाया है।

इस शोध कार्य के लिये मैं सर्वप्रथम अपने शोध निर्देशक परम आदरणीय **डॉ. राज कुमार गर्ग,** सह आचार्य, लोक प्रशासन विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा का श्रद्धा के साथ हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके मार्गदर्शन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं अमूल्य सुझावों से यह कार्य पूर्ण हो सका तथा जिन्होंने अपने अमूल्य समय में से समय प्रदान कर उक्त कार्य को सम्पन्न कराया। शोध की क्रियाविधियों में उनके गहन चिंतन और प्रेरणा ने मुझे कार्य के लिये मनोबल एवं संबल प्रदान किया।

मैं डॉ. कंचना सक्सेना, प्राचार्य, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा का भी धन्यवाद ज्ञापन करती हूँ। जिन्होंने शोध कार्य हेतु मेरा मनोबल बढ़ाया तथा अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया। मैं डॉ. राजकौर ओला विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय कोटा का भी हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने शोध के सम्बन्ध में मुझे समय–समय पर मार्गदर्शित किया। साथ ही साथ मैं विभाग के अन्य प्राध्यापकगणों द्वारा किये गये सहयोग के लिये भी आभारी हूँ जिन्होंने समय–समय पर अपने अमूल्य सुझावों से मेरा उत्साहवर्द्धन किया।

मैं अपने ईश्वर तुल्य माता–पिता (श्री ओम प्रकाश एवं श्रीमती चन्द्रलता मित्तल) व मेरे भाई–बहन एवं परिवार जनों की भी सदैव ऋणी रहूँगी, जिन्होंने मुझे इस शोध कार्य हेतु सहयोग देते हुए मनोबल को बढ़ाने का कार्य किया। इनके धैर्य एवं सहयोग के बिना उक्त कार्य सम्भव नहीं था। मैं श्रीमती बीना अग्रवाल की भी दिल से आभारी हूँ जिन्होंने शोध कार्य के सन्दर्भ में मुझे काफी मानसिक सम्बल दिया।

मैं अपने शुभचिन्तक मित्रों डॉ (श्रीमती) एकता मीणा, डॉ. आशीष जोरासिया, डॉ. मनोज जैन का भी सहृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से किये गये सहयोग, निरन्तर प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ही यह कार्य सम्पन्न हो सका है।

मैं महाविद्यालय पुस्तकालय के समस्त स्टाफ के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोध हेतु आवश्यक सूचनाऐं एवं सामग्री उपलब्ध करवाने हेतु स्नेहादित पथ प्रदर्शन किया। साथ ही मैं **निकुंज** कम्प्यूटर सेन्टर, कोटा के श्री योगेश कुमार नामा का सहृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने यथा समय इस शोधकार्य का त्रुटि रहित व समयबद्ध टंकण कार्य कर मुझे अवर्णनीय सहयोग प्रदान किया।

स्थान : कोटा
दिनांक :

मीना अग्रवाल
शोधार्थी, लोक प्रशासन
पंजीयन क्रमांक RS/1111/13
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

अध्याय विन्यास

(Chapterisation)

अध्याय क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
प्रथम	शोध प्रारचना (**Research Design**)	1–30
द्वितीय	कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य	31–140
तृतीय	कार्मिक प्रशासन तन्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य	141–233
चतुर्थ	वित्तीय प्रशासन तन्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य	234–326
पंचम	प्रशासकीय नीतिशास्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य	327–383
षष्ठ	सारांश एवं निष्कर्ष	384–397
	शोध सार	**i - v**
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**vi - xiii**
	प्रकाशित शोध पत्र एवं प्रमाण–पत्र	**xiv-xxxviii**

तालिका एवं आरेख सूची

(Table and Figure list)

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
2.1	प्रशासनिक पर्यावरण का तुलनात्मक विश्लेषण	135–137
3.1	भर्ती व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण	214–218
3.2	पद वर्गीकरण का तुलनात्मक विश्लेषण	218–219
3.3	प्रशिक्षण का तुलनात्मक विश्लेषण	219–222
3.4	पदोन्नति का तुलनात्मक विश्लेषण	222–224
3.5	वेतनमान व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण	225–229
3.6	अनुशासनात्मक कार्यवाही का तुलनात्मक विश्लेषण	229–230
4.1	माल के मुल्य अनुसार शुल्क दर	270
4.2	आय का लेखा विवरण पत्र	294
4.3	व्यय का लेखा विवरण पत्र	295
4.4	नीवी (शेष धन) का लेखा विवरण पत्र	295
4.5	वित्त प्रशासन का तुलनात्मक विश्लेषण	319–324
5.1	नीतिशास्त्र के प्रकारों में अन्तर	331–332
5.2	वस्तु के मूल्य अनुसार दण्ड	360
5.3	गुप्तचरों का वर्गीकरण	365–366
5.4	प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय मूल्यों का तुलनात्मक विश्लेषण	378–380

आरेख

क्रमांक

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित लोक सेवकों की परीक्षण व्यवस्था एवं सम्बद्ध पदानुक्रम 163
2. प्राक्कलन प्रपत्र की प्रतिलिपि 260

अध्याय–प्रथम

शोध प्रारूप

1.1 शोध प्रारूप

1.2 शोध कार्य के मुख्य उद्देश्य

1.3 शोध कार्य का महत्व / योगदान

1.4 साहित्य समीक्षा

1.5 शोध प्रविधि

1.6 अध्याय विन्यास

अध्याय–प्रथम

शोध प्रचना

1.1 शोध प्रचना (Research Design) –

सुशासन के लिए जिन मूल्यों की आवश्यकता होती है उनमें सामूहिक निर्णय लेना, उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, जवाबदेयता, राजनीतिक प्रणाली में दक्ष एवं उत्तरदायी संरचना, कानून का शासन और निष्पक्ष समानता शामिल है। एक ऐसा समाज जो सुशासन के आदर्शों को अपनाना चाहता है, उसे इन्हीं मूल्यों पर कार्य करना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि देश के विकास में लोगों को उनका उचित अंश लाभ मिल रहा है या नहीं। सुशासन एक गतिशील अवधारणा है, इसके अनेक पहलू हैं।[1]

वर्तमान में सुशासन की अधिकतर अवधारणाओं एवं विचारों को विश्व के पाश्चात्य विकसित देशों को आदर्श (Modal)मानकर प्रस्तुत किया गया है। उनका राजनीतिक ढ़ाँचा, आर्थिक विकास, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उनका व्यवहार, मानवाधिकार, उनकी न्याय प्रणाली, पुलिस व्यवस्था,शिक्षा, स्वास्थ्य ढ़ाँचे आदि सुशासन के आदर्श हैं। इनका अनुसरण करके हमें भी अपने देश या राज्य को उसी तरह बनाना है। ऐसा करने में हम जितने सफल होंगे, सुशासन के मापदण्ड पर भी हम उतने ही सफल माने जायेंगें। आज का सच यही है कि पूरी दुनिया के लिए सुशासन के उपर्युक्त मॉडल सर्वस्वीकृत है और ज्यादातर देश उन्हीं का अनुसरण कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी सुशासन की कल्पना दी है यानि-लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों, बच्चों, वृद्धों और महिलाओं की सुरक्षा मानवाधिकार,श्रम के नियम, व्यापार के नियम न्याय प्रणाली आदि सारे मॉडल उन देशों द्वारा ही तैयार किए गए है। इनमें सुशासन के जन कल्याण के तत्व हैं, पर वे पूर्ण है, आदर्श है, ऐसा मानना उचित नही होगा ।

यह सत्य है वर्तमान लोकतंत्र के आने से पूर्व तत्कालीन परिस्थितियों और समाज व्यवस्था के अनुरूप विश्व एंव भारत के न जाने कितने विचारकों, मनीषियों, राजनेताओं ने सुशासन के बारे में गहन विचार किया है। यूनान के दार्शनिक **प्लेटो** ने अपने आदर्श राज्य, राजा,न्याय व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन किया है। **अरस्तु** के चिंतन में राज्य, संविधान, कानून, शासक, नागरिक आदि का उस समय के संदर्भ में विशद वर्णन है। **अरस्तु** के अनुसार–**'राज्य, कुलों और ग्रामों का एक ऐसा समुदाय है, जिसका उद्देश्य पूर्ण और आत्मनिर्भर जीवन की प्राप्ति है।''राज्य का उदय जीवन के लिए हुआ और सद्जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है।' 'राज्य एक सकारात्मक अच्छाई है, अतः इसका कार्य**

बुरे कामों अथवा अपराधों को रोकना नहीं, वरन् मानव को नैतिकता और सद्गुणों के मार्ग पर आगे बढ़ाना है'। आज के संदर्भ में प्लेटों एंव अरस्तु के राज्य और शासन संबंधी विचारों की आलोचना होती है, लेकिन सुशासन की दृष्टि से उनके दर्शन के अनेक पहलुओं की प्रासंगिता हर काल में बनी रहेगी। इसके बाद **हॉब्स, लॉक, रूसों, बेंथम**, **मिल** एक लंबी श्रृंखला उन विचारकों और नेताओं की है जिन्होंने अपनी दृष्टि से और तत्कालीन स्थान, समय और परिस्थितियों के अनुसार सुशासन की कल्पना की है।[2]

वर्ल्ड बैंक ने सन् 1989 में अपनी रिपोर्ट **सब सहारन अफ्रीकाः फ्रॉम क्राइसेस टू सस्टेनबल ग्रोथ** (Sub Saharan Africa: From Crisis to Sustainable Growth) में में सर्वप्रथम ''**गुड गवर्नेंस**' (Good Governance) या सुशासन की अवधारणा को प्रस्तुत किया। वर्ल्ड बैंक की इस रिपोर्ट के अनुसार इस क्षेत्र के सतत विकास में शासन प्रणाली में व्याप्त भ्रष्टाचार, राजनैतिक नेतृत्व की व्यक्तिपरकता, मानवाधिकारों की अवहेलना, अनउत्तरदायी एवं अनिर्वाचित सरकारें इत्यादि प्रमुख समस्याएँ थी जो शासन में अव्यवस्था का कारण थी।

1990 के दशक के प्रारम्भ में सुशासन का विचार एक ऐसी अनिवार्यता बन चुकाथा जो एशिया और अफ्रीका के ऋणग्रस्त देशों के लिए दानदाता देश शर्तों के रूप में इस्तेमाल किया करते थे। विश्व के अनेक भागों में सुशासन का न होना सामाजिक अशांति और राजनीतिक उथल–पुथल के लिए दोषी माना जाता था। दमन और शक्ति के दुरूपयोग से मुक्त सुशासन की अवधारणा आज आकर्षण का विषय बनी हुई है। सहभागी विकास, निर्णय लेने की प्रकिया, में पारदर्शिता और नियति के बारे में स्वयं निर्णय लेने के लिए लोगों के सशक्तीकरण की मांग पर आधारित नीतिगत प्रयासों से सुशासन की अवधारणा को मजबूती मिली है।

1992 में **विश्व बैंक** ने अच्छे अभिशासन के संबंध में **'अभिशासन और विकास**'(Governance and Development) नामक दस्तावेज में यह स्पष्ट किया है कि सतत् विकास के लिए वातावरणीय तत्वों को विकसित करना एक अच्छे अभिशासन के माध्यम से ही संभव है। विश्वबैंक की यह स्पष्ट धारणा थी कि एक मजबूत आर्थिक नीति को अच्छे अभिशासन का निरन्तर समर्थन प्राप्त होना चाहिए। विश्व बैंक ने अच्छे अभिशासन को स्थापित करने की निम्नलिखित शर्तें प्रस्तुत की–[3]

1. राजनीतिक उत्तरदायित्व जिसमें नियमित निर्वाचन तथा जनता द्वारा राजनीतिक व्यवस्था को प्राप्त स्वीकृति शामिल हो।
2. विभिन्न धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एंव पेशेवर दलों द्वारा अभिशासन प्रक्रिया में भागीदारी तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता।

3. विधि के शासन पर आधारित विधिक प्रारुप/संरचना की स्थापना तथा मानवाधिकार की रक्षा, सामाजिक–न्याय की सुनिश्चितता, शोषण के विरुद्ध सुरक्षा एवं शक्ति दुरुपयोग से बचाव हेतु न्यायपालिका की स्वतन्त्रता।
4. सरकारी कार्यालयों और पदाधिकारियों के कार्यक्रम तथा निष्पादन की निगरानी एवं नियंत्रण द्वारा नौकरशाही की जवाबदेहिता सुनिश्चित करना, विशेष तौर से सेवा–गुणवत्ता तथा विवेकाधीन शक्ति के अकुशल एवं गलत प्रयोग के संदर्भ में। इससे संबंधित निर्धारक तत्वों में प्रशासन में खुलापन और पारदर्शिता भी शामिल है।
5. लोकनीति निर्माण, निर्णय–निर्माण एवं सरकारी निष्पादन की निगरानी और मूल्यांकन के लिए सूचना प्राप्ति तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतत्रंता की आवश्यकता ।
6. दक्षता और प्रभावशीलता को सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता।
7. सरकार तथा नागरिक समाज संगठनों के बीच सहयोग।[4]

विश्व बैंक की तरह ही **आर्थिक सहयोग और विकास संगठन**(*Organisation For Economic Cooperation and Development, OECD*) ने भी विकासशील देशों को विकास संबंधी सहायता देने के लिए अच्छे अभिशासन की शर्तें रखी। इसके लिए निम्नलिखित पहलुओं की पहचान की। सरकार की वैधानिकता, सरकार के राजनीतिक और कार्यालयी तत्वों की जवाबदेही, नीति–निर्माण तथा सेवा प्रदान करने में सरकार की क्षमता या अयोग्यता, मानवाधिकार तथा विधि के शासन का सम्मान। इन दो संस्थानों के अलावा **वैश्विक अभिशासन से संबंधित आयोग** (*Commission of Global Governance*), **संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम**(*United Nations Development Programme,UNDP*),**यूनेस्को**(*UNESCO*) जैसे संस्थानों ने भी अच्छे अभिशासन के तत्वों और लक्षणों को महत्व दिया है। 1995**वैश्विक अभिशासन आयोग**(*Commission of Global Governance*), ने अच्छे अभिशासन को प्रबन्धन की सम्पूर्णता से संबंधित किया, जिसमें लोक, निजी तथा व्यक्तिगत संस्थाएँ, घटनाओं को प्रभावित करती है। जून, 1996 मे **इस्तानबूल** (Istanbul)में हुई **हेबिटेट द्वितीय कॉन्फ्रेन्स** (*Habitate-II Conference*) में अच्छे अभिशासन के पाँच लक्षणों को पहचाना गया है– जवाबदेहिता, पारदर्शिता, जन भागीदारी, विधि का शासन और लोक तथा निजी संस्थाओं के बीच साझेदारी। **यू.एन.डी.पी.**(*U.N.D.P.*) ने 1997 में अभिशासन को सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक प्राधिकार के प्रयोग से सम्बद्धकरते हुए अच्छे अभिशासन के नौ लक्षणोंको प्रस्तुत किया–भागीदारी, विधि का

शासन, पारदर्शिता, अनुक्रियाशीलता, सर्व–सम्मत दृष्टिकोणोंन्मुखता, समता, प्रभावशीलता एवं दक्षता, जवाबदेही रणनीतिक दृष्टि।

1999 में दक्षिण–एशिया में **मानव विकास पर प्रतिवेदन**(*Report on Human Development in South-Asia*) में अच्छे अभिशासन को मानव अभिशासन के रूप में प्रस्तुत किया और मानव विकास लिए अभिशासन के तीन पहलुओं की चर्चा की गई–**राजनीतिक अभिशासन**,(विधि का शासन, जवाबदेयता,पारदर्शिता, संविधान का तीव्र गति से संशोधन नहीं, स्वतंत्र और निष्पक्ष बहु–दलीय निर्वाचन, शक्ति का स्पष्ट पृथक्करण), **आर्थिक अभिशासन** (वृहत्त आर्थिक स्थिरता, सम्पत्ति अधिकार की प्रत्याभूति (*Guarantee*), बाजारी विकृति को हटाना, मूलभूत अधोसंरचना तथा जनता में निवेश, प्राकृतिक वातावरण का संरक्षण, सामाजिक न्याय और आर्थिकविकास के उन्नयन के लिए प्रगतिवादी तथा साम्य वित्तीय व्यवस्था की स्थापना) और **लोक अभिशासन** (मौलिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा मानव अधिकार को सुनिश्चित करना, महिलाओं, गरीबों, तथा जातीय एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों को संरक्षण देना तथा सशक्त बनाना) है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा सुशासन के संबंध में अभिव्यक्त किये गए विचारों से यह स्पष्ट होता है कि सुशासन कुछ विशिष्ठ चारित्रिक विशेषताओं के साथ सर्वमान्य अवधारणा है।[5]

सुशासन पर जितना गहरा विचार और विश्लेषण भारतीय मनीषियों ने किया उतना संभवतः किसी ने भी नहीं किया। **वाल्मिकी रामायण** में विवेचित किया है– चौदह वर्ष वनवास न जाने की सलाह पर **श्रीराम** कहते हैं, "**सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम।तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।**"अर्थात् हिंसारहित सत्य ही राजा का सनातन धर्म है। राज्य सत्यात्मक है, सत्य में ही जगत प्रतिष्ठित है यानी राज्य सत्य के साथ कभी समझौता न करें और सत्य के प्रतिपालन में हिंसा भी न हो। राज्य की अगर सत्य के साथ आत्मीयता नहीं है और वह हिंसक है तो फिर वह सुशासित राज्य नहीं हो सकता। सुशासन की इससे श्रेष्ठ अवधारणा नहीं हो सकती है। प्राचीन भारतीय चिंतन में नैतिक सुशासित राज्य का आधार तीन बिन्दुओंपर केन्द्रित था। **प्रथम** बिन्दु**सर्वलोककल्याणकारी कर्मा** (*Universal Welfare*) **द्वितीय** बिन्दु**सर्वलोकसंग्रहामवापि** (*Maintaining and Protecting each and everyone in the Creation*) **तृतीय**बिन्दु**सर्वहितेरथाः** (*Securing universal care for all and every one*) है। इस त्रिकोण का **केन्द्रीय** बिन्दू (*Center Point*) **सर्वेभवन्तु सुखिनः** (*Happiness for all*)[6] हैं।

महाभारत के **शांतिपर्व** में **भीष्म युधिष्ठिर** से कहते हैं"**धर्मानुवर्ती राजा का यह कर्तव्य है कि वह अपना प्रिय परित्याग कर वहीं करे जिसमे लोकहित हो।**" जो शासन के लिए,

जनता के लिए निर्णय करने हेतु नियुक्त है उनके प्रत्येक कार्य एवं निर्णय का लक्ष्य लोकहित ही होना चाहिए। इसमें हमारा कोई प्रिय है, अपना है, अथवा उसका हित या अहित नहीं, यह पक्ष निषेध है। वर्तमान शासन के तीनो अंगों, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के लिए इसमें कोई मापदण्ड नहीं हो सकता है। **शांतिपर्व** में ही आगे कहा गया हैकि**"राजा बिना युद्धके विजय प्राप्त करें। युद्ध से विजय प्राप्त करना उचित नहीं है।"**[7]इस तरह हिंसा से राज्य को रखने एवं सत्य एवं शान्ति के आधार पर जो शासन हो वहीं भारतीय अवधारणा में सुशासन कहा जायेगा।

हिन्दू स्मृतियों में से एक **मनुस्मृति** में भी सुशासन संबंधी विचारों का उल्लेख मिलता है। इसमें सामान्य जन के नैतिक कर्तव्यों के साथ-साथ राजा, अधिकारियों एवं न्यायिक प्रशासन के आचार व्यवहार का उल्लेख किया गया है। राजा उसके मंत्रियों एवं अन्य अधिकारियों के कर्त्तव्यों का उल्लेख निम्न प्रकार से कियाहै। ***"Brahma has created the king to be the protector of the verna and public order (Common Good) so that they discharge their several duties according to theirDharma and Rank"***[8].

वैदिक साहित्य में कई प्रकार की शासन व्यवस्थाओं का वर्णन है, **अथर्ववेद** में कहा गया है–**विराड् वा इदमग्र आसीत्** अर्थात् ऐसा राज्य जहाँ राजा या कोई शासन नहीं हो। सारी जनता स्वयं अपना प्रबंधन करती हो उसे **वैराज्य** कहते थे। भारत में सुशासन की कल्पना यह मानी गई कि शासक नहीं वरन् समस्त जनता प्रबंधन करती है। वैदिक स्वराज्य में सुशासन का अर्थ संकुचित भाव से रहित है एवं बहुसम्मत से राज्य व्यवस्था को संचालित करने वाला शासन है। भारत में परम्परा की दृष्टि सुशासन की अवधारणा की प्रमुख विशेषता यही रही है कि यहाँ जिसके हाथों में शासन संचालन की जिम्मेदारी है उनकी पात्रता पर सर्वाधिक विचार किया गया है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भी सुशासन की अवधारणा की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अर्थशास्त्र में वर्णित सुशासन के **दस निर्धारक**(*Indicators*) तत्व किसी भी पश्चिमी सुशासन अवधारणाओं से बहुत आगे एवं श्रेष्ठ है। यह **पोस्ट विल्सोनियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन** (*Post Wilsonion public administration*) से अधिक आधुनिक है। राजशाही एवं विधिक रूप से चर्चित असमानता के उस युग में केवल कौटिल्य ने राजा को राज्य का सेवक कहा जिसकी कोई व्यक्तिगत पसंद *"no personal likes"* नही थी। वह भी उन सेवकों के समकक्ष ही था, जो उसके अधीनस्थ होते थे।[9] लोकतंत्र के इस युग में भी तृतीय विश्व के देशों के लिए यह अपूर्व सुझाव है, क्योंकि इन देशों में लोकसेवक जो

जनता के सेवक है वह निर्धनों के साथ मालिकाना व्यवहार ही करते है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित दस निर्धारक (*Ten Indicators*) तत्व इस प्रकार से हैं:–

1. राजा अपने व्यक्तिगत हित को अपने कर्तव्यों के साथ सम्मिलित करें।(*King must marge his individuality with duties*) ।
2. सुनिर्देशित प्रशासन (*A properly guided administration*)।
3. अतिरेकता से दूर रहते हुए लक्ष्यों को न भूलना (*Avoiding extremes without missing the goal*)।[10]
4. राजा एवं अधिकारियों के लिए अनुशासित जीवन एवं आचार व्यवहार के नियम*Disciplined life with the code of conduct for king and ministers*) ।
5. राजा एवं लोकसेवकों के लिए निश्चित वेतन एवं भत्ते।(*Fixed salaries and allowances to king and public servants*)।[11]
6. राजा का मुख्य कर्त्तव्य कानून एवं व्यवस्था बनाये रखना है– चोरी एवं वस्तु निर्माण में हुए नुकसान की पूर्ति राजा के वेतन से हो (*Law and order chief duty of king-Theft losses to be made good from King's salary*) ।
7. भ्रष्ट अधिकारियों से बचने एवं उनके प्रति दण्डात्मक कार्यवाही करना (*Carrying out preventive, punitive measures against corrupt officials*)।[12]
8. राजा द्वारा मंत्रियों के स्थान पर अन्य विशेषज्ञों को नियुक्त करना (*Replacement of ministers by good ones by the king*) ।
9. प्रशासनिक मूल्यों में प्रतिस्पर्धा बढ़ाना (*Emulation of administrative qualities*) ।
10. अस्थिरता के समय भी सुशासन बनाये रखना (*Pursuing good governance even amidst instability*) ।

आधुनिक भारत में भी सभी नागरिक देश की सरकार एवं इसके अंगों से उच्च गुणवत्ता के प्रदर्शन की आशा रखते हैं। इसलिए आवश्यक है कि भारत में भी सभी नागरिकों को खुले रूप एवं पूर्णरूप से राजनैतिक प्रकिया में सहभागिता का अवसर मिले। सुशासन का संबंध जवाबदेयता, राजनैतिक, नेतृत्व, प्रखर नीति निर्माताओं और कार्यकुशल लोकसेवकों से है। सशक्त नागरिकसमाज के साथ–साथ स्वतंत्र प्रेस और स्वतंत्र न्यायपालिका सुशासन की पूर्व शर्त है। सुशासन की केन्द्रीय चुनौती सामाजिक विकास है। 14 अगस्त, 1947 को अपने भाषण **'नियति से साक्षात्कार'** में इस चुनौती को स्पष्ट करते हुए **पण्डित जवाहरलाल नेहरू** ने कहा था **''गरीबी, अज्ञानता, रोग और अवसर की असमानता का खात्मा''**[13] सुशासन का उद्देश्य सामाजिक अवसरों का विस्तार और गरीबी उन्मूलन होना चाहिए।

संक्षेप में सुशासन का अर्थ न्याय की रक्षा, सशक्तिकरण, रोजगार और सेवाओं का प्रभावी निष्पादन है।

गांधीजी के अनुसार सुशासन ऐसा शासन है जो लोकसम्मति से चले, जो सबके कल्याण के लिए कार्य करे, जिसमें सत्ता पर कुछ मुट्ठी भर लोगों को कब्जा न हो, जहाँ लोग हर चीज के लिए राज्य मुखापेक्षी न हो, जिसमें समाज के निचले तबके को भी कुछ जीवन की आवश्यक सुविधाऐं उपलब्ध हों, या जो उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्नशील हों। इन सबमें गांधीजी के सुशासन की मूल भारतीय कल्पना(रामराज्य की स्थापना) सत्य, अहिंसा और नैतिकता को प्रमुख स्थान देती है।

वर्तमान भारतीय परिदृश्य के सन्दर्भ में 1996 में मुख्य सचिवों के सम्मेलन तथा 1997 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में अच्छे अभिशासन की स्थापना के प्रति प्रतिबद्वता दर्शायी गयी। कार्मिक, जन शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय ने 'प्रभावशाली तथा अनुक्रियाशील प्रशासनके लिए एजेंडा' से संबंधित एक दस्तावेज तैयार कराया और इसके माध्यम से लोक प्रशासन को उत्तमता से जोड़ने की व्यवस्थित कोशिश प्रारम्भ हुई। **बोहरा समिति** के प्रतिवेदन को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक एवं प्रशासनिक सच्चरित्रता को बनाये रखने तथा प्रशासन में पारदर्शिता को सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर **ई–गवर्नेस** की अवधारणा पर व्यापक बल दिया। आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पंजाब और दिल्ली जैसे राज्यों में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभावशाली उपयोग सुनिश्चित करते हुए प्रशासनिक उत्तमता प्राप्त करने की कोशिश की गई। राष्ट्रीय स्तर पर सूचना प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल को संभव बनाने के सकारात्मक प्रयत्न को संभव बनाते हुए सूचना के अधिकार से संबंधित विधेयक प्रस्तुत किये गए। सन् 2005 में विधिवत् **सूचना का अधिकार** देश की जनता को प्राप्त हुआ और **अच्छा अभिशासन** (Good Governance)को स्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। 28 जून 2005 को **अंतर्राज्यीय परिषद्** की **नवीं बैठक** में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में 139 सूत्रीय कार्य योजना बनायी गई ताकि अच्छे अभिशासन को प्रभावशाली तरीके से लागू किया जा सके। इस कार्य योजना को संघीय मंत्रालयों तथा देश की सभी राज्य सरकारों को भेजा गया। यह निर्णय लिया गया कि अंतर्राज्यीय परिषद् सचिवालय अच्छा अभिशासन संबंधी कार्य योजना के क्रियान्वयन की निगरानी करेगा। **अच्छा अभिशासन के लिए राष्ट्रीय केन्द** ,(*National Center for Good Governance,NCGG*) की स्थापना का भी निर्णय लिया गया ताकि संस्थात्मक योग्यता विकास सम्भव बनाया जा सकें। इस राष्ट्रीय केन्द्र को विश्वस्तरीय संस्था के रुप में विकसित करने का निर्णय लिया गया ताकि भारत में अच्छा अभिशासन संबंधी सुधारात्मक

कार्यों को इसका मार्गदर्शन प्राप्त हो सकें। कार्य योजना के तहत राज्य सरकारों से यह निवेदन किया गया कि वह अपने स्तर पर **अच्छा अभिशासन केन्द्र** (*Center for Good Governance*)की स्थापना करें। 9 दिसम्बर, 2006 अंतर्राज्यीय परिषद् की 10 वीं बैठक हुई जिसमें अच्छा अभिशासन से संबंधी किए जा रहे सरकारी प्रयासों की समीक्षा की गई।[14]

ग्याहरवीं पंचवर्षीय योजना में सुशासन के लिए निर्धारित की गई रणनीति में निम्नलिखित बातें शामिल थीः–

- पंचायती राज संस्थाओं का विकेन्द्रीयकरण व सुदृढ़ीकरण।
- केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर कमियां दूर करना और इनमें ढ़ाँचागत सुधार लाना।
- जिला स्तर पर नियोजन को बढ़ावा देना।
- सामुदायिक एवं स्वैच्छिक संगठनों के बीच भागीदारी व परस्पर–सहयोग को बढ़ावा देना।
- धन या संसाधन लगाने पर जोर देने के बजाय लगाए जाने वालें धन के उपयोग एवं अन्ततः उपलब्धियों पर ध्यान देना।
- निगरानी व मूल्यांकन तंत्र का सुदृढ़ीकरण।
- बेहतर नागरिक सुविधाओं को सुलभ कारवाने के लिए ई–शासन को बढ़ावा देना।
- भ्रष्टाचार दूर करने हेतु कदम उठाना।
- नागरिकों की सेवा की दृष्टि से नौकरशाही में वांछित सुधार।
- नियामक एजेंसियों की जवाबदेहिता सुनिश्चित करना व उनकी स्वायत्तता को बढ़ावा देना।
- पुलिस व न्यायपालिका में सुधार कर **विधि का शासन** को सुनिश्चित करना।[15]

सुशासन की बढ़ती हुई आकाक्षां तथा इसके पुरातन एंव आधुनिक भारतीय दर्शन में अवस्थित विचार से यह स्पष्ट है कि समकालीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में सुशासन उतना ही प्रासंगिक है जितना कि कौटिल्य एंव उसके पश्चवर्ती काल में था। ऐसी स्थितियों मे यह उचित एवं प्रासंगिक होगा कि सुशासन की भारतीय परम्परा को शोध के माध्यम से उजागर किया जाए। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए उक्त शोध प्रस्तुत किया गया है।

1.2. शोध कार्य के मुख्य उद्देश्य (Main Objectives of Research Work) :

शोध कार्य के मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार हैंः–

1. कौटिल्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था के संरचनात्मक एंव कार्यात्मक पक्ष को स्पष्ट करना।
2. कौटिल्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में निहित सुशासन की नीतिगत संकल्पना को उजागर करना।
3. वर्तमान भारतीय प्रशासन के सुशासन संबंधी संरचनात्मक उपकरणों तथा वैचारिक/नीतिगत पक्ष को उजागर करना।
4. कौटिल्यकालीन तथा वर्तमान प्रशासनिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं एवंमूल्यों की तुलनात्मक विवेचना करना। उसकी समरूपताओं एवं विषमताओं का निर्धारण करना तथा सुशासन के सन्दर्भ में वर्तमान व्यवस्थाओं के एतिहासिक विकास क्रम (यदि कोई हो तो) स्पष्ट करना।
5. कौटिल्यकालीन सुशासन परम्पराओं की वर्तमान संदर्भो में प्रासांगिकता का निर्धारण करना।
6. भारतीय प्रशासन के उन्नयन के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।
7. वर्तमान भारतीय प्रशासन में सुशासन के सिद्वान्तों के विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन विषय अपनी प्रकृति में अत्यन्त विस्तृत है, अतः अध्ययन के उपर्युक्त वर्णित उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए शोधकार्य विशिष्ट रूप से सुशासन कि अवधारणा को केन्द्र मानकर ही किया गया है। जिससे शोध को केन्द्रिकृत किया जा सके। भारतीय प्रशासन के विस्तृत आकार को देखते हुए अध्ययन विषय में तुलनीय बिन्दुओं को प्रशासन के उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखा गया है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित है।

1.3 शोध कार्य का महत्व/योगदान

(Importance/Contribution of Research Work) –

प्रस्तुत शोध कार्य का महत्व एवं सम्भावित योगदान निम्नानुसार है–

1. शोध के माध्यम से भारतीय प्रशासनिक चिंतन के क्षेत्र में कौटिल्य के योगदान को रेखांकित किया गया है एवं उनके अर्थशास्त्र के अध्ययन के महत्व को भी स्थापित किया है।
2. शोध के माध्यम से इस तथ्य की पुर्नस्थापना करने में सहायता मिली हैकि सुशासन के प्रमुख तत्व जैसे सुदृढ़ एवं स्वतंत्र प्रशासनिक तंत्र,पारदर्शिता,सशक्त वित्तीय कार्य प्रणाली, लेखांकन एवं लेखापरीक्षण इत्यादि भारतीय प्रशासन में आज से दो हजार वर्ष पूर्व कौटिल्य काल में स्थापित रहे हैं। वे आज भी प्रासंगिक है और अपनी प्रांसगिकता बनाये हुये हैं।

3. यह अनुसंधान सुशासनके पुरातन विकल्पों को नवीन परिप्रेक्ष्य में लाभदायक बनाने में सहायक होगा।
4. यह शोध भारतीय प्रशासनिक चिंतकों को पाश्चात्य प्रशासनिक प्रारूपों को अपनाने की प्रवृति के स्थान पर स्वराष्ट्रजनित (स्वदेशी) तथा भारतीय परिवेश (पारिस्थितिकी)की आवश्यकताओं एंव परम्पराओं के अनुरूप प्रशासनिक प्रारूपों को विकसित करने में सहायक एवं प्रेरक होगा।
5. उक्त शोध के माध्यम से यह भी अपेक्षा की जाती है कि यह अन्य लुप्त प्रायः भारतीय चिंतकों के योगदान को उजागर करने के लिए उत्प्रेरक का कार्य करेगा। पुरातन भारतीय प्रशासनिक चिंतन के प्रति एक जागरूकता तथा आत्माभिमान उत्पन्न करने में सहायक होगा ।
6. उक्त शोध इस दिशा में भावी अनुसंधान हेतु मार्ग प्रस्तुत करेगा।

1.4 साहित्य समीक्षा(Review of Literature)-

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के संबंध में विभिन्न भाषायी अनुवादों एवं टीकाओं का प्रकाशन किया गया है। विभिन्न लेखकों ने इस संबंध में अपनी पुस्तकें, लेख, शोध पत्र इत्यादि समय–समय पर प्रस्तुत किये हैं इस संबंध में पूर्व में भी शोध कार्य हुए हैं। विभिन्न संस्थान भी इस विषय पर निरन्तर शोध कार्य में निरत हैं। ये अध्ययन समय, स्थान एवं विचारकों के अपने दृष्टिकोण, विचारधारा एवं अनुभवों को परिलक्षित करते है। सुशासन के परिप्रेक्ष्य में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र पर शोध कार्य की व्यापक संभावनाएं हैं। पूर्व में किये गये ये अध्ययन शोधकर्ता को आधार प्रदान करने के साथ–साथ सम्बन्धित विषय के सन्दर्भ में नवीन दृष्टि भी प्रदान करतीहै। इसी सन्दर्भ में उपलब्ध लेखों, शोध–प्रबधों, पुस्तकों एवं विशेषज्ञों द्वारा प्रकट विचारों की एक संक्षिप्त रूपरेखा निम्नानुसार है –

आर. पी. कांगले के द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित ग्रंथमाला,**''द कौटिल्याअर्थशास्त्र'',श्री वॉल्यूमस्** ***(The Kautiliya Arthashastra,3 Vols)***1972[16] के अर्न्तगत तीन पृथक पुस्तकों में लेखक ने कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित विचार सामग्री को प्रस्तुत किया है। प्रथम पुस्तक के अर्न्तगत कौटिल्य के अर्थशास्त्र का मूल संस्कृत अनुवाद संकलित है। द्वितीय पुस्तक में अर्थशास्त्र का अत्यन्त साहित्यिक अंग्रेजी अनुवाद, टिप्पणियों एवं वैकल्पिक अनुवादों के साथ प्रस्तुत किया है। तृतीय पुस्तक में स्वयं लेखक प्रो.कांगले के अर्थशास्त्र संबंधित तार्किक विचार विश्लेषण को दर्शाया है। यह ग्रंथमाला दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये अर्थशास्त्र में कौटिल्य के विचारों एवं अवधारणाओं को समसामयिक संदर्भ में तार्किक एवं समीक्षात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। शोधार्थियों एवं

विशेषज्ञों को कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र को गहन दृष्टिकोण से समझने एवं विभिन्न सामाजिक विषयों में भावी शोध के लिए बौद्विक एवं विचारोत्तेजक सामग्री प्रदान करती है।

एन. शिवकुमार एवं वी.एस. राव द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र,**''गाइडलाइन्स् फॉर वेल्यू बेस्ड मैनेजमेंट इन कौटिल्यास् अर्थशास्त्र''*(Guidelines for value based Management in Kautiliya's Arthashastra,)***1996[17]में भारत के प्रसिद्ध प्रबंधन ग्रंथ अर्थशास्त्र में उल्लेखित मूल्याधारित प्रबंधन के विशिष्ठ सूत्रों को वर्तमान भारत के व्यवसाय एवं अन्य संगठनों में बढ़ते भ्रष्टाचार के निदान हेतु प्रयुक्त करने का प्रयास किया है। भारतीय शेयर बाजार में हुए घोटालों ने देश की जनता को हिलाकर रख दिया तथा इससे जनता के समक्ष यह तथ्य प्रकट हुआ कि देश के बड़े संगठनों में निर्णयन में भाग लेने वालों व्यक्तियों के कार्य व्यवहार में कितनी नैतिक गिरावट आई है(बासु एण्ड दलाल 1993)। अतः प्रबंधकों के नैतिक व्यवहार में उन्नत मूल्यों के विकास के लिए आवश्यक निर्देशक तत्वों को निश्चित करना आवश्यक हो गया है। इस लेख में परम्परागत भारतीय परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रतिज्ञापित मूल्य आधारित प्रबंधन के जो निर्देशन सूत्र दिये हैं, उनको समझाया गया है। कौटिल्य के यह प्रबंधन सूत्र कोई तुरन्त स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं करते हैं, वरन् यह सम्पूर्ण ढाँचे को आधार मानते हुए निर्देशन देते हैं। कौटिल्य के मूल्याधारित प्रबन्धन के इस मॉडल में संगठन के दर्शन, उस पर आधारित नेतृत्व एवं इनसे विकसित कॉरपोरेट संस्कृति का भी उल्लेख है। यह कॉरपोरेट संस्कृति ही मूल्यों को परिभाषित करती है जो सदस्यों के व्यवहार को निर्देशित करती है तथा अनैतिक व्यवहार को रोक सकती है। अर्थशास्त्र में वर्णित इन मूल्य सूत्रों के प्रयोग से वर्तमान संगठन भी अपने प्रबन्ध लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकते हैं तथा नेतृत्व भी अपने शेयर धारकों के सुझाव से अपने प्रदर्शन की जांच कर सकते है। यह शोध पत्र अर्थशास्त्र में वर्णित नीति, नैतिक एवं मूल्यों पर आधारित निर्देशनों की विस्तृत व्याख्या करता है, जो आज के संगठनों व प्रबन्धन के लिए उपयोगी है।

रोजर बसाक के द्वारा लिखित लेख, **''मॉडरेट मैकियावली ? कॉन्टरास्टिंग द प्रिंस विद द अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य''** ***(Moderate Machiavelli/Contrasting the Prince with the Arthasastra of Kautiliya)*** 2002[18] में पश्चिमी यथार्थवादी राजनीतिक चिंतक मैकियावली एवं प्राचीन भारतीय यथार्थवादी विचारक कौटिल्य के शासन सम्बन्धी विचारों में जो भिन्नता मिलती है, उस पर प्रकाश डाला गया है।इनदोनों विचारधाराओं के अन्तर को उनकी रचनाओं में उल्लेखित विचारों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। मैकियावली की **''द प्रिंस''** नामक कृति का जब प्रकाशन हुआ तो उनके समकालीन विद्वान इस कृति में वर्णित

राजनीतिक यथार्थवादी सिद्वान्तों को पढ़कर आश्चर्यचकित हो गये। **लियो स्ट्रास** ने तो मैकियावली को *'A teacher of Evil'* तक की संज्ञा दे डाली। लेखकों ने जब **'द प्रिंस'** का पुर्नपठन किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि मैकियावली का राजनीतिक यथार्थवाद प्राचीन भारत एवं चीन परम्परा के विपरित अधिक उदार एवं संयमित है। **मैक्सवेबर** ने भी अपने प्रसिद्ध व्याख्यान ''**पॉलिटिक्स एज एवोकेशन**''में कहा कि ईसा पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य के समय के ग्रन्थ कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र की तुलना में मैकियावली की **'द प्रिंस'** हानि रहित है। मैकियावली के राजनीतिक चिंतन का नैतिक आधार यह था कि राजाओं के अच्छे या बुरे निर्णयों को परिणामों द्वारा जाँचा जाता है। राजनीतिक या सैन्य नेतृत्व को महानतम की प्राप्ति हेतु, नये राज्य कि स्थापना, कानूनी व्यवस्था, सेना की सुरक्षा इत्यादि के लिए हिंसा, कठोर, अनैतिक, राजनैतिक साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। कौटिल्य का मानना था कि सामाजिक न्याय एवं समृद्धि के विकास में ही राज्य का हित है। निर्धन,सताये हुए, साधनहीन लोग शत्रु से मिलकर राजा का विनाश कर सकते है। मैकियावली एवं कौटिल्य की राजनैतिक धारणाओं एवं लक्ष्यों में अंतर का भी लेख में उल्लेख है। मैकियावली प्राचीन रोमन मॉडल के जनतंत्र की स्थापना के समर्थक थे। क्योंकि लोग कानून के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, जबकि कौटिल्य की अवधारणा थी कि सामाजिक व्यवस्था जो प्राचीन हिन्दू परम्परा पर आधारित है को बनाये रखना राजा का कर्त्तव्य है तथा इसी से राज्य में शांति व सामाजिक न्याय की स्थापना हो सकती है। मैकियावली की तुलना में कौटिल्य ने राजा की शक्ति में विस्तार के लिए गुप्तचर, संदेशास्पद गतिविधियों की रोकथाम, यंत्रणा एवं हत्याओं, युद्ध के प्रकारों पर विस्तृत एवं गूढ़ सिद्वान्तों की व्याख्या की है। मैकियावली ने राजा के संयत व्यवहार का समर्थन किया, क्योंकि वह सामान्य जन के सुख की कामना करता था तथा रोमन जनतंत्र की स्थापना का दिवास्वप्न देखता था। जिसमें गुप्तचर, यंत्रणा व हत्या से कोई सम्मान या महानता की प्राप्ति नहीं होगी। मैकियावली ने शांति, कानून की रक्षा एवं उत्तम शासन को बनाये रखने के लिए ही हत्या का समर्थन किया। इस प्रकार चीनी कूटनीतिज्ञ **सुनत्जु** एवं कौटिल्य की तुलना में मैकियावली अधिक उदार एवं संयत थे। यह लेख इसे तार्किक दृष्टि से अभिव्यक्त करता है।

व्यावसायिक लेखाकार के लिए आवश्यक है कि वह लेखांकन नियंत्रण प्रणाली कि सभी कमजोरियों को उजागर करे, जिससे शासकीय धन के दुर्विनियोग को रोका जा सके। इस विषय को ध्यान में रखते हुए सुकांत भट्टाचार्य ने अपने इस शोध लेख, ''**फ्रॉम् कौटिल्य टू बेनफॉर्ड–ट्रैन्ड्स इन फॉरेन्सिक एण्ड इन्वेस्टीगेटिव अकाउटिंग**''***(From***

Kautiliya to Benford-trands in Forensic and investigative accounting),2002[19] में पुरातन तथा वर्तमान में प्रचलित दोनों लेखांकन प्रणालियों की समीक्षा की है। शोध पत्र में न्यायिक *(Forensic)*लेखाकार के दोनों प्रकार के प्राथमिक कार्यों जैसे लेखों की जांच पड़ताल एवं विधिक समर्थन *(Litigation Support)*का वर्णन करते हुए मौर्यकालीन भारत में वित्तीय गबन की वर्गीकरण प्रणाली को समझाया है। लेखांकन विषय के इतिहासकार मानते हैं कि दोहरी प्रविष्टि (बहीखातों में) के प्राथमिक सिद्वान्तों को पन्द्रवीं शताब्दी के फ्रांसीसी सन्यासी एवं गणितज्ञ **लुकापेसी ओली** *(Luca Pocioi)* ने प्रतिपादित किया था जबकि 2000 वर्ष पूर्व कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लेखांकन व लेखा–परीक्षण परीक्षा सम्बन्धी तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की थी।अर्थशास्त्र में गबन के निषेध एवं गबन की जांच के सम्बन्ध में कई तरीकों की व्याख्या भी की है। इनमें से कई वित्तीय गबन के प्रकार आज के युग में भी प्रचलित है। इनमें प्रमुख है व्यक्तिगत लाभ के लिए तथ्यों का असत्यकरण *(Falsification of date),* भ्रान्त व्याख्याऐं (*Misrepresentions*) और असंगति (*Discerpancies*) है। इस लेख में वर्तमान एनरॉन कम्पनी के पतन को कौटिल्य द्वारा वर्णित वित्तीय भ्रष्टाचार के परिपेक्ष्य में दर्शाया गया है। कौटिल्य के वर्गीकरण (वित्तीय गबन सम्बन्धी) के आधार पर वित्तीय अनियमितताओं के सम्बन्ध में एक निरपेक्ष प्रणाली विकसित करने का प्रयास किया है। इसमें 19वीं शताब्दी के गणितीय सूत्र जो **बेनफोर्ड लॉ** (*Benford's Law*) के नाम से जाना जाता है एवं कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित गबन वर्गीकरण प्रणाली के मिश्रित प्रयोग से अनुसंधान लेखांकन के उत्तम परिणामों की प्राप्ति की व्याख्या की है।

सुशासन का वित्तीय पक्ष भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कौटिल्यकालीन व्यवस्था में वित्तीय आयामों का उल्लेख विभिन्न विद्वानों ने किया है जो समकालीन रूप से प्रांसगिक है।

श्री आर.के.मिश्रा द्वारा लिखित शोध पत्र **''पब्लिक इन्टरप्राइज इन कौटिल्यास् अर्थशास्त्रा सम इनसाइट्स''**(***Public Enterprise in Kautiliya's Arthasastra: Some Insights***) 2003[20] में लोक–उपक्रमों के सन्दर्भ में कौटिल्य के विचारों को दर्शाया गया है। वर्तमान भारत के लोक उद्यमों के प्रबन्धन के सम्बन्ध में उसकी प्रासंगिकता का परीक्षण किया गया है। शोध पत्र में कौटिल्य काल के लोक–उपक्रमों में की जाने वाली आर्थिक गतिविधियों का उल्लेख करते हुए इन उपक्रमों में लागू की जाने वाली वेतन नीति का वर्णन दिया है तथा साथ ही इन उपक्रमों में अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध में पालन किये जाने वाले सि़द्वान्तों की गहन व्याख्या की है। शोध लेख में उपक्रमों के लेखांकन, लेखापरीक्षण, उपभोक्ता संरक्षण एवं लाभ, संगठन, वित्तीय सूचना एवं नियन्त्रण

व्यवस्था के सम्बन्ध में कौटिल्य के विचारों की व्याख्या करते हुए आधुनिक लोक उद्योगों में इन सभी सम्बन्धित अवधारणाओं की प्रासंगिकता को उजागर करने का प्रयास किया है।

डॉ. संजीव कुमार शर्मा ने अपने लेख **'इण्डियन आइडिया ऑफ गुड गवर्नेसः रिविजिटिंग कौटिल्याज अर्थशास्त्र''** (***Indian Idea of Good Governance Revisiting Kautiliya's Artasastra***) 2005[21]में इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि सुशासन की संकल्पना में शैक्षिक दृष्टिकोण से पश्चिमी मॉडल पर निर्भरता के बजाय प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित सुशासन सिद्वान्तों का अध्ययन करना आवश्यक है। सुशासन को प्राचीन सन्दर्भ में समझने के लिए कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र एक मुख्य आधार हो सकता है। कौटिल्य द्वारा वर्णित सुशासन की परिकल्पना एवं उसकी कार्य प्रक्रिया समसामयिक है। इस लेख में यह दर्शाया है कि आधुनिक काल के सुशासन के सिद्वान्त की जो मौलिक विशेषताऐं है, जैसे सरकार की जवाबदेयता, प्रशासन की कुशलता, जनता की समृद्धि एवं खुशहाली, राजनीतिक समुदाय का सम्पूर्ण विकास, जीवन में गुणवत्ता, नैतिक उन्नयन एवं आर्थिक सम्पन्नता इत्यादि का कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक संरचना एवं चिन्तन प्रक्रिया में भी उल्लेख मिलता है। सत्ता का प्राथमिक उद्देश्य जनता की खुशहाली थी तथा अन्य लक्ष्यों का स्थान गौण था। इस प्रकार भारतीय दर्शन में न केवल जनता की समृद्धि का ध्यान रखा गया है वरन् शैक्षिक एवं विद्ववत् समाज के समक्ष सुशासन के भारतीय मॉडल को प्रस्तुत किया है।

रशीद उज़ जामेन के लेख **''कौटिल्यः द इण्डियन स्ट्रेटिजिक थिंकर्स एण्ड इण्डियन स्ट्रेटिजिक कल्चर''**(***Kautiliya: The Indian strategic thinkers and Indian Strategic culture***) 2006[22] में भारतीय रणनीतिक संस्कृति संस्कृति पर जो विविध प्रभाव है उन्हीं में से एक कौटिल्य के चिन्तनशैली के प्रभाव का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित विचारों की विवेचना करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया है कि भारतीय रणनीतिक संस्कृति को समझने में कौटिल्य की विचारधारा ही अधिक महत्वपूर्ण है। इतिहास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि शासकीय वर्ग में कौटिल्य के विचार लोकप्रिय थे। स्वतन्त्र भारत की नीतियों में भी इस विचारधारा का प्रकटीकरण देखा गया। लेखक यहाँ यह भी स्पष्ट करते है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत को मुख्य खिलाड़ी की भूमिका निभाने के लिए कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन की आवश्यकता है।

श्री सत्य देव द्वारा लिखित लेख **''स्टेट एण्ड ब्यूरोक्रेसी इन कौटिल्याज़ अर्थशास्त्र''** (***State and Bureaucracy in Kautiliya's Arthasastra***)[23]में इस विचार की व्याख्या प्रस्तुत की है कि अर्थशास्त्र में वर्णित समाज, राज्य एवं लोकसेवा को विभिन्न सैद्वान्तिक

मॉडलों द्वारा कैसे अध्ययन के रुप में प्रस्तुत किया जाये तो वह केवल **मार्क्स** के मॉडल द्वारा समझा जा सकता है जो राज्य के दो शोषणकर्तावर्ग कबीला प्रमुखों एवं कृषक–व्यापारी वर्ग में संतुलन रखता है। नौकरशाही शासनवर्ग की तरह कार्य करती है। सत्ता का प्रयोग वैध नौकरशाही संगठन द्वारा बल प्रयोग एवं अनीति के रुप में करना। **वेबर** के ''**तार्किक नौकरशाही संगठन मॉडल**'' से यह भिन्न है। वेबर का मॉडल आधुनिक पूंजीवादी समाज की देन है। इस लेख में लेखक द्वारा यह तथ्य भी उल्लेखित है कि समकालीन पूर्व उपनिवेश एवं अविकसित देशों में शासक को स्वायत्ता होती है तथा सेना एवं नागरिक सेवा शासक वर्ग की तरह ही कार्यशील रहती है।

अशोक कुमार दुबे लिखित पुस्तक ''**21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन** ***(Ikisvi Shatabadi Main Lok Prashasan)***''[24] द्वारा प्रशासनिक परिदृश्य में निरन्तर हो रहें बदलाव को वर्तमान तथा भविष्य के सन्दर्भ में समझने और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।सम्पूर्ण पाठ्य सामग्री को पुस्तक में तीन भागों में विभाजित कर प्रस्तुत किया है। प्रथम भागमें लोक प्रशासन को वर्तमान के परिपेक्ष्य में प्रस्तुत करता है। लोक प्रशासन की निरन्तर बदलती भूमिका एवं उसके क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन को इस भाग में विश्लेषित करने तथा उसके कारणों को जानने का प्रयत्न किया है। इसी भाग में लोक प्रशासन के चरणबद्ध विकास को स्पष्ट करते हुए नवउदारवादी मानववादी युग में प्रशासन से होने वाली संभावित गुणात्मक अपेक्षाओं के उल्लेख का भी प्रयास किया है। पुस्तक के **द्वितीय भाग** में अवधारणात्मक लोक प्रशासन पर विचार प्रस्तुत करने के साथ लोक प्रशासन के क्षेत्र में आ रहे वैचारिक नवीनता की ओर दृष्टिपात किया है। लोकचयन विचारधारा, नवलोकप्रशासन के लोककल्याणकारी स्वरूप के विश्लेषण को वर्तमान परिदृश्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। सुशासन की बहुआयामी धारणा, सुशासन एवं लोकतन्त्र के वर्णन के साथ–साथ भारतीय परिदृश्य में सुशासन का परीक्षण इस भाग में उल्लेखित है। पुस्तक के **तृतीय भाग** में प्रशासनिक जगत के उन सभी अद्यतन मुद्दों को समाविष्ट करने की कोशिश की है। जो 21वीं सदी के प्रारम्भिक चरणों में बहस के नये विषय वस्तु प्रस्तुत कर रहे है। जैसे सूचना प्रौद्योगिकी, नागरिक घोषणापत्र, सूचना का अधिकार, साइबर राज्य में भारतीय लोकसेवा। इस तरह इस पुस्तक में भाग प्रथम से भाग तृतीय तक के अध्यायों में वर्तमान तथा भविष्य की प्रशासनिक चिन्ताओं एवं अवधारणाओंको विशेषतः सुशासन की अवधारणा को सन्तुलित व बौद्धिक अभिव्यक्ति दी गई है।

डॉ. शारदा नन्दराम के द्वारा लिखित पुस्तक ''**कौटिल्य द वर्ल्ड्स फस्ट मैनेजमेन्ट गुरू एण्ड स्ट्रेटिजिस्ट**'', ***(Kautiliya the Word's First Management Guru and***

Strategist) 2009[25] में भारत को चीन के साथ नवीन आर्थिक शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया है, तथा सुझाव दिया है कि भारत के इस आर्थिक विकास को निरन्तर बनाये रखने हेतु पाश्चात्य विकास मॉडल के स्थान पर स्वयं के पुरातन सिद्वान्तों को पुर्नपरीक्षित करते हुये स्वदेशी आर्थिक विकास मॉडल को अपनाया जाना चाहिये। कौटिल्य के चिन्तन को न केवल भारत मेंवरन्**नीदरलैण्ड** जैसे विकसित यूरोपीय देशों को वैश्विक आर्थिक प्रतियोगी परिवेश में अपनना चाहिये। इस पुस्तक में कौटिल्य के विचारों को प्रबन्ध, शासन, शिक्षा एवं **डच** समाज में उसकी प्रासंगिकता आदि शीर्षकों के अन्तर्गत रखते हुये वर्णित किया है। प्रबन्ध सम्बन्धी शीर्षक के अन्तर्गत कौटिल्य के मण्डल सिद्वान्त, गठबन्धन, समय प्रबन्धन, को आधार मानते हुये नेतृत्व के ज्ञान, शारीरिक–मानसिक गुणों, मूल्यसापेक्षता, सामाजिक उत्तरदायित्व,मानसिक संतुलन इत्यादि तथ्यों की व्याख्या की है। शासन संबन्धी अध्याय में विशेषतः सुशासन की स्थापना हेतु दण्डात्मक सत्ता के कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने हेतु निरपेक्ष प्रयोग, सार्वजनिक उपक्रमों के विकास एवं लाभ, लोकसेवकों की भर्ती परीक्षण, प्रशिक्षण, सेवा शर्तों, निलंबन इत्यादि पर कौटिल्य के चिन्तन की व्याख्या की है। शिक्षा के सम्बन्ध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में शिक्षक की विशेषज्ञता एवं शिक्षार्थी के अनुशासन व स्वनियंत्रण पर जोर देने, व्यवसायिक शिक्षा के महत्व, सांख्यिकी विषय, तथ्य एकत्रीकरण विधि, नैतिक शिक्षा एवं चरित्र–चित्रण का जो वर्णन है उसका भी उल्लेख किया है। **डेनिस समाज** में कौटिल्य की प्रासंगिता के अन्तर्गत लेखिका ने कौटिल्य के शत्रु के साथ गठबन्धन सिद्वान्त राजनेताओं द्वारा नागरिकों के सन्दर्भ में प्रस्तुत करने की विचारोत्तेजक कोशिश की है। लेखिका ने कौटिल्य के चिन्तन का सार नेतृत्व द्वारा जनता की सेवा एवं मण्डल सिद्वान्त द्वारा सहयोगी की सहायता प्राप्त करना बताया है।

पाई पार्थसारदी एवं रविन्द्र कौर के लेख **''एडमिनिस्ट्रेटिव रिफोर्मस फॉर गुड गवर्नेस''** ***(Administrative reforms for good governance)*** 2011[26] के अन्तर्गत भारत में 1844 से लेकर 2008 तक किये गये प्रशासनिक सुधारों में से लोकसेवा सम्बन्धी सुधारों की एक संक्षिप्त रुप रेखा प्रस्तुत की है। इस शोध पत्र में लोक सेवाओं के विकास क्रम के सन्दर्भ में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य के सात प्रशासनिक अंगों, (प्रकृति सिद्वान्त) उच्च लोकसेवा, (इसमें मंत्री एवं अमात्य शामिल हैं) लोकसेवकों के स्तर, अहर्ताओं, कार्यों को बताया है। स्वतन्त्रता के बाद लोकसेवा वह अन्य प्रशासनिक क्षेत्रों में हुए सुधारों का विस्तार से वर्णन किया है। वर्तमान में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (*IInd A.R.C.*2005) के द्वारा प्रस्तुत सुझावों का उल्लेख भी किया है। इसमें ई.गवर्नेस, सूचना प्रौद्योगिकी, ज्ञान प्रबन्धन, नागरिक समाज, लोक निजी सहभागिता (*P.P.P.*) स्वयंसेवी संगठनों का भी

प्रशासनिक सुधार के परिपेक्ष्य में उल्लेख किया है। प्रशासनिक व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए आधारभूत (*Grassroot*) स्तर के कार्मिकों की तकनीकी प्रयोग में उदासीनता एवं सार्वजनिक संगठनों में प्रभावशाली नियामक संरचना की कमी का भी उल्लेख किया है।

बलवीर सिहाग द्वारा लिखित लेख **''कौटिल्य ऑन गवर्नेस, सेल्फ डिसिप्लीन, एण्ड रिचेस''** (***Kautiliya on Governance, Selfdiscipline and Riches***) 2012[27] में कौटिल्य को महान् भविष्यदृष्टा के रुप में स्थापित किया है। कौटिल्य ने सुशासन के प्रत्येक पक्ष पर जो व्यवस्थित एवं विस्तारपूर्ण स्पष्टीकरण दिये हैं, उनका इस लेख में उल्लेख किया गया है। भारत उपमहाद्वीप में सुशासन की स्थापना के लिए जिन महत्वपूर्ण कारकों की आवश्यकता है, उनका भी लेखक ने विश्लेषण किया है। सुशासन के लिए उचित अवसरों एवं सुदृढ़ संस्थाओं की स्थापना का महत्व दर्शाया है। भारत में सुशासन की स्थापना के लिए कौटिल्य द्वारा वर्णित सुशासन सिद्वान्तों को किस प्रकार शासन व्यवस्था में लागू किया जाये उसका उल्लेख किया गया है। लेख में यह दर्शाया गया है कि विधि का शासन, शासक, कार्मिकों एवं जनता के उच्च नैतिक मूल्यों, संस्थाओं के संरचनात्मक विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा, सुदृढ़ अर्थव्यवस्था, कूटनीति नौकरशाही संरचना, सार्वजनिक व्यय नीति, उपेक्षित कमजोर वर्ग के संरक्षण, शासन प्रणाली में नीतिशास्त्र के महत्व एवं उत्तम न्याय व्यवस्था पर कौटिल्य के क्या विचार हैं तथा वर्तमान भारत में सुशासन की स्थापना के लिए इन विचारों के महत्व को गहनता से स्पष्ट किया है। दो हजार वर्ष पूर्व कौटिल्य द्वारा वर्णित सुशासन एवं नीतिशास्त्र के परस्पर सम्बन्ध को इस लेख में स्पष्टतः विश्लेषित किया है।

डॉ. एस.पी.रथ एवं डॉ. विश्वजीतदास के **'अर्थशास्त्र–द गॉस्पैल ऑफ कॉरपोरेट गवर्नेस एक्सीलेंसः थ्योरिज ऑफ इन्टेलीजेन्स एण्ड टेक्ट इन मैनेजमेंट**(***Arthasastra The Gospel of Corporate Governance Excellence Theories of Intelligence and tact in Management***)2012[28] जो **इण्टरनेशनल जर्नस ऑफ बिजनेस एण्ड मैनेजमेण्ट टुमारो** (*IJBMT*) में प्रकाशित हुआ है। इस लेख में लेखकों ने इस तथ्य को विश्लेषित करने का प्रयास किया है कि आधुनिक विश्व में कॉरपोरेट प्रबन्धन एवं कॉरपोरेट शासन में सिद्वान्तों एवं व्यवहार की दृष्टि में अमेरिकन, जापान एवं यूरोपीय प्रबन्धन शैली का वर्चस्व रहा है। जापानी प्रबन्धन में मानव संसाधन पूंजी एवं ज्ञान प्रबन्धन को किसी भी संगठन के लिए सर्वोत्तम व्यवहार बताया। जापानी प्रबन्धन शैली पर प्राचीन **समुराई दर्शन** एवं परम्परागत ज्ञान भण्डार का प्रभाव रहा तथा अमेरिकन एवं यूरोपीय प्रबन्धन शैली 19वीं शताब्दी के औद्योगिकीकरण से प्रभावित है। भारतीय अर्थात् पूर्वी (*Oriental*) परम्परा से सम्बन्धित

उपदेश, ग्रन्थ, व्यवहार, सिद्वान्त, तर्क (*Logic*) इत्यादि जापानी प्रबन्धन दर्शन के साधन रहे है। इस लेख में **भारतीय प्रबन्धन शैली** (*IMS*) को विकसित करने के लिए तथा 21वीं शताब्दी के आधुनिक कॉपोरेट जगत में भारत को स्थापित करने के लिए मौर्यप्रशासन में प्रचलित चाणक्य सूत्रों एवं अर्थशास्त्र के पुनर्जीवन एवं पुनः खोज की आवश्यकता को समझाया है। अर्थशास्त्र वर्तमान प्रबन्धन शैली परिप्रेक्ष्य में सभी प्रबन्धन प्रकारों एवं विशेष विषयों को शामिल करता है, जैसे–सामाजिक संस्थाओं द्वारा सुशासन, मुख्यकार्यकारी अधिकारी, मानवसंरक्षण प्रबन्धन, न्याय एवं न्यायिक प्रणाली, संघवाद, लेखाकंन, राजकोष व्यवस्था, आपदा प्रबन्धन, पर्यावरण प्रबन्धन राज्य शासन में जनसहभागिता, औद्योगिक नीति, सहकारी संस्थान प्रबन्धन, कार्मिक विशेषीकरण, कार्मिकों का नैतिक व्यवहार, जीत की प्रबन्धन शैली सिद्वान्त इत्यादि।

माइकल लाइबिंग की शोध रचना ***''इण्डोजीनस पॉलिटिका–कल्चरल रिसोर्सेजः''कौटिल्याज़ अर्थशास्त्र एण्ड इण्डियन स्ट्रेटिजिक कल्चर''(Edogenous Politica-Cultural Resources: Kautiliya's Arthasastraand Indian Strategic Culture)***2012[29]में भारत एवं जर्मन सैन्य रणनीतिक विचारधारा संबंधित चिंतकों के योगदान एवं महत्व का उल्लेख है। इसी के अन्तर्गत महान मगध साम्राज्य के विकास एवं चन्द्रगुप्त मौर्य एवं कौटिल्य के आपसी संबंध की व्याख्या की है।कौटिल्य कौन थे, किसने उनके अर्थशास्त्र के अस्तित्व का उल्लेख किया इत्यादि प्रश्नों पर विचार किया गया है। इस लेख में आर. शामशास्त्री, प्रो.गणपति शास्त्री एवं प्रो.आर.पी. कांगले के अर्थशास्त्र के संबंध में योगदान का विशेषतः उल्लेख किया गया है। इस शोध में कौटिल्य के समकालीन भारत में महत्व के प्रश्न पर महत्वपूर्ण विचार विमर्श प्रस्तुत किया गया है। इस प्रश्न को त्रिस्तरीय स्वरूप में विश्लेषित किया गया है– क्या कौटिल्य भारत के **इण्डोजेनअस कल्चरल रिसोर्सेज** है ? तथा अन्य संसाधनों से उनका क्या संबंध है ? क्या भारतीय रणनीतिक संस्कृति पर कौटिल्य का प्रभाव है ? कौटिल्यके गुप्त एवं प्रकट प्रभाव में अन्तर है। कौटिल्य भारतीय मानस मे दो रूपों में अंकित है। **प्रथम** चतुर कूटनीतिज्ञ के रूप में **द्वितीय** ऐतिहासिक पुरूष के रूप में जो भारत की एकता का समर्थक था। भारत की रणनीतिक संस्कृति पर कौटिल्य प्रभावकारी कारक है, इसलिए स्वतंत्रता से पूर्व एवं आज तक इस कारक का प्रभाव घटने के बजाय बढ़ रहा है। कौटिल्य राजनीतिक प्रत्यक्षवादी थे, परन्तु अर्थशास्त्र का आधार मूल्य आधारित वैधशासन प्रणाली है, इसका इसमें उल्लेख है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित युद्धकला आज के सन्दर्भ मेंभी प्रासंगिक है। इस शोध

लेख में कौटिल्य को अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान वार्तालाप के अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन में सही स्थान देने पर जोर दिया है।

पी. के. गौतम के लेख **"वन हन्ड्रेड ईयर्स ऑफ कौटिल्याज अर्थशास्त्र"**(***One Hundred years & Kautiliya's Ashasastra***) 2012[30] में बहस का केन्द्र प्राचीन रणनीतिक चिंतक कौटिल्य को उनके योगदान के बावजूद उपेक्षित करना है। इस लेख में अर्थशास्त्र की खोज के सौ वर्ष पूर्ण होने के बाद पुनर्निरीक्षण की आवश्यकता को दर्शाया गया है। इस लेख में अर्थशास्त्र से संबंधित सभी शास्त्रीय विवादों को जो इस समय में हुये हैं, का भी उल्लेख किया गया है। कौटिल्य द्वारा वर्णित **चतुष्ट्यउपाय** जो कूटनीति लक्ष्यों की प्राप्ति से संबंधित है उसकी **मार्गेन्थ्यू** से साम्यता का उल्लेख भी किया है। इस लेख में कौटिल्य के राज्य का**सप्तांग सिद्धान्त**, विदेश नीति के **षाड्गुण नीति**, **राजमण्डल सिद्वान्त**, विजय एवं युद्व के प्रकारों की भी व्याख्या की है। कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त के द.पू. एशिया में प्रभाव का अध्ययन भी किया है। इस लेख में कौटिल्य की विचारधारा की अवहेलना (उपेक्षा) करने सम्बन्धी नौ कारणों की भी व्याख्या की गई है। मैकियावली एवं कौटिल्य की शासनकला में तुलनात्मक अंतर को भी प्रदर्शित किया है। इस शोध लेख में कौटिल्य के लिये गलत धारणा एवं गलत व्याख्या (अपनिवर्चन) के उदाहरण दिये है। जिसमें मुख्यतः **मत्स्यन्याय** एवं **मण्डलसिद्धांत** की गलत व्याख्या महत्वपूर्ण है। कौटिल्य के बारे में लोक अनुभव मुख्यतः लोक कथाओं, पौराणिक कथाओं तथा सीमित अध्ययन पर आधारित है। कौटिल्य एवं अर्थशास्त्र के संरक्षण की आवश्यकता का उल्लेख किया है तथा इस हेतु सरकार द्वारा संरक्षण एवं वित्तीय सहायता आदि के बारे में भी सुझावों का उल्लेख है।

डॉ. राधाकृष्णन पिल्लई द्वारा लिखित पुस्तक **"कॉरपोरेट चाणक्य सक्सेजफुल मैनेंजमेन्ट द चाणक्य वे"**(***Corporate Chanakya: Successful Management the Chanakya Way***)[31]में चाणक्य को जो तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में पैदा हुये श्रेष्ठ नेतृत्वकारी गुरू बताया है। उनकी कृति अर्थशास्त्र में नेता को पहचाननें एवं राज्य के शासक के रूप में उसे प्रशिक्षित करने के बारे में कई प्रक्रियाओं का उल्लेख है। इस ग्रंथ में करीब छः हजार सूक्तियाँ या सूत्र मिलते हैं। लेखक ने पुस्तक में कॉरपोरेट जगत के नेतृत्व की सफलता के लिये इन प्राचीन सफलता के सूत्रों को आधार बनाया है एवं बहुत सरलता से प्रस्तुत किया हैं। यह पुस्तक तीनों भागों में जैसे नैतृत्व, प्रबन्ध एवं प्रशिक्षण में विभाजित है तथा अन्य विषयों पर भी तथ्यों व विचारों को प्रस्तुत करती है। यह विषय है, प्रभावशाली, विचार विर्मश, आकस्मिक परिस्थितियों में व्यवहार, समय प्रबन्धन, निर्णयन एवं

नेता के उत्तदायित्व एवं शक्तियाँ।ये पुस्तक प्राचीन भारतीय प्रबन्धचातुर्य को आधुनिक प्रबन्ध सरंचना के अनुरूप प्रस्तुत करने का प्रयास है।

शाहिब शब्बीर के शोध लेख **''कौटिल्य ऑन लीडरशिपःलेसन्स् फॉम् अर्थशास्त्र''*(Kautiliya on leadership: Lessons fromArthasastra)***[32] में प्रभावशाली शासन व्यवस्था की स्थापना में व्यवहारिक एवं बौद्धिक नेतृत्व की आवश्यकता पर विचार किया गया है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजनीतिक प्रत्यक्षवाद की गहन व्याख्या की है तथा नेतृत्व को शक्तिशाली बनाने के साधनों की जानकारी दी है। इस लेख में कौटिल्य के संगठन संबंधी विचारों के साथ–साथ संगठन के नेतृत्व करने वाली शक्ति के प्रबंध, ज्ञान, न्यायिक एवं कूटनीतिक चातुर्य से युक्त होने का वर्णन किया है। नेतृत्व के लिए स्वामी या कार्यकारी अधिकारी के पास न्याय एवं धर्म का ज्ञान आवश्यक है। इस लेख में कौटिल्य को न केवल महान स्टेट्समैन वरन् पूर्व का श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ बताया है। इस लेख में लेखक ने इस तथ्य को भी विश्लेषित किया है कि अर्थशास्त्र में वर्णित नेतृत्व संबंधी विचार आज भी प्रासंगिक है तथा एक सफल नेता के लिए प्रबंध एवं कूटनीतिज्ञ, कौशल के पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता है। आज के परिप्रेक्ष्य में उनका सामाजिक संरचना संबंधी विचार अस्वीकार्य है, क्योंकि वर्तमान सामाजिक संरचना गतिशील है तथा राजनीतिज्ञ एवं आर्थिक शक्तियों से प्रभावित है।

चित्रांका दलकोटि वर्की का लेख **''फाइनेंसियल मैनेंजमेन्ट लैसन्स फॉम् कौटिल्याज अर्थशास्त्र*(Financial Management Lessons from Kautiliya's Arthashastra)***[33]कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित विभिन्न वित्तीय प्रबन्धों एवं प्रशासन संबंधित विषयों की समीक्षा करता है। इसमेंउल्लेखित सभी सिद्वान्त आज के व्यवसाय प्रबन्धन में सफलता पूर्वक लागू किये जा सकते है। अर्थशास्त्र का यह आधार है कि धन एवं संसाधनों की उत्पत्ति विकास एवं लाभ वितरण से व्यक्ति विशेष एवं अन्यों की खुशहाली होगी। इस लेख में कौटिल्य द्वारा वित्तीय कार्यों की महत्ता एवं लाभों की वितरण पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है। **राज्य** (व्यवसायिक संगठन) का महत्वपूर्ण तत्व सरकार (प्रशासक) सेवक(कार्मिक) नहीं वरन् कोष (वित्त) है ''योगक्षेम'' (सुख या कल्याण) कोश (वित्त) पर निर्भर है। वित्त प्रबंध का लक्ष्य कल्याण एवं सुरक्षा है। कौटिल्य ने लाभ वितरण का मॉडल भी प्रस्तुत किया है, इसमें धन, दान, इच्छा को जीवन के लक्ष्यों में शामिल किया है। इसमें धन पर दोनों लक्ष्य निर्भर है।लेकिन इन तीनों लक्ष्यों की अंतर–निर्भरता का महत्व है क्योंकि तीनों में से किसी एक की अधिकता भी हानिकारक है, समकालीन सफलतम् वित्तीय कम्पनियां जैसे **टाटा, इन्फोसिस, फॉर्ड** एवं **माइक्रोसॉफ्ट** इत्यादि लाभ वितरण में

कौटिल्य के इस मॉडल को ही अपनाती है, लेख में अर्थशास्त्र में वर्णित लेखा परीक्षण, कोष के दुरूपयोग, भ्रष्टाचार एवं वित्तीय गबन की जाँच एवं रोकथाम इत्यादि की विधियों का भी विस्तार से वर्णन किया है। इस लेख में उच्च आर्थिक विकास एवं जनकल्याण के लिये सुशासन संबंधी कौटिल्य के विचारों का विश्लेषण भी किया है। अर्थशास्त्र में कहा है कि सुशासन एवं वित्तीय स्थिरता तभी स्थापित होगी जब शासक एवं कार्मिक उत्साह से जनकल्याण के लिये क्रियाशील हो तथा शासक(मैनेजर) उत्तरदायी, विश्वसनीय, जवाबदेय, अपनेय*(Removable*) एवं लौटाने लायक (*Recallable*) हो। इस प्रकार लेख में लेखक ने वर्तमान शासकों, प्रशासकों एवं प्रबन्धकों के लिये अर्थशास्त्र में वर्णित महत्वपूर्ण विचार साम्रगी की प्रासंगिकता एवं भविष्य में उसकी उपयोगिता की व्याख्या की है।

डॉ. अनिल एम. नाइक के द्वारा लिखित लेख **''अर्थशास्त्रः द गाइड फॉर मैंनेजरियल इफेक्टिवनेस''** (***Arthasastra:The Guide For Managerial Effectivess***)[34]में कहा गया है कि वर्तमान वैश्विकृत व्यवसायिक पर्यावरण में कॉरपोरेट जगत का इतिहास दर्शाता है कि सफल संगठनों की सफलता को बनाये रखना अधिक कठिन है। कॉरपोरेट विश्व में जापान की **''निशान ऑटोमॉबाइल''** और यू.एस.ए.की **आई.बी.एम.** कम्पनियों का पतन इसका उदाहरण है। इन कम्पनियों के अध्ययन से यह तथ्य पता चलता है कि **''प्रबंधकीय प्रभावशीलता''** ही वह अनिवार्य तत्व है जो आज के गतिशील एवं निरन्तर विकसित होते हुए व्यावसायिक वातावरण में किसी संगठन की सफलता के लिए आवश्यक है। कौटिल्य द्वारा चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व लिखा गया अर्थशास्त्र आर्थिक प्रशासन एवं प्रबन्धन का प्रमुख ग्रंथ है। इसमें किसी साम्राज्य के निरन्तर विकास एवं समृद्धि के लिए **''प्रबंधकीय प्रभावशीलता''** को केन्द्रीय बिन्दु बताया है। कौटिल्य ने प्रबंधकीय प्रभावशीलता की अवधारणा के आठ कारकों(नेतृत्व,व्यूह रचना, क्रियान्वयन, संस्कृति, योग्यता, स्वभाव, तकनीक, नवाचार, रणनीतिक गठबंधन) का विस्तार से वर्णन किया है। यह कारक ही राज्य के विकास एवं समृद्धि के लिए शासकीय प्रक्रिया के प्रमुख अंग हैं। **एम. आई. टी.**के **स्लोअनस्कूल ऑफ मैनेजमेंट** (*Sloan School Of Management*) के द्वारा 1991–2000 के दशक में किये गये एक अध्ययन में भी सफल निगम का आधार इन आठ कारकों को ही बताया है। लेख में राजा के लिए आवश्यक गुणों, उसके द्वारा अपनायी गयी व्यूह रचना विकसित की गई संरचना, कार्यप्रक्रिया संस्कृति, योग्यता, नवाचार, गठबंधन इत्यादि को 21वीं शताब्दी के कारॅपोरेट नेतृत्व **(मुख्यकार्यकारी अधिकारी)** के लिए आवश्यक अनिवार्यता माना है। इस प्रकार अर्थशास्त्र शासकों को निर्देशन प्रदान करता है कि सुशासन का

आधार ''प्रबंधकीय प्रभावशीलता'' है। यह अवधारणा 21वीं सदी के कॉरपोरेट विश्व में भी प्रासंगिक है।

डॉ. के. एस. नारायणचार्य द्वारा लिखित पुस्तक ''**रिलेवेन्स ऑफ कौटिल्य फॉर टूडे**'',***(Relevance of Kautiliya For Today)***[35] में आज की शैक्षिक व्यवस्था में प्राचीन भारतीय इतिहास के दार्शनिकों एवं विचारकों की उपेक्षा के लिए तथाकथित धर्म निरपेक्ष शोधार्थियों को दोषी बताते हुये प्राचीन भारतीय ग्रंथो जैसे वेद, रामायण, महाभारत एवं कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित विज्ञान, तकनीकी, शासन व्यवस्था, युद्ध एवं सैन्य प्रणाली, नियमों, कला साहित्य, व्यवसायिक ज्ञान के पुनः स्थापन पर जोर दिया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित विचारों एवं उनकी वर्तमान युग में प्रासंगिकता पर लेखक ने शोधपरक जानकारी प्रस्तुत की है। इस पुस्तक में पाठ्य सामग्री दस अध्यायों के अन्तर्गत विभाजित की गई है तथा प्रत्येक अध्याय विशिष्ठ विषय से संबंधित है। पुस्तक का प्रारम्भ **अर्थ** (*Wealth*) की परिभाषा से होता है। यहाँ**धर्म**को **रिलिजन** *(Religion)*के अर्थ में नहीं वरन ''**क्या सही है**''*(What is Right)* के अर्थ में विश्लेषित किया है। शासन कला को **धर्म***(What is Right)*से सम्बद्ध बताया है। प्रो. नारायणाचार्य कौटिल्य की राज्य सम्बन्धी अवधारणा, व्यावसायिक समूहों के क्रमिक विकास, धर्मनिरपेक्षता पर विचार को स्पष्ट करते हुये वर्तमान जीवन शैली, गुप्तचर एवं सैन्य मामलों, जादू एवं देवी रहस्यों इत्यादि विषयों पर कौटिल्य के सिद्वान्तों की प्रासगिकता बतायी है। कौटिल्य के विचारों की पुनः व्याख्या एवं पुनःखोज का महत्व दर्शाया है। इस पुस्तक में लेखक ने कौटिल्य को उसके समय के साथ वर्तमान में अधिक श्रेष्ठ स्वरूप में प्रस्तुत किया है। कौटिल्य का कद स्वतः शोधार्थियों के समक्षऔर बढ़कर आया है। इसलिए उनके द्वारा बतायी गई कूटनीतिज्ञ शैली के प्रयोग से हमारे राष्ट्रीय राजनीतिज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को निर्भिकता के साथ पूर्ण करते है।

बालकृष्णन मुनियापन एवं जुनेद एम. शेख. के द्वारा लिखित लेख ''**लैसन्स् इन कॉरपोरेट गवर्नेस् फ्रॉमकोटिल्याज इन एनशिएण्ट इण्डिया**''***(Lesson in corporate Governance from kautiliya's Arthasastra in Ancient India)***[36]में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित कॉरपोरेट शासन संबंधी तथ्यों पर अनुसंधान किया है। यह लेख प्राचीन भारत (चौथी शती ईसा पूर्व) के महान प्रशासनिक विचारक कौटिल्य के योगदान पर प्रकाश डालता है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित संकल्पना एवं विचार आज के कॉरपोरेट गवर्नेंस के लक्ष्य प्राप्ति एवं प्रबन्धन के सन्दर्भ में प्रासंगिक है। **चिन्मयानन्द** (2003) ने यह वक्तव्य दिया है कि समय–समय पर प्राचीन रचनाओं के पुनरावलोकन की आवश्यकता है जो आधुनिक कॉरपोरेट प्रबन्ध के सन्दर्भ में बौद्धिक व्याख्या के साथ पुनः व्याख्या प्रस्तुत

कर सके। कॉरपोरेट प्रबन्ध के अन्य क्षेत्रों जैसे रणनीतिक प्रबन्ध, वित्तीय प्रबन्ध तथा मानव संसाधन प्रबन्धसे सम्बन्धित भविष्य में होने वाले शोध में भी कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित तथ्यों का उपयोग हो सकता है।

1.5. शोध प्रविधि (Research Methodology)–

विधि प्रविधि एवं उपकरण किसी भी अनुंसधान के कार्य के लिये महत्वपूर्ण पद्धतियाँ हैं। शोध कार्य के अध्ययन का महत्व इस पर अवलम्बित होता है कि उस अध्ययन के निष्कर्षों का व्यावहारिक उपयोग हो सके। यह तभी सम्भव है जबकि अध्ययन के लिये उपयुक्त शोध प्रविधि एवं उपकरणों का चयन किया जाये। प्रस्तुतशोध अध्ययन में निम्नलिखित अध्ययन पद्धतियों का उपयोग किया है –

1. **ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति**
2. **तुलनात्मक अध्ययन पद्धति**

1. ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति–

इस अध्ययन प्रणाली के अंतर्गत ऐतिहासिक घटनाओं का अतीत के तथ्यों के क्रम विकास, नियमितताओं में एवं सामाजिक प्रभावों के सदंर्भ में वर्तमान राजनैतिक, प्रशासनिक आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण किया जाता है।संक्षेप में कहा जा सकता है कि अतीत की सहायता से वर्तमान परिदृश्य को समझने एवं विश्लेषण की विधि ही ऐतिहासिक पद्धति कहलाती है। प्रस्तुत शोध में इस पद्धति के प्रयोग द्वारा कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक विचार एवं व्यवस्था को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में समझाया गया है। शोध हेतु तथ्यों की प्राप्ति इस पद्धति द्वारा की गयी है।

2. तुलनात्मक अध्ययन पद्धति–

इस अध्ययन पद्धति का प्रयोग शोध विषयों में राजनीति के जनक प्रसिद्ध यूनानी विद्वान **अरस्तू** के समय से ही किया जाता रहा है। इसके अतिरिक्त **सिसरो पोलिबियस, मैकियावली, मौन्टेस्क्यू, ब्रेजहाट, सर हेनरी मैन ब्राइस** इत्यादि ने भी अपने अध्ययन में इसका प्रयोग किया है। आधुनिक युग में प्रमुख प्रशासनिक चिंतक **रिग्स** ने इसका लोकप्रशासन विषय के अन्तर्गत अपने शोध अध्ययनों में प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत अध्येता विभिन्न राज्यों, उनके संगठनों, नीतियों, कार्यकलापों का तुलनात्मक अध्ययन करता हैतथा इस प्रकार की तुलनाओं के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है। तुलनात्मक अध्ययन पद्धति अन्य सभी परिवर्त्यों को स्थिर रखते हुये दो या अधिक परिवर्त्यों

के बीच सामान्य आनुभाविक संबंध की स्थापना करने की विधि है। प्रस्तुत शोध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासन एवं सुशासन संबंधी तथ्यों की वर्तमान भारतीय प्रशासन एवं सुशासन संबंधी विचारों की तुलना करने हेतु इसका प्रयोग किया गया है। कार्यक्षेत्र की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन पद्धति का एक रूप **'संकर सामयिक'** नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत अनुसंधान विषय में इस प्रतिमान का उपयोग किया है। क्योंकि इसमें वर्तमान भारतीय प्रशासन की कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासन (मौर्यकाल) से तुलना की गई है। इससे दोनों प्रशासनिक व्यवस्थाओं की समानताओं एवं असमानताओं के बारे में जानकारी प्राप्त हो सकी। इस पद्धति के प्रयोग से कौटिल्य के प्रशासनिक विचारों एवं तत्कालीन सुशासन की अवधारणा का वर्तमान भारतीय परिदृश्य में महत्व एवं प्रासंगिकता को प्रदर्शित किया गया है। इस शोध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक विचारों एवं व्यवस्था को आधार बनाया है जो आज से दो हजार वर्ष पूर्व घटित घटनाक्रम है। अतः प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक संदर्भ रखता है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों द्वारा तथ्य एकत्रीकरण –

इस शोध अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया है।मुख्यतः शोध के अनुरुप **द्वितीयक** प्रकार की तथ्य एकत्रीकरण विधि को अपनाया गया है। **द्वितीयक स्रोतों** में मुख्यतः विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित कौटिल्य के जीवन वृतान्त, संस्मरण, ऐतिहासिक, यात्रियों के यात्रा वृतान्तों, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों, ऐतिहासिक ग्रन्थों, अर्थशास्त्र की मूल पाण्डुलिपि, अनुवाद टीकाओं का अध्ययन किया गया है।**सार्वजनिक प्रलेखों** के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित तथ्यों को विभिन्न शोध संस्थाओं द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदनों, शोधार्थियों के प्रकाशन, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशन, जर्नल्स, समाचार पत्र, पत्र–पत्रिकाओं, पुरालेखों, शिलालेखों, लोक संस्कृति, लोक कथाओं से प्राप्त किया गया है।

प्रस्तुत शोध में नवीनतम जानकारी की प्राप्ति इन्टरनेट पर विभिन्न सर्चइंजनों एवं अन्य कम्प्यूटर प्रोग्रामों के तहत प्राप्त की गई है। बी.बी.सी. के चैनल 4 पर प्रसारित टी.वी. प्रोग्राम 'कौटिल्य' तथा भारतीय दूरदर्शन पर प्रसारित डॉ. चन्द्रप्रकाश द्विवेदी द्वारा निर्मित हिन्दी सीरियल 'चाणक्य' इत्यादि की सी.डी. का अवलोकन कर तथ्यों का गहन विश्लेषण किया गया है। आई.एस.डी.ए.(I.SD.A.) नई दिल्ली, स्थित संस्थानों के द्वारा कौटिल्य के संदर्भ में किये जा रहे शोध कार्यों द्वारा भी जानकारी प्राप्त की गई है।

यह अध्ययन मूलतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है किन्तु अध्ययन में प्राथमिक स्त्रोतों का भी सीमित मात्रा में उपयोग किया गया। वर्तमान भारतीय प्रशासन तंत्र में सुशासन की प्रवृत्तियों को ज्ञात तथा कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासन तंत्र एवं

सुशासन की प्रवृर्त्तियों से उसकी तुलना में प्राथमिक स्त्रोतों का उपयोग करने का प्रयास किया गया है।

1.6. अध्याय विन्यास (Chapterization)-

वर्तमान शोध प्रबंध को अध्ययन सुविधा की दृष्टि से छः अध्यायो में विभक्त किया गया है।उक्त अध्यायों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है –

1. **अध्याय प्रथमः शोध प्ररचना–**

उक्त अध्याय के अंतर्गत अध्ययन विषय का प्रारम्भिक परिचय दिया गया है। अध्याय में प्रस्तावित शोध की अवधारणा, उद्देश्यों, उसके क्षेत्र (Scope) तथायोगदान को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त अध्ययन विषय पर उपलब्ध साहित्य की समीक्षा भी की गई है। अध्याय में शोध के लिए अपनायी जाने वाली प्रविधि (Methodology)कोस्पष्ट किया गया है तथा अध्याय के अन्त में शोध प्रबन्ध के अध्याय विन्यास की संक्षिप्त रूप रेखा दी गई है।

2. **अध्याय द्वितीयः कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य–**

उक्त अध्याय में सर्वप्रथम अर्थशास्त्र की उत्पति एवं तत्सम्बन्धी विवाद के सम्बंध में स्थिति स्पष्ट की गई है। तत्पश्चात् कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का परिचय देते हुए इसके विभिन्न अधिकरणों एवं प्रकरणों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय में कौटिल्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था के पर्यावरण एवं मूलभूत अवधारणाओं की वर्तमान शासन व्यवस्था के संचालन मेंनिहित अवधारणाओं से तुलना की गई है। उक्त तुलना में धर्म की सम्प्रभुता बनाम संवैधानिक सर्वोच्चता, राज्य के उद्देश्य बनाम संवैधानिक उद्देश्य, राजतंत्र बनाम लोकतंत्र, राजा बनाम राष्ट्रपति (निर्वाचित प्रतिनिधि) केन्द्रीयकृत बनाम संघात्मक प्रणाली इत्यादि को दृष्टिगत रखते हुए पर्यावरणीय परिदृश्य पर विचार किया गया है।

3. **अध्याय तृतीयः कार्मिक प्रशासन तंत्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य–**

उक्त अध्याय में कौटिल्यकालीन कार्मिक प्रशासन के विभिन्न कारकों यथा भर्ती व्यवस्था प्रशिक्षण, वेतन संरचना, पदोन्नति, अनुशासनात्मक कार्यवाही, सेवानिवृति लाभ इत्यादि की वर्तमान भारतीय प्रणाली में प्रचलित व्यवस्था से तुलना की गई है, इस अध्याय के अन्तर्गत कार्मिक प्रशासन के संरचना तंत्र एवं उसकी प्रभावशीलता का सुशासन के विशेष संदर्भ में मूल्यांकन किया गया है तथा वर्तमान कार्मिक व्यवस्था में सुशासन के सन्दर्भ में जिन सुधारों को अपनाया जा सकता है उन पर विचार किया गया है।

4. **अध्याय चतुर्थः वित्तीय प्रशासन तंत्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य**

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अर्थ की अवधारणा एवं उसकी अर्थनीति को स्पष्ट करते हुए तत्कालीन वित्तीय प्रशासन की संरचना को स्पष्ट किया गया है तथा वर्तमान भारतीय वित्तीय व्यवस्था की अवधारणात्मक एवं संरचनात्मक व्यवस्थाओं से उसकी तुलना की गई है। इस अध्याय में इसके अतिरिक्त दोनों काल खण्ड़ों की लेखांकन, लेखा–परीक्षण, राजकर प्रणाली एवं राजकोष व्यवस्था का सुशासन के सम्बंध में परीक्षण किया गया है।अध्याय के अन्तर्गत भ्रष्टाचार विशेषतः वित्तीय भ्रष्टाचार के प्रकारों, निरोधक कानूनों एवं प्रशासनिक उपायों का भी तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

5. **अध्याय पंचमः प्रशासकीय नीति शास्त्र एवं सुशासन : अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य–**

उक्त अध्याय मूलतः नीतिशास्त्र विशेषकर प्रशासकीय नीतिशास्त्र की संकल्पना के तुलनात्मक विवेचन को स्पष्ट करता है। इस अध्याय में कौटिल्यकालीन नीतिशास्त्रीय मूल्यों एवं कार्मिकों हेतु आचरण नियमों की वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में प्रचलित नीतिशास्त्रीय मूल्यों एवं आचरण नियमों से तुलना की गई है। अध्याय में उक्त नीतिशास्त्रीय मूल्यों के सफल क्रियान्वयन हेतु की गई संरचनात्मक व्यवस्था एवं प्रशासनिक तं्त्र को भी दोनों कालखण्ड़ों के सन्दर्भ में वर्णित करते हुए सुशासन को बढ़ावा देने की दृष्टि से आवश्यक सुझाव भी प्रस्तुत किए गए है।

6. **अध्याय षष्ठमः सारांश एवं निष्कर्ष**

उक्त अध्याय में सम्पूर्ण शोध का एक संक्षिप्त रूप दर्शाया गया है। इसमें कौटिल्यकालीन एवं समकालीन भारतीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं की समरूपताओं एवं विषमताओं पर विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित जिन संरचनाओं, प्रणालियों, पद्वतियों, नियमों को वर्तमान परिपेक्ष्य में लागू किया जा सकता है। उन्हें चिन्हित करने का प्रयास किया है तथा भावी शोध संभावनाओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ (Reference)–

1. सम्पादकीय, योजना, ''**सुशासन विशेषांक**'', जनवरी, 2013.
2. कुमार, अवधेश, ''**सुशासन की अवधारणा**'', योजना, सुशासन विशेषांक, जनवरी, 2013,
3. मिनोचा, ओ. पी., ''**गुड गवर्नेस मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव**'', द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूमXLIV, क्र.सं. 3, जुलाई–सितम्बर,1998

4. ब्लन्ट,पीटर, **''कल्चरल रिलेटीविजम, गुड गर्वनेन्स एण्ड सस्टेनेबल ह्यूमन डेवलपमेन्ट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड डवलपमेन्ट'',** वॉल्यूम15, 1995, पृष्ठ 5–7
5. दुबे, अशोक कुमार, **''21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन'',** टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 102–3.
6. द्विवेदी ओ.पी., **''कॉमन गुड एण्ड गुड गवर्नेस'',** द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूमXLIV, क्र.सं. 3, जुलाई सितम्बर 1998 पृष्ठ संख्या 263
7. **''शांति पर्व''** (महाभारत), चेप्टर LVIII,वर्स 11
8. **''मनुस्मृति''**, बुक VII, वर्स 35.
9. आर. शामशास्त्री, **''कौटिल्य अर्थशास्त्रा''** वेंसलेवन मिशन प्रेस,मैसूर, 1929 बुक 1, चेप्टर 19,पृष्ठ 39
10. **''टाइम्स ऑफ इण्डिया'',** पटना, अगस्त 15, 1998, पृष्ठ 1
11. आर. शामशास्त्री, ऑप. साइट, चेप्टर 17
12. कुमार,उमेश, **''कौटिल्याज थॉट ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन''**, देहली, नेशनल बुक ऑरगनाइजेशन पृष्ठ 132–33
13. वाल्मीकि, प्रसादसिंह, **''भारत में सुशासन की चुनौतियाँ नई पहल की जरूरत'',** योजना, सुशासन विशेषांक जनवरी, 2013
14. दुबे, अशोक कुमार, **''21वीं शताब्दी में लोक प्रशासन''**, टाटा मेकग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 118–119.
15. पपनै, कैलाश चन्द्र, **''पारदर्शिता व दक्षता से सुशासन संभव'',** योजना, सुशासन विशेषांक, जनवरी, 2013, पृष्ठ 381
16. कांगले, आर. पी., इडी एण्ड ट्रांस, **''द कौटिल्याज अर्थशास्त्र3 वॉल्यूम''**, सेकेण्ड इडी. 1972, पब्लिर्स, मोतीलाल बनारसीदास, न्यू देहली,
17. एन. शिवकुमार एण्ड राव, वी.एस., **''गाइडलाइन्स फॉर वेल्यू बेस्ड मैनेजमेण्ट इन कौटिल्या अर्थशास्त्र'',** जर्नल्स ऑफ बिजनेस इथिक्स, वॉल्यूम 15 न. 4, अप्रेल, 1996, पृष्ठ 415–423
18. बसाक, रोजर, **''मॉडरेट मैकियावली ? कॉन्ट्रास्टींग द प्रिंस विद द अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्या''**, 2002, क्रिटिकल होराईजन 3:2, 253–276 (सी) कॉनीकलजिक ब्रिल एनवी. लेडन
19. भट्टाचार्य, सुकान्तो, **''फ्रॉम कौटिल्या टू बेफोर्ड ट्रेन्डस इन फॉरेंसिंक एण्ड इनवेस्टीगेटिव अकाउण्टिंग''**, '2002, बिजनेस पेपर्स, पेपर 60

20. मिश्रा, आर. के., **''पब्लिक इन्टरप्राइजेस इन कैटिल्या अर्थशास्त्राः सम इनसाइट्स'',** '2003, पब्लिकेशनः भारतीय प्रांगण
21. शर्मा, संजीव कुमार, **'इण्डियन आइडिया ऑफ गुड गर्वेनेंसः रिविजिटिंग कौटिल्या अर्थशास्त्रा',** 2005, पब्लिशड इन डायनामिक्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन लखनऊ, वॉल्यूमXVII न.1–2, पृष्ठ 8–19
22. जामान उज, रशीद, **'कौटिल्यः द इण्डियन स्ट्रेटिजिक थिंकर एण्ड इण्डियन स्ट्रेटिजिक कल्चर',** 2006 पब्लिशड इनः कम्पेरेटिव स्ट्रेटीजी, वॉल्यूम 25 इश्यू 3, पृष्ठ 231–247
23. 'सत्यदेव, **'स्टेट एण्ड ब्यूरोक्रेसी इन कौटिल्याज अर्थशास्त्रा'**
24. दुबे, अशोक कुमार, **'इक्कीसवीं शताब्दी में लोकप्रशासन'**, 2008, पब्लिशड बाय टाटा मेकग्रो–हिल पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, न्यू देहली
25. शारदा, नंदराम, **''कौटिल्याः द वर्ल्डस फस्ट मैंनेजमेंट गुरू एण्ड स्ट्रेटिजिस्ट'',** 2009, पब्लिशड बाय द प्रियदर्शनी अकादमी, मुम्बई
26. पार्थसारदी, वी., एण्ड कौर रविन्दर, **''एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्मस फॅार गुड गवर्नेस''** 2011, उस्मानिया यूनिवर्सिटी, हैदराबाद
27. सिहाग बलबीर, **''कौटिल्या ऑन गवर्नेस, सेल्फ–डिसिप्लीन एण्ड रिचेश''**,2012
28. रथ, एस.पी. एण्ड दास विश्वजीत, **''अर्थशास्त्रा–द गोसेपल ऑफ कॉपोरेट गवर्नेन्स एक्सीलेंसः थ्योरिज ऑफ इन्टेलिजेंस एण्ड टेक्ट इन मैंनेजमेन्ट''**, 2012, पब्लिशड इन इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस एण्ड मैंनेजमेंट टूमारो, वॉल्यूम, टू नं. 9
29. लाइबिग, माइकल, **''इन्डोजेन्स पॉलिटिको–कल्चरल रिर्सोसेजः कौटिल्य अर्थशास्त्रा एण्ड इण्डियन स्ट्रेटिजिक कल्चर''**, 2012
30. गौतम, पी.के., **''वन हन्ड्रेड ईयर्स ऑफ कौटिल्य अर्थशास्त्रा'',** 2012
31. पिल्लई, राधाकृष्णन, **''कॉरपोरेट चाणक्या सक्सेजफुल मैंनेजमेण्ट द चाणक्या वे''**, पब्लिशडः जेकॉ बुक्स
32. शाहेब, शब्बीर, **''कौटिल्या ऑन लीडरशिपः लेसन्स फ्रॉम अर्थशास्त्रा''**, फैकल्टी ऑफ लॉ, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी
33. वर्की दलकोटी, चित्रांका, **''फाइनेंशियल मैंनेजमेंट लेसन्स फ्रॉम कौटिल्याज अर्थशास्त्रा''**
34. नाइक, एम. अनिल, **''अर्थशास्त्राः द गाइड फॉर मैंनेजरियल इफेक्टीवनेस'',** वी.स्कूल, मुम्बई
35. नारायणाचार्य, के.एस., **''रिलेवेन्स ऑफ कौटिल्या फॉर टूडे'',** 'पब्लिशड बाय कौटिल्या इन्सटीट्यूट ऑफ नेशनल स्टेडीज, मैसूर

36. मुनिआपन, बालकृष्णन, एण्ड शेख, एम. जुनैद, ‘‘**लेसन्स इन कॉरपोरेट गवर्नेंस फ्रॉम कौटिल्यास् अर्थशास्त्र इन एनशियंट इण्डिया**’’, स्कूल ऑफ बिज़नेस, कर्टिन यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, सारावाक, मलेशिया ।

अध्याय–द्वितीय

कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य

- आचार्य कौटिल्य : एक व्यक्तित्व
- कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र : उत्पत्ति, तत्सम्बन्धी विवाद एवं परिचय

1. धर्म की सम्प्रभुता बनाम संवैधानिक सर्वोच्चता
2. राज्य के उद्देश्य बनाम संवैधानिक उद्देश्य
3. राजतंत्रीय शासन बनाम लोकतांत्रिक शासन
4. केन्द्रीकृत सत्ता नियंत्रण बनाम शक्ति पृथक्करण एवं नियन्त्रण संतुलन सिद्धान्त
5. शासक वर्ग राजा बनाम निर्वाचित प्रमुख : प्रस्थिति एवं दायित्व
6. एकात्मक (केन्द्रीकृत) शासन प्रणाली बनाम संघात्मक शासनप्रणाली
7. कौटिल्यकृत प्रशासकीय विभाजन बनाम वर्तमान मंत्रालयी/विभागीय प्रणाली
8. तुलनात्मक विश्लेषण

अध्याय–द्वितीय

कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य

• आचार्य कौटिल्य : एक व्यक्तित्व

आचार्य कौटिल्यका विराट व्यक्तित्व एक पारंगत राजनीतिज्ञ के रुप में मौर्य साम्राज्य के विपुल यश के साथ एक प्राण होकर, एक ओर तो भारत के राजनीतिक इतिहास में अपनी कीर्ति–कथा को अमर बनाये हुए है और दूसरी और अपनी अतुलनीय,अद्भुत कृति अर्थशास्त्र के द्वारा संस्कृत साहित्य के इतिहास में अपने विषय के एकमात्र विद्वान होने का गौरव भी उन्हें प्राप्त है। इन असाधारण खूबियों के कारण ही आचार्य कौटिल्य के नाम–माहात्म्य की कथाएँ पुराणों से लेकर काव्य, नाटक और कोश ग्रन्थों में सर्वत्र परिव्याप्त है। कौटिल्य द्वारा नन्द–वंश का विनाश और मौर्य वंश की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित विष्णु पुराण में एक कथा आती है उसके अनुसार **''महाभदन्तः तत्पुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति। नवैव। तान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मौर्याश्र्व पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एवं चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति। तस्यापि पुत्रो बिन्दुसारो भविष्यति। तस्याप्यशोकवर्धनः।''**[1]अर्थात् ''महाभदन्त तथा उनके नौ पुत्र सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। अन्त में कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण उस राज्य परम्परा के अंतिम उत्तराधिकारी धनानन्द (नन्दवंश) का समूल विनाश करेगा।नन्दवंश के समूल विनिष्ट हो जाने के उपरान्त उनकी जगह मौर्यवंश के पहले प्रतापी शासक चन्द्रगुप्त का कौटिल्य राज्याभिषेक करेंगे । उनका पुत्र बिन्दुसार और बिन्दुसार का पुत्र अशोक होगा।''

इस पुराण वर्णित विवरण से दो बातों का पता चलता है कि मगध के राजसिहांसन पर पहले नन्दवंश का अधिकार था और उनके बाद कौटिल्य के कूटनीतिक कौशल से मगध की राजसत्ता छिनकर मौर्यवंश के हाथों में आयी। इस प्रकार से मौर्यवंश की सत्यता से आचार्य कौटिल्य के सही व्यक्तित्व एवं उनके अर्थशास्त्र की सत्यता प्रमाणित होती हैं।

भारतीय इतिहास का उदीयमान नक्षत्र और मौर्य वंश के महाप्रतापी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने विष्णुगुप्त नामक एक कूटनीतिज्ञ एवं राजनीतिज्ञ ब्राह्मण की सहायता से मगध के नन्दवंश को विनिष्ट कर तथा शक्तिशाली यवनराज (यूनानी) सिकन्दर महान् के भारत विजय के प्रयत्नों को विफल कर लगभग 321 ई.पू. में एक विराट साम्राज्य की स्थापना की। जिसको इतिहासकारों ने मौर्य साम्भ्रज्य के नाम से पुकारा। चन्द्रगुप्त मौर्य सामान्य

क्षत्रिय वंश से प्रसूत था। लगभग 24 वर्ष तक आचार्य कौटिल्यके संरक्षण में मगध की राजगद्दी पर उसका एकछत्र शासन रहा।

ग्रीक सेनापति **सेल्यूकस** के राजदूत**मेगस्थनीज** की अनुपलब्ध कृति **इण्डिका** के अन्यत्र उद्धृत अंशोंसे और **चन्द्रगुप्त** के महामात्य **कौटिल्य**के **अर्थशास्त्र** से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य एक असाधारण **दिग्विजयी** सम्राट था और उसने अपने राजकाल में प्रशासनिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक,धार्मिक,सांस्कृतिक और बौद्धिक उन्नति के लिए अविरल प्रयत्न किये।**उसके द्वारा संचालित प्रशासन सुशासन का प्राचीनतम और सर्वोत्तम उदाहरण है, जो आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व प्रचलित था और भारत उपमहाद्वीप में आजएवं आने वाले भविष्य में भी प्रासंगिक होगा।**

(1) कौटिल्य के विविध नाम और उनकी प्रामाणिक व्याख्या –

विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से यह तथ्य पता चलता है कि आचार्य कौटिल्य की ख्याति उनके दूसरे नामों से भी थी। ये नाम थे– कौटिल्य, विष्णुगुप्त, चाणक्य, दामिल, पक्षिल, मल्लिनाग, माणवक आदि। इन नामों एवं उनसे सम्बन्धित प्रामाणिक तथ्यों की विवेचना निम्नलिखित हैः–

(1) कौटिल्य –पुराणों में इस आचार्य के लिए कौटिल्य शब्द प्रयुक्त हुआ है। विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस नामक नाटक में भी इन्हें 'कुटिलमति कौटिल्य'कहा गया है। इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र कृत अभिधानचिन्तामणि ग्रन्थ के दो मुद्रित संस्करणों में इनके लिए एक में कौटिल्य और दूसरे में कौटल्य की संज्ञा प्रयुक्त की गई है।

(2) विष्णुगुप्त –

आचार्य कौटिल्य का वास्तविक पितृ–प्रदत्त नाम विष्णुगुप्त था। इसका प्रमाण आचार्य कामन्दक के नीतिसार[2] में उपलब्ध होता है। जिसका रचनाकाल 400 ईस्वी के लगभग माना गया है। विशाखदत्त के समकालीन कथाकार एवं काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी[3] ने भी आचार्य के विष्णुगुप्त नाम का उल्लेख किया है।

(3) चाणक्य –

चाणक्य नाम उन्हें सम्भवतः **चणक** के पुत्र होने के कारण दिया गया है।**विष्णुशर्मा** ने अपने ग्रन्थ **पंचतन्त्र** में चाणक्य के **अर्थशास्त्र** को **मनुस्मृति** और **कामसूत्र** के समकक्ष अपने विषय का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ कहकर स्मरण किया है।[4]इससे यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य का एक नाम चाणक्य भी है।

इसके अतिरिक्त **हेमचन्द्र** ने अपने ग्रन्थ **प्रबन्धचिन्तामणि** में कौटिल्य के कई नामों का उल्लेख किया है। वे नाम है– वात्सायन, द्रामिल, पक्षिलस्वामी, मल्लिनाग, अंगुल, माणवक, कुटिल इत्यादि।[5]

इस प्रकार विभिन्न कोश ग्रन्थों की इस नामावली की उपलब्धि से आचार्य कौटिल्य के वास्तविक नाम और उनके लिए प्रयुक्त होने वाले दूसरे नामों से सम्बन्धित विवादों का स्वतः ही निराकरण हो जाता है।

(2) आचार्य कौटिल्य का जीवन चरित्र –

कौटिल्य कौन थे ? उनका जन्म स्थान कहाँ था ? अर्थशास्त्र की रचना कब एवं कहाँ की गई ? आदि प्रश्न आज भी शोध का विषय है। विद्वानों में भी इस बारे में मतैक्य का अभाव पाया जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में आचार्य कौटिल्य के व्यक्तित्व एवं चरित्र के बारे में प्रामाणिक तथ्यों को प्रस्तुत करने की सत्यनिष्ठ कौशिश की है।

पौराणिक अनुश्रुति में आचार्य चाणक्य के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं है। वे कहाँ उत्पन्न हुए, उनका सम्बन्ध किस कुल के साथ्ज्ञ था और उनका पारिवारिक जीवन किस प्रकार व्यतीत हुआ, इस विषय में प्राचीन संस्कृत साहित्य सर्वथा मौन है। **विशाखदत्त** ने **मुद्राराक्षस** नाटक में उनके कृतित्व का विशद रूप से उल्लेख किया है। मुद्राराक्षस का जो उपोद्धात **ढुण्ढिराज** ने लिखा था, उसमें कौटिल्य(चाणक्य) की कथा भी विशद रूप से दी गई है। नन्दवंश का विनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध का राजसिंहासन दिलाने के विषय में संस्कृत साहित्य में अन्यत्र भी अनेक निर्देश विद्यमान हैं, पर उनके जीवन वृत्तान्त पर इनसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

बौद्ध और जैन अनुश्रुतियों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। वंशत्थप्प–कासिनी के अनुसार कौटिल्य का जन्म तक्षशिला में हुआ था।[6] इसमें तो कोई सन्देह नहीं, कि कौटिल्य के जीवन का अच्छा बड़ा भाग तक्षशिला में व्यतीत हुआ था, जहाँ वे दण्डनीति के अध्यापन का कार्य करते थे। चन्द्रगुप्त उनका शिष्य था, और सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय वे सम्भवतः तक्षशिला में ही थे। पर बौद्ध अनुश्रुति द्वारा भी उनके जीवन वृत्तान्त का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता।

जैन अनुश्रुति के अनुसार कौटिल्य का जन्म **'गोल्ल'** नामक विषय या जनपद में हुआ था। वहाँ **चणय** नाम का एक ग्राम था, जहाँ **चणक** नाम के एक ब्राह्मण का निवास था। चणक की पत्नि **चणेश्वरी** थी। चण और चणेश्वरी दोनों की ही जैन मुनियों के प्रति अगाध श्रद्धा थी, और उनकी स्थिति जैन धर्म में श्रावकों की थी। चणेश्वरी के एक पुत्र उत्पन हुआ, जिसका नाम चाणक्य रखा गया। जन्म के समय ही इस बालक के मुख में

एक दाँत विद्यमान था। इसे देख कर जैन मुनियों ने यह भविष्यवाणी की, कि बड़ा होकर यह बालक राजा बनेगा। यह जानकर चणक बहुत चिन्तित हुआ वह अपने पुत्र को जैन मुनि बनाना चाहता था। अतः उसने कौटिल्य का जन्म का दाँत तुड़वा दिया। इसका परिणाम यह हुआ, कि कौटिल्य स्वयं तो राजा नहीं बना, पर वह राजा का निर्माता अवश्य हो गया। प्रत्यक्ष रूप से राजा न होकर भी वह **बिबंतरिय** (बिम्बान्तरित) रूप से राज्य का संचालन करनेवाला हुआ।[7] एक अन्य जैन ग्रन्थ में कौटिल्य के पिता का नाम कपिल दिया गया हैं, और उनका जन्म स्थान पाटलिपुत्र बताया गया है।[8] गोल्ल विषय का उल्लेख भरहुत के एक उत्कीर्ण लेख में भी आया है,[9] यद्यपि उसकी भौगोलिक स्थित वहाँ भी स्पष्ट नहीं है।

जैन श्रावक होकर कौटिल्य ने भी सब विद्याओं का अध्ययन किया, और वह सब ज्ञान में पारंगत हो गया। वयस्क होने पर उसने एक कुलीन ब्राह्मण कन्या से विवाह किया, जिसका नाम **वृहत्कथा कोष** में **यशोमती** दिया गया है।[10] इस विवाह से चाणक्य के कोई सन्तान हुई या नहीं, इस विषय में जैन अनुश्रुति से भी कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। चाणक्य ने नन्दवंश का विनाश कर चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बनाया, इस बात का समर्थन प्राचीन जैन ग्रन्थों से भी होता है।[11] अपने जीवन के अन्तिम भाग में कौटिल्य जैन मुनि हो गये थे।

कौटिल्य जैन धर्म के अनुयायी थे, जैन अनुश्रुति में इसका स्पष्ट रूप से निरूपण किया गया है। पर आश्चर्य यह है कि कौटलीय अर्थशास्त्र में कहीं भी जैन धर्म का उल्लेख नहीं है, और वहाँ **त्रयी** धर्म तथा **वर्णाश्रम** धर्म पर बहुत जोर दिया गया है। पर इसमें सन्देह नहीं, कि कौटिल्य के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ जैन अनुश्रुति में विद्यमान हैं, वे अत्यन्त महत्व की हैं।

• कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र : उत्पत्ति तत्सम्बन्धी विवाद एवं परिचय –

कौटिल्कृत अर्थशास्त्र की उत्पत्ति, तत्सम्बन्धी विवाद एवं परिचय के बारे में संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

(1) अर्थशास्त्र की उत्पत्ति और उसका क्रमिक विकास–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के सैकड़ों शब्दों में एवं उसकी लेखन शैली पर कल्पसूत्रों की शब्दावली एवं उसकी रचना शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इससे लगता है कि अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों का निर्माण **कल्पसूत्रों**(700ई.पू.) के बाद विशेषतः **बौधायान–धर्मसूत्र** (500ई.पू.) केबाद होना आरम्भ हो गया था । बौद्ध धर्म के जातक ग्रन्थों के अध्ययन से भी

स्पष्ट होता है कि उस समय तक अर्थशास्त्र को एक प्रमुख विज्ञान के रूप में परिगणित किया जाने लगा था।[12]

सूत्रकाल कीसमाप्ति (200ई.पू.) केलगभग अर्थशास्त्र एक प्रामाणिक शास्त्र के रूप से समाहित हो चुका था। सूत्र–ग्रन्थों में अर्थशास्त्र विषयक रचनाओं को देखकर उसकी मान्यता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। **गृह्यसूत्र** में तो **आदित्य** नामक एक अर्थशास्त्रविद् आचार्य का उल्लेख तक मिलता है।[13]

अर्थशास्त्र की प्राचीन परम्परा का अध्ययन करते समय एक बात जानने योग्य यह है कि आरम्भ(पौराणिक काल) में दण्डनीति और शासन सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख भी अर्थशास्त्र के लिए होता था। लेकिन कौटिल्य के बाद अर्थशास्त्र से केवल जनपद (राज्य) सम्बन्धी कार्यों का ही विधान होने लगा था।

(2) अर्थशास्त्र की उत्पत्ति –

अर्थशास्त्रसे सम्बन्धित प्राचीन पौराणिक आख्यान सर्वप्रथम **महाभारत** के **शांतिपर्व** में मिलता है। शांतिपर्व के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में,**त्रेतायुग** में लोक (पृथ्वी) में लोग धर्मनिष्ठ थे और धर्मानुसार अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे तब न तो कोई शासक था न ही दण्ड की व्यवस्था थी।समय के साथ लोगों में लालच, आलस्य और दिखावा जैसी कुप्रवत्तियाँ बढ़ने लगी और सर्वत्र अराजकताफैल गई। इस संकट से लोगों को सुरक्षित करने हेतु **ब्रह्मदेव**ने**धर्म, अर्थ, काम**–त्रिवर्ग पर आधारित एक लाख उक्तियों (श्लोकों) के नीतिग्रन्थ की रचना की। इस नीतिग्रन्थ में वर्णित उक्तियों के पालन करने से पृथ्वी पर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की स्थापना हो सकती थी। इस नीतिग्रन्थ को बाद में **दण्डनीति** का नाम दिया गया। **भगवान शिव** ने इस ग्रन्थ को दस हजार श्लोकों में संक्षिप्त कर दिया और इसे **वैशालक्ष्य ग्रन्थ** कहा गया। इस ग्रन्थ के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही। इन्द्र ने इसे **'वृहदण्डतक'** के नाम से पाँच हजार श्लोकों में, **आचार्य बृहस्पति** ने तीन हजार उक्तियों के **''बार्हस्पत्य शास्त्र''**के रूप में तथा **शुक्राचार्य** ने इसका संशोधन एक हजार श्लोकों के रूप में किया।

अर्थशास्त्र की उत्पत्ति का यह पौराणिक आख्यान काफी रोचक लेकिन काल्पनिक लगता है परन्तु इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि सम्भवतः उस समय के राजनीतिक एवं धर्म प्रमुख (पुरोहित वर्ग) सर्वसाधारण को अनैतिक, अराजक एवं असामाजिक होने से रोकने के लिए नीतिशास्त्र या दण्डनीति की पालना करवाने का समर्थन करते थे। उपरोक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि कौटिल्य से पूर्व भी अर्थशास्त्र पर अनेक विचारकों की कृतियाँ थी जो कि सम्प्रति अनुपलब्ध है। लेकिन उन सबका एक साथ निष्कर्ष हम कौटिल्य

के अर्थशास्त्र में पाते है। इसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो ग्रन्थकार ऐतिहासिक (पौराणिक) व्यक्ति माने गये हैं, वे शान्ति पर्व में देवता तथा पौराणिक रुप से स्मरण किये गये है।[14]

कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती लगभग अठारह–उन्नीस अर्थशास्त्रविद्आचार्यों का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने उनसे विचार ग्रहण कर अपने अद्वितीय ग्रन्थ अर्थशास्त्र की रचना की थी। कौटिल्य द्वारा उल्लेखित ये आचार्य निम्नलिखित है –

1. मनु	2. बृहस्पति[15]	3. उशनस (शुक्र)[16]
4. भारद्वाज (द्रोण)	5. विशालाक्ष	6. पाराशर
7. पिशुन	8. कोणपदंत (भीष्म)	9. वातव्याधि (उद्धव)
10. वाहुदन्तीपुत्र	11. कात्यायन	12. कार्णिक भारद्वाज
13. चारायण	14. घोट मुख	15. किन्जल्क
16. पिशुन पुत्र	17. अभ्मीपक्ष	18. अज्ञातनाम् अर्थशास्त्र कार

इस प्रकार **मनु** से लेकर **कौटिल्य** तक अर्थशास्त्रकारों की संख्या **उन्नीस** होती है। कुछ विद्वान कौटिल्य सहित अर्थशास्त्रकारों की संख्या अठारह ही मानते हैं क्योंकि वे **भारद्वाज** को ही **कर्णिकाभारद्वाज** स्वीकार करते है। इस प्राचीन आचार्य परम्परा के परिचय से ऐसा प्रतीत कि अर्थशास्त्र का निर्माण बहुत पहले से होने लगा था और विभिन्न ग्रन्थों में आदर के साथ इन आचार्यों का उल्लेख किया जाने लगा था। कौटिल्यने भी अपने अर्थशास्त्र के प्रारम्भ में इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की जो इस प्रकार है –

नमः शुकबृहस्पतिभ्याम् ।

पृथ्विया लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः, प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्।[18]

अर्थात् "**शुक्राचार्य और बृहस्पति को नमस्कार है । पृथ्वी की प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए पुरातन आचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया। उन सबका सार संकलन कर प्रस्तुत अर्थ शास्त्र की रचना की गई है।**" इस प्रकार उपरोक्त वर्णित तथ्य ये प्रमाण प्रस्तुत करते है कि शुक्राचार्य और बृहस्पति अर्थशास्त्र के प्राचीन आचार्य थे। उन्होंने अर्थशास्त्र विषय पर ग्रंथ लिखे तथा कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्र की रचना में उनके ग्रंथो का सार संकलन प्रस्तुत किया है। यद्यपि इन आचार्यों की ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता का प्रश्न आज भी चिन्तन एवं शोध का विषय है।

(3) अर्थशास्त्रों में उल्लेखित पुरोहितों की शासन में भूमिका –

प्राचीन अर्थशास्त्रों में उल्लेखित राजनीतिएवं प्रशासनिक दर्शन को समझने के लिए राज्य के शासन में पुरोहितों की भूमिका क्या थी उसकी समीक्षा करना आवश्यक है। यह एक पौराणिक तथ्य है कि **बृहस्पति** व **उशनस** पुरोहित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे। **ऋग्वेद** में यह उल्लेख किया गया है कि प्रारम्भ में राजाओं को राजकीय कार्यों से सम्बन्धित हर पक्ष में सलाह,निर्देश व सहायता देने के लिए ब्राह्मण पुरोहित होते थे। सत्ता या शक्तिप्रयोग की दृष्टि से यह राजा के तुरन्त बाद आते थे। जैसे–जैसे राज्य संस्था का विकास हुआ राज्य की नवीन प्रशासनिक संस्थाओं और कार्यों में बढ़ोत्तरी हुई, तो मन्त्रिपरिषद् मन्त्रियों और अमात्यों की नियुक्ति की जाने लगी। पुरोहितोंके धार्मिक कर्त्तव्योंमें बढ़ोत्तरी होने के बाद भी उनकी राजा व युवराज को शासन कला में पारंगत करने की भूमिका वैसे ही बनी रही।**महाभारत** में इस प्रकार के पुरोहितों का उल्लेखमिलता है। ये है–**बृहस्पति, विशालाक्ष, उशनस, इन्द्र, प्रशेतामनु, भारद्वाज** इत्यादि।[19]

कौटिल्यभी सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री व पुरोहित पद आसीन थे। ये उपर्युक्त वर्णित प्राचीन अर्थशास्त्रीय परम्परा के अनुरूप था। अर्थशास्त्र में कौटिल्यने राजा द्वारा नियुक्त किए गये, अष्टादश तीर्थ के महामात्यों (मंत्रियों) में सर्वप्रथम पुरोहित या प्रधानमंत्री की नियुक्ति का प्रावाधान किया था। कौटिल्यकाल में पुरोहित युद्धभूमि में जाकर सैनिकों की विजय के लिए प्रार्थना व धार्मिक उपाय करते थे। ये बौद्धिक व्यवहार व राजकीय कार्यों को सिखाने के पारंगत विद्वान माने जाते थे। राजा को धर्म, चरित्र व व्यवहार केअनुकूलव्यवहार करने के लिए प्रतिबद्ध करते थे। राजा का कर्त्तव्य था कि वह इनके परामर्श को पुत्र,शिष्य और सेवक की तरह अपने आप को मानकर पालन करे।[20]

(4) अर्थशास्त्र का अन्वेषण –

अर्थशास्त्र और उसके निर्माता कौटिल्य के सम्बन्ध में जितना विवाद रहा, उससे कहीं अधिक भ्रमपूर्ण धारणाएँ उसके स्थिति–काल के सम्बन्ध में प्रचारित हुई। आचार्य कौटिल्य की जीवन सम्बन्धी जानकारी और उनके अद्भुत ग्रन्थ **अर्थशास्त्र** की छानबीन करने में विदेशी विद्वानों का वर्षों तक घोर विवाद चलता रहा। इस तर्क वितर्क और वाद विवाद की परम्परा में देशी–विदेशी विद्वानों का भरपूर हाथ रहा। उनमें पण्डित शाम शास्त्री, महामहोपाध्याय पण्डित गणपति शास्त्री, श्री काशीप्रसाद जायसवाल, श्री नरेन्द्र नाथ लाहा, श्री राधाकुमुद मुकर्जी, श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर, श्री रमेश मजूमदार, श्री उपेन्द्र घोषाल, श्री प्राणनाथ विद्यालंकार, श्री विनयकुमार सरकार और श्री जयचन्द विद्यालंकार प्रमुख हैं।

इसी प्रकार विदेशी विद्वानों में श्री हिलेब्रान्ट, श्री हर्टल, याकोबी साहब, श्री विंसेन्ट स्मिथ, श्री औटो स्टाइन, डॉ. जौली, डॉ. विंटरनित्स और डॉ. कीथ के नाम उल्लेखनीय है।

(5) अर्थशास्त्र के अन्वेषण में पण्डित रुद्रपतन् शामशास्त्री का योगदान –

आचार्य कौटिल्य की अमरकृति अर्थशास्त्र की सत्यता को प्रमाणित करने और उसे विश्व राजनीतिविज्ञान साहित्य के उच्चतम् शिखर पर प्रतिष्टित करने में **प.आर.शामशास्त्री** का स्वर्णिम योगदान है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के उद्धारक के रुप में प.आर.शामशास्त्रीका नाम भी अर्थशास्त्र की महानता के साथ अमर हो चुका है। कौटिल्य की इस महान कृति की रचना आज से लगभग 2300 वर्ष पूर्व हो चुकी थी। किन्तु अध्येयताओं के सामने यह कृति सन् 1904 में ही आ सकी। मैसूर महाराजा द्वारा 1891 में स्थापित **ऑरियंटल रिसर्च इन्सटीट्यूट** में तंजोर के एक ब्राह्मण ने ताड़पत्रों (Palmleaves)पर लिखे अर्थशास्त्र की पाण्डुलिपि मय भट्टस्वामी द्वारा रचित **'प्रतिपादचन्द्रिका'** नामक टीका पुस्तकालय को दी। उस ब्राह्मण को भी नहीं पता था किउस पाण्डुलिपि में क्या लिखा है। पाण्डुलिपि विशेषज्ञ **प्रो. जगन्नाथ** ने इस पाण्डुलिपि के बारे में यह कहा है कि यह संस्कृत भाषा में है लेकिन इसको ग्रंथ(Grantha) लिपि में लिखागया है न की देवनागरी लिपि में। उनके अनुसार जिस समय की यह पाण्डुलिपि है, उस समय तमिल में संस्कृत के कुछ निश्चित स्वर सम्मिलित नहीं किए गये थे। अतः ग्रंथ लिपि (Script) को अपनाया गया जिससे इन स्वरों को तमिल जानने वाले समझ सके।

पं.शामशास्त्री इस संस्थान के पुस्तकालयाध्यक्ष थे। उन्हें पाण्डुलिपियों पर कार्य करते हुये इस अर्थशास्त्र की पाण्डुलिपि की प्राप्ति हुई। पं. शामशास्त्री ने मैसूर महाराज की अनुमति से इस ग्रंथ के कुछ अंशों को पहले पहल 1905 ई.में **इण्डियन एण्टीक्वेरी** में सानुवाद प्रकाशित करवाया। सन् 1909 में उन्होनें मैसूर महाराजा की प्रेरणा से **बिब्लियोथीसिया संस्कृतऑफ, मैसूर** के 37वें खण्ड़ में इस सम्पूर्ण अर्थशास्त्र का मूल पाठ पूर्ण शुद्धता के साथ प्रकाशित कराया। सन् 1915 में पं.शामशास्त्री ने **द अर्थशास्त्रा ऑफ कौटिल्या** (The Arthashastra of Kautilya)के नाम से इसका संशोधित अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया।पं. शामशास्त्री ने ग्रंथके विस्तृत उपोद्घात में बड़े पाण्डित्यपूर्ण प्रमाणों के आधार पर अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में **तीन बातों** का विशेष उल्लेख किया। पहली बात तो उन्होंने यह बतायी कि आचार्य कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य के आमात्य थे। दूसरी बात उन्होंने ये बतायी कि अर्थशास्त्र कौटिल्यकी ही कृति है और तीसरा निराकरण उन्होंने यह भी किया है कि अर्थशास्त्र का यही प्रामाणिक मूलपाठ है।[21]

वर्ष 1917–18 में केरल के ए.के.मेनन पुस्तकालय में **'नयनचन्द्रिका'**टीका प्राप्त हुई जिसमें अर्थशास्त्र के 6 अधिकरणथे। इसके बाद **जयमंगल** (मद्रास 1925–26), **चाणक्यटीका, नीति निर्णित** (बम्बई) तथा **भास कौटिलीयम** (मलयालम भाषा में 1930) नामक टीकाएँ प्राप्त हुई जिनमें अर्थशास्त्र का वर्णन था। वर्ष 1924–25 में डॉ. गणपति शास्त्री द्वारा अर्थशास्त्र पर एक पूर्ण टीका संस्कृत भाषा में **'श्रीमूला'**नाम से प्रकाशित करवाई गई। सन् 1923 में प्राणनाथ विद्यालंकार ने सर्वप्रथम अर्थशास्त्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया।**आर.पी. कांग्ले**[22] द्वारा साठ के दशक में तीन खण्ड़ों में सम्पूर्ण अर्थशास्त्र (The Kautilya Arthashastra) का आलोचनात्मक विवेचन उपलब्ध कराया गया।

(6) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र विषयक विवाद–

पण्डित शामशास्त्री ने कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र की खोज एवं सानुवाद के बाद दो तथ्यात्मक बातें कही है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र के रचनाकार है तथा उनकी यह कृति अपने मौलिक रुप में उपलब्ध है। उनकी इन बातों का समर्थन करने वाले मुख्य विदेशी विद्वान **हिल्ब्रांट, हर्टल, याकोबी** (1912) और **स्मिथ** थे। **श्री विंसेंट स्मिथ** ने अपने प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ **अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया** (1914 ई.) में शास्त्री जी की उक्त बातों को मान्यता दी थी।

स्मिथ के उक्त इतिहास ग्रन्थ के आठ वर्ष बाद विदेशी विद्वानों के एक वर्ग ने कौटिल्य, उनके अर्थशास्त्र और उसकी प्रामाणिकता एवं रचनाकाल के बारे में अविश्वास की नयीं मान्यताओं को स्थापित किया। उन विद्वानों के मतानुसार कौटिल्य ग्रन्थकार का वास्तविक नाम न होकर एक कल्पित नाम है एवं अर्थशास्त्र तीसरी शती का रचा हुआ एक जाली ग्रन्थ है। इन विद्वानों में प्रमुख नाम **ऑटोस्टाइन, डॉ. जोली, कीथ** एवं **विंटरनित्स** थे। **ऑटोस्टाइन** ने **मेगस्थनीज एण्ड कौटिल्य** नामक अपनी तुलनात्मक पुस्तक में मेगस्थनीज और कौटिल्य के सम्बन्ध में पारस्परिक विरोध दिखाने की चेष्टा की।

सन् 1923 में **डॉ. जोली** ने अपनी पुस्तक **अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य**जो **लाहौर** से प्रकाशित हुई थी कि प्रस्तावना में ये बताया कि अर्थशास्त्र तीसरी शती में लिखा जाली ग्रन्थ है तथा इसका रचयिता कौटिल्य एक कल्पित राजमंत्री है।

डॉ. विन्टरनित्स ने डॉ. जोली के इस मत को अतकर्य कहकर अपने ग्रन्थ **ए हिस्टी ऑफ इण्डियन लिट्रेचर** (1927) में उनके मत की पुष्टि की।

डॉ. कीथ ने 1928 में अपने लेख में यह बात कही कि सम्पूर्ण अर्थशास्त्र ही एक अप्रामाणिक रचना है।

डॉ. जोली के लेख की प्रस्तावना में उल्लेखित तर्कों को **डॉ. जायसवाल**का खण्डन किया है तथा प्रामाणिक आधारों को साक्षी रखकर यह स्पष्ट किया है कि अर्थशास्त्र जैसा महान ग्रन्थ जाली नहीं है। इसके रचनाकार कौटिल्य एक कल्पित व्यक्ति न होकर सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के महामात्य थे। अर्थशास्त्र इनकी ही कृति है जो प्रामाणिक रुप से सम्प्रति उपलब्ध है तथा उसकी रचना 400 ई.पू. में हुई थी।[23]

उपरोक्त विवेचन सेयह सिद्ध हो जाता है कि अर्थशास्त्र के रचनाकार आचार्य कौटिल्य ही थे और सम्भवतः उन्होंने इस अर्थशास्त्र की रचना चौथी शताब्दी ई.पू. में की।

(7) अर्थशास्त्र के रचनाकार के रूप में कौटिल्य –

आचार्य कौटिल्य ने ही अर्थशास्त्र ग्रंथ की रचना की थी। इस सम्बन्ध में अनेकनिर्देश प्राचीन साहित्य में विद्यमान है। यह निर्देश इस प्रकार से हैं:–

(i) **दशकुमार चरित्र –**

महाकवि दण्डी ने इस ग्रंथ में लिखा है कि आचार्य विष्णुगुप्त (कौटिल्य) ने मौर्य (चन्द्रगुप्त) के लिए छः हजार श्लोकों में संक्षिप्त करके एक ग्रंथ का निर्माण किया। जो भी इस उत्तम ग्रन्थ को पढ़ेगा उसको उत्तम फल की प्राप्ति होगी।

(ii) **कामंदक नीतिसार –**

कामंन्दक ने नीतिसार में उल्लेखित किया गया है कि विष्णुगुप्त ने अर्थशास्त्र की रचना कीथी। उनके शब्दों में ''**वज्र के समान ज्वलंत तेज से युक्त जिसके अभिचार वज्र के आघात द्वारा श्री सम्पन्न व सुदृढ़ नन्दरूपी पर्वत जड़ से उखड़ कर गिर गया, जिस परम शक्तिशाली ने अकेले ही अपनी मंत्र शक्ति द्वारा मनुष्यों में चन्द्र के समान चन्द्रगुप्त को राज्य दिलवा दिया और जिनके अर्थशास्त्र रूपी महासमुद्र से नीतिशास्त्र रूपी अमृत को प्राप्त कराया उस विष्णुगुप्त को नमस्कार है।**'' इससे प्रमाणित होता है कि अर्थशास्त्र की रचना आचार्य कौटिल्य ने ही की थी।

(iii) **विष्णु शर्मा कृत पंचतन्त्र –**

इस ग्रन्थ में विष्णु शर्मा ने चाणक्य (कौटिल्य) को अर्थशास्त्र का रचनाकार बताया है। पंचतन्त्र के प्रथम अध्याय में एक दूसरे स्थान पर अर्थशास्त्र को **नयशास्त्र** नाम से भी अभिहित किया गया है।

(iv) **कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र –**

कौटिल्य द्वारा लिखित अर्थशास्त्र की अतः साक्षी द्वारा भी यही सूचित होता है कि इस शास्त्र के रचियता वही है, जिसने बड़े अमर्शके साथ शास्त्र,शस्त्र और नन्दराज के हाथ में गयी हुई पृथ्वी का उद्धार किया।

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्।।[24]

अन्यत्र एक स्थान पर अर्थशास्त्र में यह कहा गया हैकि कौटिल्यने यह शास्त्र ऐसा बनाया है कि इसे सरलतापूर्वक समझा और ग्रहण किया जा सके। इसमे ग्रन्थ का व्यर्थ विस्तार नहीं किया गया है और इसके तत्व,अर्थ व पद सुनिश्चित है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का अंतिम श्लोक भी महत्व का है–

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च।।[25]

अर्थात् प्राचीन अर्थशास्त्रों में बहुधा भाष्यकारों के मतभेदों को देखकर स्वयं ही विष्णुगुप्त कौटिल्य ने इस अर्थशास्त्र के सूत्रों एवं भाष्यों का निर्माण किया है।इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि अर्थशास्त्र के रचनाकार कौटिल्य ही थे। उन्हें विष्णुगुप्त एवं चाणक्य के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

(8) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र एक संक्षिप्त परिचय –

कौटिल्य को शासनकला व कूटनीति का महान् एवं यथार्थवादी चिन्तक माना है। कौटिल्य ने अपनी महत्वपूर्ण रचना अर्थशास्त्र में राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक विचारों का प्रतिपादन किया है। इसमेंप्राचीन भारतीय राजनीतिकपर्यावरण की भी महत्पपूर्ण जानकारी मिलती है। साथ ही में राज्य के प्रशासनिक तन्त्र एवं कार्मिकों को सुशासन की स्थापना में किस प्रकार से प्रयुक्त किया जाये। इस सन्दर्भ में भी अर्थशास्त्र का अध्ययन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। मुख्यतः राजनीति, कूटनीति एवं प्रशासन जैसे विषय अर्थशास्त्र के केन्द्रीय विषय है।

शुक्र ने अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए बताया है कि **श्रुति व संस्कृति के अनुकूल जिस शास्त्र में राजनीति का वर्णन हो तथा धर्म व युक्तिपूर्वक अर्थ के उपार्जन के नियमों का वर्णन किया गया हो वह अर्थशास्त्र है।**कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के विषय में कहा है कि **पृथ्वी की प्राप्ति के लिए और उसकी रक्षा के लिए पुरातन आचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया है। उन सबका सार संकलन कर अर्थशास्त्र की रचना की गई है।**[26]कौटिल्य काल में अर्थशास्त्र का व्यापक स्वरुप था इसके अन्तर्गत अर्थनीति, दण्डनीति, राजनीति धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, न्यायशास्त्र एवं युद्ध शास्त्र आदि को सम्मिलित किया जाता था।

डॉ. देवकान्ता शर्मा[27] के मतानुसार कौटिल्य से पूर्व भी अर्थशास्त्र पौराणिक आचार्यों बृहस्पति व शुक्राचार्य के द्वारा लिखे गये थे। परन्तु राजनीति विज्ञान पर प्रथम अर्थशास्त्र

की रचना आचार्य कौटिल्य ने ही की थी। जो अपने विषयों में पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रों से व्यापक रुप से भिन्न था। सामान्यतः आज के युग में अर्थशास्त्र शब्द का प्रयोग **इकनॉमिक्स** (Economics) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जो आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित विषय है। किंतु प्राचीन काल मेंयह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष(चारपुरूषार्थों) में से अर्थ का प्रतिनिधित्व करता था। कौटिल्य की दृष्टि में जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ तथा काम है। यथार्थवादी चिन्तक होने के कारण कौटिल्य ने मौक्ष की चर्चा अपने अर्थशास्त्र में नहीं की है।

कौटिल्यने अपने ग्रंथ के नामकरण **अर्थशास्त्र** करने के प्रश्न पर निम्न व्याख्या प्रस्तुत की है–

मनुष्याणां वृतिरर्थः मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः, तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थ–शास्त्रमिति।[28]

''अर्थात् मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते है। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते है।इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करने और उनकी रक्षा करने वाले उपायों का निरूपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।''

आज से 321 ईसा पूर्व रचित इस महान कृति में15 अधिकरण 150 अध्याय 180 प्रकरण एवं 6000 हजार श्लोक हैं।[29]यह संस्कृत भाषा में लिखा गया है। अर्थशास्त्र के सभी पन्द्रह अधिकरणों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रुप से **लोकप्रशासन** विषय से नहीं है। इनमें से **अधिकरण** संख्या **एक,दो, पाँच** और **छः** का ही सम्बन्ध लोकप्रशासन विषय से है। अर्थशास्त्र के आधे भाग में तो वैदेशिक नीति और युद्ध कला वर्णित की गई है।

(9) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अधिकरणों में वर्णित विषय वस्तु –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार धारा का सबसे अधिक गूढ़, वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित एवं यर्थाथवाद का समर्थन करने वाला विस्तृत ग्रंथ है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक सिद्वान्तों व संस्थाओं का स्पष्ट एवं व्यापक विवेचन मिलता है। विषय सामग्री की दृष्टि से अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र, राजनीति शास्त्र, आधुनिक अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, युद्धशास्त्र आदि का समुच्च माना जा सकता है। यह उस काल में आधुनिक समाज विज्ञानों के **'अन्तरानुशासन'** उपागम को ध्यान में रखकर लिखा गया था।

वस्तुतः कौटिल्यकृतअर्थशास्त्रआज के (21 वीं सदी) नवीन लोक कल्याणकारी वैश्विक राज्य और सुशासन युक्त प्रशासन का दिग्दर्शन है। अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य जीवन की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक क्रियाओं से है, जिससे मानव का कल्याण जुड़ा है तथा जो उसे सुशासन प्रदान कर सके।ऐसा कोई भी विषय नहीं है, जिस पर कौटिल्यने सूत्र न लिखा है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र पन्द्रह अधिकरणों[30] में विभक्त है। प्रत्येक अधिकरण में अनेक प्रकरण है, प्रकरणों को अध्यायों में विभाजित किया है। ये पन्द्रह अधिकरण निम्नलिखित है–

(1) **प्रथम अधिकरण**–इसका नाम **विनयाधिकारिक** है। इस अधिकरण में राजकार्य की दृष्टि से राजा के सामान्य व्यवहारों का निरूपण किया है। इस अधिकरण में 16 प्रकरण और 20 अध्याय है।

(2) **दूसरा अधिकरण**–ये **अध्यक्षप्रचार** कहलाता है, इसमेंमुख्य रूप से राज्य के अठारह विभागों जैसे कोश,कृषि,उद्योग,सैन्य आदि के शीर्षस्थ अधिकारियों के कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है। इस अधिकरण में भूमि व्यवस्था,पूंजीनिवेशन,भ्रष्टाचार और उसके नियन्त्रण आदि समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। इस अधिकरण में कुल प्रकरण 39 और अध्याय 36 हैं ।

(3) **तृतीय अधिकरण** –इसका नाम **धर्मस्थीय** है। इसमें विधि व्यवस्था तथा न्याय प्रणाली का चित्रण है। इस अधिकरण में विधि सम्बन्धी सम्पूर्ण संहिता प्रस्तुत की गयी है। इसमें धर्म,चरित्र,व्यवहार,राजाज्ञा के अनुसार मुकदमों के निर्णय निरूपित किये गये हैं। इसमें प्रकरण 20 और 20 अध्याय है।

(4) **चौथा अधिकरण–**इसे **कण्टकशोधन** नाम दिया गया है।इसमें लाभ–लोलुप व्यवसायियों, अपराधियों तथा प्रजापीड़क राजकर्मचारियों द्वारा प्रजा के शोषण तथा उत्पीड़न को नियन्त्रित करने का विवेचन है। इस अधिकरण में समाज के लिए कण्टक बने व्यक्तियों को दण्डित करने के नियमों का वर्णन है। इसमें कुल प्रकरण 13 व अध्याय 13 हैं।

(5) **पाँचवाँ अधिकरण** –इसे **योगवृत** नाम दिया गया है। इसमें राज्य के आन्तरिक शासन सम्बन्धी विविध विषय है। इसमें राजा के प्रति राजकर्मचारियों के कर्त्तव्यों और विश्वासघाती कर्मचारियोंके प्रतिकार के उपाय बताए गए हैं। इसके अन्तर्गत 9प्रकरण और 6 अध्याय है।

(6) **छठा अधिकरण** –ये**मण्डलयोनि** कहलाता हैं। इसमें राजा की सात प्रकृतियों में से प्रत्येक को आदर्श बनाने वाले गुणों का विवेचन है। इस अधिकरण में स्वराज शत्रु राज्य,मित्रराज्य, मध्यमराज्य तथा उदासीनराज्य वाले राजमण्डल की भी चर्चा की गई है। प्रसिद्ध**मण्डलसिद्धान्त** का इसी में उल्लेख मिलता है। इसमें 2 प्रकरण और 2 अध्याय है।

(7) **सांतवाँ अधिकरण** – इसकों**षाड्गुण्य** नाम से सम्बोधित किया गया है। इसमें सन्धि,विग्रह,यान,आसन,संश्रय व द्वैधीभाव पर आधारित छः सूत्री परराष्ट्र–सम्बन्धी नीति का विवेचन किया गया है। इसमें प्रकरण 29 अध्याय 18 हैं।

(8) **आठवाँ अधिकरण**–यह **व्यसनाधिकारिक** नाम से जाना जाता है। इसमें सब प्रकार के व्यसनों का वर्णन है। इस अधिकरण में व्यसन नियन्त्रण के उपायों का भी निरूपण किया गया है।इस अधिकरण में प्रकरण 8 व अध्याय 5 है।

(9) **नवाँ अधिकरण** – इसे **अभियास्यत्कर्म** कहते है। यह अधिकरण युद्ध की तैयारियों से सम्बधित है। इसमें सेना, सैन्य संगठन,युद्ध हेतु उचित समय, प्रस्थान से पूर्वकी सावधानियों तथा खतरों के बचाव हेतु आवश्यक उपायों का वर्णन है। इसमें प्रकरण 12 अध्याय 7 है।

(10) **दसवाँ अधिकरण** –इसका नाम**साङ्ग्रामिक** है। इसमें युद्ध का वास्तविक वर्णन दिया हैं। विजय के निर्मित युद्ध सम्बन्धींनियमों कावर्णन किया गया है। छावनी निर्माण,व्यूह रचना प्रहार आदि प्रक्रियाओं का समावेश इस अधिकरण में है।इसमें कुल प्रकरण 13 व 6 अध्याय हैं।

(11) **ग्यारहवाँ अधिकरण** – यह **संघवृत** कहलाता है। इसमे संघ–राज्यों में विभेद उत्पन्न करने और संघ–राज्यों को आत्मसात करने के उपायों का वर्णन है। इसके अन्तर्गत प्रकरण 2 अध्याय 1 हैं ।

(12) **बारहवाँ अधिकरण** –इसे **आबलीयस** नाम दिया गया है। अधिकरण में दुर्बल राजाओं द्वारा प्रबल राजाओं के प्रतिकार सम्बन्धीं नियमों का वर्णन है। इस दृष्टि से इस अधिरण में दूतकर्म, राजमण्डल की सहायता,काम, क्रोध आदि भेदक उपायों की निरूपण है। इसमें प्रकरण9, अध्याय 5 है।

(13) **तेरहवाँ अधिकरण** – यह **दुर्गलम्भोपाय** कहलाता है। इसमें यह वर्णित किया गया है कि शत्रु के दुर्गों पर किस प्रकार अधिकार किया जाये। विजित राष्ट्र को विजेता राज्य के द्वारा कैसे शासित किया जाएगा, यह भी इसमें निरूपित है। इसमें प्रकरण 6 अध्याय 5 है।

(14) **चौदहवाँ अधिकरण**–इसका शीर्षक **औपनिषदक** है। इनमें औषध और मंत्रो के रहस्य का वर्णन है अर्थात् यह बताया है कि शत्रु पर विष औरमांत्रिक कर्मकाण्ड़ों के प्रयोग द्वारा किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है। इसके प्रकरण 4 और अध्याय 4 है।

(15) **पन्द्रहवाँ अधिकरण** – इसका नाम **तंत्रयुक्त** है। इसमें अर्थशास्त्र के निर्माण की बत्तीस युक्तियों का वर्णन किया गया है और उदाहरण भी दिये है। इसमें प्रकरण 1और अध्याय 1 है ।

प्रस्तुत शोध समस्या के शीर्षक के अन्तर्गत सुशासन सम्बन्धी सिद्धान्तों एवं तथ्यों की शोधात्मक जानकारी प्राप्त करने हेतु उपर्युक्त उल्लेखित अधिकरण जैसे एक, दो, पाँच और छः का विशेष अध्ययन किया गया है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र बहुआयामी कृति है। इस ग्रंथ के बारे में **जर्मन** विद्वान **ब्रेलोरेन** ने लिखा है कि **अर्थशास्त्र एक ऐसे प्रतिभावान मस्तिष्क की उपज है। जो न कभी लक्ष्य भ्रमित हो सकता है और न कभी विश्रंखल ही। इस ग्रंथ ने राजनीतिक विचारधारा और दर्शन को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है।**

1.धर्म की सम्प्रभुता बनाम संवैधानिक सर्वोच्चता :

1-I धर्म की सम्प्रभुता –

प्राचीन काल से ही भारतीय राज व्यवस्था के अन्तर्गत शासन के प्रत्येक विषय पर चाहे वो शासन प्रणाली के प्रकारों, शासकीय कार्य प्रक्रिया, शासकीय संस्थाओं, उनमें कार्यरत शासकीय कार्मिकों और राष्ट्र की जनता से सम्बन्धित हो की सम्प्रभुताशक्ति के रुप में धर्म का उल्लेख किया गया है। धर्म की सम्प्रभुता भारतीय राजव्यवस्था का धार्मिक आधार भी रहा है। हिन्दू राजनैतिक एवं प्रशासनिक विचार धारा के चिन्तकों ने भी राज्य की वास्तविक सम्प्रभु शक्ति के रुप में धर्म को ही प्रमुख बताया है। यही कानूनों के द्वारा नियन्त्रित शासन व्यवस्था का आधार तत्व भी है। धर्म को सम्प्रभुता शक्ति के रुप में विश्लेषित करने से पूर्व धर्म की अवधारणा को जानना आवश्यक है।

हिन्दू दार्शनिक विचारधारा के अनुसार मनुष्य के चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में से धर्म एक प्रमुख पुरुषार्थ के रुप में है। धर्म का अर्थ न केवल पवित्रता या सत्यनिष्ठता (Righteousness) के निरपेक्ष और अपरिवर्तनीय सिद्धान्त को दर्शाता है वरन कर्त्तव्य के विचार (Idea of Duty) को भी प्रदर्शित करता है। ये कर्त्तव्य पालन का विचार न केवल व्यक्ति में स्वयं में बल्कि उसके वंश, समाज और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। धर्म अपने विस्तृत अर्थों जैसे आध्यात्म, नैतिकता, नीतिशास्त्र और भौतिकता के रुप में कानून है। प्रत्येक व्यक्ति वो चाहे शासक हो या शासित अपने–अपने धर्मअर्थात् स्वधर्म (उसके लिए निर्धारित कर्त्तव्य) के द्वारा शासित है। जो समाज धर्म (स्वधर्म) का सम्मान करता है वह संरक्षित रहता है और जो इसकी अवहेलना करता है, उस समाज का विनाश हो जाता है। हमें यहाँ केवल इतना जानना आवश्यक है कि भारतीय राज व्यवस्था में शासकों, पुरोहित मंत्री वर्ग, प्रशासकीय अधिकारी और जनता सभी के अधिकारों और कर्त्तव्यों का आधार ये स्वधर्म की अवधारणा है।[32]

यहाँ ये बताना आवश्यक है कि प्राचीन भारत में **धर्म** से तात्पर्य उपरोक्त वर्णित स्वधर्म से था न कि किसी धर्म विशेष (Religion) या सम्प्रदाय (Sect) विशेष से था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजा राज्य की कार्यकारी शक्ति का प्रतीक था, उसे दण्ड भी कहा गया है, उसका प्रमुख कर्त्तव्य धर्म के आदेशों को लागू करना एवं

उनकी पालना करवाना था। राजा (अस्थायी सम्प्रभुता) प्राचीन हिन्दू राज्य के कानूनों का स्रोत नहीं था। कानून की रचना और उसके संसाधन राजा के द्वारा निर्मित नहीं थे। वह केवल उनका संरक्षक और निरिक्षक मात्र था।

1. कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित धर्म की सम्प्रभुता सिद्धान्त –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राज्य की सम्प्रभुता शक्ति के रूप में **धर्म**(*Duty*) का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने विधि के शासन के रूप में तत्कालीन कानूनों के स्त्रोतों का भी विस्तार से वर्णन किया है। ये कानून शासन की व्यवस्था, कार्यप्रकियाओं और न्याय व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु प्रयुक्त किये जाते थे।

कौटिल्य ने इस **धर्म** शब्द कि गूढ़ और विस्तृत व्यवस्था प्रस्तुत की थी। कौटिल्य कालीन राज्य में सर्वोच्च शक्ति (सम्प्रभुता) के रूप में धर्म को वर्णित किया है। इसे समझने से पूर्व यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि कौटिल्य ने धर्म शब्द को किसी **धर्म विशेष** (*Religion*) या सम्प्रदाय के सन्दर्भ में परिभाषित नहीं किया है। कौटिल्य ने धर्म शब्द को **कर्त्तव्य के पालन**(*Duty*)के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

कौटिल्य ने इस धर्म सम्बन्धित विचारों को अर्थशास्त्र के **प्रथम अधिकरणविनयाधिकारिक** के **प्रकरण** 1 **अध्याय** 1 के **विद्या विषयक विचार : आन्वीक्षकी** के अन्तर्गत वर्णित किया है। जैसे : कौटिल्य आन्वीक्षकी,त्रयी,वार्ता और दण्डनीति इन चारों को **विद्यायें** मानते है। इनकी उपयोगिता (यथार्थता) धर्म या अधर्म का ज्ञान बताने में है। इन चारों प्रकार की विद्याओं में सर्वप्रमुख आन्वीक्षकी विद्या है, क्योंकि ये सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है। **त्रयी विद्या** में ही धर्म और अधर्म का ज्ञान प्रतिपादित किया है। ये त्रयी विद्या साम्, ऋक् तथा यजु इन तीनों वेदों का समन्वित नाम है। त्रयी में निरूपित यह धर्म (कर्त्तव्य) की अवधारणा चारों वर्णों और चार आश्रमों को अपने–अपने धर्म (कर्त्तव्य) में स्थिर रखने के कारण लोककल्याणकारी शक्ति के रूप में उपकारक है।

2. धर्मके प्रकार : धर्म के ये प्रकार निम्नांकित है–

(i) वर्णाश्रम धर्म –

यह धर्म (कर्त्तव्य) राज्य में विभिन्न वर्णसमूहों के जो व्यवसायिक कर्त्तव्य थे, उनके अनुसार जीवन व्यतीत करने और प्रत्येक को अपनी उम्र के अनुसार जो कर्त्तव्य समाज के प्रति पूर्ण करने थे, उससे सम्बन्धित था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस वर्णाश्रम धर्म के कठोरता से पालन करने पर जोर दिया था। कौटिल्य का मत था कि प्रत्येक वर्ण को अपने वर्ण धर्म (व्यवसायिक धर्म) या स्वधर्म के पालन करने के साथ–साथ जीवन से सम्बन्धित

चार आश्रमों के जो कर्त्तव्य निर्धारित किए गये थे, उनका पालन अनिवार्यतः करना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को सत्यनिष्ठा रखनी चाहिए।ये चार वर्ण अपने–अपने व्यवसायिक कार्यों के अनुसार इस प्रकार है–

(1) **ब्राह्मण वर्ण** – इसका कर्त्तव्य शिक्षा देना,धार्मिक कार्यों को सम्पन्न करवाना है।

(2) **क्षत्रिय वर्ण** –ये शस्त्रों को चलाने और देश कि रक्षा करने के दायित्व को निभाता था।

(3) **वैश्यवर्ण** –इसका कर्त्तव्य व्यापार,कृषि,पशुपालन इत्यादि थे।

(4) **शुद्र वर्ण** – ये उपर्युक्त तीनों वर्णो की सेवा तथा शिल्प,कृषि,पशुपालन और अन्य कार्य से सम्बन्धित था।

चारों आश्रमों के भी नाम और कार्य क्रमशः इस प्रकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने सम्पूर्ण जीवन चक्र में किये जाते थे। ये चारों आश्रम हैं –**ब्रह्मचार्याश्रम** (ज्ञान प्राप्ति), **गृहस्थाश्रम** (वैवाहिक स्थिति व पारिवारिक कर्त्तव्य), **वानप्रस्थाश्रम** (जगंल में शास्त्रों का अध्ययन, मनन करना) **संन्यासाश्रम** (सांसारिक सुखों का व्याग कर आध्यात्मिक ज्ञान कि खोज)।

यह ही स्वधर्म है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण और आश्रमों से जुड़े धर्म (कर्त्तव्यों)का पालन करें। कौटिल्य ने इस धर्म (स्वधर्म) कीआध्यात्मिक व्याख्या करते हुए यह भी मत रखा कि इस धर्म का पालन करने से व्यक्ति को चतुर्थ पुरूषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। आचार्य ने ये मत सम्भवतः इसलिए रखा होगा कि मोक्ष प्राप्ति की लालसा से ही जनता अपने स्वधर्म का पालन करेगी। उनका मानना था कि अगर स्वधर्म का पालन किया जाएगा, तो वर्ण तथा उसके अनुसार कर्म में संकरता आ जाती है। जिससे उस तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न होगी। इससे राज्य की सम्प्रभुता को खतरा हो सकता है।

(ii) अनिवार्य धर्म –

कौटिल्य ने प्रत्येक वर्ण और आश्रम का ये भी धर्म निर्धारित किया था किवह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे,सत्य बोले; पवित्र बना रहे; किसी से ईर्ष्या न करे; दयावान और क्षमाशील बना रहे।[33] कौटिल्य ने इन छः प्रकार के कर्त्तव्यों का उल्लेख इस लिए भी किया है कि राज्य में धर्म की सम्प्रभुता को अश्रुण्य बनाये रखने और जनता द्वारा उस सम्प्रभुता को स्वीकार करने हेतु उच्च नैतिक मूल्यों से युक्त नागरिकों का होना भी आवश्यक है।

3. राजा (दण्ड) धर्म की सम्प्रभुता के संरक्षक के रूप में–

राज्य की सम्पूर्ण शक्ति चाहे व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायिक हो इसका स्त्रोत धर्म ही था। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक था कि जनता

अपने स्वधर्म का पालन करें जो उसके वर्ण व आश्रम द्वारा निर्धारित है तथा साथ ही साथ राजा भी अपने धर्म (स्वधर्म) का पालन करें। चारों वर्णों, चारों आश्रमों, सम्पूर्ण लोकाचार और नष्ट होते हुए सभी धर्मों का रक्षक राजा है। इसलिए उसे **धर्म का प्रवर्तक** माना जाता था।[34] कौटिल्य काल में शासन व्यवस्था में राजा की केन्द्रीय (कूटस्थानीय) स्थिति होने के बाद भी वह धर्म की सम्प्रभुता के अधीन ही अपने शासकीय दायित्वों की पूर्ति करने के लिए बाध्य था। अर्थशास्त्र में यह मत प्रतिपादित किया गया है कि राजा कानून बना सकता है, परन्तु साथ ही यह व्यवस्था की गई कि वह ऐसा कानून नहीं बना सकता जो धर्म के विरूद्ध हो और जिससे राजा को मनमाना अधिकार प्राप्त हो सके।

कौटिल्य के मतानुसार जहां दण्डधर (राजा) न्याय(यहाँ धर्म से तात्पर्य है)की सुव्यवस्था नहीं करेगें। वहाँ **मत्स्यन्याय** सिंद्धातानुसार कि **छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है,** वैसे ही बलवान व्यक्ति निर्बल व्यक्ति का जीवन दूभर कर देगा इसलिए राजा को राज्य के प्रमुख के रूप में धर्म की स्थापना और सम्पूर्ण राष्ट्र के सद्व्यवहार (Good Conduct)के संरक्षण का अधिकार है। राजा धर्म का संरक्षक मात्र है, धर्म की व्याख्या करने के लिए अधिकृत नहीं है और नही कोई अन्य शासकीय संस्थान इस त्रयी वर्णित सम्प्रभुशक्ति की व्याख्या करने की सत्ता रखती है। राजा भी राज्य के अन्य नागरिकों की तरह ही अपने स्वधर्म से शासित है, अगर उसके किसी कार्य से धर्म का हनन होता है तो श्रेणी (व्यापारियों की संस्था) और नागरिकों द्वारा उस कृत्य के सन्दर्भ में सफाई मांगी जा सकती है। धर्म पूर्वक प्रजा पर शासन करना ही राजा का निजी धर्म है।

अर्थशास्त्र में धर्म के संरक्षण हेतु राजा का यह कर्त्तव्य निर्धारित किया है वह अपनी प्रजा को उसके धर्म (Duty)और कर्म (Work) मार्ग से भ्रष्ट न होने दें, क्योंकि अपनी प्रजा को उसके धर्म और कर्म में प्रवृत रखने वाला शासक ही राष्ट्र का कल्याण और स्वयं की उन्नति कर सकता है,[35] राजा की दण्ड शक्ति से रक्षित चारों वर्णाश्रम, सारा लोक (राष्ट्र)अपने–अपने धर्मों वकर्मों(Duties and Works) में प्रवृत होकर निरन्तर मर्यादा में बने रहते है। पवित्र आर्य मर्यादा में अवस्थित वर्णाश्रम धर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुःखी नहीं होती वरन् सदा सुखी रहती है।[36] इससे यह सिद्ध होता है कि राजा धर्म की सम्प्रभुता का संरक्षक है।

4. कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित विधि का शासन–

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में **तृतीय** और **चतुर्थ अधिकरणों** (धर्मस्थीय और कण्टक शोधन) के अर्न्तगत विधि के शासन का विस्तृत उल्लेख किया है। कौटिल्य की कानून

व्यवस्था के अनुसार राज्य के सभी व्यक्ति एक समान माने गये है। इसको प्रमाणित करने के लिए अर्थशास्त्र में उद्घृत किया गया है–

दण्ड़ो ही केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति ।

राज्ञा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समंधृतः।।[37]

अर्थात् पुत्र और शत्रु को उसके अपराध के अनुसार समान रूप से राजा द्वारा दिया हुआ दण्ड ही लोक और परलोक की रक्षा करता है।

कौटिल्य ने वर्ण व्यवस्था में सर्वोच्च पद पर आसीन ब्राह्मण वर्ण को भी अपराध के संदर्भ में अन्य वर्णोंके समान दण्ड़ का भागी माना है। स्वयं राजा के लिए दण्ड–व्यवस्था निर्धारित करके कौटिल्य ने न्याय–व्यवस्था में जनतंत्र भी भावना को सर्वोपरि स्वीकार कियाहै। एक सामाजिक व्यक्ति का परिवार के प्रति, माता–पिता, पति–पत्नि, पुत्र, शासक, शासित, नौकर,श्रमिक, व्यापारी, कलाकार, धोबी, ग्वाला और ग्राहक आदि के प्रति क्या कर्त्तव्य है, इसकी भी व्यापक व्याख्या कौटिल्य ने की है।

कौटिल्य ने जिस कानून व्यवस्था का वर्णन किया है उसके अन्तर्गत कानून को जनता की स्वतंत्र इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं माना है इसलिए कानून बनाने की सत्ता नागरिकों को प्रदान नहीं की गई। अर्थशास्त्र मे वर्णित विधि की विशेषता थी कि वह उन सामाजिक व्यवहार (परम्परा) पर आधारित थी, जोकि वैदिक समाज में प्रचलित थी न कि मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों में वर्णित समाजों में। तलाक और विवाह सम्बन्धित कानूनों में यह (वैदिक) प्रभाव दिखाई देता है। कौटिल्य स्त्रियों को समान अधिकार देने के पक्ष में थे और इन कानून की व्याख्या में वे अधिक मानवीय एवं तार्किक दृष्टिकोण रखते थे। बलात्कार, व्यभिचार जैसे सामाजिक तथा नैतिक पतन के कार्यों के लिए कौटिल्य ने कठोर दण्ड निर्धारित किया था। चरित्र की उन्नति के लिए कौटिल्य की तत्कालीन कानून–व्यवस्था वर्तमान में बड़ी उपयोगी हो सकती है।

5. विधि (कानून) के स्त्रोत –

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विधि के स्त्रोत के बारे में भी उल्लेख मिलता है। कौटिल्य के अनुसार कानून के चार अंग या कानून के चार स्रोत थे। ये चार स्रोत हैं–धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन।

धर्मश्र्व व्यवहारश्र्व चरित्रं और राजशासनम्।

विवादार्थश्र्वतुष्पादः पश्र्चिमः पूर्वबाधकः।।

उपरोक्त चारों अंगों का क्या अभिप्राय है, इसे कौटिल्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है–धर्म का आधार सत्य है,व्यवहार साक्षियों पर आश्रित होता है, मनुष्यों में परम्परागत रूप से चले आऐ नियम चरित्र कहलाते हैं और राजा द्वारा प्रचारित आज्ञाओं को **राजशासन**शासन या शासन कहा जाता है।

अत्र सत्यस्थितो धर्मों व्यवहारश्तु साक्षिषु।

चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम् ।।[38]

(i) धर्म – जिसे आधुनिक समय मे औचित्य या इक्विटी (Equity)कहते हैं,उसी को कौटिल्य ने धर्म कहा है। स्वाभाविक रूप से इस प्रकार का कानून सत्य पर आश्रित होता है। औचित्य का विचार प्रायः सभी जनसमुदायों में विद्यमान होता है। अनेक विवादाग्रस्त मामलों पर निर्णय इसी के आधार पर किया जाता है। विशेषतया उस दशा में जबकि उस विषय पर कोई स्पष्ट कानून नहीं हो ।

(ii) व्यवहार –दो व्यक्ति या व्यक्ति समूह परस्पर मिलकर एक दूसरे की सहमति से जो निर्धारित करे उसे व्यवहार कहते है। पर यदि पारस्परिक सहमति से भी कोई ऐसा व्यवहार तय किया जाए जो धर्म के विरूद्ध हो, तो उसे स्वीकार्य नहीं माना जाता था ।

(iii)चरित्र :जिसे आजकल परम्परागत कानून (Customary Law) कहते हैं। उसी को कौटिल्य ने 'चरित्र' कहा है। विविध जातियों, जनपदों, कुलों, श्रेणियों, (Guilds) कॉरपोरेशन (Corporations) इत्यादि में इस प्रकार के परम्परागत चरित्र की सत्ताथी। जिसे कौटिल्य काल में न्यायालयों में मान्य समझा जाता था। ये चरित्र परिवार,जाति,श्रेणियों, जनपदों के अनुसार विभिन्न प्रकार के थे। ये सभी समूह अपने–अपने नियमों एवं व्यवहारों को लागू करने में समर्थ थे। राजा का कत्तर्व्यथा कि वह इन प्रादेशिक या स्थानीय कानूनों को महत्व दे तथा इन स्वशासित समूहों के द्वारा उनका पालन करवाये।

(iv)राजशासन (शासन) –राजा द्वारा जो आज्ञाएं या आदेश जारी किये जाएं उन्हें ही शासन कहते थे। ये कानून सम्भवतः तीन बड़े सामाजिक समूहों जैसे–नागरिक, संस्था और राज्य के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या करने के लिए निर्मित किये गये। राज्य स्तरपर संवैधानिक रूप से राजशासन लागू होता था, जबकि संस्था या श्रेणियों के लिए उनके सदस्यों द्वारा निर्मित कानून ही संवैधानिक कानून था। संस्थाओंने अपने संगठन व कार्य प्रक्रियाओं के लिए जो कानून बनाये, उनसे संस्थाओं में कार्यरत व्यक्तियों को बहुमत की निरकुंशता से बचाने के लिए शासन के रूप में कानूनी संरक्षण देता था।

6.विधि की प्रक्रिया –

कौटिल्य ने विधि की कार्य प्रक्रियाँ का भी उल्लेख किया है। जब भी कोई वाद(मामला)न्यायालय में प्रस्तुत हो तो उसका निर्णय इस चारों प्रकार के कानूनों के अनुसार किया जाता था। इन्हीं को मुकदमों के निमित्त **चतुष्पाद** कानून कहा गया है अर्थात् चार अंगों से युक्त कानून। यदि धर्म,व्यवहार, चरित्र और शासन में विरोध पाया जाए, तो पश्चिम को पूर्व का बाधक माना जाता था। इसका अभिप्राय यह है कि शासन (राजशासन) का न्यायालयों की दृष्टि में सबसे अधिक महत्व है। यदि राजा की और से कोई ऐसी आज्ञा प्रसारित की जाए जो चरित्र (परम्परागत कानून) या व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार (व्यवहार) के विरूद्ध हो तो राजाज्ञा (शासन) ही मान्य समझी जाएगी चरित्र या व्यवहार नहीं। धर्म (औचित्य) के आधार पर निर्णय करने की आवश्यकता तभी होती है, जबकी वाद (मुकदमा) के विषय से सम्बन्धित न तो कोई राजकीय आदेश (शासन) न कोई व्यवहार या चरित्र की उपलब्धि हो।

विवादार्थ चतुष्पाद (कानून)में अन्यतम पाद के रूप मे जिस धर्म का उल्लेख किया गया है वह सत्य (Equity) को ही सूचित करता है। जहाँ भी यह कहा गया है कि धर्म विरूद्ध व्यवहार को मान्य न समझा जाए वहाँ धर्म का अभिप्राय शास्त्रसम्मत धर्म से है।

विवादार्थ चतुष्पाद के अन्तर्गत धर्म का निर्णय सत्य या औचित्य के आधार पर किया जाता था। **शास्त्र** के आधार पर नहीं कौटिल्य ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि यदि शास्त्र और धर्म–न्याय (Law based on Equity) में विरोध या विवाद हो तो धर्म न्याय को ही प्रमाण माना जाए शास्त्र(Books) को नहीं। ऐसी दशा में शास्त्र का पाठ नष्ट हुआ समझा जाए। इस प्रकार यह तथ्य धर्म (Duty)की सम्प्रभुता को प्रमाणित करता है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में बहुत से ऐसे कानून दिए गए है, जो वास्तव में शासन (राजशासन) है। कूटस्थानीय एकराजो के शासन में राजकीय आज्ञाओं (शासन) के महत्व में वृद्धि होना स्वाभाविक था, परन्तु जाति, कुल, जनपद,श्रैणियों इत्यादि के संघों या संग्रहों में जो परम्परागत कानून (चरित्र) चले आ रहे थे। उनका राजा अतिक्रमण या अवहेलना नहीं कर सकता था। उसका यहीं प्रयत्न रहता था कि उस चरित्र के न तो विरूद्ध जाए अपितु इन्हे स्वीकार्य भी माने।[39]

7. विभिन्न प्रकार के कानून एवं उनसे सम्बन्धित विषय (Types of law and their subjects)–

कौटिल्य ने मौर्य प्रशासन की न्यायप्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कानूनों एवं सम्बन्धित विषयोंकी भी गहन व्याख्या प्रस्तुत की है। अर्थशास्त्र में मुख्यतः कानूनों के दो प्रकार बताए है। ये निम्नानुसार हैं :–

(i) दीवानी विधि (Civil law) – इसे धर्मस्थीय के नाम से वर्णित किया गया है। इसके अन्तर्गत विवाह, दहेज उत्तराधिकार,पड़ौस, किराएदार, ऋण, समझौता श्रम क्रय–विक्रय,दास, भूमि इत्यादि विषयों सेसम्बन्धित कानूनों को रखा गया। इन कानूनों से सम्बन्धित विवाद के निर्णय के लिए पृथक न्यायालयों की व्यवस्था थी। जो **धर्मस्थानीय** कहलाते थे। ये वर्तमान भारत के **दीवानी** न्यायालयों के समान थे। इस विधि की भी अपनी कानूनी प्रक्रिया थी।

(ii) फौजदारी कानून (Criminal Law) –फौजदारी कानून की व्यवस्था को तकनीकी रूप से **कण्टकशोधन** नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके अन्तर्गत चोरी, डकैती, हत्या, नाप–तोल में भ्रष्टाचार, गबन, सम्पत्ति की हानि इत्यादि विषयों को रखा गया था। इस फौजदारी कानून के प्रशासन के लिए न्यायधीशों, राजस्व एवं पुलिस अधिकारियों एवं गुप्तचरों को रखा गया था। कण्टकशोधन न्यायालयों में इन कानूनों से सम्बन्धित विवादों की सुनवाई होती थी। ये वर्तमान भारतीय न्याय व्यवस्था के सन्दर्भ में **फौजदारी** न्यायालयों के समकक्ष थे।

(iii)सामान्य कानून (PenalCode) –राज्य में कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने के लिए उपर्युक्त वर्णीत विशिष्ट कानूनों के अलावा सम्भवतः सामान्य कानून की भी व्यवस्था थी। जैसे कि वर्तमान भारत में सामान्य कानून के रूप में **भारतीयदण्ड संहिता** (I.P.C.) लागू है।

1.II संवैधानिक सर्वोच्चता–

1. वर्तमान भारत में संवैधानिक सर्वोच्चता –

वर्तमान भारत में राज्य की सम्प्रभुता की अवधारणा को **संवैधानिक सर्वोच्चता** के परिप्रेक्ष्य में समझा और विश्लेषित किया गया है। ब्रिटिश सरकार से 15 अगस्त 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। संघीय व्यवस्था में संविधान को देश की सर्वोच्च विधि माना जाता है। **प्रोफेसर ह्वियर** के अनुसार संघीय सरकार के लिए संविधान की सर्वोपरिता अतिआवश्यक और उसके सुचारू रूप से कार्य करने के लिए संविधान का लिखित होना भी आवश्यक है। संविधान सरकार के सभी अंगों–विधायिका,कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों का स्त्रोत्र होता है। उनके स्वरूप, संगठन और शक्तियों से सम्बन्धित सभी उपबन्ध संविधान में भी निहित होते

हैं।इनके अधिकार क्षेत्र का निर्धारण संविधान द्वारा होता है। ये सभी संस्थाऐं संविधान के अधीन और उसके नियंत्रण में कार्य करती है, केन्द्रीय और प्रांतीय विधान मण्डलोंकी विधायी शक्ति का स्रोत संविधान ही है। संविधान के अधीन ही उनकी बनायी गई विधियाँ होती है। अगर उनमें से कोई भी विधि संविधान के उपबन्धों के विरूद्ध होती है तो न्यायालय उन्हें अवैध घोषित कर सकता है। इस प्रकार उन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त अपने सभी अधिकारों और शक्तियों का प्रयोग संविधान द्वारा निर्धारित क्षेत्र के भीतर ही करना होता है।

सर आइवर जेंनिग्स ने भारतीय संविधान को विश्व का सबसे बड़ा और विस्तृत संविधान कहा है। मूल संविधान में कुल 395 अनुच्छेद थे, जो 22भागों में विभाजित थे। और इसमें 9 अनुसूचियाँ थी। वर्तमान में अब 12 अनूसूचियाँ है।

2. संवैधानिक सर्वोच्चता के तत्व :–

संवैधानिक सर्वोच्चता को प्रमाणित करने वाले प्रमुख तत्व इस प्रकार से है–

(i)संविधान का स्त्रोत –

संविधान की प्रस्तावना यह अभिव्यक्त करती है कि संविधान का स्त्रोत क्या है ? अर्थात्**भारत के लोग**। उद्घोषिका में प्रयुक्त ''**हम भारत के लोग ....इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**'' पदावली से यह स्पष्ट होता हैकि भारतीय संविधान का स्त्रोत **भारत की जनता** है। भारतीय जनता ने अपनी सम्प्रभु इच्छा को इस संविधान के माध्यम से व्यक्त किया है।इससे तात्पर्य यह हैकि जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की सभा द्वारा संविधान का निर्माण किया गया है। भारत के संविधान के सन्दर्भ में कुछ लोग इस बात से सहमत नहीं है, क्योंकि भारतीय संविधान निर्मात्रीसभा का चुनाव जनता के व्यस्क मताधिकार से नहीं हुआ था और उसके सदस्यों को जनता का समर्थन भी प्राप्त नहीं था। यह सभा ब्रिटिश संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित की गई थी। इसलिए इसे सम्प्रभु संस्था नहीं कहा जा सकता था। सिद्धान्तः यह तथ्य सत्य हैलेकिन व्यवहारतः भारत की जनता ने यह दिखा दिया है कि सारी शक्ति उसमें ही निहित है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही देश का शासन चलाते है। उद्घोषिका में वर्णित प्रभुत्व सम्पन्नता शब्द भी यह दर्शाता है कि सम्प्रभुता भारत की जनता में निहित है। जनता की प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाये ही संविधान को परिवर्तित कर सकती है।

(ii) विधि का शासन –

संविधान के अनुच्छेद 14में विधि के समक्ष समता अथवा विधियों के समान संरक्षण का अधिकार शीर्षक के अन्तर्गत विधि के शासन को उल्लेखित किया गया है। अनुच्छेद 14 यह उपबन्धित करता है कि ''**भारत राज्य–क्षेत्र किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समतासे**

अथवा विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नहीं किया जायेगा।'' इस अनुच्छेद में दो वाक्यांशो का प्रयोग किया गया है – एक है –''विधि के समक्ष समता है तथा दूसरा है–विधियों का समान संरक्षण।'' विधि के समक्ष समता वाक्यांश प्रायः सभी लिखित संविधानों में पाया जाता है जो नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान करते हैं।

वैसे तो यदि देखा जाय तों दोनों वाक्यांशों में समानता है किंतु जहाँ तक अर्थ का प्रश्न है, दोनों में कुछ अन्तर है। विधि के समक्ष समता एक नकारात्मक वाक्यांश है, जिसका तात्पर्य है ''समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों के साथ विधि द्वारा दिये गये विशेषाधिकारों तथा अधिरोपित कर्त्तव्यों दोनों के मामले में समान व्यवहार किया जायेगा और प्रत्येक व्यक्ति देश की साधारण विधि के अधीन होगा।''विधि का समान संरक्षण वाक्यांश समानता का स्वीकारात्मक रूप है, जिसका तात्पर्य है कि ''समान परिस्थिति वाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करना'' अर्थात् समान कानूनों को लागू करना। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो दोनों वाक्याशों में एक ही उद्देश्य निहित है, और वह है समान न्याय। सिद्वान्तः दोनों वाक्यों में अन्तर हो सकता है, लेकिन व्यवहारतः दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

(विधि के समक्ष समताका तात्पर्य व्यक्तियों के बीच पूर्ण समानता से नहीं है, जो व्यवहारतः सम्भव भी नहीं है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि जन्म, मूलवंश आदि के आधार पर व्यक्तियों के बीच विशेषाधिकार को प्रदान करने और कर्त्तव्यों के आरोपण में किसी भी प्रकार का विभेद नहीं किया जायेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति देश की साधारण विधि के अधीन होगा।)''विधि के समक्ष समता'' वाक्यांश ब्रिटीश संविधान से लिया गया है, जिसे प्रोफेसर डायसी के अनुसार विधि का शासन(Rule of Law) कहते है। दूसरा वाक्यांश ''विधियों का समान संरक्षण''अमेरिका के संविधान से लिया गया है।

(iii) विधि के शासन का अर्थ–

विधि के समक्ष समता की गारण्टी उसी के समान है, जिसे **प्रो.डायसी** इग्लैण्ड में विधि के शासन (विधि–शासन) कहते है। **विधिशासन** का अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति विधि से ऊपर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति, चाहे उनकी अवस्था या पद जो कुछ भी हो, देश की सामान्य विधियों के अधीन और साधारण न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर है।राष्ट्रपति से लेकर देश का निर्धन–से–निर्धन व्यक्तिविधि के अधीन है और बिना औचित्य के किसी कृत्य के लिए समान रूप से उत्तरदायी है। इस सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों और साधारण नागरिकों में विभेद नहीं किया गया है।

(iv) विधि का समान संरक्षण–

यह अधिकार अमेरिकन संविधान के 14वें संशोधन द्वारा दिये गये अधिकार के समान ही है। इसका अर्थ है समान पारिस्थिति वाले व्यक्तियों को समान विधियों के अधीन रखना तथा समान रूप से लागू करना; चाहे वे विशेषाधिकार हो या दायित्व हो। इस पदावली का निर्देश हैकि समान परिस्थिति वाले व्यक्तियों में कोई विभेद नहीं करना चाहिए और उन पर एक ही विधि लागू करनी चाहिये अर्थात् यदि विधान की विषयवस्तु समान है तो विधि भी एक तरह की होनी चाहिए। इस प्रकार नियम यह है कि समानों के साथ समान विधि लागू होना चाहिए न की असमानों के साथ समान विधि लागू करना चाहिए ।

विधि शासन राज्य से यह अपेक्षा करता है कि वह पुलिस द्वारा अभियुक्तों के विरूद्धकिये गयेअमानवीय व्यवहार से संरक्षण प्रदान करने के लिए हर सम्भवउपायों को अपनायें तथा ऐसे लोगों को दण्ड भी दे।यदि राज्य ऐसा नहीं करता है तो विधि शासन पर से लोगों का विश्वास समाप्त हो जायेगा।

अनुच्छेद 14 में निहित शासन संविधान का ''आधारभूत ढाँचा'' है अतः इसे अनुच्छेद 368 के अधीन संशोधन करके नष्ट नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता हैकि–

1. कोई भी व्यक्ति कानून से उपर नही है।
2. कानून प्रत्येक व्यक्ति पर समान रूप से लागू होता है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को कानून का समान संरक्षण प्राप्त है।अनुच्छेद 32 उच्चत्तम न्यायलय को और अनुच्छेद 226 राज्य के उच्च न्यायालय को संवैधानिक उपचारों के मूल अधिकार के अन्तर्गत आने वाली बन्दी–प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकारपृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार की याचिका(RIT) को जारी करने की अधिकारिता (शक्ति) प्रदान करता है। यह व्यक्ति को शासन एवं कानून के द्वारा किये गये शोषण से संरक्षित करती हैं। विधिशासन (Rule of Law) संविधान के आधारभूत ढाँचें से सम्बन्धित है। अतः इसे अनुच्छेद 368 के अधीन उपबन्धों के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता है।

3. संविधान की सर्वोच्चता और अनुच्छेद 368 की भूमिका –

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 368 संविधान में संशोधन और संशोधन की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। संशोधन के दृष्टिकोण से संविधान के विभिन्न उपबन्धों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक भाग के लिये पृथक संशोधन–प्रक्रिया को अपनाया गया है। यह तीन प्रकार की संशोधन प्रक्रियायें इस प्रकार है।

(1) साधारण बहुमत –इस श्रेणी के अन्तर्गत अनुच्छेद 4,169 और 239–Aआते है। इसमें संशोधन के लिये संसद का साधारण बहुमत पर्याप्त है। इन अनुच्छेदों को अनुच्छेद 368 के क्षेत्र से परे रखा गया है। क्योंकि ये विषय विशेष संवैधानिक महत्व के नहीं है।

(2) विशेष बहुमत – इसके अन्तर्गत संविधान के वे सभी उपबन्ध आते है जो नं. (1) और (3) में सम्मिलित नहीं है। इन उपबन्धों में संशोधन के लिये संसद का विशेष बहुमत पर्याप्त है। राज्यों के अनुसमर्थन की आवश्यकता नहीं होती है। इस संशोधन में संसद के कुछ सदस्यों के बहुमत और उसमें उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से होता है।

(3) विशेष बहुमत और राज्यों द्वारा अनुसमर्थन – इस श्रेणी में वे उपबन्ध आते हैं, जो संघात्मक ढांचे से सम्बन्धित है। इन उपबन्धों के संशोधन के लिये सबसे कठिन प्रक्रिया अपनायी गई है। इसमें संशोधन के लिए संसद के प्रत्येक सदन के 2/3 सदस्यों का बहुमत तथा कम से कम 52 प्रतिशत राज्यों के विधानमण्डलों का अनुसमर्थन भी आवश्यक है।निम्नलिखित उपबन्धों के संशोधन के लिये विशेष बहुमत ओर राज्यों का अनुसमर्थन आवश्यक है –

1. राष्ट्रपति का निर्वाचन (अनु. 54–55)
2. संघ तथा राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार (अनु. 73,162)
3. संघ तथा राज्य न्यायपालिका (अनु. 124–147,214–231,241)
4. संघ तथा राज्यों के बीच विधायी शक्ति का वितरण (अनु. 245–255),
5. संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में (अनुसूची 4) या;
6. सातवीं अनुसूची की किसी सूची में या; अनुच्छेद 368 के उपबन्धों में।

केशवानन्द भारती के मामले में बहुमत ने निर्णय दिया है कि संविधान संशोधन की शक्ति के प्रयोग द्वारा संविधान के आधारभूत ढाँचें को नष्ट नहीं किया जा सकता। अब प्रश्न यह उठता है कि इस ढाँचे के आवश्यक तत्व क्या है ? बहुमत में कुछ आधारभूत तत्वों का उल्लेख किया है, किन्तु यह भी स्पष्ट किया है कि वे केवल दृष्टान्त स्वरूप है और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर इसका निर्धारण किया जायेगा की संविधान का आधारभूत ढाँचा क्या है। यहाँ उदृधत करना आवश्यक है कि मुख्य न्यायाधिपति सीकरी के अनुसार निम्नलिखित संविधान के आधारभूत ढाँचे के उदाहरण है, जो संविधान की प्रस्तावना और उसकी सम्पूर्ण योजना में सरलता से प्रकट हो जाते है –

(1) संविधान की सर्वोपरिता

(2) सरकार का गणतन्त्रात्मक रूप

(3) संविधान का धर्म निरपेक्ष स्वरूप

(4) विधानमण्डल, कार्यपालिका ओर न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण और संविधान की संघात्मक प्रवृति है।

इससे यह सिद्ध होता है कि संविधान की सर्वोपरिता का सम्बन्ध संविधान के आधारभूत ढाँचे से है। अतः यह संशोधन की शक्तिसे नष्ट नहीं किया जा सकता है।

संविधान के संशोधन का अर्थ संविधान का निराकरण नहीं वरन् उसमें आवश्यक परिवर्तन करना मात्र है।

संविधान संशोधन समिति के अध्यक्ष स्वर्ण सिंह का मानना था कि संसद सर्वोच्च है न्यायपालिका नहीं क्योंकि वह जनता का प्रतिनिधित्व करती है। अतः न्यायपालिका द्वारा प्रतिपादित आधारभूत ढाँचे का सिद्वान्त अस्पष्ट और कठिनाई पैदा करता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि श्री स्वर्ण सिंह का मत सरासर गलत है कि संसद सर्वोच्च है। भारतीय संविधान के अधीन (अनुसार) संविधान सर्वोच्च है, क्योंकि संसद द्वारा पारित विधियों को जो संविधान के विरूद्ध है, उन्हें न्यायालय असंवैधानिक घोषित कर सकता है। **संविधान ही संसद का जनक** है। संसद की संविधान संशोधन की शक्ति का प्रयोग स्वयं संविधान को विरूपित या नष्ट करने के लिये नहीं किया जा सकता है। अतः संविधान सर्वोच्य है।

2. राज्य के उद्देश्य बनाम संवैधानिक उद्देश्य–

2.I राज्य के उद्देश्य–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र राजतंत्रीय शासन के विभिन्न शासकीय पक्षों के अध्ययन की दृष्टि से एक यथार्थपरक और तार्किक ग्रंथ है। कौटिल्य की राज्य सम्बन्धी अवधारणा का केन्द्रबिन्दु आर्थिक सम्पन्नता एवं सुशासन से युक्त राजव्यवस्था की स्थापना करना था। यह व्यवस्था एक सुनियोजित, सुविकसित, आर्थिक प्रक्रियाओं और जवाबदेय, उत्तरदायी, सक्षम, पारदर्शी, अनुशासित, सेवाभावी, ईमानदार प्रशासन पर आधारित थी। कौटिल्य का यह मानना था कि राज्य का कार्य केवल राज्य और उसकी जनता की आंतरिक व बाह्यखतरों से सुरक्षा करना ही नहीं है वरन् कानून एवं दण्ड व्यवस्था के द्वारा राज्य में स्थायित्व बनाये रखना और जनता के सर्वोच्च हितों की पूर्ति के लिए एक जनकल्याणकारी सेवाएं एवं सुशासन प्रदान करना भी है।इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आचार्य ने कई सस्थाओं को एकीकृत किया है एवं उनके कार्यों का विस्तृत वर्णन किया है। कौटिल्य के मतानुसार राज्य

की जनता ही राज्य के लिए सर्वस्व है। अर्थात् राज्य तथा जनता के कल्याण एवं विकास के साथ ही शासक (राजा) का अस्तित्व है। आचार्य का मानना था की राज्य केवल भौतिक पदार्थ मात्र ही नहीं है, वरन् उसका आध्यात्मिक अस्तिव भी है। राज्य का लक्ष्य केवल जनता के लिए धर्म, साधन और कार्यों की व्यवस्था करना ही नहीं है वरन् ऐसी स्थिति उत्पन्न करना भी हैं जिसमें जन्म, रंग, नस्ल, जाति, वर्ग इत्यादि का भेद न हो।

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य के उद्देश्य –

अर्थशास्त्र में उल्लेखित राज्य के उद्देश्य विभिन्न शीषकों के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकार से है –

(i) धार्मिक उद्देश्य –

इस उद्देश्य के अन्तर्गत पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक हैं कि यहां धर्म शब्द से तात्पर्य कर्त्तव्य (Duty) से है, न की किसी आस्था या सम्प्रदाय विशेष (Religion) से। राज्य का यह सर्वप्रमुख उद्देश्य है कि प्रजा के भौतिक व आध्यात्मिक विकास हेतु वह प्रजा से उनके लिए निर्धारित वर्णाश्रम धर्म (स्वधर्म) का पालन करवाये। इस स्वधर्म की अवहेलना करने से समाज में वर्ण व कर्म की संकरता आ जाती है, इससे फिर लोक (समाज) का विनाश हो जाता है। अतः राज्य का यह दायित्व है कि वह राज्य की प्रजा को धर्म व कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दें। राजा का स्वधर्म धर्मपूर्वक प्रजा पर शासन करना है। अतः शासक को चाहिये की वह अपने निजी धर्म का पालन करे तथा अपनी प्रजा को भी उनके धर्म व कर्म में प्रवृत्त रखे। तभी राज्य की उन्नति होगी। इसके विपरित प्रजा की रक्षा न करे उसको पीडित करे तो वह शासक कभी सुखी नहीं हो सकता हैं।

(ii) दण्ड व्यवस्था–

राज्य की दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत दण्डशक्ति का प्रयोग भली–भाँति सोच समझकर (आवश्यकतानुसार) कर प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त करे। दण्डनीति का अनुचित प्रयोग अर्थात्काम व क्रोध के प्रभाव से अज्ञानतापूर्वक प्रयोग न केवल वानप्रस्थी और सन्यासी जैसे निःस्पृह व्यक्तियों को ही क्रोधित नहीं करेगा वरन् गृहस्थ लोगों की क्या प्रतिक्रिया होगी यह तो सोच (कल्पना) से भी परे होगी।[40] उचित दण्ड व्यवस्था से ही दुर्बल व्यक्ति की रक्षा होती है और वह बलवान बना रहता है। अतः राजा को चाहिये कि वह दण्ड व्यवस्था से रक्षित चारों वर्णों, आश्रमों, सम्पूर्ण समाज को अपने–अपने धर्म व कर्म में प्रवृत्त रखकर निरन्तर अपनी–अपनी मर्यादा में बनाये रखे। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि शास्त्रविहित उचित रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के **योगक्षेम** का साधन होता है।

(iii) न्याय व्यवस्था–

कौटिल्य की कानून व्यवस्था के अनुसार कानून के समक्ष राज्य के सभी व्यक्ति एक समान समझे जायेंगे। ब्राह्मण वर्ण का व्यक्ति भी अपराध के अनुसार अन्य वर्णों के व्यक्तियों के समान ही दण्ड का भागी होगा। राजा का दायित्व है, की वह धर्म, व्यवहार और चरित्र के अनुसार न्यायपूर्वक शासन करे। राजा अपने पुत्र व शत्रु को उनके अपराध के अनुसार समान रूप से दण्डित करने को बाध्य है। इसके कारण ही राजा की कानून व्यवस्था स्थिर रह सकेगी। कौटिल्य ने स्वयं राजा के लिये दण्ड व्यवस्था निर्धारित करके राज्य की न्याय व्यवस्था में जनतंत्र की भावना (उद्देश्य) को सर्वोपरि स्वीकार किया है। कौटिल्य ने कहा है कि जब राजा किसी निरपराध व्यक्ति को दण्ड देता है, तो उस दिये गयेदण्ड का तीस गुना द्रव्य राजा को वरूण देवता के निमित जल में फैंकना पड़ता है जो बाद में ब्राह्मणों में बाँट दिया जाता है। इससे पता चलता है कि पूरी सावधानी के बाद भी न्याय में त्रुटी रह जाने कि सम्भावना थी और राज्य में राजा भी उस सर्वोच्च न्याय व्यवस्था से नियमित था। राज्य को चाहिए कि वह एक सामाजिक व्यक्ति का परिवार के प्रति माता–पिता, पति–पत्नी, पुत्र, शासक,शासित, नौकर, श्रमिक, व्यापारी, कलाकार, ग्वाला ग्राहक धोबी के रूप में क्या कर्त्तव्य है उनको उचित ढंग से लागू करवाये।

(iv) शासकीय व्यवस्था–

राजा में सुदृढ़ शासन व्यवस्था की स्थापना और शासकीय नीति व उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह आवश्यक है कि जैसे एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकार्य भी बिना सहायता–सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है,[41] इसलिये राजा को चाहिये की वह सुयोग्य, ईमानदार, सक्षम और अर्थव्यवस्था में उल्लेखित चारों प्रकार की परीक्षाओं में उत्तीण अमात्यों की (मन्त्रिण पद) नियुक्ति करे, उनके परामर्शों को हृदयांगम कर प्रशासन संचालित करे और अन्य सहायक राजकर्मचारी वर्गों की भी भर्ती करे।

(v) सुशासन की स्थापना–

कौटिल्य ने राज्य में जनता के हितों के संरक्षण और कल्याण के लिये सुशासन की स्थापना को राज्य का सर्वोच्च उद्देश्य बताया। सुशासन की प्राप्ति हेतु आचार्य का मत था कि प्रशासन भ्रष्टाचार रहित हो। अर्थशास्त्र में चालीस प्रकार के भ्रष्टाचार बताये गये हैं। इनकी रोकथाम के लिये राजा के चाहिये की वह निरिक्षण, गुप्तचरों की सहायता से दोषियों (राजकर्मचारी व अन्य) को पकड़े तथा उन्हें कठोर शारीरिक व मौद्रिक दण्ड द्वारा दण्डित किया जाये। योग्य व ईमानदार कर्मचारियों की नियुक्ति से सुशासन का लक्ष्य प्राप्त किया जाये।

(vi) शिक्षा व्यवस्था–

राज्य के निरन्तर विकास के लिये आवश्यक है कि राज्य प्रजा के शासन और शिक्षण की व्यवस्था करने के लिये तत्पर रहे। राज्य शिक्षा के प्रचार और प्रसार से नागरिकों को विनम्र और सुशिक्षित बनाये।

(vii) स्वास्थ्य व्यवस्था–

राजा को चाहिये की वह राज्य के किसानों की स्वास्थ्य वृद्धि और रुग्णता–निवारण के लिये उन्हें परिमित धन देता रहे। जिससे की वे (कृषक) देश के धन–धान्य में वृद्वि करके राजकोष को समृद्व बनायेंगे। यहां कौटिल्य ने यह भी स्पष्ट दिया है कि इस प्रकार की स्वास्थ्य सहायता से यदि राजकोष को कोई हानि पहुँचे तो शासक ये सहायता बंद कर सकता है। अतः राजकोश की आय के अनुसार ही राज्य को स्वास्थ्य सुधार के लिए धन अवश्य ही खर्च करना चाहिए।यहाँ ये प्रतीत होता है कि सम्भवतः कौटिल्य राज्य की अर्थव्यवस्था के अनुरुप ही जनता में स्वास्थ्य सेवाओं का प्रसार करना चाहते थे।

यदिनगर व जनपद निवासीराजा के द्वारा स्वास्थ्य सुधार पर खर्च किये गये धन को चुका दे ंतो राजा पिता के समान उन पर अनुग्रह करे।

(viii) अर्थव्यवस्था–

राज्य देश की आर्थिक सम्पन्नता को बढ़ाने के लिए आर्थिक क्रियाओं व संस्थाओं का विकास करे। राजा उद्योग के द्वारा राज्य के **योग–क्षेम** का सम्पादन करे। यहाँ योग का अर्थ किसी वस्तु की प्राप्ति तथा क्षेम शब्द से तात्पर्य प्राप्त वस्तु की रक्षा से है। इसलिए राजा को चाहिए की वह उद्योगशील (आर्थिक क्रियाओं में रूचि लेना) होकर व्यवहार सम्बन्धी तथा राज्य सम्बधी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे। कौटिल्य के मतानुसार उद्योग ही अर्थ (धन) का मूल है और इसके विपरित उद्योगहीनता ही अनर्थों की उत्पति का कारण है।यदि राजा उद्योगी (आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न) न हुआ तो उसके **प्राप्त अर्थों** और **प्राप्तव्य अर्थो** का अर्थात् दोनों का ही विनाश हो जाता है। किन्तु जो राजा उद्योगी है वह शीघ्र ही उद्योग (अर्थव्यवस्था) का मधुर फल (धन–वित्त) पाता है तथा राज्य की जनता व राजा दोनोंही इच्छित सुख–सम्पदा का उपभोग करते है।[42]

(ix) वाणिज्य व्यवस्था –

राज्य में व्यापार–वाणिज्य हेतु राजा (शासन) को चाहिए की वह आकर (खान) से उत्पन्न सोना,चांदी अन्य बहूमूल्य रत्नों इत्यादि के विक्रय स्थानों, चंदन आदि उत्तम काष्ठ के बाजार, हाथियों के जंगल, पशुओं की वृद्वि के स्थानों, आयात्–निर्यात् संस्थानों,

जल–थल मार्गों, श्रेणियों, समवायों (व्यापारिक संगठनों) बड़े बाजारों या बड़ी मण्डियों की व्यवस्था करे और उनकी सुरक्षा भी करे।

(x) सार्वजनिक निर्माण –

राज्य भूमि की सिंचाई व्यवस्था हेतु नदियों पर बड़े–बड़े बाँधों का निर्माण करवाये तथा वर्षा ऋतु के जल को भी बड़े–बड़े जलाशयों को निर्मित करवाकर उनमें संरक्षित करे। जनता का सहयोग भी इन कार्यों में प्राप्त करे। देवालय, बाग–बगीचों के निर्माण के लिए जनता को भूमिदान करे। यदि जनता कोई जलाशय इत्यादि बनाना चाहे तो राज्य इसके लिए उसे भूमि नहर के लिए रास्ता एवं आवश्यक सामग्री देकर सहायता करे।

(xi) पर्यावरण संरक्षण –राज्य सर्वप्रथम तो लकड़ी के जंगल,हथियारों के जंगल,सेतुबन्धतथा प्राकृतिक खानों की रक्षा का प्रबन्ध करे। तदुपरान्तआवश्यकतानुसार नये जंगल, सेतुबन्ध आदि का निर्माण करे। राजा गैर कानूनी रूप से की गई जंगल की कटाई, वन्य जीवों के प्रति हिंसा की भी रोकथाम करे और इसके लिए दोषी व्यक्तियों, कार्मिकों कोशारीरिक व आर्थिक दण्ड दे। वन उत्पादों व वन्यजीवों को राज्य का संरक्षण मिले।

(xii) कृषकों की सुरक्षा –

राज्य का दायित्व है कि वह दण्ड, विष्टि (बेगार), कर (टैक्स) आदि की समस्याओं से कृषकों की रक्षा करे। इसी प्रकार चोर, हिसंक पशुओं, विष–प्रयोग तथा अन्य कष्टों से भी किसानों के पशुओं को संरक्षित करें। कृषि कार्यों में विघ्न को रोकने के लिए राज्य को चाहिए कि वह गाँवों में विहार, नाट्यगृह, क्रीड़ाशालाऐं नहीं खोलने दे तथा नट,गायक, वादक, कुशीलन आदि कलाकार भी वहाँ अपनी कला का प्रदर्शन न करें, क्योंकि मनोरंजन के इन साधनों से किसान अपना कृषि कार्यत्याग करके इन व्यस्नों मेंलिप्त हो जायेंगे। इससे राज्य की कृषि और अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। राजा किसी बंजर व उसर भूमि जो कृषक ने अपने श्रम से खेती योग्य बनाई है, उसे किसान को पूर्ण अधिकार में दे दे। यदि कोई किसान भूमि को बिना जोते–बोये, परती छोड़े हुये है,उससे लेकर जरूरतमन्द किसान को दे। खेती करने की शर्त पर जमीन लेकर जो खेती ना करे, उससे हर्जाना लिया जाये। राजा को चाहिए की वह अन्न, बीज, बैल और धन देकर किसानों की सहायता करे। किसान भी फसल करने पर सुविधानुसार धीरे–धीरे उधार ली वस्तुयें राजा को वापिस कर दें।

(xiii) प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा– राजा को चाहिए कि वह देश की जनता को शत्रुओं जंगली लोगों, व्याधियों दुर्भिक्षों, बाढ़, आग हिंसक जन्तुओं, भूकम्प व युद्ध इत्यादि प्राकृतिक एवं मानव निर्मित आपदाओं से बचाये।

(xiv) नैतिक आचार–व्यवहार–कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य द्वारा उन मनोरंजन क्रीडाओं और व्यस्नों का भी बहिष्कार कराया जाये। जो धन का अपव्यय और विलास प्रियता को बढ़ाने वाली तथा जो जनता के नैतिक चरित्र में गिरावट लाती हो।

(xv) आपत्तियों की रोकथाम –कौटिल्य के मतानुसार राजा वल्लभ (राजप्रिय), कार्मिक (राजकर वसूल करने वाले), चोर, अन्तपाल, व्याघ्र आदि राजपुरूषों, लुटेरों एवं हिंसक जन्तुओं से ग्रस्त व्यापारमार्गों का भी परिशोधन करें। अर्थात् अपने देश में इन सब आपत्तियों कोदूर करे।[43]

(xvi) राज्य का क्षेत्र विस्तार–राज्य का शासक दूसरे देश के निवासियों के बुलाकर या अपने देश की आबादी को बढ़ाकर भी पुराने या नये जनपदों को बसाकर अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार करे। इसके अतिरिक्त विजिगीषु सम्राट के रूप में राजा अपने पड़ौसी राज्यों पर **चतुष्ट्य उपायों** (साम,दाम, दण्ड व भेद)और **षाङगुण्य नीति** (सन्धि,विग्रह,आसन,यान,संश्रयव द्वेधीभाव छःतत्वो) का प्रयोग करते हुये उन्हें विजित कर अपने राज्य में मिलाकर राज्य को विस्तृत और शक्तिशाली बनाये।

(xvii) समाज के कमजोर वर्ग का सरंक्षक –राज्य का यह भी समाज कल्याण हेतु उद्देश्य है कि वह बालक,वृद्ध, व्याधिग्रस्त,विपत्तिपीड़ित और अनाथ व्यक्तियों का भरण–पोषण करे। कानूनी संरक्षण प्रदान करे। सन्तानहीन और पुत्रवती, अनाथ महिलाओं तथा उनके बच्चों की भी राजा रक्षा करे।महिलाओं को सूत के कारखानों में सूत तैयार करने का कार्य दिया जाये तथा उन्हें आर्थिक सम्बल देने के लिये मौद्रिक भुगतान किया जाए।

(xviii) जनता के लोककल्याण एवं सुखों की पूर्ति –अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने राज्य का सर्वोच्च उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त किया है, **प्रजा के सुख में ही राजा का सुख और प्रजा के हित में ही राजा का हित है। अपने आप कोअच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजा जनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के सम्पादन करने में है।**[44]

उपरोक्त वर्णित सर्वोच्च उद्देश्य की प्राप्ति हेतु ही कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना और व्याख्या की है। यह ही सुशासन की अवधारणा का मूल आधार है । अतः स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित राज्य का उद्देश्य लोकल्याणकारी, धर्मनिरपेक्ष, शक्तिशाली, सम्पन्न और सुशासित राज्य की स्थापना करना था।

2.II संवैधानिक उद्देश्य –

1. वर्तमान भारत में संवैधानिक उद्देश्य –

वर्तमान भारतीय प्रशासन व्यवस्था में राज्य के उद्देश्यों से तात्पर्य संविधान में वर्णित संवैधानिक उद्देश्यों से है क्योंकि वर्तमान भारत राष्ट्र के उद्देश्यों का लिखित रूप से उल्लेख भारतीय संविधान की उद्देशिका में किया गया है।उद्देशिका का वर्णन निम्नलिखित है –

(i)उद्देशिका–

प्रायः प्रत्येक अधिनियम के प्रारम्भ में एक उद्देशिका रहती है। इसमें उन उद्देश्यों का उल्लेख किया जाता है जिसकी प्राप्ति के लिये कोई अधिनियम पारित किया जाता है। न्यायाधिपति **श्री सुब्बाराव** के शब्दों में **उद्देशिका किसी अधिनियम के मुख्य आदर्शों एवं आकांशाओं का उल्लेख भी करती है।**[45]उद्देशिका अधिनियम के उद्देशयों एवं नीतियों को समझने में सहायक होती है। उच्चतम न्यायालय के अनुसार उद्देशिका संविधान निर्माताओं के विचारों को जानने की कुंजी है।[46]संविधान की रचना के समय निमार्ताओं का क्या उद्देश्य या वे किन उच्चादर्शों की स्थापना भारतीय संविधान में करना चाहते थे। इन सबको जानने का माध्यम उद्देशिका ही होती है। भारतीय संविधान की उद्घोषिका इस प्रकार है–

"हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, समाजवादी[47], पंथ–निरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक, गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को–सामाजिक,आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिये तथा उन सबसे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिये दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारिख 26 नवम्बर, 1949 को एतत्‌द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"[48]

(ii) उद्देशिका का महत्व–

भारतीय संविधान की उपरोक्त वर्णित उद्देशिका का महत्व तब स्पष्ट हो जाता है जब संविधान की भाषा अस्पष्ट या संदिग्ध हो,एसी अवस्था में संविधान के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उद्देशिका का सहारा लिया जा सकता है। जहाँसंविधान की भाषा असंदिग्ध है वहाँ उद्देशिका की सहायता लेना आवश्यक नहीं है। इसका महत्व इसलिये भी अधिक है, क्योंकि इसका संविधान में वही स्थान है जो अन्य उपबन्धों का है अर्थात् यह संविधान का एक अभिन्न अंग है।

2. संविधान में वर्णित राज्य के उद्देश्य –

भारत राष्ट्र के एक राज्य के रूप में जो उद्देश्य संविधान निर्माताओं ने वर्णित किये है। उनके बारे में लिखित जानकारी इस उद्देशिका से ही प्राप्त होती है। वर्तमान भारत में प्रचालित सुशासन की अवधारणा को स्थापित एवं विकसित करने के लिये सरकार का क्या प्रशासकीय आदर्श एवं क्रियानवयन के मापदण्ड हों, उसके लिये सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान भी उद्देशिका में उल्लेखित उद्देश्यों से होता है। राज्य के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

(i) प्रभुत्वसम्पन्न – भारत को एक प्रभुत्वसम्पन्न राष्ट्र के रूप में स्थापित करना अर्थात् भारत आतंरिक एवं बाह्य दृष्टि से किसी भी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है। उसकी यह सम्प्रभुता भारत की जनता में निहित है। भारत अपनी विदेशनीति के मामलों में पूर्णतया स्वतन्त्र है अर्थात् वह विश्व के किसी भी देश से सन्धि और मित्रता कर करता है।

(ii) लोकतन्त्रात्मक शासन –भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनायागया है। यहाँ लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के एक रूप अप्रत्यक्ष प्रतिनिधि प्रणाली के अपनायागया है। सरकार जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि चलायेंगे और उसके प्रति उत्तरदायी होंगें।

(iii) पंथ–निरपेक्षता–भारतीय संविधान में 42 वें संशोधन के द्वारा पंथनिरपेक्षता शब्द को जोड़ा गया है। अर्थात् वर्तमान भारत राष्ट्र एक राज्य है, जिसका अपना कोई विशेष राजधर्म नहीं है वरन सभी धर्मों के साथ–साथ व्यवहार एवं समान संरक्षण प्रदान किये जाने की बात की गई है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी धर्म को मानने,आचरण करने तथा प्रचार करने की स्वतन्त्रता देना इस उद्देश्य का लक्ष्य है।

(iv) समाजवाद की स्थापना करना –42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इस शब्दावली (समाजवाद) को संविधान की उद्घोषिका में सम्मिलित किया गया है। इसके द्वारा भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का विकास करना,लोकतांत्रिक समाजवाद को स्थापित करना तथा जनता में आर्थिक समानता एवं आय का समान वितरण हो सके इत्यादि उद्देश्यों की प्राप्ति होगी।

(v) अखण्डता की सुनिश्चिता – संविधान की उद्घोषिका में इसके लिये 42वें संविधान संशोधन के द्वारा अखण्डता शब्द जोड़ा गया है। इस अखण्डता से तात्पर्य है कि भारत एक संघात्मक राज्य है, इसलिये उसकी अखण्डता कोसुनिश्चित करने के लिए यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी राज्य इससे (भारत) अलग होने का अधिकार नहीं रखता है। साथ ही साथ कोई भी व्यक्ति देश की अखण्डता के विरुद्ध कुछ भी कहने या ऐसा करने के लिए उत्प्रेरित करने से वर्जित किया गया है।

(vi) **गणतन्त्रीय प्रणाली की स्थापना** – भारत में शासक वंशानुगत नहीं होगा वरन् जनता का अप्रत्यक्ष चुना हुआ प्रतिनिधि होता है। भारत का राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि (5वर्ष) के लिये चुना जाता है।देश की समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होती है, किन्तु वह उसका प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामर्श से करता है।

(vii) **संविधान का उद्देश्य** – संविधान का मुख्य उद्देश्य भारतीय जनता को निम्नलिखित अधिकार दिलाना है –

(क) न्याय–सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक।

(ख) स्वतन्त्रता–विचार, मत, विश्वास और धर्म।

(ग) समानता– पद एवं अवसर।

(घ) बन्धुत्व–व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता के लिये।

एक ओर जहाँ संविधान व्यक्ति के विकास के लिये अधिकारों को प्रदान करता है वहाँ दूसरी और उसका लक्ष्य देश की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखना भी है। व्यक्ति का उत्कर्ष कहीं सम्पूर्ण राष्ट्र के उत्कर्ष में बाधक न बन जाये इसलिये संविधान में बन्धुत्व की भावना पर अधिक बल दिया है। प्रजातन्त्र की सफलता और जनता को सुशासन प्रदान करने हेतु जन–जन के मन में बन्धुत्व की भावना जाग्रत करना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति यह समझे की वह एक ही मातृभूमि की संतान है, उन्हें एक दूसरे के प्रति स्नेह,साहचर्य और सहयोग की भावना के साथ रहना चाहिए।[49] संयुक्त राष्ट्रसंघ के मानव अधिकारघोषणापत्र में भी बंधुत्व के उदात्त एवं मानवीय सिद्धान्तों को समाविष्ट किया गया है। भारतीय संविधान में उपाधियों का अन्त (अनुच्छेद18) अस्पृश्यता– निवारण (अनुच्छेद 17) आदि इसके लिये किये गये प्रयास हैं।[50]

स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व जिसे संविधान द्वारा भारतवासियों कोप्रदान करने का प्रयास किया है। सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक न्याय का मुख्य लक्ष्य है। सामाजिक हित एवं व्यक्तिगत हित के बीच सामंजस्य स्थापित करना इस न्याय का मुख्य उद्देश्य है। संविधान निर्माताओं का उद्देश्य भारत में एककल्याणकारी राज्य(Welfare State)की स्थापना करना भी था, यद्यपि संविधान की प्रस्तावना में इस शब्द का उल्लेख नहीं किया गया है तथापि उसकी अन्तर्निहित भावना में संविधान निर्माताओं का उद्देश्य **बहुजनहिताय, बहुजन–सुखाय** (Greatest Good of the Greatest Number)ही था। संविधान द्वारा जो आदर्श बताये गये हैं, उनकी प्राप्ति के लिये राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में कार्यनीति का उल्लेख किया है।

(viii) **वितरण न्याय का उद्देश्य** – उद्देशिका में वितरण न्याय (Distributive Justice) की धारणा भी निहित है। विधि के क्षेत्र में इसका तात्पर्य आर्थिक असमानता कोदूर करना और असमानों में संव्यवहार के मामलों में असमानता को दूर करना है। राज्य द्वारा कानून का प्रयोग वितरण योग्य साधन के रूप में समाज के सदस्यों में धन का उचित बटँवारा करने के लिये किया जाना चाहिये।[51]

3.राज्य के नीति–निदेशक तत्व –

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जिस उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है उन उद्देश्यों को प्राप्त करने का तरीका (प्रक्रिया) संविधान के **भाग 4**में **अनुच्छेद 36–51**तक राज्य के **नीति–निदेशक तत्व** के तहत दर्शाया गया है।

राज्य से यह अपेक्षा की गई है कि वह नीतिनिर्माण करते समय इन मार्गदर्शक तत्वों (बिन्दुओं) को दृष्टिगत रखे। ताकि प्रस्तावना में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।संविधान निर्माताओं ने जिस **लोकल्याणकारी** राज्य और **समाजवादी** समाज की परिकल्पनाकी थी उसकी प्राप्ति हेतु सरकार को इन तत्वों का क्रियान्वयन करना चाहिए। तब ही जनता के हितों की प्राप्ति और **आर्थिक लोकतन्त्र** की स्थापना हो सकेगी।

इनके अन्तर्गत वे आदर्श निहित हैं, जिनको प्रत्येक सरकार को अपनी नीतियों के निर्धारण और कानून बनाने में सदैव ध्यान में रखना चाहिए। इसमें वे आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक सिद्वान्त अन्तर्निहित जो भारत की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल है। **डॉ. अम्बेडकर** के अनुसार ये भारतीय संविधान की अनोखी विशेषताऐं है। इनमें एक लोकल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है। इस प्रकार यह स्पष्ट है, कि नीति–निदेशक सिद्वान्तों के हारा ही विधानमण्डल और कार्यपालिका तथा क्षेत्रीय और अन्य प्राधिकारियों के समक्षउपलब्धि का एक मानदण्ड रखा जा सकता है। जिस पर उनकी सफलता और असफलता की जाँच की जा सकें।

यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि मौलिक अधिकारों की तुलना में इनको कानूनी बल प्राप्त नहीं है अर्थात् ये न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। (**अनुच्छेद 37**)

नीति–निदेशक तत्वों का वर्गीकरण – नीति–निदेशक तत्वों को निम्नलिखित शीर्षको के अनुरूप वर्गीकृत किया गया है –

(1) सामाजिक और आर्थिक न्याय –

(क) सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था–नीति –निदेशक तत्व राज्य को यह निदेश देते है कि वे लोककल्याण की अभिवृद्धि करके ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का प्रयास करे जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय

प्रत्येक व्यक्ति के लिये सुनिश्चित हो (अनुच्छेद 38(1))। 44वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद–38 में एक नया खण्ड (2) जोड़कर एक नया निदेशक तत्व जोड़ा गया है। खण्ड(2) यहउपबन्धित करता है कि राज्य विशेष रूप से, आय की असमानता को कम करने कम प्रयास करेगा और न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुऐ लोगों के समूहों के बीच प्रतिष्ठा,सुविधाओं की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

(ख) आर्थिक न्याय प्राप्त करने के सिद्धान्त –अनुच्छेद 39राज्य को विशेषतया अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करने का निदेश देता है ताकि –

(i) पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को जीविकाके पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है।

(ii) समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार से बंटा हो।जिससे सामूहिक हितों का वह सर्वोत्तम साधन बन सकें। इसके अन्तर्गत राज्य उत्पादन के साधन का राष्ट्रीयकरण कर सकता है।

(iii) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि जिससे धन और उत्पादन के साधन का सर्वसाधारण के अहित के लिये केन्द्रण न हो।

(iv)पुरूषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिये समान वेतन हो।

(v) कार्मिकों के स्वास्थ्य और शक्ति,बालकों की बाल्यावस्था का दुरूपयोग न हो, आर्थिक आवश्यकता की विवशता के कारण नागरिकों को ऐसा कोई रोजगार न करने पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।

(vi) बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में विकास का अवसर और सुविधाओं के साथ ही साथ शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षित किया जाए। यह **खण्ड च42वें** संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया। जिसका उद्देश्य था कि बालकों के विषय में भी राज्य की एक रचनात्मक भूमिका हो।

(2) सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी तत्व –

(क) उद्योगों के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना –अनुच्छेद 43क राज्य से अपेक्षा करता है कि वह उपयुक्त विधान द्वारा किसी उद्योग में लगे उपक्रमों (Undertaking)व स्थापनों (Establishments) या संगठनों (Organisations) के प्रबन्ध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिये कदम उठायेगा।

(ख) कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोकसहायता पाने का अधिकार –अनुच्छेद 41 राज्य के निदेश करता है कि अपने सामर्थ्य और विकास की हदों के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के लिये काम पाने, शिक्षा पाने,बेकारी,बुढ़ापा, बीमारी,अंगहानि तथा अनर्द अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पा सकें इसके लिये कार्यसाधन उपबन्ध करेगा।

(ग) काम की न्याय तथा मानवोचित दशाओं का उपबन्ध – अनुच्छेद 42 राज्य को काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को उपलब्ध कराने तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध करने का निदेश करता है।

(घ) कर्मकारों के लिये निर्वाह मजदूरी तथा कुटीर उद्योगो के बढ़ावा देगा –अनुच्छेद 43 राज्य को निदेश करता है कि वह श्रमिकों को निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर, उचित कार्य दशाऐं और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त करवाने का प्रयास करेगा और ग्रामीण कुटीर उद्योगों को बढ़ाने का प्रयास करेगा ।

(ड) समाज के दुर्बल वर्गो के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि – अनुच्छेद 46 के अनुसार राज्य जनता के दुर्बल वर्गों विशेषतया अनुसूचितजाति,अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और उन्हें सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषणसे संरक्षित करेगा।

(च) बालकों के लिये निःशुल्क ओर अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध –अनुच्छेद 45 अशिक्षा को दूर करने के उद्देश्य से राज्य को 14 वर्ष की आयु तक के सभी बालकों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का निदेश करता है।

(छ) पोषाहार और जीवन के स्तर को उंचा करने और लोकस्वास्थय को सुधारना–अनुच्छेद 47 के अधीन राज्य का प्राथमिक कर्त्तव्य होगा कि वह लोगों के पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने और लोकस्वास्थ्य में सुधार का प्रयास करे। मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिये हानिकारक औषधियों के औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर उपयोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करे।

(ज) समान न्याय और निशुल्क विधिक सहायता –यह नीति निदेशक तत्व 42 वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। **अनुच्छेद 39(क)** राज्य को निदेश करता है किवह विधिक व्यवस्था को इस प्रकार सुनिश्चित करेकि वह सबको अवसर के आधार पर सुलभ हों विशेषतः आर्थिक या अन्य निर्योग्यता के कारक कोई भी नागरिक न्याय पाने से वंचित न रह जायें तथा उपयुक्त विधान से या अन्य किसी रीति से निःशुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करे।

(3) समाज कल्याण सम्बधी निदेशक तत्व –

(i) ग्राम पंचायतों का संगठन – अनुच्छेद 40 राज्य को निदेश देता है कि वह ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा एवं उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हो। इस अनुच्छेद का उद्देश्य ग्राम व नगर स्तर पर **लोकतांत्रिकविकेन्द्रीकरणप्रणाली** को प्रारम्भ करना था। यह राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के **रामराज्य** (ग्रामस्वराज्य) के आदर्श की परिकल्पना थी। वर्तमान में **संविधान के 73 वें और 74 वें संशोधन अधिनियम 1992** के अनुसार क्रमशः पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के गठन, संरचना शक्तियों और उत्तरदायित्वों के बारे में आवश्यक उपबन्ध किये गये है। इन उपबन्धों के द्वारा पंचायतों और नगरपालिकाओं के नियमित और समय पर निर्वाचन को सुनिश्चित किया गया है। वर्तमान में उपर्युक्त संशोधनों के द्वारा इन संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई है।

(ii) नागरिकों के लिये समान नागरिक संहिता –अनुच्छेद 44 यह अपेक्षा करता है राज्य भारत के समस्त राज्य–क्षेत्र में समस्त नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।

(iii) कृषि और पशुपालन का संघटना–अनुच्छेद 48 राज्य के निदेश देता है कि वह कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों के आधार पर संगठित करने का प्रयास करेगा विशेषतः गायों, बछड़ों और दूधारु पशुओं के अलावा वाहक पशुओं के नस्लीयपरिरक्षण और सुधारने के लिए और उनके वध को प्रतिषेध करने के लिए कदम उठायेगा ।

4. पर्यावरण का संरक्षण तथा वन्य–जीवों की रक्षा – अनुच्छेद 48(क) के अनुसार राज्य देश के पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार करने के साथ वन्य–जीवों का संरक्षण करेगा ।

5.राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों,स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण– अनुच्छेद–49 यह उपबन्धित करता है कि राज्य कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु की यथास्थिति लुठंन (Spoilation)विरूपण (Disfigurement) विनाश अपसारण (Removal)व्यपन या निर्यात (Export)से रक्षा करना राज्य का अधिकार होगा।

6. कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण – अनुच्छेद 50 के अन्तर्गत राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह लोकसेवाओं में न्यायपालिका के कार्यपालिका से पृथक करने के लिये कदम उठायेगा ।

7. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि – अनुच्छेद 51 यह उपबन्धित करता है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में –

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शांति ओर सुरक्षा की अभिवृद्धि का।

(2) राज्यों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का।

(3) एक–दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बाध्यताओं के प्रति आदरबढ़ाने का और

(4) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिये प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान में **नीति निदेशक तत्व** राज्य के उद्देश्यों के बारे में विस्तार से बताते है। लेकिन वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में इन्हें नागरिकों के मौलिक अधिकारों की तरह ही वैधानिकता प्रदान करने की आवश्यकता है। जिससे की प्रशासन में सुशासन को स्थापित किया जा सके एवं जनता को सुशासन का लाभ दिया जा सके।

3.राजतंत्रीय शासन बनाम लोकतंत्रीय शासन –

3.I राजतन्त्रीय शासन–

कौटिल्य के अर्थशास्त्र और उनके जीवन–सम्बन्धी ध्येयों का अध्ययन कर यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आती है कि कौटिल्य का उद्देश्य एक विराट साम्राज्य (राज्य) की स्थापना करना था। जिसकी शासन–सत्ता निरंकुश हो और जिनके अतुल बल वैभव के समक्ष किसी में भी सर उठाने का साहस न हो फिर भी उनकी नीति के अन्तराल में लोककल्याण की एक व्यापक भावना विद्यमान थी, जिसका उल्लंघन उन्होंने कभी–नहीं किया और सम्भवतः यही एक महत्वपूर्ण कारण रहा हैकि कौटिल्य की निरंकुश राजतंत्र की नीति में प्रजातत्रीय विचारों का आश्चर्यमय समन्वय था।

- **कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजतंत्र शासन सम्बन्धी विचार–**

  कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजतन्त्रीय शासन की अवधारणा को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझाया जा सकता है–

(अ) राजा की स्थिति (Position of the King)–

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्ययन के आधार पर राजा की स्थिति सम्बन्धित प्रश्न पर एक विरोधाभास नजर आता है कि क्या आचार्य लोककल्याणकारी राजतंत्र के समर्थक थे या निरकुंशता के समर्थक थे ? कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा की स्थिति को प्रदर्शित

करने के लिए कौटिल्य का यह मानना था कि राजा को कुछ विशिष्ट उपाधियों को प्राप्त करना अनिवार्य है। ये उपाधियाँ निम्नलिखित है–

(i) एकराट् या एकराज शासन –

कौटिल्य का मानना है कि एक शक्तिशाली राजा को अपने सम्पूर्ण विजित क्षेत्र पर एकराज, कूटस्थानीय (केन्द्रिय) शक्ति के रूप में शासन में स्थापित करना चाहिए। इसके लिए राज्य की सम्पूर्ण विधायी, कार्यपालक, न्यायिक कार्यों की सर्वोच्च निर्णयन शक्ति राजा में निहित होनी चाहिए।

(ii) विजिगीषु राजा –

विजिगीषु राजा को परिभाषित करते हुये कौटिल्य ने कहा कि राजा के रूप में वह आत्मसम्पन्न,अमात्य आदि **द्रव्यप्रकृतिसम्पन्न** और नीति का आश्रय लेने वाला हो। उसका एक मात्रलक्ष्य **विजिगीषा** है अर्थात् वह पड़ौस के सब जनपदों को विजय कर अपने अधीन करने के लिए प्रयत्नशील हो तथा इन पड़ौसी राज्यों के मण्डल में उसकी स्थिति केन्द्रिय हो। इसके लिए अर्थशास्त्र में वैदेशिक नीति के सन्दर्भ में **चतुष्ट्य उपायों** (साम,दाम,दण्ड व भेद) तथा **षाङगुण्य नीति** (सन्धिं,विग्रह,मान, आसन,संश्रय और द्वैधीभावये छः गुण है।) को प्रयुक्त करने को कहा गया है। इस प्रकार राजा का लक्ष्य विजिगीषु के रूप में अपना साम्राज्य विस्तार करना है।

(iii) चक्रवर्ती शासन–

कौटिल्य ने इस सन्दर्भ में उल्लेख किया है कि सारी पृथ्वी एकदेश है। उसमें हिमालय से लेकर समुद्र तक सीधी रेखा खीचनें से उत्तर–दक्षिण तक एक हजार यौजन क्षेत्र **चक्रवर्ती** क्षेत्र है। यह सब एक चक्रवर्ती राजा के अधीन होना चाहिये।[52]

इस प्रकार एक शक्तिशाली, प्रभुत्वसम्पन्न उत्तम राजा के लिये कौटिल्य के मतानुसार उपरोक्त तीनों प्रकार की विशिष्टताओं को प्राप्त करना आवश्यक है। ये राजा की निरंकुश और सर्वोच्च शक्तिधारी होने को प्रमाणित करती है।

अर्थशास्त्र में राजा के विशेषाधिकारों की व्यवस्था की यह प्रमाणित करती है कि राजा निरंकुश था तथा वह नागरिकों के अधिकारों के प्रति कोई निश्चित सोच नहीं रखता था। कुछ महत्वपूर्ण कारण हैं, जो राजा की निरंकुशता को दर्शाते है, वे इस प्रकार है –

(आ) निरंकुश राज तन्त्र (Absolute Monarchy) –

अर्थशास्त्र में राजा को सर्वोच्च सत्ता प्रदान की गई थी राजा को ही कानूनों को बनाने, लागू करने एवं व्याख्या करने का अधिकार था। (ये राजशासन कहलाते थे।)

निरंकुशता के तत्व–

कुछ महत्वपूर्ण कारण है जो राजा की निरंकुशता को दर्शाते है वे इस प्रकार से है।

(i) कौटिल्य ने नागरिकों के मूल अधिकारों का उल्लेख नहीं किया हैं।

(ii) राजा की सुरक्षा–व्यवस्था पर साधारण मानव की सुरक्षा की अपेक्षा सर्वाधिक बल दिया है। उनकी मान्यता थी कि राजा सुरक्षित है, तो राज्य भी सुरक्षित है।

(iii) राजा के मत (इच्छा) अनुसार ही सारे शासकीय पदों पर नियुक्ति की जाती है। राजा ही उन्हें अपनी इच्छानुसार पद विमुक्त कर सकता है।

(iv) उतराधिकार युक्त व्यवस्था को महत्व दिया गया है।

(v) सम्पूर्ण प्रशासनिक तंत्र और उसके सदस्य केवल राजा के प्रति जवाबदेय थे। जनता के प्रति जवाबदेयता का ज्यादा उल्लेख नहीं मिलता है।

(vi) राजा को विशेषाधिकार दिये गये परन्तु शास्त्र और परम्पराऐं स्वयं अस्पष्ट थी।

(vii) राजा को न्यायालय में गवाही के रूप में प्रस्तुत होने पर निषेध था।

(viii) राज्य की सर्वोच्च न्यायिक शक्ति के रूप मे राजा में ही राज्य की सम्पूर्ण दण्डशक्ति निहित थी।

(ix) राजा युद्वों में सम्पूर्ण निर्णय शक्ति का प्रयोग करता था। ये उसके पूर्ण निरंकुश व्यवहार को दर्शाता है।

अर्थशास्त्र में राजा के विशेषाधिकारों की व्यवस्था की गई है जो यह प्रमाणित करती है कि राजा निरंकुश था तथा वह नागरिकों के अधिकारों के प्रति कोई निश्चित सोच नहीं रखता था। इस प्रकार कौटिल्य का **राजा** और उससें सम्बन्धित अवधारणा पूर्ण निरंकुशता का समर्थन करती है।

(इ) राजा की स्वेछाकारिता पर नियन्त्रण और जनता का शासन –

मौर्योंके शासनकाल में राजा की स्थिति **कूटस्थानीय** (केन्द्रिय) थी और राजकार्यों में उसे परामर्श देने और उसकी सहायता करने के लिए जिस मन्त्रिपरिषद् की सत्ता थी वह भी राजा की अपनी कृति थी। अब यह प्रश्न उठता है कि अर्थशास्त्र में उल्लेखित राजा सर्वथा निरंकुश या स्वेच्छाकारी था ? क्या उस युग में शासन मेंजनता की कोई भूमिका नहीं थी ? यह सही है कि राजा ने अपने व्यक्तिगत प्रभाव और अपने प्रति अनुरूक्त सेना की सहायता से विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। राजा पर अंकुश रखने वाली कोई उच्चतर सत्ता नहींथी और ये राजा अपनी प्रजा का ठीक प्रकार से पालन करें, उन्हें सुशासन युक्त व्यवस्था। इसके लिए उन्हें अपनी योग्यता, अपनी विद्या विनीतता, अपनी महानुभावता और अपनी गुणसम्पन्नता के अतिरिक्त कोई भी प्रेरणादायक सत्ता नहीं थी। पर

ये स्वीकार करना होगा कि मौर्य राजा के शासन में जनता की पर्याप्त भागीदारी थी। इसको प्रमााणित करने वाले निम्नलिखित कारण है –

(i) जनपदों की आंतरिक स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना –

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा ने जो जनपद विजित कर अपने अधीन कर लिए थे उनके धर्म, चरित्र और व्यवहार को उसने अक्षुण्ण रखा था। उसने इन जनपदों में प्रचलित परम्परागत धर्म,चरित्र,व्यवहार को राजशासन के द्वारा नवीन रूप में परिवर्तित नहीं किया था। कौटिल्य ने स्वंय लिखा है कि देश (जनपद) जाति,संघ और ग्राम के लिए जो धर्मोच्चित एवं श्रेयस्कर हो, उसी के अनुसार वहाँ का **दाय विभाग** करना चाहिए।[53]अतः राजा के अधीन इन जनपदों में उनकी अन्तःस्वंतन्त्रता कायम रही। बहुत से पुराने जनपदों में **पौरजानपद** नामक संस्थाओं की भी सत्ता थी। उसके द्वारा सर्वसाधारण जनता भी जनपद के शासन कार्यों में भाग लेती थी। इस प्रकार जनपदों की अन्तःस्वतन्त्रता सुरक्षित रहने के कारण जनता को अपना शासन स्वयं करने कासमुचित अवसर विद्यमान था।

(ii) स्वशासन संस्थाओं की सत्ता–

जनपदों के समान नगरों और ग्रामों में स्वशासन की संस्थाओं की उपस्थिति थी। इनके द्वारा नगर व ग्राम की जनता शासन कार्यों में भाग लेती थी।

(iii) श्रेणि (Guilds) कीसत्ता –

अर्थशास्त्र में उल्लेख मिलता है कि उस काल में व्यापारियों, व्यावसायियों एवं शिल्पियों के संगठन होते थे, जो किक्रमशः **समवाय** और **श्रेणि** कहलाते थे। व्यावसायियों शिल्पियों और व्यापारियों के इन संगठनों में सम्मिलित लोगों को यह अवसर उपलब्ध था कि वे अपने सम्बध में स्वयं कानून एवं नियम बना सके। राजकीय न्यायालयों में उनके कानून मान्य होते थे और न्यायाधीश उन्हीं के अनुसार वादों का निर्णय करते थे।

इस प्रकार सर्वसाधारण जनता को अपने कानून स्वयं बनाने, अपने व्यवहार को स्वयं निर्धारित करने और अपने साथ सम्बन्ध रखने वाले मामलों की स्वयं व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त था। ये स्थिति लोकतंत्रीय विकास का प्रतीक थी।

(ई) प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास न होने का कारण –

कौटिल्य ने जिस सामाज्य की राजव्यवस्था का वर्णन किया है वह इतना विशाल था कि उसके शासन के लिए किसी भी प्रकारकी लोकतंत्रतात्मक प्रतिनिधित्ववाली संस्थाओं की सत्ता संभव ही नहीं थी।इसका कारण आवागमन के समुचित साधनों का अभाव होना भी था। यदि जनता को इस कठिनाई के बावजूद भी अपने प्रतिनिधि को चुनने का अवसर प्रदान कर दिया जाता तो इन निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए साम्राज्य की राजधानी में

उपस्थित हो सकना सरल नहीं था। यही कारण था कि उस समय के बड़े राज्यों में प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास सम्भव नहीं हुआ पर जनपद,नगर,ग्राम इत्यादि में इन प्रतिनिधि संस्थाओं की सत्ता थी और इनके द्वारा जनता स्वयं शासन कार्यों में भाग लेती थी। मौर्य काल में भी जनता के शासन का यही रूप था।

(उ) राजा पूर्णतया स्वेच्छाकारी और निरंकुश नहीं हो सकता था –

जनपद नगर, ग्राम इत्यादि कि स्वशासन संस्थाओं की उपस्थिति के कारण जहां राजा का राजशासन सीमित था। वहीं साथ ही कुछ अन्य कारण भी अर्थशास्त्र में वर्णित है जिससे राजा पूर्णतया स्वेच्छाकारी और निरंकुश नहीं बन सकता था। ये कारण निम्न प्रकार से है–

(i) वानप्रस्थ ब्राह्मण आचार्य और सन्यासी द्वारा –

कौटिल्य ने कहा है कि यदि राजा काम, क्रोध या अज्ञान के कारण दण्डशक्ति का समुचित रीति से प्रयोग न करे, कुमार्ग पर चलने लगे, निरंकुश और स्वेच्छाकारी रूप से शासन करने लगे, तो गृहस्थ ही नहीं वरन् सन्यासी और वानप्रस्थ तक उसके विरूद्ध उठ खड़े होते हैं राजा के लिए उनका मुकाबला करना कठिन हो जाता है। यद्यपि वानप्रस्थी और सन्यासी नगरों से दूर वन में आश्रम बनाकर निवास किया करते थे पर राजा उनका बहुत आदर करते थे। कौटिल्य ने नन्दवंश का इसीलिए संहार किया था, क्योंकि नन्दराजा कुपथगामी हो गये थे।

(ii) आमात्यों के द्वारा –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में एक स्थान पर लिखा गया है कि आचार्य और आमात्य राजा की मर्यादा को स्थापित रखें, वे राजा को कुमार्गगामी होने से बचाएं।[54]

(iii) जनता के द्वारा–

राजा को सदा इस बात का भय रहता था कि जनता उसके विरूद्ध विद्रोह न कर दे। कौटिल्य के मतानुसार **जनता का कोप अन्य कोपों की तुलना में अधिक भयंकर होता है।**[55]

इस प्रकार ब्राह्मणों और आचार्यों का प्रभाव प्राचीन युग के राजाओं को निरंकुश व स्वेच्छाकारी नहींबनने देता था। यह बात असंदिग्ध है, इसलिए प्राचीन भारत में यह विचार प्रचलित था कि राजा तो ध्वजमात्र[56] होता है। कौटिल्य ने तो यह भी लिखा है कि यदि राज्य की जनता सुयोग्य हो तो राजा के अभाव में भी राज्य का काम चलसकताहै।[57] इसप्रकार ये स्पष्ट है कि मौर्य युग के राजा कूटस्थानीय होते हुये भी सर्वथा निरंकुश व स्वेच्छाकारी नहीं थे।

3.II लोकतान्त्रिक शासन–

भारत विश्व के प्रमुख लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत एक विशाल राष्ट्र है अतः यहाँ की भौगोलिक विशालता और बड़ी जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र को अपनाया गया है। जिसके अन्तर्गत भारत में जनता अपने द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा शासन करती है। यहाँ संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संसदीय शासन प्रणाली को अपना लिया गया है। भारत में उपर्युक्त वर्णित लोकतन्त्र के सभी आवश्यक लक्षण दृष्टिगोचर होते है। भारत का संविधान लिखित है। इसमें शासन सीमित एवं उत्तरदायी है। यहाँ विधि का शासन है तथा नागरिकों को मूल अधिकारों के रुप में राजनीतिक स्वतन्त्रताऐं प्रदान की गई है। ये मूल अधिकार संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संरक्षित है। देश में स्वतन्त्र और एकीकृत न्याय व्यवस्था है, स्थानीय स्वशासित संस्थाऐं पंचायतीराज के रुप में विद्यमान है। 73 तथा 74वें संविधानसंशोधन द्वारा ग्रामीण शासन और नगरीय शासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया है। यहाँ की प्रेस स्वतन्त्र है। देश को सशक्त नेतृत्व प्राप्त है तथा देश की स्वतन्त्रता के बाद अर्थात् 1951 में हुए प्रथम आम चुनाव से अब 2019 तक के आम चुनाव सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए है। जो इस बात का प्रतीक है कि भारत में सुदृढ़ निष्पक्ष लोकतन्त्र प्रणाली कार्यरत है तथा जो देश में सुशासन की स्थापना के लिए लोकतन्त्र की आवश्यकता एवं महत्व को प्रदर्शित करती है।

- **वर्तमान भारत में लोकतन्त्रीय शासन –**

वर्तमान भारत में लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत लोकतन्त्र कुछ सामान्य लक्षण विद्यमान है जो इस प्रकार से हैं–

1. लोकतन्त्र के लक्षण –

1. लोकनियन्त्रण (Popular Control)- लोकतन्त्र में नीति निर्माताओं पर लोक–नियन्त्रण होता है और यह नियन्त्रण निरन्तर बना रहता है। भारत में इसकी संस्थायें निम्न है –

(i) नियमित निर्वाचन (Regular Elections)- भारत में भी नीति निर्माताओं पर लोकनियन्त्रण हेतु हर पाँच वर्ष के अतंराल पर आम चुनाव के रूप में केन्द्र एवं राज्यों तथा पंचायती राज व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानीय स्तर पर निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। इससे लोगों को नीतियों पर अपने विचारों को प्रकट करने का अवसर प्राप्त होता रहता है।

(ii) अप्रत्यक्ष नियन्त्रण (Indirect Control) – भारत में भी जनता अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र व्यवस्था के कारण सार्वजनिक नीतियों पर सीधे नियन्त्रण न करके वरन् अपने प्रतिनिधियों

का नियमित एवं निष्पक्ष निर्वाचन (आम चुनाव) द्वारा चयनित करके नियन्त्रण रखती है। भारत में 1951 से लेकर 2019 तक के आम चुनाव इसका उदाहरण है।

(iii) लोक प्रभाव (Popular Influence) – लोक नियन्त्रण को सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि लोकतन्त्र में नीति निर्माताओं पर लोक प्रभाव निरन्तर बना रहे। ये लोक प्रभाव संस्थागत और वैध दोनों प्रकार का हो सकता है। भारत में ये प्रभाव विभिन्न प्रकार के राष्ट्रीय दलों (जैसे–कांग्रेस दल, समाजवादी दल एवं भारतीय जनता पार्टी), क्षेत्रीय दलों, (अन्नाद्रुमक, असम गणपरिषद्, तृण मूल कांग्रेस) दबाव समूहों, रेडियों सिनेमा, दूर संचार तन्त्र, अखबार, सूचना प्रौधोगिकी और सार्वजनिक सभाओं इत्यादि के द्वारा पड़ता है और प्रतिनिधियों के भावी चयन की संभावना को भी यह प्रभावित करते है।

(iv) लोक प्रभुता (Popular Soverigaty) – लोकतन्त्र में **"सत्ता लोगों से उत्पन्न होती है।"** इसी को **लोकप्रभुता** कहते है। इसी के द्वारा जनता प्रतिनिधियों पर नियन्त्रण रखती है। भारतीय संविधान की उद्घोषिका में इसका उल्लेख किया गया है। भारत में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। जिसमें कार्यपालिका को संसद के प्रति अर्थात् लोकसभा (निर्वाचित सदन) के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है यह लोक प्रभुता को दर्शाता है।

2. राजनीतिक समानता (Political Equality) –

लोकतन्त्र में राजनीतिक समानता होती है, इसका अर्थ है कि सभी व्यस्क नागरिकों को समान मताधिकार प्राप्त होता है, और उनमें जाति, भाषा, लिंग, शिक्षा, धर्म, प्रदेश, सम्पत्ति या अन्य किसी आधार पर कोई भिन्नता नहीं की जाये। भारतीय संविधान के **भाग (3)** के अन्तर्गत **अनुच्छेद 15** में **समता के मूल अधिकार** के अन्तर्गतभारतीय नागरिकों उपरोक्त वर्णित आधारों पर भिन्नता नहीं की जाती है।

इस मताधिकार में समानता का अर्थ यह नहीं होता है कि निर्णयों में भी सबका समान प्रत्यक्ष हिस्सा हो; निर्णयों में हिस्सा अप्रत्यक्ष होगा; केवल निर्णय निर्माताओं के नियन्त्रण में हिस्सेदारी प्रत्यक्ष होगी। प्रत्येक व्यक्ति के पास एक ही मत होगा अर्थात्उसे बहु मतदान करने के अधिकार नहीं होगा। प्रत्येक मत का मूल्य भी समान होगा। मतों को किसी रुप से भारित नहीं समझा जायेगा। भारत में प्रत्येक व्यस्क नागरिक को जो 18 वर्ष की उम्र पूर्ण कर चुका है मतदान करने का अधिकारी है तथा उसका एक ही मत होगा तथा मत का मूल्य भी समान होगा। निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या उनकों प्राप्त मतों के अनुपात में होपरन्तु व्यवहार में मतों और निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में यह समानता

नहीं पायी जाती है, क्योंकि अधिकांश लोकतन्त्रीय देशों में **बहुमत सिद्धान्त**प्रचलित है। भारत में भी इस बहुमत सिद्धान्त को ही अपनाया गया है।

3. राजनीति स्वतन्त्रतायें (Politcal Freedoms)–लोकतन्त्र में इस स्वतन्त्रताओं का होना आवश्यक है क्योंकि ये सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में विद्यमान होगी तब ही लोकनियन्त्रण प्रभावी होगा और नीति निर्माताओं पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकेगा। इन स्वतन्त्रताओं के प्रमुख तत्व निम्न प्रकार से है –

(i) स्वतन्त्र चयन (Free Choice)–

इनके तीन अर्थ है – 1. व्यक्ति चुनाव में स्वयं खड़ा हो सके, अपने किसी व्यक्ति के उम्मीदवार के रुप में खड़ा कर सके, वह किसी को भी अपना मत दे सके। 2. मतदान निष्पक्ष और स्वतन्त्र हो अर्थात् मतदाता बिना किसी भय के मतदान करें। 3. मतदान गुप्त हो ताकि मतदाता निडर होकर मतदान कर सके। भारत में स्वतन्त्र चयन की यही सम्पूर्ण व्यवस्था मिलती है।

(ii) विकल्प निर्धारण की स्वतन्त्रता (Choice of Alternatives) – इसके अनुसार उम्मीदवारों को पद प्राप्त करने की स्वतन्त्रता हो, उन्हें और उनके समर्थकों को नागरिकों के समक्ष अपने दावों को स्वतन्त्रतापूर्वक रखने और अपनी वैकल्पिक नीतियों को प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता हो, और नागरिकों को इन अलग–अलग विकल्पों में से किसी एक विकल्प को पसन्द करने की स्वतन्त्रता हो। भारतीय लोकतन्त्र में भी नागरिक विभिन्न राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों व उनके समर्थकों के चुनावी दावों को सुनते है, तथा फिर भी अपनी पसन्द के अनुसार ही मतदान करते हैं।

(iii) भाषण, संघ एवं संगठन की स्वतन्त्रता (Freedom of speech, union and organistion) –लोकनियन्त्रण को प्रभावी बनाने और निर्वाचनों में पसंद को अर्थपूर्ण बनाने के लिए भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, आलोचना और विमत प्रकट करने की स्वतन्त्रता, संघ, समुदाय और संगठन बनाने की स्वतन्त्रता इत्यादि आवश्यक है। इस हेतु भारत के संविधान में **अनुच्छेद 19 (1)क** और **ख** में **स्वतन्त्रता के मूल अधिकार** के अन्तर्गत नागरिकों को उपरोक्त स्वतन्त्रताऐं प्रदान की गई है।

(iv) पदों की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्र प्रतियोगिता होनी चाहिए और पराजित उम्मीदवारों को निर्वाचनों के निर्णयों को स्वीकार करना चाहिए। भारतीय लोकतन्त्र में इसी प्रक्रिया को अपनाया गया है।

4. बहुसंख्यक शासन (Majority Rule) –

यह सिद्धान्त प्रजातन्त्र की आत्मा है, यहीं विधानमण्डलों में निर्णय लेने का सार्वभौम नियम है, यही शासन और उसकी नीतियों को औचित्य प्रदान करते है, यही शासितों की सहमति का आधार है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि जब कभी किसी विषय पर मतभेद हो या जनप्रतिनिधियों के विचारों में भिन्नताऐं हों तो बहुमत द्वारा निर्णय किया जायेगा। लोकतन्त्र में **बहुमत** और **अल्पमत** में एक मौन समझौता होता है कि यदि अल्पमत बहुमत के निर्णयों को स्वीकार करता है तो बहुमत भी अल्पमत के विचारों का आदर करता है। बहुमत विरोधियों का मुँह बन्द नहीं करता है और आलोचनाओं एवं विमतवालों का दमन नहीं करता है। भारतीय लोकतन्त्र में जहाँ विभिन्न धर्म, भाषा, सम्प्रदाय, संस्कृतियाँमिलती है वहाँ इस सिद्धान्त का संतुलित एवं श्रेष्ठ पालन किया जाता है।

5. विवेक में विश्वास (Belief in Rationality) –

लोकतन्त्रीय व्यवस्था विवेक में विश्वास करती है यदि कोई बहुमत विवेक को सुनने को तैयार नहीं है या नवीन तथ्यों के सामने आने पर निर्णय को बदलनें को तैयार नहीं है तो वह वाद–विवाद और विचार–विमर्श की प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया की उपेक्षा करता है। भारतीय संसद में इस प्रकार की स्थितियाँ कम ही उत्पन्न होती है।

6. व्यक्ति के व्यक्तित्व का गौरव (Dignity of Person's Personality) –

लोकतन्त्र में व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व पर बल दिया जाता है। यह उसके गौरव, प्रतिष्ठा और मान–मार्यादाओं का आदर करता है। इसमें दूसरे उसके लिए निर्णय नहीं करते हैं, वरन् उसकी (व्यक्ति) की अन्तर्आत्मा निर्णय करती है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने व्यक्ति को महत्व प्रदान करने हेतु ही संसदीय लोकतन्त्र प्रणाली को अपनाया और संविधान की उद्घोषिका और नागरिकों को दिये गये मूल अधिकार तथा राज्य के नीति निदेशक तत्व इसके उदाहरण हैं।

7. संविधानवाद (Constitutionlism) –

लोकतन्त्र के लिए संविधानवाद आवश्यक है अर्थात् प्रजातन्त्र नियमानुकूल शासन, शक्ति विभाजन, सीमित और उत्तरदायी शासन की मांग करता है। प्रजातन्त्र लिखित संविधान, विधि के शासन, शक्तियों के विकेन्द्रीकरण, शक्तियों के पृथक्करण और स्वतन्त्र न्यायपालिका की मांग करता है ताकि शासन का कोई भी अंग अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण न कर सकें और नागरिकों के जीवन की सुरक्षा की जा सके। भारतीय संविधान में उपर्युक्त सभी विशेषताओं को सम्मिलित व उल्लेखित किया है।

8. संवैधानिक साधन (Constitutional Sources) –

लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों में यह मौन समझौता होता है कि वे सत्ता प्राप्ति या सामाजिक परिवर्तन के लिए संवैधानिक साधनों का प्रयोग करेंगे। उग्र या हिंसक साधनों का प्रयोग नहीं करेंगे। प्रजातन्त्र अनुनय, विचार–विमर्श और जनमत की शक्ति में विश्वास करता है। हिंसा, उपद्रव, क्रान्ति या दमन द्वारा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में इसका कोई विश्वास नहीं होता है। भारतीय लोकतन्त्र ने भी उपरोक्त संवैधानिक साधनों को भी अपनाया है तभी यहाँ लोकतन्त्र को स्थापित हुए बहत्तर वर्ष हो गये हैं।

इस पर भी कुछ आलोचक हैं जो भारतीय लोकतन्त्रीय व्यवस्था की आलोचना करते है उनका कहना है कि भारत के नागरिकों के मध्य अनेक आर्थिक विषमताऐं है यहाँ एक तरफ अत्यधिक धनी और दूसरी तरफ असंख्य निर्धन है। जो जीविकोपार्जन के निम्नतम स्तर (गरीबी रेखा) से भी नीचे हैं। भारतीयों में वर्तमान समय में भी रुढ़िवादिता और नेतृत्व पूजा के तत्व विद्यमान है। यहाँ साम्प्रदायिकता, प्रादेशिकता और भाषायी विवाद अधिक है। अधिकांश जनता में निरक्षरता की समस्या अभी तक मौजूद है। सामाजिक और राजनैतिक जीवन में भ्रष्टाचार की अधिकता है। यहाँ कुछ राष्ट्रीय दलों को छोड़कर अधिकांश दलों का आधार क्षेत्रीयता या जाति है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी भारत में लोकतन्त्र की नींव गहरी है और वह निरन्तर विकसित हो रहा है। साथ ही साथ प्रशासन में सुशासन की अवधारणा विकसित हो रही है। लोगों को प्रजातान्त्रिक सिद्वान्तों में आस्था है। यहाँ आम आदमी के प्रति आदर है और उसकी स्वतन्त्रताओं में विश्वास है। भारत में हुए प्रत्येक आम चुनावों में उसके निरक्षर, निर्धन और रुढ़िवादी मतदाता ने समाज के उच्च एवं धनी मतदाता के बराबर ही अपनी परिपक्वता, जागरूकता और राजनीतिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है। यही तत्व भारतीय प्रजातन्त्र को सशक्त, सफल और चिरस्थायी बनाता है।

भारतीय मतदाता स्वच्छ, कुशल और संवेदनशील सरकार के पक्ष में है। जो जनता को सुशासन प्रदान कर सके। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही है कि भारतीय लोकतन्त्र भारतीय जनता के हाथों में सुरक्षित है तथा लोकतन्त्रीय शासन ही देश में सुशासन और उसकी कार्यप्रणालीयों को लागू कर सकता है।

4.केन्द्रियकृत सत्ता नियन्त्रण बनाम शक्तिपृथक्करण एवं नियन्त्रण संतुलन सिद्धान्त–

4.I केन्द्रियकृत सत्ता नियन्त्रण –

राजनीति विज्ञान के दार्शनिकों एवं प्रशासनिक विचारकों की यह मान्यता है कि राजनैतिक सत्ता (शक्ति) का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए, चाहे फिर शासन व्यवस्था राजतन्त्रीय या लोकतन्त्रीय, संसदात्मक या संघात्मक ही क्यों न हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि इस सत्ता का संगठन इस प्रकार किया जाए कि जिससे नागरिकों की स्वतन्त्रताऐं सुरक्षित बनी रहें तथा राजनीतिक सत्ताधारी अपने हर कार्य के लिए निर्धारित उत्तरदायित्वों को श्रेष्ठतम तरीके से पूर्ण करें। इसके लिए शक्तियों को संस्थाओं में निहित कर उन्हें नियन्त्रित करने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

प्रत्येक राज्य में,प्रत्येक प्रकार की राजव्यवस्था में शासकों को संवैधानिक बनाए रखने के लिए उन पर किसी न किसी प्रकार की नियन्त्रण व्यवस्था लागू करना आवश्यक है।कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में केन्द्रीयकृत सत्ता नियन्त्रण की अवधारणा को निम्नलिखित रूप में समझाया गया है–

1. राजा की कूटस्थानीय (केन्द्रीय) सत्ता –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कौटिल्य भारत में सिकन्दर जैसे विदेशी आक्रांताओं से राज्य की रक्षा हेतु**एकराट्**(एकतन्त्रीय शासन) तथा केन्द्रीकृत राजतन्त्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना के प्रबल समर्थक थे। वे सम्पूर्ण भारत कोइस शासन प्रणाली द्वारा एक शक्तिशाली भौगोलिक एवं प्रशासनिक इकाई के रूप स्थापित करना चाहते थे। अत: अर्थशास्त्र में उन्होंने राजा को कूटस्थानीय (केन्द्रीयसत्ताधारी) के रूप में विधायी, कार्यपालक व न्यायपालक के रूप में सर्वोच्च शक्तियाँप्रदान की। वे शक्ति पृथक्करण को नहीं वरन शक्ति केन्द्रीयकरण के सिद्धान्त को मान्यता देते थे। कौटिल्य ने राज्य की सात प्रकृतियों में सर्वप्रथम और सर्वोच्च स्थान स्वामी (राजा) प्रकृति को दिया है। अन्य छः प्रकृतियाँ–अमात्य,जनपद,दुर्ग,कोष, सेना,मित्र इत्यादि को राजा के अधीन रखा है अर्थात् शक्ति का केन्द्रीयकरण राजा के अधीनकिया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकृतअर्थशास्त्र में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को मान्यतादेने के बजाय तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरुप तथा राष्ट्र के सर्वोत्तम हित और जनता के कल्याणव प्रशासन में सुशासन को स्थापित करने के लिए शक्ति के केन्द्रीयकरण की अवधारणाका समर्थन किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में न्याय व दण्ड व्यवस्था की भी व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की है। जिसमेंविधि संहिता, विधि के

स्तोत्र, विधि की प्रकिया, विधिवेत्ताओं के दायित्वों, नियुक्ति, विधि अनुसार दण्ड प्रक्रिया इत्यादि विषयों का वैज्ञानिक विश्लेषण व प्रस्तुतीकरण मिलता है। इससे यह प्रतीत होता है कि कौटिल्यकाल में स्वतंत्र न्यायपालिका जैसी व्यवस्था का प्रचलन था। लेकिन फिर भी न्यायिक अपील का सर्वोच्च अधिकार राजा कोही धर्म की सम्प्रभुता के अधीन दिया गया था।

उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि कौटिल्य यद्यपि निरंकुश राजतंत्र व्यवस्था के समर्थक के परन्तु उनकी न्याय व दण्डनीति की विचारधारा इस बात का प्रमाण देती है कि उन्होंने नागरिकोंके लिए लोक कल्याणकारी व उत्तम प्रशासनिक व्यवस्था प्रदान करने की विचारधारा की अवहेलना नहीं की थी।

2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नियन्त्रण संतुलन सिद्वान्त –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नियन्त्रण संतुलन सिद्वान्त का व्याख्यात्मक विवरण भी मिलता है। कौटिल्य द्वारा वर्णित राजा निरंकुश होते हुए भी पूर्णरुप से निरंकुश व स्वेच्छाकारी नहींहो सकता था, क्योंकि उसकी शासन सत्ता को नियन्त्रित करने के लिए आचार्य ने अवरोध व संतुलन सिद्वान्त के अनुरूप कुछ शक्ति नियन्त्रण प्रकारों का उल्लेख किया है। जो निम्नलिखित प्रकार से हैं –

(1) धार्मिक नियन्त्रण (Religious check) –

राजा को धर्म (Duty) अर्थात् कर्त्तव्य की सम्प्रभुता के अधीन रखा गया था। यह धर्म त्रयी में वर्णित था। इस धर्म का राजा कि सम्पूर्ण शासकीय शक्ति पर नियन्त्रण था। धर्म के आधार पर ही राजा करों का एकत्रीकरण, जीवनयापन और स्वयं की सुरक्षा सम्बधी कार्यों को कर सकता था। एम.वी.कृष्णाराव के अनुसार ''कौटिल्य का दृष्टिकोण धर्म के प्रतिधर्मनिरपेक्ष था न कि उदासीनता का।'' जैसे की सैन(Sen)का मतहै कि कौटिल्य की राजनीति अनैतिक (Immoral) नहीं वरन् नैतिकता से रहित (Unmoral)है।वह अधार्मिक (Irreligious) नहीं लेकिन अपनी राजनीति में धर्मरहित (Unreligious) थे। कौटिल्यतो इस बात के लिए भी तैयार थे कि धार्मिक भावनाओं और धार्मिक संस्थाओं का प्रयोग राज्य के राजनीतिक विस्तार और राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति में किया जा सकता है। (इस कथन में धर्म से तात्पर्य रिलिजन (Relision)या आस्था से है न कि कर्त्तव्य (Duty) से है।)

(2) नियुक्तियों द्वारा नियन्त्रण (Check on Appointments)–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार राजा को सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति प्रदान की गई थी परन्तु राजा अपने मन्त्रियों के चयन और नियुक्ति करने में पूर्णतः स्वतंत्र नहीं था। कौटिल्य के मतानुसार के अनुसार केवल योग्य एवं गुणी व्यक्ति ही पदों पर नियुक्त किए

जा सकते थे। कौटिल्य ने मंत्री पद के लिये चार प्रकार की परीक्षाओं (धर्म,अर्थ, काम व भय द्वारा परीक्षित) को उत्तीर्ण करना अनिवार्य बताया था। राजा इसके अनुसार ही मंत्रियों की नियुक्ति कर सकता था।

(3) राजा सर्वोच्च सत्ताधारी नहीं था (The King is not Supreme)–

राजा अपने धार्मिक उत्तरदायित्वों को पालन करने के लिये बाध्य था। राजा **संत** (आचार्य) और पुरोहितों के प्रति उत्तरदायी था। राज्य में ये संत (Saints)राजा से भी अधिक आदरणीय व श्रेष्ठ माने जाते थे। राजा संत व पुरोहितों का उसी प्रकार सम्मान करता था जैसे कि शिष्य द्वारा गुरू, पुत्र द्वारा पिता तथा एक सेवक द्वारा अपने स्वामी का किया जाता है।

(4) जनता, राजा और राजा के समान उद्देश्य (Equal objectives of people, king and state)–

राजा स्वयं के लक्ष्य के लिए नहीं वरन जनता के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये उत्तरदायी था। अर्थशास्त्र में एक स्थान पर उद्धृत है कि राजा को अपनी जनता के हितों के बारे में सोचना चाहिये, जब उसकी जनता दुःखी होती है, तो वह दुःखी होता है और वह तब खुशी महसूस करता है जब कि उसकी जनता सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती है। इस प्रकार जहाँ जनता व शासक के समान अधिकार हों तो वहाँ अवरोध की नहीं वरन् संतुलन की व्यवथा होगी।

(5) योग्यता पर आधारित उत्तराधिकार व्यवस्था (Succession is based on merit)–

यद्यपि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने राजा के **वंशानुगत उत्तराधिकार** सिद्वान्त का समर्थन अवश्य किया है, परन्तु उन्होंने योग्यता को भी उतना ही महत्व दिया है। उनका मत था कि राजा को शारीरिक, मानसिक आध्यात्मिक, नियन्त्रित, साहसी इत्यादि गुणों से युक्त होना चाहिए। इस प्रकार के गुणों से युक्त राजा शक्तिशाली होते हुए भी निरंकुश नहीं हो सकता है।

(6) नैतिक नियन्त्रण (Moral checks)–

कौटिल्य ने लिखा है कि राजा के लिए शास्त्रों में वर्णित नैतिक मूल्यों का पालन करना आवश्यक है। ये छः प्रकार नैतिक दोष हैं काम,क्रोध, लोभ,मान, मोह एवं हर्ष(चंचलता)इनका राजा को त्याग करना चाहिए। ये तभी सम्भव है जबकि राजा का अपनी इन्द्रियों पर नियत्रणं हो।

(7) आध्यात्मिक नियन्त्रण(Spiritual checks) –

कौटिल्य को यद्यपि यर्थाथवादी(Rational) विचारक माना गया है, फिर भी वह कहते है कि कार्य का परिणाम केवल देवीय संयोग पर ही नहीं बल्कि सांसारिक कार्य प्रक्रियाओ से भी निर्धारित होते हैं। इसलिए वे राजा को यह सुझाव देते हैं कि राजा को **धर्म,अर्थ** और **काम** त्रिवर्ग को साथ लेते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

(8) जनता के अधिकार (Right of the people) –

अर्थशास्त्र मे कौटिल्य ने यह भी वर्णित किया है कि सबसे बड़ा भय या कोपजनता का कोप है क्योंकि क्रुद्ध जनताअपने राजा की भी हत्या कर सकती है। अर्थशास्त्र न राजा को न उसकी शासन व्यवस्था को वरन् जनता को सर्वोच्च नियन्त्रक मानता है।

(9) उत्तराधिकारी का प्रशिक्षण (Training of the Successor)–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा को स्वेच्छाकारी नहीं बताया है क्योंकि आचार्य ने राजा के उत्तराधिकारी के प्रशिक्षण का उल्लेख किया है। प्रशिक्षण के द्वारा राज्य के उत्तराधिकारी (युवराज) को धर्मशास्त्रोंव राजनीति विज्ञान जैसे विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता है जो उसे **विद्याविनीत**बनाता है तथा उस स्वेच्छाकारी होने से रोकता है।

(10) मन्त्रियों द्वारा नियन्त्रण (Checks of the ministers) –

कौटिल्य के मतानुसार राजा निरंकुश नहीं हो सकता था क्योंकि वह मन्त्रियों की सलाह या परामर्श से कार्यों को करता था। अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि गुरूजन और अमात्यवर्ग (मंत्री) राजा की मर्यादा को निर्धारित करे,वे राजा को अनर्थकारी कार्यों को करने से रोकते रहें। यदि वह एकान्त में भी प्रमाद करता है, बेसुध है, तो समयसूचक यंत्र या घण्टे को बजाकर उसको उद्‌बुद्ध (सचेत) करें।

(11) न्यायिक नियमों द्वारा नियन्त्रणं (Checks by Rules of Judiciary) –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कहा गया है कि अगर राजा अदण्डनीय (वृद्ध,निरपराध महिला,बच्चा,संन्यासी, निशक्त)व्यक्ति को दण्ड दे तो प्रजा को चाहिए कि वह उस दण्ड का तीस गुना दण्ड राजा से वसूल करे। यह अर्थदण्ड पहले **वरूण देवता** के निमित्त जल में छोड़ दिया जाए और बाद में ब्राह्मणों को बाँट दिया जाए। इस प्रकार विधि के समक्ष राजा व जनता समान रूप से न्याय की अधिकारी थी।

(12) राजा के अधिकार अनियन्त्रित नहीं(Rights of the king are not unlimited) –

कौटिल्य के मतानुसार राजा को कानूनों को निर्मित करने और उनकों लागू करने का अधिकार था परन्तु राजा के इस अधिकार को देश के धर्म, चरित्र, व्यवहार द्वारा नियन्त्रित किया गया था। धर्म क्या है ? इसकी व्याख्या शास्त्रों द्वारा की जाती थी। इन

शास्त्रों के अभिप्राय को ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता था। अत: वे धर्म की व्याख्या करने पर राजा की स्वेच्छाकारिता को स्वत: ही नियन्त्रित करते थे। राजा को दण्ड की शक्ति प्रदान की गई थी परन्तु राजा दण्डशक्ति का प्रयोग धर्म के नियमानुसार ही कर सकता था। इस प्रकार उसके अधिकार सीमित थे और वह नियन्त्रित था।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की दृष्टि से विचार किया जाए तो राजा में शक्तियों को केन्द्रीकृत तो किया गया है परन्तु उसकेसाथ ही अवरोध व संतुलन सिद्धान्त के अनुसार राजा की निरंकुश शक्तियों के नियन्त्रण व संतुलन की उत्तम व्यवस्था का भी उल्लेख किया गया है।

आचार्य ने राजा का जनता के प्रति निरंकुश आचरण का समर्थन नहीं किया है बल्कि उसके सभी कार्याधिकार जनता के कल्याण के लिए ही थे। राजा को अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए सीमित अधिकार दिये गये है। इस प्रकार राजा का पद सम्मान और महत्व का प्रतीक था। **एम.वी.कृष्णाराव** ने उपरोक्त नियन्त्रणकारी तत्वों के आधार पर यह मत प्रतिपादित किया है,कि "**शासकीय व्यवस्था में इस प्रकार के नियन्त्रणों के कार्यरत होने के कारण किसी भी राजा को अपनी सत्ता को पूर्ण निरंकुश बनाना और निरंकुशता का प्रयोग करना कठिन है।**"

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि मौर्य युग् में राजा **कूटस्थानीय**(केन्द्रीय सत्ताधारी) होते हुए भी सर्वथा निरंकुश व स्वेच्छाकारी नहीं थे। कौटिल्य ने राजसत्ता में शक्तिपृथक्करण सिद्धान्त को लागू करने की अपेक्षा शक्ति के **केन्द्रीकृत सत्ता सिद्धान्त** को लागू करने पर जोर दिया क्योंकि ये तत्कालीन राजनैतिक व प्रशासनिक परिस्थितियों की मांग थी। लेकिन यहाँ ये बताना आवश्यक है कि कौटिल्य शासक को पूर्ण निरंकुश होने से रोकने के लिए विभिन्न नियन्त्रण साधनों का प्रयोग करने को समर्थन करते थे। जो इस बात का प्रतीक है कि वे सत्ता में नियन्त्रण संतुलन सिद्वान्त को प्रयुक्त करने व उसके महत्व के समर्थक थे। कौटिल्य का मत था कि जनकल्याण व जनता को **सुशासन**देने के लिए यह आवश्यक है।

4.IIशक्ति पृथक्करण एवं नियन्त्रण–सन्तुलन सिद्धान्त –

(अ) शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त–

राजव्यवस्था की विभिन्न शासन प्रणालियों के अन्तर्गत शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त को किसी न किसी रुप में हमेशा से लागू किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार की तीनो शक्तियाँ विधायी, कार्यपालक और न्यायिक शक्तियों को एक ही अंग में निहित नहीं होना चाहिए वरन् उन्हें अलग–अलग रहकर कार्य करना चाहिए। राजशक्ति

को तीन पृथक भागों में विभाजित करने की अवधारणा भी काफी प्राचीन है। प्राचीन राजनीतिज्ञों जैसे **प्लेटो, अरस्तु, पॉलिबियस, सिसरो** और **जॉनलॉक** ने सरकार की शक्तियों के विभाजन (शक्ति पृथक्करण) का उल्लेख किया है, उसके पीछे मूल रूप से उनका मन्तव्य यही था कि शक्तियों को विभाजित करने से उनके दुरूपयोग से बचाव की व्यवस्था हो जाती है। यहाँ **अरस्तु** ने **शक्ति पृथक्करण** सिद्धान्त के अन्तर्गत सरकार को **असेम्बली, मजिस्ट्रेट** तथा **ज्यूडीशियरी** नामक तीन भागों में बांटा था। इस प्रकार अरस्तु नेशासन के वैधानिक, प्रशासकीय और न्यायिक तीनों रूपों तथा इनके अलग–अलग कार्य बताकर राजशक्ति के पृथक्करण का स्पष्ट संकेत दिया था।

आधुनिक युग्में इस सिद्वान्त के सन्दर्भ में हरमन फाईनर ने लिखा है कि शक्ति पृथक्करण का सिद्वांत प्रथम बार पूर्ण रुप में 18वीं सदी में जन्मे फ्रांसीसी दार्शनिक मोन्टेस्क्यू द्वारा प्रतिपादित किया गया था। उनका यह मत था कि यदि सरकार की तीनों शक्तियाँ किसी एक निकाय में निहित होंगी, तो वह निकाय निरंकुश हो जायेगा। शक्ति मनुष्य को भ्रष्ट कर सकती है और निरपेक्ष रूप में तो उसे बिलकुल ही भ्रष्ट कर देती है। इसलिए उन्होंने यह कहा कि सरकार के तीनों अंगों को एक दूसरे से पृथक होना चाहिए और कोई भी व्यक्ति एक से अधिक अंगों का सदस्य नहीं होना चाहिए।

वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका कासंघात्मक संविधान इसी सिद्धान्त पर आधारित है। वहाँसंघ सरकार की शक्तियाँ अलग–अलग तीन अंगों में निहित है। उदाहरणार्थ कार्यपालिका शक्ति जो राष्ट्रपति में निहित है, उसे विधायिका और न्यायपालिका सम्बन्धी कोई शक्ति प्राप्त नहीं हैं। राष्ट्रपति और उसके मन्त्रीमण्डल के सदस्यन तो अमेरिका कि विधायिकाके सदस्य होते हैं और न ही उसके प्रति उत्तरदायी होते है। वहाँ न्यायपालिका के रुप में संघीय सर्वोच्च न्यायालय कार्यरत है। यह राष्ट्रपति और विधायिका से पूर्ण रुप से स्वतन्त्र है। लेकिन वहाँ के संविधान में तीनो अंगो द्वारा अपनी–अपनी शक्तियों का दुरूपयोग रोकने हेतु नियन्त्रण व संतुलन सिद्वान्त की व्यवस्था को भी अपनाया गया है।

ग्रेट ब्रिटेन में राजतन्त्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत एकात्मक शासन व्यवस्था को लागू किया गया है साथ ही संसदीय शासन प्रणाली अपनायी गयी है। यहाँ यह सिद्वांत लागू नहीं होता है, क्योंकि वहाँ मन्त्रिमण्डल के सदस्य कार्यपालिका और विधानमण्डल दोनों के ही सदस्य होते हैं। ब्रिटीश संसद का उच्च सदन (*House of Lords*) न्यायिक शक्ति का प्रयोग करता है। वह इंग्लैण्ड का सर्वोच्च न्यायालय भी है, **लार्ड चांसलर** न्यायपालिका का प्रधान होता है और वह कार्यपालिका अर्थात मन्त्रिमण्डलका सदस्य भी होता है।

1. वर्तमान भारत में शक्तिपृथक्करण सिद्वान्त –

वर्तमान भारत की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त को आंशिक रुप से लागू किया गया है।

भारत ने स्वतन्त्रता के पश्चात् अपने संघात्मक संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को विस्तार से सम्मिलित किया, उन्हें कानूनी मान्यता भी दी। इसलिए इन नागरिक स्वतन्त्रताओं की सुनिश्चितता के लिए स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना की गई लेकिन भारत ने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया था इसलिए यहाँ शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त को अमेरिका की भांति कठोरता से लागू नहीं किया जा सकता था। अतः इस सिद्वान्त को आंशिक रुप से ही लागू किया गया है। भारत में सरकार के तीन अंग है, विधायिका (संसद), कार्यपालिका एवं न्यायपालिका।

भारत ने चूंकि संसदीय प्रणाली को अपनाया है अतः यहाँ कार्यपालिका विधायिका का ही एक भाग होती है अर्थात् कार्यपालिका विधायिका में बहुमत प्राप्त दल के सदस्यों के द्वारा निर्मित होती है। इसका सम्पूर्ण अस्तित्व विधायिका में उसके सम्बन्धित दल के बहुमत पर निर्भर करता है। संसद उसे **अविश्वास प्रस्ताव** पारित कर समाप्त कर सकती है।

उसी प्रकार कार्यपालिका (राष्ट्रपति) भी संकटकालीन अवस्था में संसद को भंग कर सकती है। लेकिन इस बात का ध्यान रखा गया है कि कोई भी अंग निरंकुश न हो जाये। इसलिए संविधान में रोकथाम (Check and Balance)की व्यवस्था की गई है। इस उद्देश्य से कार्यपालिका को लोकसभा के प्रति उत्तरदायी बनाया गया है और विधायिका एवं कार्यपालिका के मनमानी पूर्ण कार्यों (असंवैधानिक विधि निर्माण और उसे लागू करना) के विरुद्व स्वतन्त्र न्यायपालिका का गठन किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय को स्वतन्त्र न्यायपालिका के संस्थात्मक संगठन के रुप में यह शक्ति दी गई है कि वह इन संस्थाओं के संविधान विरुद्व कार्यों को अविधिमान्य घोषित कर उन्हें अपने ही अधिकार क्षेत्र के तहत कार्य करने को बाध्य करें। इस प्रकार एक स्वतन्त्र न्यायपालिका ही नागरिकों की स्वतन्त्रताऐं सुरक्षित रख सकती है।वर्तमान भारत का लोकतंत्र **प्रधानमंत्री लोकतंत्र** के रुप मेंविकसित होने लगा।

भारत में सीमित शक्ति पृथकरण की व्यवस्था की गई थी जो अनेक दबावों के बावजूद भी अपनी उपयोगी भूमिका निभा रहा है। भारत में **42वें** संविधान संशोधन ने इस सिंद्वात को सैद्धातिक रुप में पहुँचा दिया है।

इस सिद्धात को विकसित राष्ट्रों मेंअन्य संरचनात्मक, प्रक्रियात्मक और संस्थागत व्यवस्थाओं के विकास के कारण निरर्थक मानने की भूल की गई है। अर्थात् विकसित राष्ट्रों

में इसकी उपयोगिता सीमित रह गई है। परन्तु भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में लोकतंत्र की सुदृढता से स्थापना करने हेतु इसकी अति आवश्यकता है। भारत जैसे राष्ट्र मेंजब तक राजनीतिक दलोंसमाज में दबाव समूहोंका समुचित रूप से विकास न हो जाए, राजनीतिक संस्थाओं औरप्रक्रियाओं में स्थायित्व न आ जाये, जनता राजनीतिक जागरूकता के साथ उत्तरदायित्व की भावना से युक्त न हो जाए तथा शासक वर्ग जनकल्याण कार्यों में राजनीतिक शक्ति का मनमानें ढंग से नहीं बल्कि विधिक रूप से, स्वीकृत विधियों के अनुसार प्रयोग न करने लग जाए तब तक इस सिद्वांत का बना रहना एक वास्तविकता है।

2. नियन्त्रण व संतुलन सिद्धात –

नियन्त्रण व संतुलन सिद्वान्त को शक्ति पृथक्करण सिद्वांत का नवीन रुप कहा जा सकता है। इस सिद्वान्त के अनुसार सरकार के तीनों अंगों (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका) को इस प्रकार अन्तर्सम्बन्धित बनाया जाता है, कि जिससे कोई भी अंग एक दूसरे पर हावी नहीं हो सके और अपने आप में इतना स्वतंत्र और सर्वोच्च भी नहींबन जाये की, वह व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए वास्तविक खतरा बन जाए और प्रशासनिक व्यवस्था के संचालन में भी समस्याऐं उत्पन्न करे। इसके लिए शासन शक्तियों को नियन्त्रित रखने के लिए आपस में संतुलित कर दिया जाता है। जैसे की इस कथन में कहा गया है कि **शक्ति, शक्ति द्वारा ही संतुलित हो सकती है।**

शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण का सिद्धात निरपेक्ष रुप में न तो प्रयोग में लाया जा सकता है और नही वर्तमान परिवर्तित प्रशासनिक व्यवस्थाओं में उपयोगी हो सकता है। अब यह मत प्रचलित है कि **शक्तियों का पूर्ण पृथक्करण न तो सम्भव है और नही वांछित है**(*Complete seperation of powers is neither possible nor desirable*)। यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जब तक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्थाऐं विद्यमान है तब तक यह तथ्य उचित माना जायेगा एवं व्यवहार में लागू होगा कि **शक्तियों का आंशिक सीमित पृथक्करण सम्भव भी है, और वांछित भी है** (Limited seperation of powers is both desirable and possiable) क्योंकि लोकतंत्र शासन व्यवस्थाओं में सरकारों का संचालन राजनीतिक दलों के हाथों में रहता है। राजनीतिक दल बहुमत के आधार पर सत्ता में आते है। यह बहुमत न तो निरपेक्ष होता है, न कि अधिक लोगों का मत होता है, अपितु यह सापेक्ष बहुमत होता है। अतः इन लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में दल आधारित सरकार, द्विदलीय व्यवस्था वाले राज्यों को छोड़कर प्रतियोगी दल पद्धति व्यवस्थाओं में अधिकतर अल्पमत ही होती है। सत्तारूढ़ दल हमेशा अपने आपको सत्ता में बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय हितों के स्थान पर दलीय हितों पर ध्यान केद्रित करने लग जाता है। इस प्रकार के विशेष सन्दर्भ में

(विकासशील देशों) में शक्ति का सीमित व आंशिक पृथक्करण आवश्यक व उपयोगी हो जाता है।

अतः **शक्ति पृथक्करण** सिद्धान्त के स्थान पर **नियन्त्रण व संतुलन सिद्वान्त** वर्तमान में अधिक उपयोगी एवं व्यावहारिक है। सरकार के तीनों अंगों के मध्य कार्य विभाजन रखते हुऐ भी आवश्यक है कि इनमें परस्पर सम्बन्ध और सम्पर्क की ऐसी व्यवस्था व्याप्त रखी जाए कि वे एक दूसरे पर नियन्त्रण और संतुलन बनाये रख सके। इसके बिना सरकार में एकता व समरूपता की भावना नहीं आ सकती है। शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त को निरपेक्ष रुप से लागू करना सम्भव नहींहोने के कारण इस सिद्धान्त को एक अन्यसिद्वान्त, नियन्त्रण और संतुलन सिद्धात के साथ संयुक्त किया जाता है। जिससे की शक्तियों के पृथक्करण से होने वाली हानियोंसे बचा जा सके तथा शासन के प्रत्येक अंग को एक दूसरे पर इस प्रकार निर्भर कर दिया जाए तथा जिससे कोई भी विभाग अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र होते हुये भी मनमानी नहीं कर सके। इससे शासन के विविध भाग एक–दूसरे से संतुलित हो जाते हैं, क्योंकि किसी भी अंग के द्वारा अपनी शक्तियों के दुरूपयोग को दूसरे अंग के नियन्त्रण से रोक दिया जाता है।

- **वर्तमान भारत में नियन्त्रण–सन्तुलन सिद्धान्त की स्थिति –**

भारत में संसदीय शासन प्रणाली में शक्ति पृथक्करण और नियन्त्रण व संतुलन सिद्धान्तों की सीमित व्यवस्था की गई है। जबकि सैद्धान्तिक रूप से अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन मेंइसकी विस्तृत व्यवस्था मिलती है। भारतमें संसदीय प्रणाली के कारण कार्यपालिका व व्यवस्थापिका का घनिष्ठ सम्बन्ध है और इस कारण वास्तविक कार्यपालिका (राष्ट्रपति) तथा विधानमण्डल अपने दोनों सदन (लोकसभा, राज्यसभा)सहित संसद नामक संस्था बनाते हैं। संसद कार्यपालिका व न्यायपालिका पर,कार्यपालिका संसद एवं न्यायपालिका पर, न्यायपालिका संसद और कार्यपालिका पर नियन्त्रण व संतुलन रखते है। भारत में संसदीय देशों की भाँति शक्ति पृथक्करण सीमित है तथा नियन्त्रण व संतुलन पर अधिक बल दिया गया है। यहाँ भी न्यायपालिका को पूर्ण रूप से पृथक रखने की व्यवस्था होती है।भारत में संघ सरकार और राज्य सरकारों के तीनों अंगों (व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका) द्वारा एक दूसरे पर नियन्त्रण व संतुलन की प्रक्रिया को इस प्रकार से समझा जा सकता है –

1.(1) व्यवस्थापिका द्वारा कार्यपालिका पर नियन्त्रण व संतुलन –

(i) भारत की संघीय कार्यपालिका प्रमुख राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन में संसद के दोनों सदनों (लोकसभा और राज्यसभा) के निर्वाचित और राज्यों के विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों से बना निर्वाचन मण्डल ही भाग लेता है। (अनुच्छेद 54,55)

(ii) भारतीय संसद भारत के राष्ट्रपति को महाभियोग प्रस्ताव द्वारा पद से हटा सकती है। (अनुच्छेद 61)

(iii)संविधान द्वारा राष्ट्र की वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् प्रधानमंत्री और मंत्रीपरिषद् को लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी बनाना। (अनुच्छेद 73 (3))

(iv)राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत बजट पर संसद की स्वीकृति की अनिवार्यता। (अनुच्छेद 112)

(v) नवीन अखिल भारतीय लोक सेवाओं के सृजन हेतु संसद का उच्चसदन (राज्यसभा) ही प्रस्ताव रख सकता है।

1(2) व्यवस्थापिका द्वारा न्यायपालिका पर नियत्रंण व सतुंलन –

(i) सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीशों व राज्यों के उच्चन्यायालयों के न्यायाधिपति व न्यायाधीशों के पदावधि, संख्या, इत्यादि पर विधि निर्माण की शक्ति संसद को दी गई है। (**अनुच्छेद 124**)

(ii) संसद ही सर्वोच्च न्यायालय और राज्य उच्चन्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीशों के विरूद्ध महाभियोग प्रस्ताव पारित कर पद मुक्त कर सकती है। (**अनुच्छेद 124 (4)**)

(iii) अनुच्छेद 122 यह उपबन्धित करता है कि किसी प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की कथित अनियमितता के आधार पर संसद की कार्यवाही की विधि मान्यता पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। संसद का कोई भी पदाधिकारी या सदस्य, जिसमें संविधान के अधीन संसद की प्रक्रिया या कार्य-संचालन का विनियमन करने की व्यवस्था करने की शक्ति निहित है उन शक्तियों के प्रयोग के विषय में किसी न्यायालय की अधिकारिता के अधीन नहीं होगा।

2. (1) कार्यपालिका द्वारा व्यवस्थापिका पर नियत्रंण व संतुलनः–

(i) राष्ट्रपति संसद के सत्र को आहूत करता है तथा सत्रावसन भी करता है। प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में राष्ट्रपति दोनों सदनों के संयुक्त सत्र मेंअभिभाषण करताहै। (**अनुच्छेद 85,87**)

(ii) संसद के दोनों सदन सत्र में नहीं होतो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है। (**अनुच्छेद 123**)

(iii) प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति संसद (लोकसभा) को भंग कर सकता है। नयी संसद के गठन की धोषणा कर सकता है। (**अनुच्छेद 85**)

(iv) राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के द्वारा ही संसद द्वारा पारित विधेयक विधि का रूप ले सकते है। (**अनुच्छेद 111**)

(v) प्रदत्त व्यवस्थापन के कारण भी कार्यपालिका द्वारा आंशिक रुप से नियम निर्माण करना (अब व्यवहार में कार्यपालिका ही अनेक कानून प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाती है)

(vi) वह संसद के किसी के सदन को संदेश भेज सकता है।(**अनुच्छेद 86**)

(vii) नये राज्यों के निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों या नामों को बदलने के लिए कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद में पेश नहीं किया जा सकता है। (**अनुच्छेद 3**)

(viii) व्यापार, वाणिज्य की स्वतंत्रता पर निर्बन्धन लगाने वाला राज्य का कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना राज्य विधानमण्डल में पेश नहीं किया जा सकता है। (**अनुच्छेद 304**)

2.(2) कार्यपालिका द्वारा न्यायपालिका पर नियत्रण व संतुलन–

(i) राष्ट्रपति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करना। राज्यों के उच्च न्यायालयों केन्यायाधिशों की नियुक्ति भी वही करता है।

(ii) राष्ट्रपति ही सर्वोच्च न्यायालय एवं राज्य न्यायालयोंद्वारा दिये गये प्राणदण्ड को निरस्त या कम कर सकता है। इस प्रकार से राष्ट्रपति को क्षमादान की शक्ति प्रदान की गई है।(**अनुच्छेद 72)**

3. न्यायपालिका द्वारा व्यवस्थापिका व कार्यपालिका पर नियंत्रण व संतुलन–

(i) भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था है, अतः उच्चतम न्यायालय केन्द्र तथा राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करता है इसलिए वह संविधान का संरक्षक भी है।

(ii) देश के विधानमण्डलों (केन्द्र व राज्यों)द्वारा बनाई गई विधियों को उच्चतम न्यायालय असंवैधानिक घोषित कर सकता है यदि ये विधियाँ संविधान के किसी उपबन्ध के साथ असंगति रखती है।

(iii) उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया संविधान के उपबन्धों का निर्वचन अंतिम होता है अतः यह व्यवस्थापिका व कार्यपालिका को नियन्त्रित करता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वर्तमान भारत में राजनीतिक पर्यावरण के अनुरूप शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त को अमेरिका की भांति पूर्णतः लागू न करके ब्रिटीश मॉडल अर्थात् संसदीय प्रणाली के अनुरूप सीमित रूप में प्रयुक्त किया है। साथ ही साथ संघीय सरकार के तीनों अंगों को सुव्यवस्थित रखने एवं उनके सन्तुलित ढंग से कार्य करने हेतु नियन्त्रण संतुलन सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। जिससे जनता को किसी भी अंग

विशेष की निरंकुशता से संरक्षित किया जा सके। इसलिए भारत में संविधान के अन्तर्गत जनता को सर्वोच्च शक्तिधारी बनाया गया है। यह तथ्यसुशासन की अवधारणाको सुस्पष्ट करने में सहायक है।

5. शासक वर्ग राजा बनाम निर्वाचित प्रमुख प्रस्थिति एवं दायित्व :

5.I शासक वर्ग–राजा

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार प्राचीन काल में भारत में जब बहुत छोटे–छोटे जनपदों की सत्ता थी, और उनमें प्रायः एक एक ही जन (कबीला) का निवास होता था तो उनमेंराजा की स्थिति विशेष महत्व की नहीं होती थी। इस कारण पौराणिक अर्थशास्त्रकार **आचार्य भारद्वाज** की दृष्टि में राजा की तुलना में **अमात्य** का महत्व अधिक था क्योंकि उनके द्वारा मन्त्रफल की प्राप्ति एवं राज्य के संकटों का प्रतिकार किया जाता था और उनके बगैर राजा अशक्त हो जाता था। अतः वे राजा सेअधिक महत्व रखते थे। **आचार्य विशालाक्ष** का मानना था कि अमात्यों की तुलना में **जनपद** अधिक महत्व के होते है, क्योंकि सेना और कोश की शक्ति इस पर निर्भर रहती है। यदि जनपद दुर्बल हो जाए तो राजा या उसके अमात्य कुछ नहीं कर सकते है। इसी प्रकार **पराशर, पिशुन, कौणपदन्त** आदि अन्य आचार्यों ने दुर्ग, कोश आदि की महत्ता का प्रतिपादन किया था। परन्तु कौटिल्य ने इन सबके मतों का खण्डन कर राज्य संस्था में **राजा** को सबसे अधिक महत्व दिया था। क्योंकि विविध जनपदों एवं गणराज्यों को जीत कर जिस विशाल मागध साम्राज्य का निर्माण हुआ था, उसकी शासन–शक्ति स्वाभाविक रुप से राजा या सम्राट में केन्द्रित थी। इसमें राजा की ही स्थिति कूटस्थानीय (केन्द्रीय) थी। उसी ने कोश, सेना, दुर्ग आदि की सुव्यवस्था कर अपनी शक्ति का विस्तार किया था। अमात्यों (मन्त्रिण) व अन्य प्रशासकीय अधिकारी वर्ग व कार्मिकों की सहायता से जनता के कल्याण हेतु सुशासन (Good Governance) की स्थापना कर कोश, सेना, मित्र इत्यादि के साथ मिलकर सुदृढ़ विदेश नीति के द्वारा राष्ट्र को शक्तिसम्पन्न बनाया। कौटिल्य ने राजा के पद के लिए वंशानुक्रमगत, कुलीन तथा स्थानीय व्यक्ति की नियुक्ति पर जोर दिया था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह तथ्य पता चलता है कि आचार्य राजा को आजीवन पद पर बनाये रखना चाहते थे लेकिन इसके लिए उसका श्रेष्ठ प्रशासक होना आवश्यक था अन्यथा जनता क्रुद्ध होकर तथा शत्रुओं से मिलकर उसका विनाश कर सकती थी।

1. राजा की प्रस्थिति –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा की प्रस्थिति (Status) को दो रूपों में समझाया गया है। जिसमें से एक रूप कूटस्थानीय (केन्द्रीय सत्ताधारी) प्रस्थिति एवं दूसरा रूप चक्रवर्ती (विश्वविजेता) प्रस्थिति को बतलाता था। इन दोनों प्रस्थितियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

(i) राजा की कूटस्थानीय प्रस्थिति–

राजा की कूटस्थानीय प्रस्थिति के बारे में कौटिल्य का मत था कि मन्त्री, पुरोहित आदिभृत्य वर्ग की और शासन के विविध अध्यक्षों व अमात्यों की नियुक्ति राजा ही करता है। यदि राजपुरुषों, कोश तथा जनता पर कोई विपत्ति आए तो उसका प्रतिकार भी राजा द्वारा ही किया जाता है इन सबकी उन्नति भी राजा के हाथों में ही होती है। यदि अमात्य ठीक न हो, तो राजा उन्हें हटाकर नये अमात्यों की नियुक्ति कर सकताहै।विद्वान लोगों का सम्मान कर और दुष्टों का दमन कर राजा ही सबका कल्यान करता है, यदि राजा सम्पन्न हो तो उसकी समृद्धि से प्रजा भी सम्पन्न होती है। राजा का जो शील हो, वही शील प्रजा का भी होता है, यदि राजा उद्यमी व उत्थानशील हो तो प्रजा भी उत्थानशील होती है। यदि राजा प्रमादी हो तो प्रजा भी प्रमादी हो जाती है। अतः राज्य मेंराजा ही कुटस्थानीय प्रस्थिति रखता है।जब साम्राज्य का निर्माण व स्थिति राजा पर निर्भर होतो उसे भी एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए। कोई साधारण व्यक्ति राज्य में **कूटस्थानीय** स्थिति प्राप्त नहीं कर सकता है।

(ii)राजा की चक्रवर्ती प्रस्थिति –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह वर्णित है कि राजा को चातुरन्त साम्राज्य के आदर्श को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। आचार्य का मन्तव्य है, कि **सारी पृथिवी एक देश है। उसमें हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त सीधी रेखा खींचने से जो एक सहस्त्र यौजन विस्तृत प्रदेश है वह एक चक्रवर्ती राज्य का क्षेत्र है।** इस देश (भारत भूमि) को एक चक्रवर्ती राजा के अधीन होना चाहिए। ये मत कौटिल्य के सम्पूर्ण भारत एवं उसके शासक को विश्व में एक केन्द्रिय शक्तिशालीरूप में प्रतिष्ठित करने के आदर्श की पुष्टि करता है।

2. राजा के गुण एवं योग्यताऐं–

कौटिल्य ने राजा में निम्नलिखित गुणों एवं योग्यताओं का होना आवश्यक बतायाहै –

(1) अभिगामिक गुण –वह उच्च कुल का हो (महाकुलीन) उसमें दैवबुद्धि हो,वह दूरदर्शी हो, वृद्धजनों, (Elders)की बात सुनने वाला हो, धार्मिक हो सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ, परस्परविरोधी

बात न करे, कृतज्ञ हो, उसका लक्ष्य ऊँचा हो, उसमेंअत्यधिक उत्साह हो, शीघ्रनिर्णय करने वाला हो, उसमें सामन्त राजाओंको वश में रखने की क्षमता हो, दृढ़ बुद्धि, गुणसम्पन्न परिवार वाला और शास्त्रबुद्धियुक्त गुण हों। ये राजा के अभिगामिक गुण कहलाते है।

(2) **प्रज्ञागुण** –शास्त्रचर्चा, शास्त्रज्ञान, प्रत्येक बात को ग्रहण कर लेना, ग्रहण की हुई बात को याद रखना, स्मरण की गई बात का विशेष ज्ञान रखना, तर्क–वितर्क द्वारा किसी बात की तह को पकड़ना, बुरे पक्ष को त्यागना और गुणी पक्ष को ग्रहण करना इत्यादि राजा के प्रज्ञागुण कहलाते हैं।

(3,) **उत्साह गुण** – शौर्य, अमर्ष, क्षिप्रकारिता और दक्षता ये चार गुण राजा के उत्साह गुण कहलाते हैं।

(4) **आत्मसम्पन्नगुण** – कौटिल्य के मतानुसार वाग्मी, प्रगल्भ, स्मरणशील, बलवान, संयमी, उन्नतमन, निपुणसवार, संकटग्रस्त शत्रु पर आक्रमण करने वाला, विपत्ति के समय अपनी सेना की रक्षा करने वाला, किसी के उपकार या अपकार का यथोचित प्रतिकार करने वाला, लज्जावान, दुर्भिक्ष–सुभिक्ष के समय अन्न इत्यादि का उचित उपयोग करने वाला, दीर्घदर्शी–दूरदर्शी, अपनी सेना के युद्धोचित देश–काल–उत्साह एवं कार्य की स्वयंदेखरेख करने वाला, सन्धि के प्रस्तावों को समझने वाला, युद्ध में चतुर, सुपात्र को दान देने वाला, प्रजा को कष्ट दिये बगैर ही कोश बढ़ाने वाला, शत्रु कीकमजोरियों से लाभ उठाने वाला, अपने मन्त्र को गुप्त रखने वाला, दूसरों को अपमानित न करने वाला, काम–कोध्र,लोभ–मोह, चपलता–उपताप व चुगलखोरी से सदा अलग रहने वाला, प्रियभाषी, हँसमुख उदारभाषी, और वृद्धजनों के उपदेशों व आचारों को मानने वाला, इन गुणों से युक्त राजा **आत्मसम्पन्न** कहा जाता है।[58] इसमें सन्देह नहीं है कि राज्य के अन्य अंगों (प्रकृतियों) को भी सुदृढ़ होना चाहिए पर यदि राजा सुयोग्य व शक्तिशाली हो तो वह राज्य के अन्य सभी अंगों की निर्बलताओं को दूरकर सकेगा अन्यथा अन्य प्रकृतियाँ उसका तथा उसके राज्य का विनाश कर देंगी।

(5) **विद्याविनीत गुण** –

कौटिल्य ने यह मत प्रतिपादित किया है कि जब तक राजा को समुचित शिक्षा (विद्या) न दी जाए, बचपन से ही उसे नियन्त्रण (विनीत) न रखा जाए अर्थात् उसे **विद्याविनीत** न किया जाए तो वह कभी भी आदर्श राजा नहीं बन सकता है,लेकिन साथ ही कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि विद्या एवं प्रशिक्षण द्वारा भी ऐसे ही व्यक्ति में उत्कृष्ट गुण विकसित किये जा सकते है जिसमें बीज रुप में यह पहले से ही विद्यमान हो, जिस प्रकार अच्छे घट के निर्माण के लिए, अच्छी मिट्टी की आवश्यकता होती है, वैसे ही अच्छे राजा

के लिए भी उत्कृष्ट **दृव्य** अपेक्षित है।जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व रुपी दृव्य उत्कृष्ट प्रकार का न हो, उसे प्रशिक्षण द्वारा भी उत्कृष्ट नहीं बनाया जा सकता है। विद्या व प्रशिक्षण द्वारा केवल ऐसे व्यक्ति को ही विकसित किया जा सकता है, जिसमें श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान और ऊहापोह की क्षमता हो। ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन कराके और अनुभवी विद्वानों के सत्संग में रखकर इस प्रकार प्रशिक्षित किया जा सकता है कि वह राजा के रूप में अपने कर्त्तव्यों का भलीभांति पालन कर सके।[59]

(6) इन्द्रियजय गुण–

कौटिल्य राजा के इन्द्रियजय होने को सर्वाधिक महत्व देते थे। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष इन छः शत्रुओं (भावनाओं) पर विजय प्राप्त करके राजा को इन्द्रियजयी होना चाहिए। कौटिल्य की सम्मति में इन्द्रियों पर विजय ही सब शास्त्रों का मूल तत्व है। जो भी राजा इन्द्रियजयी नहीं होगा वह न केवल अपना विनाश करेगा वरन् अपने बन्धु–बान्धव और अपने राष्ट्र के विनाश का कारण भी बनेगा। इस गुण की प्राप्ति के लिए कठोर साधना की आवश्यकता होती है।

(7) राजर्षि गुण –

कौटिल्य ने राजा के लिए राजर्षि (साधु स्वभावयुक्त) गुणों से युक्त होने की बात कही है। इस गुण के विकास के लिए उनका माननाथा कि शासक को इन्द्रियजय होना चाहिए। उसे विद्वानोंके साथ चिन्तन मनन कर अपनी बुद्धि का विकास करना चाहिए। वह समय–समय पर अपने गुप्तचरोंकी सहायता से स्वराष्ट्र और परराष्ट्रमें चलने वाली गतिविधियों की जानकारी रखेताकि देश को आन्तरिक एवं बाह्य दृष्टि से मजबूत बना सके उसे राज्य में उद्योग अर्थात् आर्थिक गतिविधियों के द्वारा राज्य के **योगक्षेम** का सम्पादन करना चाहिए। राजा को जनता को अपने–अपने स्वधर्म पर दृढ़ बनाये रखने के लिए राजकीय नियमों द्वारा नियन्त्रण रखना चाहिए। प्रजा में शिक्षा का प्रचार प्रसार करे। प्रजाजनों को धन सम्मान प्रदान कर अपनी चाहिए। प्रजा को शिक्षित और विनम्र बनाये रखने के लिए राज्य में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना चाहिए। प्रजाजनों को धन–सम्मान प्रदान कर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखना चाहिए। सदैव दूसरों के हित की कामना करनी चाहिए।

कौटिल्य ने राजा के लिए कुछ आचार–व्यवहार**निषेधात्मक** बताया है, जैसे –राजा को पराई महिला, पराया धन,हिंसकप्रवृति,कुसमय शयन, चंचलता, झूठ बोलना, अविनीत प्रवृति बनाये रखना इत्यादि। कौटिल्य ने यह भी कहा है कि जो भी व्यक्ति उपर्युक्त वर्णित आचरणों को करने वाले हों उनकी संगत का भी राजा को त्याग करना चाहिए।

उसका ये कर्त्तव्य भी है कि वह अधर्माचरण और अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दें। उसे त्रिवर्ग (धर्म,अर्थ,काम) का संतुलित प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि इस त्रिवर्ग का असंतुलित प्रयोग अनिष्टकारी सिद्ध होता है।

(8) विजिगीषु गुण–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार जो राजा आत्मसम्पन्न, अमात्य आदि **द्रव्य प्रकृति सम्पन्न** और नीति का आश्रय लेने वाला हो, उसको **विजिगीषु** कहते हैं। इस गुण से युक्त राजा का एक मात्र लक्ष्य **विजिगीषा** अर्थात् पड़ौस के सभी जनपदों को अपने आधीन करने के लिए सदैव प्रयत्नशील होना है। तभी वह विजिगीषु राजा के रुप में प्रतिष्ठित हो सकता है।

इस चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा को जो व्यक्ति **कूटस्थानीय** होकर पूरा करना चाहता है, वह यदि सर्वगुण–सम्पन्न न हो, यदि वह राजर्षि का जीवन व्यतीत न करे और काम, क्रोध आदि शत्रुओं को यदि अपने वश में न कर सकेतो वह कैसे इस आकांशा की पूर्ति करने में सफल हो सकता है। अतः कौटिल्य के **विजिगीषु को आदर्श** पुरूष बनने का प्रयत्न करना ही चाहिए, तभी वह राष्ट्र में सुशासन को स्थापित कर जनता को सुशासन प्रदान करने में सक्षम हो सकता है।

3. राजा के पद पर चयन –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजा के पद के चयन हेतु प्रयुक्त की जाने वाली किसी चयन प्रक्रिया के बारे में स्पष्टतः कुछ नहीं लिखा है। किन्तु अर्थशास्त्र में वर्णित तथ्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे इस पद के लिए व्यक्ति विशेष वंशक्रमानुगतता की अपेक्षा कुलीनता एवं योग्यता का समर्थन करते थे।

4. राजा के राजकीय कार्य–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा के राज्य सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का भी विस्तार से वर्णन किया है। कौटिल्य का मत था कि राजा का उन्नतिशील अर्थात् कार्यशील होना अतिआवश्यक है क्योंकि उसके उन्नतिशील होने पर ही उसके अधीन उसका सारा भृत्यवर्ग (राजकर्मचारी वर्ग) उन्नतिशील होता है। इसके विपरित राजा के प्रमादी होने पर ये कर्मचारी वर्ग भी प्रमादी हो जाएगा। इस स्थिति में यह प्रमादित कर्मचारीवर्ग राज कार्यों को चुपचाप ही पी जाता है (अर्थात् राजकीय कार्यों को नियमानुसार न करके अपनी इच्छानुसार करना) ऐसा राजा अपने शत्रुओं के द्वारा भी धोखा खा जाता है। इसलिए राजा के लिये यह उचित है कि वह अपने आप को सदा ही उन्नतिशील बनाये रखे।

कौटिल्य ने राजा के राजकीय कार्यों को दो भागों में विभाजित किया है जो इस प्रकार से है –

(1)राजा के दैनिक राज कार्य –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कहा है कि राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए राजा दिन और रात को आठ घड़ियों में बाँट दे।फिर इनके अनुसार ही अपने दैनिक राजकार्यों को कार्यान्वित करे। इसके अनुसार राजा दिन के पूर्वार्द्ध के **प्रथम** भाग में रक्षा–सम्बन्धी कार्यों का निरिक्षण करे। साथ ही में बीते हुए दिन के आय–व्यय की जाँच भी करे। **दूसरे** भाग में वह पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे।**चौथे** भाग में बीते दिन कि अवशिष्ट आमदनी को सँभालें तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्षों आदि की नियुक्ति भी करे। दिन के उत्तरार्द्ध के पांचवें भाग में वह मन्त्रिपरिषद के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में विचार विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों व गुप्त बातों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करे।**सातवें** भाग में वह हाथी,घोडें,रथ,तथा अस्त्र–शस्त्रों का निरिक्षण करे। **आठवें** भाग में राजा सेनापति के साथ युद्ध आदि के सम्बन्ध में विचार–विमर्श करे। **रात्रि के प्रथम भाग** वह गुप्तचरों से मुलाकात करे।रात्रि के **छटे भाग**में वह अर्थशास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में सम्पादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। **सातवें** भाग में राजा गुप्त–मंत्रणा करें और गुप्तचरों को उनके लिए निश्चित किए गये स्थानों पर भेजे। राजा वैसे शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियों के अनुसार स्वेच्छा से अपनी कार्य–व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता हैं।

(2)राजा के राजसभा सम्बन्धित दायित्व –

कौटिल्य ने राजा के दैनिक राजकार्यों के अतिरिक्त राजसभा से सम्बन्धित राजकीय उत्तरदायित्वों का भी उल्लेख किया है। ये निम्न शीर्षको के अन्तर्गत इस प्रकार है –

(1) मुलाकात सम्बन्धी दायित्व – राजा को चाहिए की जब वह राजसभा में उपस्थित हो तब प्रत्येक कार्यार्थी (राजकीय कार्मिक व जनता) को बिना किसी औपचारिकता के प्रवेश करने और मुलाकात करने की अनुमति दे दे, क्योंकि जो शासक जनता से कठिनाई से मेल मुलाकात करता है, उसके निकट कार्यरत राजकर्मचारी उसके कार्यों को उलट–पुलट (गलत रुप से प्रस्तुत) कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप राजा के अमात्य एवं जनता आदि उससे कुपित हो जाते है और राजकार्यों में शिथिलता आती है तथा राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है।

(2) निरिक्षण सम्बन्धी दायित्व–राजा द्वारा धार्मिक संस्थानों (देवालयों, ऋषि आश्रमों, घूर्त पांखण्डियों के केन्द्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थानों) पशुशाला इत्यादि स्थानों का और

बालक, वृद्ध, दुःखी, अनाथ तथा स्त्रियों से सम्बद्ध कार्यों का स्वयंमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करना चाहिए। उपरोक्त कार्यों में से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है या उसकी अवधि बीत रही है तो उस कार्य को पहले देखे।

(3) राजकीय कार्यों से सम्बन्धी दायित्व – राजा सर्वप्रथम उस कार्य को देखे, जिसकी मियाद (तय समय) बहुत बीत चुकी हो। इसको देखने में वह अधिक विलम्ब न करे क्योंकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य (योजना) या तो कष्टसाध्य हो जाता है या सर्वथा असाध्य हो जाता है।

(4) विद्वानों से संबंन्धी दायित्व – राजा पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादन–पूर्वक देखे। तपस्वियों तथा मायावी लोगों के कार्यों का निर्णय राजा अकेला ना करके वेदविद् (वेदों के ज्ञाता) विद्वानों के साथ बैठकर उनके परामर्श से करे। इससे वह अकेला इन लोगों के क्रोध का कारण नहीं बन सकेगा, क्योंकि ये निर्णय राजा का नहीं वरन बहुमत का निर्णय है।

(5) नैमित्तिक दायित्व– इसके अर्न्तगत उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना,दान देना, शत्रु और मित्रों में उनके गुण–दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना इत्यादि कार्य सम्मिलित है। ये सब राजा के नैमित्तिक कर्तव्य (व्रत) हैं।

(6) आर्थिक कार्योसम्बन्धी दायित्व – कौटिल्य के मतानुसार उद्योग ही अर्थ (धन) का मूल है और इनके विपरीत,उद्योगहीनता ही अनर्थों (धन की कमी) को देने वाली है। इसलिए राजा के उद्योगशील होकर व्यवहार–सम्बन्धी तथा राज्य–संबंधी कार्यों को उचित रीति से पूरा करना चाहिए। यदि राजा उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थो (धन,ऐश्वर्य) और प्राप्तव्य अर्थों दोनों का ही विनाश हो जाता है, किन्तु अगर राजा उद्योगी है तो वह शीघ्र ही उद्योग (आर्थिक क्रियाओं) का मधुर फल (घन) पाता है और इच्छित सुख सम्पदा का उपभोग करता है।

(7) जनता के लोककल्याण सम्बन्धी दायित्व – ये कौटिल्य द्वारा उल्लेखित राजा का सर्वप्रमुख उत्तरदायित्व था। जो उनके राज्य और राजा के संदर्भ में लोककल्याणकारी आदर्श के चिंतन का सार है। यही वह दायित्व है, जो सुशासन की अवधारणा की आधारशिला है। कौटिल्य ने इसको इस तरह से अभिव्यक्त किया है –

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां चहिते हितम्।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।[60]

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है। अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं,बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के संपादन करने में है।

उपरोक्त श्लोक से यह सिद्ध होता है कि आज सेढाई हजार वर्ष पूर्व आचार्य कौटिल्य ने भारत भूमि पर महान सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन में सुशासन की अवधारणा कोविकसित करराज्य में कार्यान्वित कर दिया था।

5.II निर्वाचित राष्ट्र प्रमुख राष्ट्रपति–

भारतीय संविधान ने भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अंतर्गत संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की है। संसदीय सरकार में राष्ट्रपति सांविधानिक अध्यक्ष होता है। लेकिन वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित होती है, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्रिपरिषदके सदस्य जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते है यद्यपि **अनुच्छेद 53** द्वारा संघ की कार्यपालिका–शक्ति राष्ट्रपति में निहित की गई है, लेकिन **अनुच्छेद 74** में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है, वह उसका प्रयोग मन्त्रिपरिषद् की सहायता और मन्त्रणा से ही करेगा। इसके विपरित, अमेरिका में जहां अध्यक्षात्मक प्रकार की सरकार है। राष्ट्रपति इस अध्यक्षात्मक प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका के रुप में होता है। उसका निर्वाचन सीधे जनता द्वारा होता है। वह विधायिका के प्रति उतरदायी नहीं है। राष्ट्रपति स्वयं अपने मन्त्रीमण्डल के मन्त्रियों की नियुक्ति करता है और वह उन्हें पदच्युत भी कर सकता है। राष्ट्रपति के मन्त्री (सचिव) न तो विधायिका के सदस्य होते हैं और नही उसके प्रति उतरदायी होते है।

1. राष्ट्रपति की संवैधानिक प्रस्थिति –

संविधान के **अनुच्छेद 52** यह उपबन्धित करता है कि भारत का एक राष्ट्रपति होगा। **अनुच्छेद 53** यह कहता है कि ''**संघ की कार्यपालिका–शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारी के द्वारा करेगा।**''**एम्परर** बनाम **शिवनाथ**'' के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि ''**अधीनस्थ अधिकारियों**'' पदावली के अन्तर्गत '**एक मन्त्री**' भी शामिल है।

संविधान में'**कार्यपालिका शक्ति**' शब्द की कोई परिभाषा नहीं है, और न ही उसकी कोई सर्वांगीण परिभाषा देना सम्भव है क्योंकि आधुनिक युग में विशेषतः संचार प्रद्यौगिकी के इस युग में राज्य के क्रियाकलाप अत्यन्त विस्तृत हो गये हैं, वे राष्ट्रीय क्षेत्र तक ही नही वरन् वैश्विक स्तर तक विस्तृत हो गये हैं। अनुच्छेद 73 केवल संघ की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार का उल्लेख करता है। जिसके अनुसार संघ की कार्यपालिका–शक्ति का विस्तार

उन विषयों के सम्बन्ध में होगा जिस पर संसद को विधि बनाने की शक्ति है। इसका अर्थ यह है कि संघ की कार्यपालिका–शक्ति संसद की विधानबनाने की शक्ति की सहविस्तारी है। सामान्यतः कार्यपालिका–शक्ति का उन राजकीय कार्यों से तात्पर्य है जो विधायी और न्यायिक कार्यों को निकालने के पश्चात् शेष बचते हैं। वह संघीय विधायिका का आवश्यक अंग है। राष्ट्रपति ही देश के उच्चाधिकारियों की नियुक्ति करता है। वह देश की सेना का सर्वोच्च सेनापति है।

1. राष्ट्रपति की प्रस्थिति में परिवर्तन –

भारतीय संविधान द्वारा निर्धारित राष्ट्रपति की प्रस्थिति में कुछ संवैधानिक संशोधनों द्वारा परिवर्तन हुए है। इन संवैधानिक संशोधनों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

(1) 42 वें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति–

42 वें संशोधन से पूर्व **अनुच्छेद 74** ये उपबन्धित करता था कि राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने हेतु सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा। **अनुच्छेद 74** के खण्ड (2) अनुसार इस प्रश्न पर कि क्या मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और दी तो क्या दी, न्यायालय में इसके लिए आपत्ति नहीं उठायी जा सकेगी। इस खण्ड के उपबन्ध से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच हुए संवाद गोपनीय होते हैं और उसकी जाँच न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती है। **एस.आर.बोम्मई** बनाम **भारत संघ** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि **अनुच्छेद 74** केअधीन राष्ट्रपति को मन्त्रियों द्वारा दिया गया परामर्श न्यायिक जाँच से परे है किन्तु जिस आधारों पर ऐसा परामर्श आधारित होता है वे परामर्श के भाग नहीं होते है; अतः उनकी न्यायिक जाँच की जा सकती है।

अनुच्छेद 75 यह उपबन्धित करता है कि वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा तथा अन्यमन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह से करेगा खण्ड (2) यह कहता है कि मन्त्रिगण राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त (During The pleasure) अपने पद धारण करेंगे। **खण्ड** (3) यह स्पष्ट करता हैकि मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति सामूहिक रुप से उत्तरदायी होगी।

उपर्युक्त उपबन्धों के संकीर्ण और शब्दिक व्याख्या के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में राष्ट्रपति कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान है, और यदि वह चाहे तो तानाशाह बन सकता है। **अनुच्छेद 53में प्रयुक्त शब्दावली उसको वास्तविक शासक बनने का अवसर प्रदान करती है।** यह सत्य है कि उसे अपने कार्यों को मन्त्रिमण्डल की राय से करना चाहिये, लेकिन इस अनुच्छेद की शब्दावली में यह नहीं कहा गया है कि वह मन्त्रिपरिषद् की मन्त्रणा पर कार्य करने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की राय के

बिना अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है अनुच्छेद 74 (2) से इस विचार को समर्थन मिलता है जो कि यह कहता है कि इस प्रश्न पर की कोई मन्त्रणा मन्त्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई है या नहीं; न्यायालय की जाँच से परे है अर्थात् राष्ट्रपति ऐसी मन्त्रणा के बिना कार्य करता है तो उस पर आपत्ति नहीं उठायी जा सकती है।

एलेन ग्लैडहिल के मतानुसार भारतीय संविधान में कुछ ऐसे उपबन्ध है जो राष्ट्रपति को तानाशाह बना सकते हैं। यह आपातकाल की उद्घोषणा करके संसद भंगकर सकता है और बड़ी आसानी से सारी कार्यपालिका–शक्ति को अपने हाथों में ले सकता है। वह अध्यादेशों को जारी करके देश के लिए स्वयं विधि बना सकता है और प्रशासन चलासकता है, मूल अधिकारों को निलम्बित कर सकता है। देश की सर्वोच्च सेनाओं का सर्वोच्च समादेशक होने के नाते वह अपने विरूद्ध उठी शक्तियों को दबाने के लिए सेनाओं का प्रयोग करने में समर्थ है। इस प्रकार संविधान के उपबन्धों की अवहेलना किये बिना ही एक महत्वाकांक्षी राष्ट्रपति भारत का वास्तविक शासक बन सकता है।

लेकिन यदि हम अपने संविधान की पृष्टभूमि में अन्तर्निहित मूल भावना पर विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उपयुक्त मत सही नहीं है। हमने संसदीय प्रणाली का मूल आदर्श अपनाया है, उसके अनुसार राष्ट्र का प्रधान सांविधानिक प्रधान होता है और वास्तविक शक्ति जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के रूप में मन्त्रिपरिषद् एवं उसके प्रधान (प्रधानमंत्री) में निहित होती है, जो लोकसभा के प्रति उतरदायी होता है। हमारे संविधान निर्माताओं का विचार था कि राष्ट्रपति की स्थिति एक सांविधानिक प्रधान की है, और उसे अपनी शक्तियों का प्रयोग मन्त्रिपरिषद् की सलाह पर ही करना चाहिए। हमारे संविधान में वर्णित संसदीय प्रणाली–ब्रिटीश संसदीय प्रणाली से ली गई है।

संविधान सभा में राष्ट्रपति की स्थिति को स्पष्ट करते हुये **डॉ. अम्बेडकर** ने कहा है कि ''**भारतीय संविधान में राष्ट्रपति का वही स्थान है, जो इंग्लैण्ड के संविधान में वहाँ के सम्राट का है। वह राष्ट्र का प्रधान होता है, किंतु राष्ट्र का शासक नहीं। सामान्यतः वह मन्त्रिपरिषद् की मंत्रणा से बाध्य होगा। वह उनकी सलाह के विरूद्ध कुछ नहीं कर सकता और न वह उनकी सलाह के बिना ही कुछ कर सकता है।**''[61]इसप्रकार राष्ट्रपति राज्य शक्ति का प्रतीक अवश्यक है परन्तु वास्तविक शासक नहीं है।

संविधान सभा के अध्यक्ष **डॉ. राजेन्द्र प्रसाद** जो भारत के **प्रथम राष्ट्रपति** भी थे, उन्होंनेभी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है–''**यद्यपि स्वयं संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है जो राष्ट्रपति को मन्त्रियों की सलाह लेने के लिए बाध्य करे, फिर भी यह आशा की जाती है कि वे परिपाटियों (Conventions) जिसके अधीन सम्राट सदैव अपने**

मन्त्रियों की सलाह पर कार्य करता है, इस देश में भी प्रतिस्थापित की जायेंगी और राष्ट्रपति सभी मामलों में एक सांविधानिक राष्ट्रपति होगा।''

(2)42 वें संशोधन के द्वारा राष्ट्रपति की स्थिति –

42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा **अनुच्छेद 74** में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद् की सलाह को मानने के लिए बाध्य होगा। अनुच्छेद 74 में समाविष्ट की गई पदावली–''**राष्ट्रपति ऐसी मन्त्रणा के अनुसार कार्य करेगा**''–राष्ट्रपति की सांविधानिक स्थिति को बिलकुल स्पष्ट कर देती है।

(3)44वाँ संविधान संशोधन 1978 केद्वारा राष्ट्रपति की स्थिति –

इस संशोधन का उद्देश्य सन् 1975 में घटित घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकना है। सन् 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री **श्रीमती इन्दिरा गांधी** की सलाह मात्र पर ही राष्ट्रपति को आपातकाल की उद्घोषणा करनी पड़ी थी। मन्त्रिमण्डल से इस सन्दर्भ में कोई विचार विमर्श नहीं किया गया। इस तरह यह आपातकाल भारतीय संवैधानिक परम्पराओं के विरूद्ध की गई कार्यवाही थी। जिससे देश की संसदीय प्रणाली को काफी नुकसान पहुँचा। इस तरह की कोई भी परिस्थिति निकट भविष्य में राष्ट्र के समक्ष उत्पन्न न हो इसलिए संविधान में **44वाँ संविधान संशोधन**, 1978 में किया गया। इस संशोधन ने **42वें** संशोधन के इस तथ्यको तो बनाये रखा की राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा किंतु उसमें (74 अनुच्छेद) एक नया परान्तुक (Provision) जोड़ा गया है, जो राष्ट्रपति को इस बात का सीमित अधिकार प्रदान करता है कि वह मन्त्रिमण्डल द्वारा दी हुई सलाह को सामान्य तौर से माने या अन्यथा उसको मन्त्रिमण्डल के पुनर्विचार के लिए लौटा दे। किन्तु यदि ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् उसे सलाह दी जाती हो तो वह उसे मानने के लिए बाध्य होगा। संविधान का 44वां संशोधन अधिनियम 1978 राष्ट्रपति की उपर्युक्त किन्तु महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करता है।

42 वें और 44वें संविधान संशोधन के पश्चात् राष्ट्रपति के विशेषाधिकार (Prerogative)का क्षेत्र अत्यन्त सीमित हो गया है, तथापि ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहां राष्ट्रपति की शक्ति पर उपर्युक्त संशोधन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और वह इन मामलोंमें मन्त्रिमण्डल के परामर्श से कार्य करने को विधिक रूप से बाध्य नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालय ने 'शमशेर सिंह बनाम पंजाब' मामले में अपने महत्वपूर्ण फैसले में अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया, ''भारत का राष्ट्रपति एक 'चमत्कारपूर्ण शून्य' नहीं है। वह राज्यों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है, वह शीर्षस्थ पद पर है, सांकेतिक ही सही, और लोगों तथा राजनीतिक कार्यों से उसके सम्बन्ध हैं, वह राजनीति से ऊपर है। उसकी

चौकस उपस्थिति अच्छे शासन के लिये जरूरी है, अगर वह केवल बड़े होने की टिप्पणी **'विचार–विमर्श'** करने का अधिकार, चेतावनी देने का अधिकार और उत्साह देने के अधिकार का उपयोग करे। संक्षेप में, राष्ट्रपति ब्रिटिश सम्राट की तरह मात्र संविधान में एक अलंकृत पद नहीं अपितु उसे व्यापक अधिकार भी प्राप्त हैं।[62]

3. राष्ट्रपति का निर्वाचन–

भारतीय राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों और राज्यों की विधानसभाओं के चुने गये सदस्यों द्वारा चुना जाता है। लेकिन यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि संसद के दोनों सदनों के लिए मनोनीत सदस्यगण और राज्य विधानसभाओं और विधानपरिषदों (द्विसदनीय विधानमण्डल होने पर) के नामित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में हिस्सा नहीं लेते हैं। राष्ट्रपति का चुनाव **एकल हस्तांतरणीयमत** और **गुप्त मतदान** द्वारा **समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रक्रिया**[63] के अनुसार किया जाता है। संविधान में ये प्रावाधान है कि राष्ट्रपति चुनाव की प्रक्रिया में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के स्तर पर तथा समग्र रुप से राज्यों और संघ के बीच जहाँ तक व्यावहारिक हो, समानता और एकरुपता होगी।

राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी सभी विवादों का निराकरण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है तथा इस सन्दर्भ में उसका निर्णय सर्वमान्य होता है, उसे चुनौती नहीं दी जा सकती है।

2. राष्ट्रपति पद की योग्यता एवं पद विमुक्ति –

राष्ट्रपति पद के लिए चुने जाने वाले व्यक्ति के लिए कुछ अहर्ताए संविधानद्वारा निर्धारित की गई है। जैसे कि वह वह भारत का नागरिक हो, उसकी आयु 35 वर्ष हो, वह लोकसभा की सदस्यता की पात्रता रखता हो तथा संघ सरकार, राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण में किसी लाभ के पद पर न हो।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उपरोक्त वर्णित योग्यताओं के अतिरिक्त राष्ट्रपति पद के लिए चुने जाने वाले व्यक्ति की अनिवार्य शैक्षणिक योग्यताओं और अन्य शारीरिक एवं मानसिक गुणों के होने के बारे में किसी प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। जो एक गम्भीर विचारणीय तथ्य है।

राष्ट्रपति काकार्यकाल 5 वर्ष का होता है तथापि वह इससे पूर्व भी अपना त्यागपत्र उपराष्ट्रपति को सौंप सकता है। उसे संविधान के प्रावाधानों के उल्लंघन करने के आरोप में **महाभियोग** द्वारा पद से कार्यकाल के पूर्ण होने के पूर्व हटाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 61 में इस महाभियोग प्रक्रिया का वर्णन दिया है।[64]

3. **राष्ट्रपति की शक्तियाँ और कार्य–**

वर्तमान भारत में राष्ट्रपति को प्राप्त शक्तियाँ और उसके द्वारा निष्पादित कार्यों की जानकारी निम्नलिखित है –

(1) सामान्य शक्तियाँ –

1. कार्यपालक शक्तियाँ 2. विधायी शक्तियाँ 3. न्यायिक शक्तियाँ
4. वित्तीय शक्तियाँ 5. कूटनीतिक शक्तियाँ 6. सैन्य शक्तियाँ

संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में राष्ट्रपति की उपरोक्त वर्णित शक्तियों का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

(2) आपातकालीन शक्तियाँ –

राष्ट्रपति को संविधान के अन्तर्गत सामान्य शक्तियों के अतिरिक्त तीन प्रकार की आपातकाल की स्थिति से निपटने के लिए असाधारण शक्तियाँ दी गई है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित है –

1. राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352)
2. राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद 356 और 365)
3. वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)

(3) राष्ट्रपति की अस्थायी शक्तियाँ –

1935 के **भारत शासन अधिनियम** के अनुच्छेद 391 एवं 392 के अनुसार गर्वनर जनरल को कुछ अस्थायी शक्तियाँ प्रदान की गई थी। संविधान के निर्माताओं ने उक्त अधिनियम का अनुसरण करते हुए राष्ट्रपति को अनेक अस्थायी शक्तियाँ प्रदान की गई है जो निम्नलिखित हैं –

(1) संघ में हिन्दी को राजभाषा बनाने तथा कुछ अल्पसंख्यकों के साथ विशेष व्यवहार सम्बन्धी शक्तियाँ।

(2) भाषा आयोग नियुक्त करने तथा उसके परामर्शानुसार राजभाषा के पद पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने की शक्ति।

(3) संविधान के अनुसार आंग्ल भारतीय समुदाय के दो प्रतिनिधियों को लोकसभा के लिए मनोनीत करने की शक्ति।

इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रपति सांविधानिक प्रमुख होने के साथ ही कार्यकारी रुप से शक्तिशाली राष्ट्रप्रमुख भी है।

6. एकात्मक (केन्द्रीकृत) शासन प्रणाली बनाम संघात्मक शासन प्रणाली –

6.I एकात्मक (केन्द्रीकृत) शासन प्रणाली –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसारमागध साम्राज्य के विकास से पूर्व भारत में बहुत से छोटे–बड़े जनपदों की सत्ता थी। इसमें अनेकविध शासन पद्धतियाँ विद्यमान थी। कुछ जनपदों में राजतंत्रात्मक शासन और कुछमें गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली थी। चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में हिन्दूकुश पर्वतमाला से परेतक विस्तृत था। इस विशाल साम्राज्य की शासन व्यवस्था इन जनपदों की शासन पद्धति के सदृश नहीं हो सकती थी। कौटिल्य ने इस वृहत, शक्तिशाली राज्य के लिए एकात्मक शासन व्यवस्था को सर्वश्रेष्ट बताया क्योंकि राज्य की एकता और सुदृढ़ता इस व्यवस्था में ही पूर्णतः सुरक्षित रह सकती थी। इस व्यवस्था के अनुसार शासन शक्ति स्वाभाविक रूप से राजा के हाथों में केन्द्रित रखी गई । सम्पूर्ण साम्राज्य की सर्वोच्च शक्ति केन्द्रिय सरकार (राजा) में निहित की गई तथा विविध प्रादेशिक व स्थानीय क्षेत्रों में प्रादेशिक और स्थानीय सरकार प्रशासनिक कार्यकुशलता व सुविधा हेतु केन्द्रिय सरकार (राजा) द्वारा स्थापित की गई। राजा ही इन्हें आवश्यक सत्ता प्रदान करता है और उन पर पूर्ण नियन्त्रण भी रखता है। जनता (नागरिकों) के लिए राजा ही सत्ता और राष्ट्रीयता का एकमात्र प्रतीक है। कौटिल्य ने लिखा है कि इन प्रादेशिक या स्थानीय सरकारों को केन्द्र के अधीन अवश्य रखा जाये परन्तु उनको शासन में स्वायत्ता भी प्रदान की जाये। ये इस एकात्मक शासन व्यवस्था का विशिष्ट लक्षण था। इस प्रकार इस एकात्मक शासन व्यवस्था में प्रादेशिक व स्थानीय सरकारें केन्द्रिय सरकार (राजा) की प्रतिनिधि सरकारें थी। इन्हें राजा(केन्द्रिय सत्ता) द्वारा समाप्त किया जा सकता था।

(1) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य की अवधारणा –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्राचीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्था के सन्दर्भ मेंएक सुव्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होती है। कौटिल्य के विचारों के गहन अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि उनकी सम्पूर्ण प्रशासनिक विचार धारा या दर्शन का केन्द्र बिन्दु राज्य और राजा थे। कौटिल्य के मतानुसार इन दोनों संस्थाओं के दो मुख्य लक्ष्यथे –1. प्रथम लक्ष्य है पालना (Palana) अर्थात्शासक को राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का उचित प्रबन्ध करना चाहिए जिससे जनता को सुशासन एवं उससे सम्बन्धित लाभ मिल सकें और राज्य की सुरक्षा का प्रबन्ध करना। 2. द्वितीयलक्ष्य है लाभ (Labha) जिसका अर्थ है विजय (Conquest) और नये क्षेत्रोंकी प्राप्ति (Acquisition of Territory) या राज्य विस्तार करना।

राज्य की आंतरिक और बाह्य (वैदेशिक)नीति का संचालन उपरोक्त दोनों लक्ष्यों पर निर्भर करता है। कौटिल्यने राजा और राज्य से सम्बन्धित प्रत्येक अवधारणा का यथार्थ वादी दृष्टिकोण से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। कौटिल्य राज्य के कानून,राजनीति,न्याय या प्रशासन से सम्बन्धित किसी भी विषय पर आदर्शवादी विचारधारा नहीं रखते थे। प्रत्येक विषय में कौटिल्य ने स्वयं की अन्तर्दृष्टि का अपने विचारों और सिद्धान्तों में उल्लेख किया है।

(2) राज्य की उत्पत्ति सम्बन्धी विचार –

कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में चिन्तन अवश्य किया किन्तु इसके लिएअपनी और से कोई धारणा या सिद्धान्त को विकसित नहीं किया।कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण **विनयाधिकारिक** के प्रकरण एक अध्याय तीन में लिखा गया है कि जब दण्ड व्यवस्था को अव्यवस्थित कर दिया जायेगा तो इसका कुप्रभाव यह होगा कि **मत्स्य न्याय** के अनुरुपजैसे छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है, वैसे ही बलवान व्यक्ति निर्बल व्यक्ति का जीवन दूभर कर देता है, दण्ड व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और दुर्बल को शक्तिशाली सताने लगता है। किन्तु दण्डधारी (विधिक सत्ता युक्त) राजा से कमजोर एवं दुर्बल वर्ग भी सुरक्षित होकर अपने को बलवान महसूस करता है।

इसमें स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने न तो **समझौता वादियों** की तरह **समझौता सिद्वान्त** को उल्लेखित किया है और न ही इसका प्रयोग राजा को शक्तिशाली बनाने में किया है।

(3)राज्य का सप्तांग या प्रकृति सिद्वान्त–

प्राचीन भारतीय धर्म ग्रन्थों में राज्य को एक सावयव व्यवस्था मानते हुए उसकी संरचना के अन्तर्गत सात अंगों का उल्लेख किया गया है। इस सिद्वान्त को राज्य का **सप्तांग सिद्वान्त** कहा जाता है। इस सप्तांग सिद्वान्त के अन्तर्गत राज्य के सात अंग है – स्वामी (राजा), अमात्य, जनपद, दुर्ग,कोश,दण्ड और मित्र। कौटिल्य का मानना था कि पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न शक्तिशाली राजा भी एक राज्य का संचालन अकेला नहीं कर सकता है। किसी भी राज्य के निर्माण के लिए कुछ निश्चित तत्वों की आवश्यकता होती है। इसका उल्लेख आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के **छटे अधिकरण मण्डल योनि** में **प्रकृति सम्पदः** प्रकरण के अन्तर्गत किया है। कौटिल्य ने राज्य के इन सप्तागों को **प्रकृति** की संज्ञा दी है। कौटिल्य के इस सिद्वान्त में एक ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि राज्य की ये

सातोंप्रकृतियाँ अपने महत्व के अनुसार क्रमबद्ध रूप में उल्लेखित की गई हैं। कौटिल्य के अनुसार ये सात प्रकृतियाँ या राज्य के आवश्यक अंग इस प्रकार से हैं–

(1) **स्वामी** –राजा या स्वामी को राज्य का सर्वप्रथम और शीर्षस्थ अंग माना गया है।

(2) **अमात्य** – राजा द्वारा नियुक्त मन्त्री तथा लोक सेवक।

(3) **जनपद** –कौटिल्य के अनुसार जनपद का अर्थ राज्य की प्रादेशिक सीमाओं और उसके भीतर रहने वाले लोगों से है।

(4) **दुर्ग (परकोटो से घिरी राजधानी)**– दुर्ग भी जनपद की भाँति ही महत्वपूर्ण था। यह राज्य की सुरक्षा (defensive) क्षमता का प्रतीक था। ये चारों और से परकोटों द्वारा सुरक्षित किया गया था तथा सेना के लिए इसमें सभी सुविधाओं की व्यवस्था की गई थी।

(5) **कोश** – ये राज्य के राजस्व का स्थायी स्त्रोत था। राजा को यह परामर्श किया गया था किवह उत्पादन का 1/6 भाग ले तथा राजकोश में निश्चित मात्रा में मुद्रा और बहूमुल्य धातुऐं सोना, चांदी और रत्नों का संचय किया जाए।

(6) **दण्ड या सेना**–कौटिल्य प्रजा के रक्षण तथा राज्य की सुरक्षा के लिए दण्ड या सेना को राज्य का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं।

(7) **मित्र**–अर्थशास्त्र में मित्र को राज्य का महत्वपूर्ण साँतवा अंग माना है। क्योंकि राज्य की सुरक्षा के लिए मित्र राज्यों का होना आवश्यक है, जो राज्य की संकटों में समय रक्षा कर सके।

यहाँ ये उल्लेखनीय है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य की सात प्रकृतियों केअतिरिक्त एक आठवीं प्रकृति भी बतायी है। जो **शत्रु** के नाम से जानी गई है।

इस प्रकार राज्य की ये सात प्रकृतियाँ और शत्रु प्रकृति आपस में **अन्तर सम्बन्धित** है। अतः किसी एक प्रकृति का क्षय होने से सभी सातों प्रकृतियों का भी विनाश हो सकता हैं।[65] इनमें सबसे महत्वपूर्ण प्रकृति **राजा** हैं इसलिए उसे **स्वामी** कहा है जो कार्यों द्वारा निर्णयों द्वारा राज्य में सुशासन स्थापित करने एवं राज्य की जनता को सुशासन प्रदान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4. एकात्मक शासन की आवश्यकता –

कौटिल्य की रूचि इस प्रश्न में नहीं थी कि चन्दगुप्त मौर्य को राज्य किस प्रकार प्राप्त हुआ है बल्कि उनके लिए विचारणीय तथ्य यह था कि कैसे इस राज्य को शक्तिशाली और मजबूत बनाया जाए की वह आंतरिक और बाह्य खतरों का दृढ़ता से सामना कर सके। कौटिल्य का मानना था कि भारत में सिकन्दर का विजय अभियान इस लिए सफल हो सका क्योंकि उस समय भारत में राजनीतिक एकता और सुदृढ़ केन्द्रीय

शासन व्यवस्था वाले राज्य का अभाव था। कौटिल्य इतिहास को पुनः दोहराना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने अर्थशास्त्र में मागध साम्राज्य को एक केन्द्रीकृत (एकात्मक) शासन व्यवस्था से सम्पन्न राज्य के रूप में विकसित करने लिए विभिन्न प्रकार के शासकीय उपायों का विस्तार से वर्णन किया है। कौटिल्य द्वारा वर्णित यह राजव्यवस्था तत्कालीन जनपदों की गणतन्त्रीय, संघीय व राजतन्त्रीय शासन व्यवस्थाओं से कई रूपों में भिन्नता रखती थी। कौटिल्य की मान्यता थी कि एक शक्तिशाली **विजिगीषु** राजा को अपने **चक्रवर्ती** साम्राज्य के विस्तार एवं उन्नति के लिए एकात्मक राजतंत्रीय शासन प्रणाली को अपनाना चाहिए, क्योंकि राज्य व जनता के कल्याण व उसे सुशासित करने के लिए यही सर्वोत्तम है।

5. एकात्मक शासन में प्रशासनिक इकाईयाँ –

अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य साम्राज्य में एकात्मक शासन पद्धति के अन्तर्गत राज्य की शासन व्यवस्था को निम्न प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित किया गया था –

1. केन्द्रीय प्रशासकीय क्षेत्र एवं उसका शासक वर्ग –

सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य के शासन संचालन का केन्द्र पाटलिपुत्र (नगर) था। भौगोलिक दृष्टि से यह मध्यदेश में स्थित था। यही कौटिल्य के अनुसार केन्द्रीय सरकार की शासकीय राजधानी भी थी। राजा का निवास (दुर्ग) भी यहीं था। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य यही से सम्पूर्ण केन्द्रीय प्रशासन व्यवस्था को संचालित करता था। केन्द्रीय सरकार सभी शासकीय एवं प्रशासनिक संस्थाऐं एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न विभाग यहीं स्थापित किये गये थे। इस केन्द्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत सम्राट की सहायता के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होती थी। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इस मन्त्रिपरिषद् के संगठन और कार्य प्रणाली का विस्तार से वर्णन किया गया है। आचार्य की यह भी मान्यता थी कि जब भी राजा मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रियों से शासकीय कार्यों व नीतियों के बारे में चर्चा करे तो इस मन्त्रणा को अनिवार्यतः गोपनीय रखा जाए।

2. चक्र–

यद्यापि सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी पर वहांसे कम्बोज, बंग ओर आन्ध्र तक विस्तीर्ण (हिमालय में समुद्र पर्यन्त तक फैला चक्रवर्ती क्षेत्र) विशाल साम्राज्य का सुचारू तरीके से शासन नहीं किया जा सकता था। अतः शासन की दृष्टि से मौर्यों के अधीन सम्पूर्ण **विजित** को अनेक भागों में बांटा गया था। अर्थशास्त्र के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में मौर्य साम्राज्य तीन भागों में विभक्त था। इन्हें **चक्र**कहा गया है। ये तीन चक्र या भाग निम्नलिखित है–

(1) उत्तरापथ – इस भाग में कम्बोज, गान्धार, कश्मीर, अफगानिस्तान और पंजाब आदि के प्रदेश सम्मिलित थे। इस भाग की राजधानी तक्षशिला थी।

(2) पश्चिमीचक्र –इसमें सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और मालवा आदि सम्मिलित थे। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

(3) मध्यदेश – इसमें कुरू, पांचाल काशी, कौशल, मत्स्य अंग बंग आदि शामिल थे। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

इन चक्रों का शासन करने के लिए प्रायः राजकुल के व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता था। इन्हें **कुमार** के पदनाम से सम्बोधित किया जाता था। ये कुमार अनेक महामात्यों की सहायता से अपने–अपने चक्रों का शासन करते थे। इन चक्रों के उपविभाग भी थे जो इस प्रकार से है–

(1) मण्डल या देश –

इन चक्रों के अन्तर्गत अनेक मण्डल थे, सम्भवत इन मण्डलों की संज्ञा **देश** थी। जिसमें कुमार के अधीन महामात्य शासन करते थे। चक्रों का शासन कुमार भी महामात्यों की सहायता से संचालित करते थे इन महामात्यों की भी एक परिषद् होती थी। यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से साम्राज्य के इन विभागों और उनके शासन के सम्बन्ध में कोई निर्देश उपलब्ध नहीं होते है। लेकिन इनकी सत्ता के बारे में जानकारी अशोक के शिलालेखों एवं अन्य साहित्य से होती है। चूंकी अशोक चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र था तथा चन्द्रगुप्त के बाद शासक बना था। इसलिए उसके शिलालेखों में उपर्युक्त प्रशासकीय विभागों से सम्बन्धित जानकारी प्रामाणिक की है।

(2) जनपदों के समूह –

सम्भवतः मण्ड़लों के अन्तर्गत कुछ जनपद समूह भी होते थे। इनके ऊपर शासन करने वाले अमात्यों की संज्ञा सम्भवतः **प्रादेशिक** या **प्रदेष्टा** की होती थी। इसके अधीन जनपदों के शासक होते थे।

(3) जनपद –

हर मण्डल में अनेक जनपद होते थे। संभवतः यह जनपद प्राचीन काल के उन जनपदों के प्रतिनिधि थे। जिन्हें मगध के सम्राटों ने विजय करके विजित या साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुशीलन से इन जनपदों की शासन व्यवस्था का विस्तृत विवरण मिलता है। मौर्य साम्राज्य के अधीन हो जाने के बाद भी इनकी आन्तरिक स्वतन्त्रता अक्षुण्य थी और इनमें पौर–जानपद आदि प्राचीन शासन सत्ताऐं अभी भी विद्यमान थी। इन जनपदों की शासन पद्धति भी एक समान नहीं थी। इनका प्रशासक

समाहर्ता कहा जाता था जो राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में जनपदों में शासन की सुविधा हेतु अनेकप्रशासनिक इकाईयों में वर्गीकृत किया है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है –

(1) **ग्राम** – यह शासन की सबसे छोटी इकाई थी। इसका शासक **ग्रामिक** कहलाता था।

(2) **संगहण –** दस ग्रामों के समूह को संगहण कहते थे।इसके शासक का नाम **गोप** था।

(3) **खार्वटिक–** इसके अन्तर्गत बीस संग्रहणों या (200 ग्रामों) को सम्मिलित किया जाता था। अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि जो पत्तन (बन्दरगाह) छोटे हो जिसका प्राकार सुव्यवस्थित न हो, उन्हें भी **खार्वटिक** कहते थे।

(4) **द्रोणमुख** – दो खार्वटिकों (400 ग्रामों) से एक द्रोणमुख बनता था। इसके अतिरिक्त वे पत्तनों जिसमें जल और स्थल दोनों प्रकार के मार्गों से आया–जाया जा सके, वे **द्रोणमुख** कहलाते थे।

(5) **स्थानीय** –दो द्रोणमुखों (800 ग्रामों)या 80 संग्रहणों से एक स्थानीय बनता था। पर कुछ स्थानीय आकार में छोटे होते थे या कुछ प्रदेशों में सघन आबादी न होने के कारण स्थानीय में गाँवों की संख्या कम रहतीथी। स्थानीय का शासक **स्थानिक** कहलाता था।

उपरोक्त वर्णित एकात्मक शासन व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है कि मौर्य साम्राज्य में निम्नतम स्तर पर ग्रामिक नामक पदाधिकारी तथा उच्चतम स्तर पर केन्द्र में सम्राट की प्रस्थिति थी। जो यह सिद्ध करती है कि इस सम्पूर्ण एकात्मक शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दू सम्राट था।

(6) एकात्मक शासन में न्याय व्यवस्था –

आचार्य कौटिल्य समुचित न्याय को राज्य का प्राण मानते थे। कौटिल्य का मानना था कि यदि राजा अपनी प्रजा को उचित न्याय प्रदान नहीं करता है तो वह स्वयं एवं उसका राज्य दोनों ही नष्ट हो जाते है। कौटिल्य के मतानुसार न्याय का उद्देश्य प्रजा के जीवन एवं सम्पत्ति की सुरक्षा करना तथा कण्टकशोधक तत्वों (असामाजिक तत्वों) जैसे – शिल्पी, व्यापारियों, गुप्त षड्यन्त्रकारी तथा राजकीय कर्मचारियों को दण्डित करना था।

कौटिल्य ने राजा द्वारा न्याय प्रदान करने के लिए कानून के चार स्त्रोत बताये हैं – धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजशासन। न्यायालयों में निर्णय हेतु आये सभी विवादों का हल इन **चतुष्पाद** कानून के अनुसार किया जाता था। कौटिल्य ने न्याय एवं विधि के समक्ष सभी व्यक्तियों को समान माना था, चाहे वो राजा हो या प्रजा।

1. केन्द्रीकृत एकात्मक शासन में नियन्त्रित न्यायपालिका –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य की केन्द्रीकृत (एकात्मक) शासन व्यवस्था के अन्तर्गत अनेकविध न्यायालयों की सत्ता का वर्णन दिया है। इस न्याय व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि सभी न्यायालय पूर्ण स्वतन्त्र न होकर राजा के द्वारा नियन्त्रित थे। यह कहा जा सकता है कि कौटिल्यकाल में न्यायालय केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत एक विभाग के रुप में कार्यरत संस्थायें थी।

2. न्यायालयों का वर्गीकरण व संगठन–

कौटिल्य ने राज्य की विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों में स्थापित न्यायालयों एवं उनके संगठन का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से दिया है –

1. केन्द्रीय न्यायालय –

यह केन्द्रीय न्यायालय राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में था। इसे राजा का न्यायालय भी कहा गया है। यहाँ राजा अनेक न्यायाधीशों की सहायता से किसी भी विवाद पर निर्णय करता था। ये न्यायालय किसी भी न्यायिक अपील का सर्वोच्च न्यायालय था। यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक लगता है कि कौटिल्य राजा को न्यायिक निर्णय देने में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को मान्यता न देकर सामूहिक निर्णय लेने के सिद्धान्त पर जोर देते थे। जिससे न्याय करने में पक्षपात न हो तथा न्यायिक निष्पक्षता बनी रहे।

2. जनपद के न्यायालय –

जनपद का अपना एक न्यायालय होता था। इसके अतिरिक्त जनपद की विभिन्न प्रशासकीय इकाइयों जैसे – संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय इत्यादि के अपने–अपने न्यायालय होते थे। जनपद में भी न्यायालय होता था।

3. ग्राम न्यायालय –

मौर्य साम्राज्य में सबसे छोटे न्यायालय ग्रामों में होते थे। इसमें ग्राम, ग्रामसंघ या ग्राम सभा थी। इसको राजा द्वारा कुछ मामलों में न्याय सम्बन्धी अधिकार दिये थे। राजा इनमें शासकीय न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं करता था। यहाँ ग्राम का प्रमुख **ग्रामिक** ग्रामवृद्धों के साथ मिलकर अपराधियों को दण्डित करता था और उनसे जुर्मानों की वसूली भी करता था। ग्रामिक एवं ग्रामवृद्ध जब किसी विवाद में एक मत से निर्णय नहीं कर पाते थे, तो धार्मिक पुरुषों की अनुमति से निर्णय लेते थे। लेकिन ये निर्णय वादी को मान्य नहीं होता था, तब राजा को हस्तक्षेप करना पड़ता था। इसमें स्पष्ट होता है कि ग्राम न्यायालयों के न्यायिक निर्णयों में राजा बिना वजह हस्तक्षेप नहीं करता था।

4. न्यायालयों के अन्य प्रकार –

ग्राम संघ एवं **राजा के केन्द्रीय न्यायालय** के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के थे। **1. धर्मस्थीय न्यायालय 2. कण्टकशोधन न्यायालय**। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अधिकरण **3"धर्मस्थीय"** एवं अधिकरण **4."कण्टशोधन"** के अन्तर्गत इन दोनों प्रकार के न्यायालयों के संगठन, विषयों एवं कार्यप्रक्रिया का उल्लेख किया है। धर्मस्थीय न्यायालयों के न्यायाधीशों को **धर्मस्थ** या **व्यावहारिक** एवं कण्टशोधन न्यायालयों के न्यायाधीशों को **प्रदेष्टा** कहा जाता था।

कौटिल्य ने इन दोनों प्रकार के न्यायाधीशों की योग्यता एवं नियुक्ति के बारे में कहा है कि राजा इन न्यायाधीशों के पदों पर उन ही अमात्यों को नियुक्त करता था। जो इस पद के लिए निर्धारित परीक्षा अर्थात् **धर्मोपधापरीक्षण** को उत्तीर्ण कर लेते थे।

3.न्यायाधीशों पर नियन्त्रण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इन दोनों न्यायालयों के न्यायाधीशों (धर्मस्थ एवं प्रदेष्टा) के कार्यव्यवहार पर कठोर नियन्त्रण रखने की भी बात कही है। ऐसा सम्भवतः इसलिये किया गया होगा कि न्यायप्रणाली में प्रशासकीय नैतिकता बनी रहे एवं इन न्यायिक अधिकारियों से आचरण नियमों का पालन करवाया जा सके। ये नियन्त्रणकारी तथ्य निम्न लिखित है –

1. ये न्यायालय में आये वादी–प्रतिवादी को धमकाने, भत्सर्ना करने, गाली देने या उनसे अपमानजनक व्यवहार नहीं करे।
2. ये अनावश्यक प्रश्न नहीं करे।
3. ये ब्राह्मण, तपस्वी, बालक, बीमार, वृद्ध अनाथ एवं महिलाओं को न्याय दिलवाने के लिए स्वयं संज्ञान ले।
4. ये सबकों समान मानते हुये निर्णय दे।
5. इनका ये दायित्व था कि विवादों पर शीघ्र निर्णय दे।
6. इन्हें जनता में लोकप्रियता एवं उसका विश्वास प्राप्त हो, तथा ये बिना किसी छल–कपट के अपने दायित्वों का निर्वाह करे।
7. अगर कोई भी न्यायाधीश भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी पाया जाए तो उसे पद्च्युत कर दिया जाये। इनका स्थानान्तरण भी किया जाता था।

आधुनिक सन्दर्भ में धर्मस्थीय न्यायालय को **दीवानी न्यायालय** (Civil Court) एवं कण्कशोधन न्यायालय को **फौजदारी न्यायालय** (Criminal Court) कहा जा सकता है।ये उस

समय की न्यायव्यवस्था में सुशासन के सिद्धान्तों को लागू करने का एक उत्तम उदाहरण है।

7. स्थानीय स्वशासन –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मौर्य साम्राज्य की केन्द्रीकृत राजतन्त्रीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानीय स्वशासन का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। ये स्थानीय स्वशासन राजा (केन्द्रीय सरकार) द्वारा नियुक्त अधिकारियों द्वारा नियन्त्रित किया जाता था।

कौटिल्य ने जनपदों के अन्तर्गत आने वाले नगरों एवं ग्रामों के स्थानीय स्वशासन एवं उनमें कार्य करने वाली संस्थाओं को भी वर्णित किया है। ये नगरीय एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन व्यवस्था एवं उनकी संस्थाऐं निम्नलिखित हैं –

1. नगरीय शासनव्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नगरों के स्थानीय शासन एवं उनमें कार्यरत पदाधिकारियों एवं उनके कार्यों के सम्बन्ध में अनेक निर्देश विद्यमान है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में **नागरकणप्रणिधि** नामक अध्याय में ये निर्देश निम्नालिखित है –

(i) **नागरक**–कौटिल्यकाल में नगर को **पुर** कहा जाता था। इस पुर का प्रधान शासकीय अधिकारी **नागरक** कहलाता था। सम्राट की ओर से नगरों में भी सुशासन की व्यवस्था की जा सके, इसलिए केन्द्रीय सरकार द्वारा उनके प्रशासन के लिए इस नागरक नामक पदाधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। नागरक जहाँ प्रत्येक नगर में नियुक्त थे वहां साथ ही केन्द्रीय सरकार के अष्टादश तीर्थों (विभागों) में भी इस 'नागरक' नाम के अमात्य को स्थान प्राप्त था।

(ii) **स्थानिक** –ये गोप से उपर का पदाधिकारी होता था। इसे स्थानिक कहा गया है। यह सम्पूर्ण पुर के चतुर्थ भाग का शासक था। इसके अधीन अनेक गोप कार्य करते थे। पुर के चारों स्थानिक नागरक के अधीन होते थे। इसकी नियुक्त भी केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी।

(iii) **गोप**–नगर या पुर को अनेक भागों में विभक्त किया जाता था। इसमें सबसे छोटा भाग 10 या, 20 या, 40 परिवारों के निवास स्थानों से मिलकर बनता था। इनके अधिकारी को गोप कहते थे। ये गोप भी सम्भवतः केन्द्रीय सरकार द्वारा ही नियुक्त किये जाते थे। गोप के ये कार्य थे – अपने क्षेत्र में निवास करने वाले सब महिला–पुरुषों के नाम, गोत्र व जाति व जानना, वे क्या कार्य करते हैं, उनकी क्या आमदनी है, और कितना खर्चा है, ये पता रखना था।[66]

IV.नगर की अन्य संस्थाऐं –

कौटिल्य ने नगर की अन्य संस्थाओं का भी उल्लेख किया है। जो है –

(i) पौर सभाएँ – ये पुरों(नगरों) की सभा थी। इस पुर सभा या पौर सभा द्वारा जनपद की राजधानी के शासन का संचालन होता था।

(ii) जानपद – यह भी जनपद की एक सभा थी। जिसमें जनपद के विशिष्ट व्यक्ति सम्मिलित होते थे।

2. ग्रामों की शासन व्यवस्था –

मौर्ययुग में प्रत्येक ग्राम स्थानीय शासन की दृष्टि से अपनी पृथक एवं स्वतन्त्र सत्ता रखता था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में ग्रामीण शासन के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। कौटिल्य ने इन ग्रामों को जनसंख्या के आधार पर **ज्येष्ठ वर्ग** (500 कुलों), **मध्यम वर्ग**(500 से 100कुलों), **कनिष्ठ वर्ग**(100 कुलों) में वर्गीकृत किया राजकीय कर निर्धारण के आधार पर गामों को **ग्रामाग्र, परिहारक** और **आयुधीय** ग्रामों में विभक्त किया था। इसके अतिरिक्त ऐसे ग्राम जो राजकीय कर को नकद न देकर उसे धान्य, पशु, हिरण्य, कुप्य (कच्चा माल) या विष्टि (बेगार) के रुप में अदा करते थे। इसके अलावा कुछ ग्राम ऐसे भी थे जो दुर्ग और राजकीय भवनों के निर्माण के लिए शिल्पियों एवं मजदूरों के रुप में राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर राजकीय कर में छूट प्राप्त कर लेते थे।

2. ग्रामीण शासक वर्ग –

कौटिल्य ने ग्रामों में कार्यरत विभिन्न राजकीय पदाधिकारियों का उल्लेख भी किया है। ये है –

(i) ग्रामिक – प्रत्येक ग्राम का एक प्रमुख प्रशासकीय अधिकारी होता था। इसे ग्रामिक कहते थे। ग्रामिक को ग्राम के शासन संचालन में सहायता करने के लिए कुछ अन्य व्यक्ति भी होते थे। ये **उपवास** के नाम से सम्बोधित किये गये हैं। ग्रामिक ग्राम में कानून व्यवस्था बनाये रखता था तथा ग्रामवासियों से राजकीय नियमों के उल्लंघन करने पर जुर्माना वसूल करता था।

(ii) ग्रामसभा – प्रत्येक ग्राम में एक सभा होती थी इसको ग्रामसभा कहा जाता था। इसके सदस्य **उपवास** या **ग्रामवृद्ध** कहलाते थे। ये सभा **ग्रामिक** को ग्राम के शासन संचालन में सहायता करती थी।

(iii) उपवास– ये उपवास संभवतः ग्राम संघ या ग्रामसभा के सदस्य होते थे। ये न केवल ग्राम सम्बन्धी मामलों पर विचार विमर्श करते थे वरन् शासन कार्यों में ग्रामिक की सहायता भी करते थे। सम्भवतः ये ही **ग्रामवृद्ध** कहलाते थे।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कहा गया है कि स्थानीय स्तर पर शासन को सही ढंग से संचालित करने के लिए केन्द्रिय सरकार द्वारा इनमें राजकीय कर्मचारियों की नियुक्ति भी की जाती थी। इन कर्मचारियों में **गोप, स्थानिक** इत्यादि प्रमुख थे। ये ही दोनों कर्मचारी अपने–अपने अधिकार क्षेत्र में आने वाले ग्रामों से राजकीय करो की वसूली भी करते थे। ये उन बातों की सूचना भी रखते थे जिस पर राज्य की सुरक्षा, शान्ति एवं व्यवस्था निर्भर करती थी। यदि ये कर्मचारी अपने दायित्वों के निर्वाह में प्रमाद (आलस्य) करे और ग्रामवासियों के विषय में सही–सही जानकारी केन्द्रीय सरकार को न दे तो राज्य प्रशासन कभी भी सुचारु रुप से कार्य नहीं कर सकता था। इसलिए कौटिल्य ने यह व्यवस्था भी की थी कि **समाहर्ता** (जनपद का प्रमुख अधिकारी) गुप्तचरों (गृहपतिक वेश में) को ग्रामों में नियुक्त करे। ये गुप्तचर गोपों एवं स्थानिकों द्वारा दी गई सूचनाओं (रिकार्डों) की सत्यता एवं प्रामाणिकता की जाँच कर समाहर्ता को इस बारे में सूचित करे।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मौर्ययुग में नगरीय एवं ग्रामीण स्थानीय शासन भी अत्यन्त व्यवस्थित था। मौर्य सम्राट उन पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने में समर्थ थे। इससे सिद्ध होता है कि मौर्य राज्य के सफल संचालन एवं उसमे सुशासन को स्थापित करने के लिए कौटिल्य ने केन्द्रीकृत राजतन्त्रीय शासन व्यवस्था को ही सर्वश्रेष्ठ एवं उत्तम बताया था।

6.II संघात्मक शासन प्रणाली–

विभिन्न संविधान वेत्ताओं ने विश्व के संविधानों को उनकी कार्यप्रणाली के अनुसार दो वर्गों में विभाजित किया है – संघात्मक और एकात्मक। एकात्मक संविधान वह संविधान हैं जिसके अन्तर्गत सारी शक्तियाँ एक ही सरकार में निहित होती है, जो प्रायः केन्द्र सरकार के रुप में होती है। प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार के अधीन रहना पड़ता है, और अगर स्थानीय इकाइयाँ भी कार्यरत है, तो वे भी केन्द्रीय सरकार के अधीन ही होती है। इंग्लैण्ड में एकात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। **प्रो. ह्रियर** के अनुसार परिसंघीय सिद्धान्त के अर्न्तगत संघ और इकाईयों में शक्तियों का विभाजन होता है और यह विभाजन ऐसी रीति से किया जाता है, जिसमें प्रत्येक अपने क्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र हो और साथ ही साथ एक दूसरे के सहयोगी भी हो, न कि एक दूसरे के अधीन हो।संयुक्त राज्य अमेरिका ने सर्वसम्मति से एक संघात्मक संविधान माना है, ये संघीय और प्रांतीय स्तर पर दो पृथक सरकारों की स्थापना करता है। इसमें दोनों स्तरों पर सरकारों की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन है। जो अपने–अपने क्षेत्र में सम्प्रभुता की स्थिति में है। उदाहरणार्थ अमेरिका के राज्यों के अपने–अपने पृथकध्वज, नागरिकता और संविधान है। इस प्रकार परिसंघीय

सिद्धान्त का सार है–स्वतंत्रता एवं समन्व्यकारिता। संघीय सिद्धान्त की कठोर परिभाषा देना तो आवश्यक है, किन्तु इसके प्रयोग में संकीर्णता बरतना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार प्रोफेसर ह्वियर यह स्वयं स्वीकार करते है कि संघीय सिद्धान्त के कुछ अपवाद हो सकते है, बशर्ते कि संविधान में संघीय सिद्धान्त की प्रधानता बनी रहे।

1. वर्तमान भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था –

भारत में संविधान निर्माताओं का आशय भारत को एक संघात्मक व्यवस्था के रूप में विकसित करना था। लेकिन ये संघ (भारत का संघ) विभिन्न राज्यों के समझौते का परिणाम नहीं था। जैसेकि अमेरिका में राज्यों की स्थिति थी तथा न ही किसी राज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार ही दिया गया है। सम्भवतः इसलिए भारतीय संविधान में कहीं भी संघात्मक या फेडरेशन (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है कि संविधान के प्रथम अनुच्छेद केअनुसार संघ का नाम इण्डिया अथवा भारत है। प्रथम अनुसूची में विनिर्दिष्ट इसके सदस्यों को राज्य कहा जाता है। इस प्रकार ''इण्डिया अर्थात् भारत'' राज्यों का एक संघ होगा। (India, that is Bharat shall be a Union of States)

विभाजन के पश्चात् सुदृढ़ केन्द्रयुक्त परिसंघ की स्थापना का उद्देश्य राजनीतिक और प्रशासनिक दोनों हीरहाहै,फिर भी संविधान पूर्णरूपेण परिसंघात्मक नहीं बनाया जा सका है। संविधान सभा के अनुसार संघ को परिसंघ कहना आवश्यक नहीं था ।

डा. अम्बेडकर ने (प्रारूप समिति के अध्यक्ष) संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते हुये कहा था, कि यद्यपि यह संविधान संरचना की दृष्टि से फेडरल (Federal) हो सकता है, किंतु कुछ निश्चित उद्देश्यों से समिति ने इसे **संघ** (Union) कहा है। ये उद्देश्य दो तथ्यों की ओर संकेत करते है– (अ) अमेरिकी संघवाद की अपेक्षा भारत का संघवाद संघ की इकाइयों के बीच परस्पर करार का परिणाम नहीं है, (ब) राज्यों को स्वेच्छानुसार परिसंघ से पृथक होने का अधिकार नहीं दिया गया है।

फेडरेशन एक संघ है, क्योंकि यह कभी समाप्त नहीं होगा यद्यपि प्रशासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण देश और इसके निवासी एक ही स्त्रोत से उद्‌गत सर्वोच्च शक्ति के अधीन रहने वाले व्यक्ति है। **राज्यों को इस संघ से पृथक होने का कोई अधिकार नहीं है।** इसको स्थापित करने के लिए अमेरिका को एक गृहयुद्ध का सामना करना पड़ा,तब जाकर कहीं उनका फेडरेशन अविनाशी बन सका। संविधान निर्माताओं ने इसे प्रारम्भ से ही स्पष्ट कर देना उचित समझा।

के.सी.व्हीयर (*K.C.Wheare*)के अनुसार "**भारत मुख्यतः एकात्मक राज्य है। जिसमें संघीय व्यवस्था की विशेषताएँ नाममात्र की है। भारत का संविधान संघीय कम एकात्मक अधिक है।**"

दुर्गादास बसु के मतानुसार "**भारत का संविधान न तो शुद्ध रूप से परिसंघीय है, न ही शुद्ध रूप से एकिक (एकात्मक) है। ये दोनों का संयोजन है। यह एक नये प्रकार का संघ या सम्मिलित राज्य है। इसमें ये सिद्धान्त अन्तर्विष्ट है कि परिसंघ होते हुये भी राष्ट्रीय हित सर्वोपरि होना चाहिए ।**"

प्रो. पायली के अनुसार"**भारत का ढाँचा संघात्मक है किंतु उसकी आत्मा एकात्मक है।**"

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में संघात्मक स्वरूप की एक अनोखीव्यवस्था है, जिसमें संघात्मक तथा एकात्मक दोनों व्यवस्थाओं के लक्षण पाए जाते है।

2. वर्तमान भारत में संघात्मक व्यवस्था का स्वरूप –

वर्तमान भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संघात्मक एवं एकात्मक दोनों की प्रकार के लक्षण पाये जाते है। इन दोनों की लक्षणों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है –

(अ) संघात्मकता के लक्षण –

भारतीय संविधान में वर्णित संघात्मक व्यवस्था के लक्षण निम्नलिखित है–

(1) संविधान की सर्वोच्चता – सभी संस्थाओं की शक्तियों का स्त्रोत संविधान है तथा संविधान की सर्वोच्चता बनाये रखना न्यायालय का कार्य है।

(2) संघ तथा राज्यों में पृथक–पृथक सरकारों – भारत में वर्तमान में 29 राज्य तथा 7 केन्द्र शासित प्रदेश है। सभी राज्यों की अपनी–अपनी निर्वाचित सरकार है तथा केन्द्र में पृथक निर्वाचित केन्द्रीय सरकार है।

(3) शक्तियों का विभाजन – भारत में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। संविधान में इसके लिये **सातवी अनुसूची** के अर्न्तगत **तीन सूचियाँ** बनाई गई है। **अनुच्छेद 248** के तहत**अवशिष्ट** विषय केन्द्र के पास सुरक्षित रखे गये है। यह **तीन सूचियाँ** हैं–

(i) संघ सूची –इसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के लगभग 97 विषय है। जैसे प्रतिरक्षा, विदेशी सम्बन्ध, भारी औद्योगिक संस्थानों इत्यादि। इन विषयों पर केवल केन्द्र सरकार ही विधि निर्माण कर सकती है। किया जा सकता है।

(ii) राज्य सूची – इसमें राज्यों के महत्व के लगभग 66 विषय सम्मिलित है। ये विषय है– कृषि, स्वास्थ्य, पुलिस,स्थानीय शासन इत्यादि। इन विषयों पर राज्य सरकारें कानून बनासकती है। राज्य सूची के विषयों को निर्धारित विधि द्वारा समवर्ती या केन्द्र सूची में सम्मिलित किया जा सकता है।

(iii) समवर्ती सूची – इसमें वह विषय सम्मिलित है, जो राज्य तथा केन्द्रीय दोनों के महत्व के है, ऐसे विषय लगभग 47 है। इन पर राज्य तथा केन्द्र दोनों ही कानून बना सकते हैं। एक ही विषय पर केन्द्र तथा राज्य के कानून होने पर केन्द्र का कानून ही मान्य होगा। इसके अर्न्तगत विषय है– फौजदारी कानून, विवाह, तलाक, वन, वन्य–जीव, शिक्षा आर्थिक सामाजिक योजनाएँ इत्यादि।

यह सही है कि केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है। किंतु ये भी सत्य है कि विभाजन वैज्ञानिक या पूर्ण रूप से करना सम्भव नहीं है और समय–समय पर ऐसे विवाद उत्पन हो सकते है कि क्या कोई विषय एक सरकार (केन्द्र) के अधिकार क्षेत्र में है या दूसरी सरकार (राज्य सरकारों) के अधिकार क्षेत्र में ? संघीय संविधान में यह कार्य न्यायपालिका को सौंपा गया है। अतः विभिन्न भारतीय न्यायालयों ने उक्त सूचियों में वर्णित विभिन्न सरकारों की शक्तियों के निर्धारण और निर्वचन के लिए नियम स्थापित किये है। **अनुच्छेद 246** में दी हुई व्यवस्था के अनुसार संघसूची और समवर्ती सूची में उल्लेखित विषयों पर विवाद होने पर संघसूची अभिभावी होगी। समवर्ती सूची एवं राज्य सूची के विषयों में विवाद होने की स्थिति में समवर्ती सूची अभिभावी होगी। उच्चतम न्यायालय का कहना था कि जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक सूची की प्रविष्टि को समान महत्व देने का प्रयास किया जाना चाहिए। कोई विवाद उत्पन होने पर **अनुच्छेद 246(1)** को तुरन्त लागू नहीं करना चाहिए।

(4) स्वतन्त्र न्यायपालिका–

भारत में एक स्वतन्त्र न्याय पालिका की स्थापना की गई है। संविधान के अनुसार केन्द्र में उच्चतम न्यायालय (अनु. 214–237 तक) की स्थापना की जाए। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा पदच्युति केवल महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा की जाती है।राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। संघ एवं राज्य इकाई के मध्य विवाद की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय को प्रांरम्भिक क्षेत्राधिकार दिया गया है। न्यायपालिका के अधिकांश निर्णयों में उसे**न्यायिक पुनरावलोकन** का अधिकार प्राप्त है। लेकिन ये उल्लेखनीय तथ्य है कि ये

अमेरिका की संघीय न्यायपालिका में प्रचलित न्यायिक पुनरावलोकन सिद्धान्त जितना विस्तृत नहीं है।

(5) राज्यों का सदन–

भारत में द्विसदनात्मक संसद के अर्न्तगत द्वितीय सदन को**उच्च सदन** कहा जाता है इसे **राज्य सभा** के नाम से भी जाना जाता है। इसे राज्यों के द्वारा बनाया गया है। इसमें सभी राज्यों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। लेकिन ये प्रतिनिधित्व हर राज्य के लिए समान नहीं रखा गया है अपितु ये प्रतिनिधित्व राज्य की जनसंख्या के आधार पर निर्धारित किया गया है।

(6) संविधान संशोधन की प्रणाली –

भारत में संविधान में संशोधन हेतु पूर्णतः संघीय प्रणाली को अपनाया गया है। विशेष महत्व के विषयों के लिए संविधान में संशोधन हेतु राज्यों की सहमति लेना आवश्यक है। संविधान में संशोधन की प्रक्रिया का उल्लेख विस्तार से संविधान के **अनुच्छेद 368** के अर्न्तगत किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों द्वारा स्पष्ट है कि भारत में संघात्मक व्यवस्था के सभी लक्षण पाये जाते है।

(ब) एकात्मकताके लक्षण –

भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था के लक्षण होते हुये भी निम्नलिखित एकात्मक लक्षण विद्यमान है–

(1) शक्तियों का बँटवारा केन्द्र के पक्ष में –भारतीय संविधान में उल्लेखित अवशिष्ट विषयों से सम्बन्धित शक्तियाँ केन्द्र के पास है। समवर्ती सूची पर या उसमें उल्लेखित किसी विषय पर बने राज्य तथा केन्द्र के कानून में से केवल केन्द्र का कानून मान्य होगा। राज्य सूची के विषय को केन्द्र समवर्ती सूची में ला सकता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में केन्द्र को राज्य सूची के विषयों पर विधि बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, वे परिस्थितियों इस प्रकार है–

(i) राष्ट्रीय हित –अनुच्छेद 249 के अर्न्तगत यदि राज्य सभा में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यो के दो तिहाई बहुमत से संकल्प पारित करके यह घोषित कर दिया जाए की राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक है कि संसद राज्य सूची में वर्णित किसी विषय पर विधि बनाये।

(ii) आपात घोषणा में –अनुच्छेद 250 के अनुसार जब आपात की घोषणा प्रवर्त्तन में हो तो संसद को राज्यसूची के किसी भी विषय पर विधि बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

(iii) राज्य की सहमति से –अनुच्छेद 252 के अनुसार यदि किन्हीं दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डलों में यह संकल्प पारित कर दिया है कि राज्यसूची के किसी विषय पर संसद को विधि बनाना वांछनीय है तो संसद उस विषय पर विधि को निर्मित कर सकती है।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय करारों को प्रभावी बनाने के लिए विधान –अनुच्छेद 253 के अर्न्तगत अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों और करारों के कार्यान्वयनके लिये केन्द्र राज्यसूची के विषय पर कानून बना सकता है।

(v) राज्यों में सांविधानिक तन्त्र के विफल हो जाने की दशा में –अनुच्छेद 356 के तहत जब राष्ट्रपति को राज्यपाल की सूचना पर यह स्थिति लगे कि राज्य में संविधान के अनुसार शासन नहीं चलाया जा रहा है तो वह घोषणा कर सकता है कि राज्य की विधान मण्डल की शक्तियाँ केन्द्रीय संसद के अधीन कार्य करेंगी। केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्ति विभाजन की उपर्युक्त योजना से स्पष्ट है कि संविधान में राज्यों की अपेक्षा केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया है, जो एकात्मकता की पुष्टि करता है।

(2) राज्य तथा संघ के लिए एक ही संविधान –

संघ एवं राज्यों के लिये एक ही संविधान बनाया गया था। लेकिन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के कारण **जम्मू कश्मीर** राज्य को **धारा 370** के अन्तर्गत **पृथक संविधान** एवं **ध्वज** रखने की छूट दी गई थी। लेकिन अब **05 अगस्त 2019** को राष्ट्रपति की अनुमति से वर्तमान केन्द्रीय सरकार ने इस धारा **(370)** को समाप्त कर दिया है। जिससे जम्मू कश्मीर राज्य के पृथक संविधान एवं ध्वज की व्यवस्था समाप्त हो गई है तथा इस प्रकार वर्तमान भारत में संघ एवं राज्य इकाईयों के लिए एक ही संविधान एवं एक ही ध्वज है।

(3) इकहरी नागरिकता– अन्य संघात्मक राष्ट्रों के विपरित भारत में केवल भारत की इकहरी नागरिकता पाई जाती है। (अनु.5–11) राज्यों की पृथक नागरिकता का सिद्धान्त भारत में नहीं अपनाया गया है अर्थात् दोहरी नागरिकता का सिद्धान्त जैसा की अमेरिका में प्रचलित है संघीय सरकार के अलावा राज्यों की पृथक नागरिकता का होना ।

(4) एकीकृत न्यायपालिका – भारत में अमेरिका की संघात्मक व्यवस्था जैसी दोहरी न्यायपालिका प्रणाली को नहीं अपनाया गया है। भारत में केन्द्रीय स्तर पर एक सर्वोच्च न्यायालय है। राज्य स्तर पर उनके अपने कोई सर्वोच्च न्यायालय नहीं है। राज्यस्तर पर उच्च न्यायलय है, जो केन्द्र के सर्वोच्च न्यायालय के अधीन है। जिला स्तरीय जिला एवं सत्र न्यायालय राज्य स्तरीय उच्च न्यायालय के अधीन होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण देश में न्यायपालिका की एकीकृत व्यवस्था है।

(5) केन्द्रीय सरकार को राज्यों के क्षेत्र परिवर्तन का अधिकार – भारत में केन्द्र सरकार **अनुच्छेद–3** के अन्तर्गत संसद द्वारा नये राज्यों की स्थापना, वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, भौगोलिक,सीमा एवं नाम में परिवर्तन करने की शक्ति रखती है ।

(6) राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति – केन्द्र सरकार ही राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति करती है, जो राज्य की कार्यपालिका का प्रमुख होता है। **अनुच्छेद 356** के तहत लागू किये जाने वाले राष्ट्रपति शासन के दौरान वह राज्य में केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है।

(7) आर्थिक सहायता (अनुदान) के लिए राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता – भारत में आर्थिक क्षेत्र में राज्य पूर्ण आत्मनिर्भर नहीं है। अतः केन्द्र सरकार पर राज्य सरकारों को आर्थिक सहायता (केन्द्रीय अनुदान) की प्राप्ति के लिए निर्भर रहना होता है। इसके राज्यों की स्वायत्तता खतरे में पड़ गई है, क्योंकि अधिकांश महत्वपूर्ण वित्तीय स्त्रोत संघ सूची के अन्तर्गत रखे गये है।

(8) राज्यों का राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं है– भारत में राज्यों के सदन अर्थात **राज्य सभा** में अमेरिका के राज्यों के सदन **सीनेट** की तरह सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं दिया गया है। राज्य सभा में प्रत्येक राज्य को उनकी जनसंख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। इस व्यवस्था के कारण राज्य सभा में बड़े राज्यों की स्थिति छोटे राज्यों की अपेक्षा मजबूत है।

(9) राज्य विधान मण्डलों द्वारा पारित विधेयक पर राष्ट्रपति की शक्ति – राज्य के राज्यपाल को जो केन्द्र द्वारा राज्य में नियुक्त होते है, उन्हें कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति की अनुमति के लिए सुरक्षित करने की शक्ति प्राप्त है। राष्ट्रपति को उसे (विधेयक) निरस्त करने का प्रभावी अधिकार है।

(10) संकट काल में एकात्मक स्वरूप – राष्ट्रीय आपात् **अनुच्छेद 352, 360** की स्थिति तथा राज्यों में घोषित आपातकाल **अनुच्छेद 356** के समय राज्यों के सभी प्रशासनिक तथा व्यवस्थापिका सम्बन्धित अधिकार केन्द्रीय सरकार के हाथ में आ जाते है।

(11) संविधान संशोधन सरलता से – संविधान के कुछ उपबन्धो में संसद साधारण विधि निर्माण प्रकिया द्वारा संशोधन कर सकती है।

(12) राज्यों के परस्पर विवादों में केन्द्र को अधिकार – राज्यों के परस्पर विवादों को सुलझने में केन्द्रीय सरकार समन्वयकारी संस्था के रूप में कार्य करती है। इस हेतु वह वित्तआयोग, अन्तर्राज्यीय परिषद**अनुच्छेद 263** तथा क्षेत्रीय परिषदों का गठन कर सकती है। इस संस्थाओं में केन्द्र सरकार का वर्चस्व बना रहता है।

फेडरल गवर्नमेण्ट के लेखक **के.सी.व्हीयर** ने लिखा है कि क्या हमें संविधान के उन रूपों तक सीमित रहना चाहिय जिसमें परिसंघीय सिद्धान्त पूर्णरूप से एवं बिना किसी अपवाद के लागू होते है या महायुद्धों, अन्तर्राष्ट्रीय संकटों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शोधों और कल्याणकारी राज्य के आदर्श सुशासन की अवधारणा के विकास के प्रभाव के परिणामस्वरूप संघीय सिद्धान्त की धारणा में बड़ा परिवर्तन आ गया है और विश्व की समस्त संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्रीयकरण की प्रवृति स्पष्ट रुप सेदिखाई देती है। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका, आस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैंण्ड तथा कनाड़ा में संघीय सरकारें (केन्द्रीय) क्षेत्रीय (प्रांतीय सरकारों) की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बन गयी है तथा परिसंघीय लक्षण बिलकुल मिट से गये है। भारत के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठाया जाता रहा है कि राज्यों कों अधिक स्वायत्तता प्रदान करना न्यायोचित है। भारतीय संविधान निर्माताओं का उद्देश्य एक दृढ एवं शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना करने का रहा है, जो किसी भी देश पर बाहरी आक्रमण को रोकने में समर्थ हो और आंतरिक विनाशकारी तत्वों को दबाने में पूर्ण सक्षम हो। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गई है। केन्द्र को शक्तिशाली बनाने में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ सहायक हुई है–

(1) संघ की वित्तीय शक्तियाँ **(अनुच्छेद 264–291)** तथा राज्यों को उनके कार्यों एवं विकास के लिए संघ के अनुदान **(अनुच्छेद 273–275)** पर अत्यधिक निर्भर रहना।

(2) आर्थिक नियोजन का स्वरूप योजना के निर्माण एवं क्रियान्यवन में **नीति आयोग** (2015) का व्यापक एवं विस्तृत होता क्षेत्र।

(3)राज्यपालों का **अनुच्छेद 356** के अन्तर्गत लागू किये गये राष्ट्रपति शासन का केन्द्रीय सरकार द्वारा राजनीतिक लाभ के लिये दुरूपयोग किया जाना।

उपर्युक्त प्रयासों के द्वारा राज्यों की स्वायत्तता की मांग को अवश्य हानि हुई है लेकिन **डा. दुर्गादास बसु** के अनुसार, वास्तविक कार्यकरण का सर्वेक्षण करने पर यह निष्कर्ष न्यायोचित नहीं ठहरता है किपरिसंघीय लक्षण बिल्कुल मिट गये है। यद्यपि यह सत्य है कि एकिक बन्धनों को अधिक मजबूत किया गया है।

3. सहकारी परिसंघवाद (Co-Operative Federalism) –

संघात्मक संविधान में केन्द्र और राज्य अलग–अलग स्वतन्त्र इकाई के रूप में कार्य करते है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। वे एक दूसरे से अलग रहते हुये भी एक दूसरे के सहयोगी है। प्रारम्भ में संघवाद का स्वरुप **प्रतियोगी संघवाद** का रहा था। धीरे–धीरे प्रतियोगिता और स्पर्धा की भावना कम

होती गई और उनके बीच सहयोग एवं समन्वय बढ़ता गया और वे एक दूसरे के सहयोगी व सहायक के रूप में हो गये। केन्द्र और राज्यों के बीच इस सहयोग एवं समन्वय की भावना के उत्पन्न होने के कारण आज हम इसे **सहकारी संघवाद** कहते है। इस परिवर्तन के तीन प्रमुख कारण है–

1. बाहय आक्रमण एवं युद्ध के खतरे की आशंका
2. तकनीकी प्रगति और संचार साधनों एवं आवागमन के साधनों का विकास
3. कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का जन्म जिसमें राज्य सरकारों को जनता के कल्याण के लिये अधिक धन लगाना पड़ता है।

1. भारत में सहकारी परिसंघवाद का स्वरूप–

ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संघात्मक व्यवस्था को सहकारी परिसंघवाद कहा है जिसमें शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार है। संविधान में पहले से ही ऐसे उपबन्ध किये गये है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों का एक दूसरे के प्रति कैसे सहयोग हो, ताकि दोनों सरकारें एक साथ होकर देश का समन्वित आर्थिक विकास कर सकें तथा देश की जनता को सुशासन दे सके। इस तरह से देश का और विभिन्न राज्यों का साथ–साथ विकास हो सके।ये उपबन्ध निम्नलिखित है– (1)विधि निर्माण में सहयोग (**अनु.252**)(2)राजस्व विभाजन में सहयोग (**अनु.268–269**) (**अनु.270, 272**) (3) राज्यों को केन्द्रीय अनुदान (**अनु.273,275)** (4) प्रशासनिक सहकारिता –(1) अखिल भारतीय सेवाएँ (**अनु. 312**)(2) पूरा विश्वास और पूरी मान्यता खण्ड (**अनु.261**) (3) अन्तर्राज्यपरिषद् (**अनु.263**) (4) अन्तर–राज्यों के बीच जल विवादों का निपटारा (**अनु.262**)

दुर्गादास बसु के विचार में भारत के संविधान की परिसंघ प्रणाली दो परस्पर विरोधी विचारों का समन्वय हैजैसे –(1) शक्तियों का एक सामान्य विभाजन जिसके अधीन राज्यों को अपने क्षेत्र के भीतर स्वायत्तता मिली हुई है। (2) राष्ट्रीय एकता और प्रबल संघ सरकार की आवश्यकता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में सामान्यतः संघात्मक व्यवस्था है, लेकिन अपवादिक परिस्थितियों में उसे एकात्मक स्वरूप में परिवर्तित किया जा सकता है। लेकिन व्यवहार में इन अपवादिक परिस्थितियों का दुरूपयोग राजनीतिक परिस्थितियों के लाभ उठाने के लिये किया गया है। जिससे इस पर प्रश्न चिन्ह लगता है।

4. वर्तमान भारत में संघात्मक शासकीय इकाईयाँ –

भारत मे संघात्मक संविधान को अपनाया गया है अतः उसके संघीय सिद्धातों के अनुरूप संघ व राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन करने के साथ–साथ विधायी,

वित्तीय तथा प्रशासनिक सम्बन्धों की व्यवस्था भी संविधान मेंउल्लेखित विभिन्न अनुच्छेदों के अनुसार की गई है। देश में दो प्रकार की सरकार हैं – प्रथम क्रेन्द्र सरकार तथा द्वितीय राज्यों की सरकार। इसके अतिरिक्त राज्यों के स्थानीय क्षेत्रों के प्रशासन हेतु **पंचायती राजव्यवस्था** के रूप में स्थानीय सरकार की स्थापना भी की गई है। वर्तमान में संविधान के **73वें** तथा **74वें** संशोधन के उपरान्त इस उपरोक्त वर्णीत स्थानीय सरकार को संवैधानिक मान्यता दी गई है। इस त्रिस्तरीय शासन व्यवस्था में शीर्ष स्तर पर केन्द्रीय सरकार को मध्यम स्तर पर राज्य सरकार एवं आधारतल पर स्थानीय सरकार को रखा गया है। विश्व के अन्य संघात्मक देशों की तुलना में विशेषतः संयुक्त राज्य अमेरिका की अपेक्षा भारत में राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते हुए और राष्ट्रीय एकता को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकार की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

(अ) केन्द्र की शासन व्यवस्था –केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत आने वाली राजनीतिक संस्थाये इस प्रकार है–

1. केन्द्रीय कार्यपालिका –

भारत में केन्द्रीय कार्यपालिका के अन्तर्गत राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद् और उनके अधीनस्थ लोकसेवाओं के प्रशासनिक अधिकारी वर्ग और कार्मिक वर्ग को सम्मिलित किया गया है।

2. केन्द्रीय व्यवस्थापिका–

वर्तमान में केन्द्रीय व्यवस्थापिका को संसद के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ये द्विसदनात्मक है। जिसमें उच्च सदन (राज्य सभा), राज्यों का सदन है तथा निम्न सदन (लोक सभा) जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का सदन है।

3. केन्द्रीय न्यायपालिका –

केन्द्रीय न्यायपालिका के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को सम्मिलित किया गया है जो राज्यों के उच्च न्यायालयों पर नियन्त्रण रखता है। केन्द्रीय सर्वोच्च न्यायालय, राज्य के उच्च न्यायालयों पर अपीलीय अधिकारिता रखता है और इस प्रकार वह एकात्मकता के लक्षण प्रकट करता है।

(ब) राज्य की शासन व्यवस्था –

भारत मेंप्रत्येक राज्य में वैसी ही शासन व्यवस्था है जैसी कि केन्द्र में हैं अर्थात् केन्द्र की तरह राज्यों में प्रशासन का स्वरूप संसदात्मक है।

1. राज्यपाल (अनुच्छेद 153 से 167) –

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 153** के अन्तर्गत राज्यपाल के पद का उपबन्ध किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल होगा। दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक ही राज्यपाल हो सकता है। एक से अधिक राज्यों में जब एक ही व्यक्ति राज्यपाल के रूप में कार्य करता है तो वह जिस राज्य में कार्य करता है तो वही के विधानमण्डल की सलाह पर कार्य करता है। राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राज्यपाल मेंनिहित होती है तथा राज्य का पूरा प्रशासन भी राज्यपाल के नाम से ही चलाया जाता है। वह अपनी कार्यपालिका शक्तियों का उपयोग या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करता है। इन अधीनस्थ अधिकारियों की पदावली में मन्त्रीगण भी आते हैं।

भारत में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति की जाती है। उसकी नियुक्ति न तो प्रत्यक्ष मतदान द्वारा की जाती है, और न विशेष रूप से राष्ट्रपति के लिये गठित निर्वाचक मण्डल द्वारा जो अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति का चुनाव करता है। यह सामान्यतः पाँच वर्ष के लिये नियुक्त किया जाता है। यह स्वयं अवधि से पूर्व त्यागपत्र दे सकता है या राष्ट्रपति द्वारा पद से हटाया जा सकता है, क्योंकि राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त ही पद धारण कर सकता है अतः राज्यपाल पर **महाभियोग** नहीं लगाया जाता है। इसको पद मुक्त करने में राज्य के विधानमण्डल और उच्च न्यायालय की कोई भूमिका नहीं होती है । यह केन्द्र सरकार द्वारा नामांकित व्यक्ति होता है। संविधान के अधीन राज्यपालों के तीन रूप हैं–

(1) राज्यमन्त्रिमण्डल की सलाह मानना (2) केन्द्र के ऐजेन्टके रूप में कार्य करना

(3) स्वविवेक से कार्य करना, जिसमें प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री की सलाह मानना आवश्यक नहीं है यहाँ स्वविवेक की स्थितियों में इसकी शक्तियाँ राष्ट्रपति से अधिक है। राज्यों में यह उन सभी शक्तियों का प्रयोग करता है, जो केन्द्र में राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

2. राज्य विधान मण्डल –

भारतीय संविधान में संघीय शासन व्यवस्था होने के कारण राज्यों में पृथक–पृथक विधानमण्डल की व्यवस्था की गई है।संविधान में यह भी उल्लेखित है, राज्य का विधानमण्डल राज्य के राज्यपाल एवं राज्यविधानमण्डल के सदन या सदनों को मिलाकर बनेगा। संविधान के अनुसार **अनुच्छेद 168–212** के अन्तर्गत राज्य विधानमण्डल की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। राज्य में संविधान के अनुसार राज्य विधानमण्डल में एक सदन भी हो सकता है तथा दो सदन भी हो सकते है। राज्य विधानमण्डल के इन दो सदनों को क्रमशः **विधानसभा** और **विधानपरिषद्** कहा जाता है। वर्तमान में **पाँच**राज्यों में ही

द्विसदनात्मक विधानमण्डल है। ये राज्य हैं–**उत्तरपदेश, महाराष्ट्र, जम्मू–कश्मीर, बिहार, कर्नाटक।**

3. मुख्यमन्त्री की भूमिका व स्थिति–

राज्यपाल ही मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है राज्य की विधान सभा में जिस राजनीतिक दल का बहुमत होता है उसी के नेता को राज्यपाल मुख्यमंत्री नियुक्त कर देता है। लेकिन यदि विधानसभा में किसी भी राजनीतिक दल कोबहुमत हासिल नहीं होता है, तो राज्यपाल स्वविवेक से मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है। केन्द्र की तरह राज्यपाल मुख्यमन्त्री की सलाह से राज्य मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों को मन्त्री पद पर नियुक्त करता हैं।

4. राज्य न्यायपालिका (उच्च न्यायालय) (अनुच्छेद 214–273) –

प्रत्येक राज्य की न्यायपालिका व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य का उच्च न्यायालय एवं उसके अधीनस्थ न्यायालयों को सम्मिलित किया जाता है। चूंकि भारत में एकीकृत न्यायव्यवस्था को अपनाया गया है अतः राज्यों के उच्च न्यायालयों को केन्द्र के उच्चतम न्यायालय अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय के अधीन रखा गया है।

(स) स्थानीय शासन व्यवस्था –

स्थानीय शासन –

भारतीय संघात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत कार्यरत त्रिस्तरीय शासन संरचना में तृतीय स्तर पर स्थानीय शासन व्यवस्था को रखा है। भारतीय संघीय प्रणाली में केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों के बँटवारे की योजना के अन्तर्गत स्थानीय शासन का विषय राज्यों को दिया गया हैं। इस प्रकार संविधान की **सातवीं सूची** में वर्णित **राज्य सूची** में **पाँचवी प्रविष्टि** स्थानीय शासन से सम्बन्धित हैं।[67]

भारत में स्थानीय शासन के अन्तर्गत दो प्रणालियाँ है। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित हैं –

(1.) ग्रामीण स्थानीय स्वशासन प्रणाली–

भारत में पंचायती राज ग्रामीण स्थानीय स्वशासन प्रणाली का सूचक है। भारत में सभी राज्यों में इसका गठन राज्य विधान मण्डलों के अधिनियम द्वारा सबसे निचले स्तर पर जनतंत्र स्थापित करने के लिए किया था। इसे ग्रामीण विकास के क्षेत्र से सम्बन्धित उद्देश्य, कार्य और जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। केन्द्र स्तर पर पंचायती राज निकायों से सम्बन्धित मामलों की देखरेख **ग्रामीण विकास मंत्रालय** द्वारा की जाती हैं।

(i) 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992–

इस अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान में भाग IX को जोड़ दिया गया है। जिसका शीर्षक पंचायत रखा गया है। इसमें अनुच्छेद 243 से अनुच्छेद 243–ओ तक पंचायतों से सम्बन्धित कई प्रावधान किये गये है। इसके अतिरिक्त संविधान में ग्यारहवीं अनुसूची भी जोड़ी गई है जिसमें पंचायतों के कार्य हेतु 29 मद है और ये अनुच्छेद 243 जी से सम्बन्धित हैं। इस अधिनियम ने संविधान के अनुच्छेद 40[68]को व्यावहारिक रूप दिया। यह अनुच्छेद राज्य के नीति निदेशकतत्व का एक अंग है।

इस अधिनियम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा मिला। जिसमें राज्य सरकारों द्वारा इन संस्थाओं के हर पाँच वर्ष में चुनाव करवाने अनिवार्य हो गये हैं तथा राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा ये चुनाव करवाये जाते है।

(ii) ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं –

इस अधिनियम के तहत पंचायत राज प्रणाली की आधार संस्था के रुप में ग्राम सभा का प्रावाधान है। अधिनियम में प्रत्येक राज्य में त्रिस्तरीय प्रणाली का प्रावाधान है – अर्थात् ग्राम स्तर पर पंचायत, मध्यम या ब्लॉक स्तर पर पंचायत समितिऔरजिला स्तर पर जिला परिषद् संस्थाऐं स्थापित की जायेंगी।

2 नगरीय स्थानीय स्वशासन प्रणाली–

भारत में शहरीय स्थानीय शासन शब्द का आशय लोगों द्वारा उनके चुनें हुए प्रतिनिधियों के द्वारा किसी शहरी क्षेत्र के शासन से है। शहरी स्थानीय शासन का अधिकार क्षेत्र राज्य सरकार द्वारा इस प्रयोजन से निर्धारित विशिष्ट शहरी क्षेत्र तक सीमित रहता है। भारत में इस शहरी स्थानीय शासन के आठ प्रकार हैं – नगर निगम, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र कमेटी, टाउन एरिया कमेटी, छावनी बोर्ड, टाउनशिप, पोर्ट ट्रस्ट, विशेष उद्देश्य एजेंसी। केन्द्र स्तर पर शहरी स्थानीय प्रशासन से जुड़े तीन मंत्रालय हैं – 1. शहरी विकास मंत्रालय, 2. रक्षा मंत्रालय, व 3. गृह मंत्रालय।

(i) 74वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 –

इस अधिनियम से भारतीय संविधान में भाग IX एजोड़ दिया गया है। इस भाग का शीर्षक नगरपालिकाऐं है। इसके प्रावाधानों का उल्लेख अनुच्छेद 243 पी से 243 जेड जी में है। इसके अतिरिक्त इसके कारण संविधान में 12वीं अनुसूची भी जोड़नी पड़ी। इस अनुसूची में नगरपालिकाओं की 18 कार्य मदों का उल्लेख किया है जो अनुच्छेद 243 डब्ल्यू से सम्बन्धित है। इस अधिनियम ने नगरपालिकाओं ने को संवैधानिक दर्जा दिया है। इस

अधिनियम के कारण राज्य सरकारों का इस नई नगरपालिका प्रणाली को अनिवार्यतः अपनाना आवश्यक है।

(ii) शहरी स्थानीय शासन संस्थाऐं –

इस अधिनियम में हर राज्य में तीन प्रकार की नगरपालिकाओं संस्थाओं के गठन का प्रावाधान है – 1. **नगर पंचायत** (नाम जो भी हो) – यह ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के बीच के क्षेत्र से सम्बन्धित है। (समवर्ती क्षेत्र के लिए) **2. नगर परिषद्**–छोटे शहरी क्षेत्र के लिए 3. **नगर निगम** –बड़े शहरी क्षेत्र के लिए।

समवर्ती क्षेत्र, छोटा शहरी क्षेत्र, बड़ा शहरी क्षेत्र का आशय उस क्षेत्र से है जिसे राज्यपाल निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रयोजन की अधिसूचना में निर्दिष्ट करता है – 1. क्षेत्र की आबादी 2. जनसंख्या का घनत्व 3. स्थानीय प्रशासन के लिए उत्पादित राजस्व 4. गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार का प्रतिशत, 5. आर्थिक महत्व या राज्यपाल द्वारा उचित समझे जाने वाले कारण।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इन संस्थाओं में जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के लिये (यदि राज्य चाहे ता) आरक्षण की व्यवस्था की गई है। महिलाओं को एक–तिहाई आरक्षण दिया गया है। आरक्षण के लिये चर्क्रानुक्रमअपनाया जाता है।

इस प्रकार भारत में राज्य सरकार के अधीन एकसुसंगठित स्थानीय सरकार की स्थापना की गई है। स्थानीय सरकार के द्वारा स्थानीय जनता अप्रत्यक्ष रूप से केन्द्रीय सरकार के कार्यों में अपनी सहभागिता को प्रदर्शित करती है। जनता ही सम्प्रभु है। इस उक्ति को सिद्ध करती है। ये वर्तमान भारत में सुशासन को स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

7. कौटिल्यकृत प्रशासकीय विभाजन बनाम वर्तमान मन्त्रालयी/विभागीय प्रणाली–

7.I कौटिल्यकृत प्रशासकीय विभाजन –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत प्रशासकीय विभाजन की व्यवस्था निम्नलिखित है –

अर्थशास्त्र में विजिगीषु सम्राट के अधीनस्थ सम्पूर्ण राज्य के केन्द्रीकृत प्रशासन तंत्र का विस्तृत वर्णन और विश्लेषण किया है। इस प्रशासन में कौटिल्य ने सम्राट (राजा), मन्त्रिपरिषद्, मंत्रीगण,आमात्यों जैसे उच्च लोकसेवकों के अतिरिक्त मध्यस्तरीय अधिकारीवर्ग जैसे अध्यक्षों और युक्त,उपयुक्त व तत्पुरूष जैसे राजकर्मचारियों का उल्लेख किया है। साथ

ही उनके विभागीय उत्तरदायित्व का भी वर्णन किया है। ये विवरण निम्नलिखित प्रकार से है –

1. राजा (प्रशासनिक प्रमुख) –

कौटिल्य ने राजा कोसर्वोच्च प्रशासक मानते हुऐ राज्य की सम्पूर्ण विधायी, कार्यपालक एवं न्यायिक शक्तियाँ राजा को देने का विस्तृत प्रावाधान किया है। कौटिल्य का मानना था कि राजा को उद्योगों की स्थापना करना, यज्ञ करना, व्यवहारों का निर्णय करना, दक्षिणा देना तथा अनुशासन स्थापित करना भी राजा के प्रमुख कर्त्तव्य है। इन्हें कौटिल्य ने **व्रत** की संज्ञा दी है। चूंकि राज्य में राजा ही कूटस्थानीय (केन्द्रीय) भूमिका में स्थापित है अतः वह ही सम्पूर्ण लोक सेवकों को उनके विभागों का वितरण करता है और विभागीय कर्त्तव्यों को भी निर्धारित करता है।

2. राजकीय कार्य एवं मन्त्रिपरिषद्की आवश्यकता –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजकीय कार्यों के तीन प्रकार बताये हैं –

(i) प्रत्यक्ष कार्य –वे कार्य हैं जो अपने सम्मुख हों,

(ii) परोक्ष कार्य –वे कार्य हैं जो दूसरे बतायें,

(iii) अनुमेय कार्य– ये किये हुए कार्य से न किए हुए कार्यों का अनुमान करना है।[69]

एक शक्तिशाली राजा भी उपर्युक्त वर्णीत सभी राजकार्य स्वयंनहीं कर सकता है अतः उसकी सहायता के लिए मन्त्रीपरिषद्, मन्त्रिण और अमात्यों की आवश्यकता होती है। ये उसकोराजकार्यों में परामर्श भी दें और राजकार्यों को सम्पादित भी करे।

3. मन्त्रिपरिषद –

कौटिल्य के मतानुसार राजा को अपने सम्पूर्ण राज्य की सुदृढ़प्रशासनिक व्यवस्था के लिए एक मन्त्रिपरिषद् का संगठन करना चाहिए। इसमेंकितने सदस्य हों उसकी संख्या के बारे में उनका मत था कि यथासामर्थ्य अर्थात् जैसी आवश्यकता हो, जैसा सामर्थ्य हो उसके अनुसार मन्त्रियों की नियुक्ति की जाए। राजा मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के साथ जो भी मंत्रणा करें उसे अनिवार्यतः गोपनीय रखे। ये मंत्रणा इतनी गोपनीय हो की पशु–पक्षी भी न सुन सके और कोई इस गोपनीयता को भंग करें तो उसे मार डाला जाए।

4. मन्त्रिण –

अर्थशास्त्र में मंत्रीपरिषद् के साथ ही एक छोटी उपसमिति का उल्लेख किया है। जो वर्तमान भारतीय प्रशासन में कैबिनेट स्तर के मंत्रियों के समकक्ष है। इसके सदस्य **मन्त्रिण** कहे गये हैं।इनकी संख्या तीन या चार ही होती है।शीघ्र निर्णय लेने वाले विषयों के सम्बन्ध में राजा इनसे परामर्श लेता है। राजा अपनी विचार शक्ति के अनुसार अकेला

बैठकर कुछ कार्यों का स्वयं ही निर्णय करे। उपरोक्त कथन स्पष्ट करता है कि राजा मन्त्रिण के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं था निर्णयन का सर्वोच्च अधिकार राजा के अधीन ही था।

5. आमात्य–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मंत्री व प्रशासनिक अधिकारी को इस पदनाम से सम्बोधित किया है। कौटिल्य राजा से अपेक्षा करते है किवह अति योग्य व्यक्ति को अमात्य पद पर नियुक्त करे। इन्हें सचिव भी कहा जाता था।[70]आचार्य ने यह भी कहा है कि विविध समयों, विविध स्थानों और विविध कार्यों के लिए अमात्यों या सचिवों को नियुक्त किया जाये। ये सभी अमात्य मंत्री नहीं होंगे। कौटिल्य ने अमात्य को जनपद की कर्म सिद्धि, राज्य की सुरक्षा, संकट का सामना, सेना की व्यवस्था, आय–व्यय का हिसाब, शत्रुओं का दमन, रिक्त भूमि के विकास, अपराधियों को दण्ड, वैदेशिक सम्बन्ध तथा राजकुमारों की सुरक्षा इत्यादि के दायित्व सौंपे हैं।

6. शासन के विभिन्न अधिकरण (तीर्थ)–

कौटिल्य के अनुसार मौर्य युग में शासन के विविध अधिकरणों को **तीर्थ** नाम से सम्बोधित किया जाता था। सम्भवतः यहाँ तीर्थ शब्द को प्रयुक्त करने से आचार्य का मन्तव्य विभागों में **पवित्रता** अर्थात् **सद्‌चरित्रता** बनी रहनी चाहिए से था। प्रत्येक तीर्थ (अधिकरण) एक–एक महामात्य या अमात्य के अधीन होता था। इन तीर्थों की संख्या अठारह[71] थी। इन अठारह तीर्थों का विवरण निम्नलिखित है–

(1) **मंत्री और पुरोहित** – प्रधानमंत्री एवं यझ उपासना कार्यों में राजा का सहायक,

(2) **समाहर्ता**– जनपदों के शासक के रूप में एवं राजकीय करों को एकत्र करने वाला अमात्य,

(3) **सन्निधाता**– राजकीय कोष का प्रधान अमात्य,

(4) **सेनापति**– युद्ध विभाग का अमात्य,

(5) **युवराज**–राजा के उत्तराधिकारी के रूप में राजकुमार,

(6) **प्रदेष्टा**– कंटकशोधन न्यायालय का प्रमुख न्यायाधीश,

(7) **नायक**–सैन्य संचालन करने वाले अधिकरण का प्रमुख,

(8) **कार्मान्तिक**– राजा द्वारा संचालित उद्योगों के विभाग का प्रमुख,

(9) **व्यावहारिक**–धर्मस्थानीय न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश,

(10) **मन्त्रिपरिषदध्यक्ष** –मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष,

(11) **दण्डपाल**– सेना के प्रबन्ध विभाग का प्रमुख,

(12) **अन्तपाल–** राज्य की सीमान्तों का प्रमुख,

(13) **दुर्गपाल–** राज्य के अन्तर्वती दुर्गों का प्रमुख,

(14) **नागरक–** नगरों या पुरों का प्रमुख अधिकारी,

(15) **प्रशास्ता**–राज्य सचिवालय का प्रमुख अधिकारी,

(16) **दोवारिक–** राजप्रसाद का प्रधान अधिकारी,

(17) **आन्तर्वेशिक–** राजा की निजी अंगरक्षक सेना का प्रधान,

(18) **आटविक–** आटविक बल (सेना) का प्रधान,

मौर्य साम्राज्य के केन्द्रिय शासन के अंतर्गत यही **अष्टादश तीर्थ** (18 अधिकरण) थे। इनकी सहायता से ही मौर्यों के विस्तृत एवं विजित क्षेत्र का शासन चलाया जाता था। इस प्रशासन में **मन्त्री** और **पुरोहित** की नियुक्ति करना प्राचीन परम्परा के अनुरुप **ब्रह्म शक्ति** की महत्ताको सूचितकरता था। भारत में आर्य राज्यों की प्राचीन परम्परा रही थी कि **ब्रह्म** और क्षत्र शक्ति के आपसी सहयोग द्वारा ही इसराज्य संस्था का सुचारू रूप से संचालन करना सम्भव था। मंत्री और पुरोहित ही राजा को धर्म,चरित्र व व्यवहार के पालन और शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित मन्तव्यों का अनुसरण करने के लिए बाध्य करेंगे और राजा से भी यह आशा की जाती हैकि वह पुत्र, शिष्य, या सेवक की तरह इनका अनुवर्ती बनकर रहे और अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करे। **समाहर्ता** राजकीय आय की प्राप्ति और व्यय तथा **सन्निधाता** राजकोष की रक्षा और वृद्धि जैसे महत्वपूर्ण दायित्वों को पूर्ण करते थे। **प्रदेष्टा** और **धर्मस्थ** राज्य के न्याय–विभाग के प्रधान अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। **सेनापति,नायक, अन्तपाल, दुर्गपाल, आन्तर्वेशिक** और **आटविक** तीर्थों का सम्बन्ध सेना के विभिन्न विभागों से था। **नागरक** नगर का प्रमुख अधिकारी होता था जबकि **प्रशास्ता** केन्द्रिय शासन सचिवालय का संचालन करता था। राज्य के द्वारा संचालित कारखानें,**कार्मान्तिक** के अधीन थे। **मन्त्रिपरिषदाध्यक्ष** मन्त्रिपरिषद्का सभापति होता था। उसी प्रकार **युवराज** राजा के उत्तराधिकारी होने के साथ ही उसका शासन में पृथक व महत्वपूर्ण स्थान था ।

7. केन्द्रिय शासन के कतिपय विभाग –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इन उपरोक्त वर्णित अष्टादश तीर्थों के महामात्यों (अमात्यों) के अधीन अन्य बहुत से विभाग भी होते थे। जैसे की समाहर्ता नामक महामात्य के अधीन बीस और सन्निधाता के अधीनस्थ छः विभाग थे। इस प्रकार कौटिल्य ने केन्द्रिय प्रशासन में कुल छब्बीस (26) विभागों और उनके कार्यों का भी विस्तार से वर्णन किया है।

8. विभागध्यक्ष (अध्यक्ष) –

अर्थशास्त्र के अनुसार **समाहर्ता** और **सन्निधाता** अमात्यों के अधीन जो विभाग बताये गये थे, उनके संचालन के लिये जो अधिकारी नियुक्त किये जाते थे, उन्हें **अध्यक्ष** कहा जाता था। ये एक प्रकार के कार्यकारी अधिकारी थे।

9. समाहर्ता के अधीन विभाग और उनके अध्यक्ष –

समाहर्ता के अधीन बीस अध्यक्ष रखे गये थे जो अपने–अपने विभागों से सम्बन्धित राजकीय करो को एकत्र करते थे और ऐसे व्यापार, व्यवसाय व उद्योगों का भी संचालन करते थे, जो राज्य के स्वामित्व में रखे गये थे। ये विभाग और उनके अध्यक्षों की सूची इस प्रकार है–

अध्यक्ष	विभाग	अध्यक्ष	विभाग
1. **शुल्काध्यक्ष**–	(कर–एकत्रण विभाग)	11. **नावाध्यक्ष**	(जलमार्ग प्रबन्धन विभाग)
2. **पौतवाध्यक्ष**–	(माप–तौल विभाग)	12. **गोअध्यक्ष**	(पशुपालन विभाग)
3. **मानाध्यक्ष**–	(देश व कालमापक विभाग)	13. **अश्वाध्यक्ष**	(अश्वविभाग)
4. **सूत्राध्यक्ष** –	(वस्त्र विभाग)	14. **हस्त्यध्यक्ष**	(हस्त्य (हाथी) विभाग)
5. **सीताध्यक्ष** –	(कृषि विभाग)	15. **कुप्याध्यक्ष**	(वन उत्पाद विभाग)
6. **सुराध्यक्ष** –	(मदिरा विभाग)	16. **पण्याध्यक्ष**	(वाणिज्य विभाग)
7. **सूनाध्यक्ष** –	(बूचड़खाना)	17. **लक्षणाध्यक्ष**	(मुद्रा विभाग)
8. **गणिकाध्यक्ष**–	(गणिका–विभाग)	18. **आकराध्यक्ष**	(खनन विभाग)
9. **मुद्राध्यक्ष** –	(राजकीय पहचान–पत्र विभाग)	19. **सौवर्णिक**	(टकशाल विभाग)
10. **विवीताध्यक्ष** –	(चरागाह प्रबन्ध विभाग)	20. **देवताध्यक्ष**	(देवस्थान विभाग)

10. सन्निधाता के अधीन विभाग और उनके अध्यक्ष–

सन्निधाता के अधिकरण (तीर्थ) के अधीन भी अनेक राजकीय विभागों की सत्ता थी उनमें से कतिपय उल्लेखनीय हैं –

प्रमुख का नाम	विभाग
1. कोशाध्यक्ष	**कोशगृह** (बहूमूल्य रत्नों और पदार्थो का संग्रह–विभाग)
2. पण्याध्यक्ष	**पण्यगृह** (राजकीय कारखानो में तैयार माल का संग्रह–विभाग)
3. कोष्ठागाराध्यक्ष	**कोष्ठागार** (आवश्यक सामग्री का संग्रह–विभाग)
4. कुप्याध्यक्ष	**कुप्यगृह** (वन उत्पाद संग्रह–विभाग)
5. आयुधागाराध्यक्ष	**आयुधागार** (अस्त्र शस्त्र संग्रह–विभाग)

6. बन्धनागाराध्यक्ष **बन्धनागार** (जेल विभाग)

11. अन्य राजकर्मचारी वर्ग–

मौर्यों के शासन में महामात्यों व अध्यक्षों के अधीन बहुत से अन्य राजकर्मचारी भी कार्य करते थे। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रसंगवश इनका भी निर्देश किया गया है। इनके लिए**युक्त**, **उपयुक्त** और **तत्पुरूष** आदि नामों का प्रयोग किया गया है। युक्त ऐसे अधीनस्थ कर्मचारी थे जो विभागों के अध्यक्षों के अधीन कार्य करने के लिए नियुक्त किये जाते थे। उपयुक्त नामक कर्मचारी युक्तों की तुलना मेंसम्भवतः हीन स्थिति रखते थे।

अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य युग में भी ये कर्मचारी रिश्वत लेने और अन्य अनुचित कार्यों से बाज नहीं आते थे। यद्यपि कौटिल्य ने रिश्वत सदृश अपराध के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की है पर उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा कि जैसे ही यह पता कर सकना कठिन है कि **जल में रहती हुई मछलियाँ कब जल पीती हैं, वैसे ही ये ज्ञात कर सकना भी एक कठिन कार्य है कि राजकीय कार्य में नियुक्त युक्त कब धन का अपहरण कर लेते हैं।**

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य काल में प्रशासनिक व्यवस्था एक सुसंगठित प्रशासन तन्त्र द्वारा संचालित की जाती थी। इस प्रशासन तन्त्र का राज्य में सुशासन को स्थापित करने में सर्वाधिक योगदान था।

7.II वर्तमान मन्त्रालयी/विभागीय प्रणाली –

वर्तमान भारत में संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत मंत्रालयी/विभागीय प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है –

1. राष्ट्रपति (प्रशासकीय प्रमुख) –

भारतीय संविधान ने भारत में संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत संसदीय सरकार की स्थापना की है। भारतीय संसद के तीन अंग हैं–(1) राष्ट्रपति (2) राज्यसभा(3) लोकसभा। यद्यपि राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है किन्तु वह संसद का एक अभिन्न अंग है तथा उसकी कार्यवाहियों में भाग लेता है। वह संसद के सत्र को आहूत करता है। उसे स्थगित कर सकता है और लोकसभा को विघटित कर सकता है। वह ही संसद द्वारा पारित सभी विधेयक पर अनुमति देता है।

संसदीय सरकार में राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है। लेकिन वास्तविक शक्ति मन्त्रिपरिषद् में निहित होती है, जिसका प्रधान **प्रधानमंत्री** होता है। मंत्रीपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। अतः उपरोक्त वर्णित सभी संसदीय शक्तियाँ का प्रयोग उसकी और से मन्त्रीपरिषद् और प्रधानमंत्री करते हैं,क्योंकि मन्त्रीपरिषद् के सदस्य जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रपति जो संघीय कार्यपालिका का प्रमुख

है वह देश के प्रधानमंत्री, मंत्री परिषद् एवं अधीनस्थ लोक सेवकों की सहायता से संविधान द्वारा निर्धारित अपने दायित्वों को पूर्ण करता है।

2. राष्ट्रपति की कार्यनिर्धारण और कार्यसंचालन शक्ति –

चूंकि वर्तमान भारत की संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रपति ही देश का सर्वोच्च प्रशासक है। अतः सम्पूर्ण प्रशासकीय कार्य एवं निर्णय उसी के नाम पर किये जाते है। इसलिए भारतीय संविधान का **अनुच्छेद 77** राष्ट्रपतिको संघ की केन्द्रिय सरकार के कार्यों को सक्षमतापूर्ण तटीके से करने हेतु और इन कार्यों को मन्त्रियों के बीच उचित ढंग से विभाजित करने हेतु नियम बनाने की शक्ति प्रदान करता है। इस **अनुच्छेद 77** के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा **भारत सरकार कार्य आवंटन नियम 1961**(Allocation of Business Rules) तथा **भारत सरकार कार्य संचालन नियम1961**(Transaction of Business Rules) निर्मित किये जाते है।

यह **लार्ड केनिंग** द्वारा लागू कि गई **विभागीय व्यवस्था**(Portfolio System) पर आधारित है। इस विभागीय व्यवस्था के सिद्वान्त द्वारा ही मन्त्रालयों/विभागों की उत्पति हुई है। इनके अर्न्तगत एक मन्त्री को मन्त्रालय/विभाग का प्रभारी (प्रमुख) बनाया जाता है तथा वह राष्ट्रपति की ओर से सहायक के रूप में आदेश पारित करने की शक्ति रखता है।

वे सभी मन्त्रालय/विभाग जो **भारत सरकार के कार्य निर्धारण नियमों**के अर्न्तगत उल्लेखित है, को सम्मिलित रूप से **केन्द्रीय सचिवालय** (Central Secretariat) के रूप में जाना जाता है। वर्तमान में जो मन्त्रालय/विभाग केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं वह भारत सरकार के **कार्य निर्धारण नियम 1961** के द्वारा शासित है। सन् 1961 से 2004 तक भारत सरकार के मन्त्रालयों विभागों तथा उनके कार्य आवंटन में 272 बार संशोधन हो चुके हैं। वर्तमान में **नीति–निर्माण** एवं**नीति क्रियान्वयन** को पृथक करने का प्रयास किया गया है। इसे स्पिलिट सिस्टम(The Split System)नाम दिया गया है। इसके अनुरुप सचिवालय एवं निदेशालय (कार्यकारी संस्था) स्थापित किये गये है। सचिवालय नीति–निर्माण करता है और निदेशालय नीति–क्रियान्वयन का कार्य करता है। प्रशासनिक व्यवस्था में **सामान्यज्ञों** को **विशेषज्ञों** की तुलना में अधिक वर्चस्वप्राप्त है।

3. लोक सेवाएँ –

भारत सरकार के मन्त्रालयों तथा विभागों में नियुक्त होने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी विभिन्न प्रकार की लोकसेवाओं से सम्बन्धित होते हैं। इन लोकसेवाओं में प्रमुख लोकसेवाएँ निम्न हैं –

(1) अखिल भारतीय सेवाएँ– इसके अन्तर्गत भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय वन सेवा के अधिकारी सम्मिलित है, ये भारत में कहीं भी पदस्थापित हो सकते हैं। सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर इन अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है।

(2) केन्द्रीय सेवाएँ– इन सेवाओ के अधिकारी केन्द्रीय मन्त्रालयों तथा कार्यकारी विभागों (निदेशालय) में कार्यरत होते हैं।

(3) केन्द्रीय सचिवालय सेवाएँ – इसकी पाँच ग्रेड क्रमशः वरिष्ठ चयनित ग्रेड (निदेशक), चयनित ग्रेड (उपसचिव या समकक्ष), ग्रेड–1(अवर सचिव या समकक्ष), अनुभाग अधिकारी ग्रेड, तथा सहायक ग्रेड है।

(4) केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवाएँ– इसमें वरिष्ठ प्रमुख निजी सचिव ग्रेड, प्रमुख निजी सचिव ग्रेड,निजीसचिव ग्रेड–A और B (अब संयुक्त हैं) स्टेनोग्राफर ग्रेड–Cतथा स्टेनोग्राफर ग्रेड–D नामक पाँच ग्रेड हैं।

(5) केन्द्रीय सचिवालय लिपिकीय सेवाएँ –

इसमें दो ग्रेड हैं –1. उच्च डिविजन ग्रेड और 2. निम्न डिविजन ग्रेड।

साथ ही साथ वर्तमान भारत में संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र सरकार के अलावा राज्यों की सरकारों में भी उपरोक्त वर्णित कार्य निर्धारण एवं कार्य संचालन व लोक सेवा व्यवस्था को राज्यों के राज्यपाल के अधीन रखा गया है।

8. तुलनात्मक विश्लेषण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित प्रशासनिक परिवेश का वर्तमान भारत के प्रशासनिक परिवेश से एक तुलनात्मक विश्लेषण संक्षेप में इस प्रकार से है–

तालिका 2.1

प्रशासनिक पर्यावरण का तुलनात्मक विश्लेषण

क्र. सं.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रशासनिक परिवेश	वर्तमान भारत में प्रशासनिक परिवेश
1.	**शासन में शक्ति (सम्प्रभुता) का स्त्रोत–** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्यकाल में राज्य के प्रशासक, प्रशासनिक संस्थाओं और उनमें कार्यरत प्रशासकीय वर्ग एवं जनता पर त्रयी (ऋक्, यजु, साम वेदों) में निरुपित धर्म का नियन्त्रण था। ये धर्म ही चारों वर्णों, चारों आश्रमों को अपने–अपने धर्म (स्वधर्म) कर्त्तव्यों	वर्तमान भारत में सम्पूर्ण प्रशासन, प्रशासकीय संस्थाओं, उनमें कार्यरत प्रशासकीय वर्ग पर भारतीय संविधान और उसमें उल्लेखित विभिन्न भागों, अनुच्छेदों,अनुसूचियों में वर्णित नियमों एवं उपनियमों द्वारा कार्यों का विभाजन एवं

	पर स्थिर रखता था।	नियन्त्रण रखा गया है।
2.	**शासन का स्वरूप –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस काल में शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। कौटिल्य राज्य के विकास हेतु राजतंत्रात्मक व्यवस्था के कट्टर समर्थक थे।	भारत में लोकतंत्रवादी, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली को अपनाया गया है।
3.	**शासन प्रणाली –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत एकात्मक शासन प्रणाली को वर्णित किया गया था।	भारत में लोकतंत्र के साथ ही साथ संघात्मक शासनप्रणाली को अपनाया गया है।
4.	**सरकार का स्वरूप –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में एकीकृत राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का वर्णन किया गया था। इसमें सत्ता का एक ही स्तर होता था जो केन्द्रीय सरकारके नाम से जानी जाती थी। प्रांतों एवं स्थानीय स्तर पर पृथक–पृथक सरकारें नहीं होती थी। वहां केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये गये पदाधिकारी ही शासन पर नियन्त्रण रखते थे।	भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया की गया है। वर्तमान में केन्द्र एवं राज्यों में पृथक–पृथक सरकारों की स्थापना की गई है। 73वें एवं 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा राज्यों के नियन्त्रण में अब स्थानीय सरकार (ग्रामीण एवं नगरीय स्थानीय शासन) को संवैधानिक स्तर प्रदान कर दिया है। अतः अब भारत में त्रिस्तरीय सरकार की व्यवस्था मिलती है।
5.	**प्रशासक का निर्वाचन–** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने स्पष्टतः तो नहीं कहा है कि राजा किसी वंश या वर्ण विशेष का हो परन्तु वे उच्चकुल में जन्मे व्यक्ति को प्रशिक्षित कर राजा बनाये जाने का समर्थन करते थे। इससे स्पष्ट होता था किवे वंश परम्परा के समर्थक तो थे। लेकिन ये	भारत में चूंकि शासन की गणतन्त्रात्मक पद्धति को अपनाया गया है। अतः यहाँराष्ट्र का प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति को वंश परम्परा के अनुसार नहीं चुनकर संसद के निर्वाचित सदस्यों एवं राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों से बने

	उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्र में कहीं भी राजा के निर्वाचन एवं निर्वाचन पद्धति का उल्लेख नहीं किया गया है।	एक निश्चित निर्वाचन मण्डल द्वारा संविधान में उल्लेखित निर्वाचन पद्धति के अनुसार निर्वाचित किया जाता है।
6.	**शक्ति पृथक्करण सिद्वात्त–** कौटिल्य ने शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त का समर्थन तो किया पर वह वर्तमान सन्दर्भ में प्रचलित शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त की भांति नहीं था। कौटिल्य ने राजा को केन्द्रीय स्थिति प्रदान कर विधायी, कार्यपालक एवं न्यायिक सम्बन्धित तीनों प्रकार की सर्वोच्च शक्तियाँ उसके अधीन रखी थी। वे शक्ति के केन्द्रीयकरण के पक्षधर थे जो तत्कालीन राजतन्त्रीय व्यवस्था के अनुकूल था।	भारत में शक्तिपृथक्करण सिद्वान्त को अपनाया तो गया है, परन्तु ये **मॉन्टेस्क्यू**के शक्ति पृथक्करण सिद्वान्त से भिन्नता लिए हुये है। भारत में चूंकि संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है अतः संसद कार्यपालिका एवं न्यायपालिका से पृथक होते हुए भी उन पर जनता की प्रतिनिधि संस्था के रुप में नियन्त्रण रखती है। इस प्रकार भारत में आंशिक शक्ति पृथक्करण को अपनाया है।
7.	**नियन्त्रण संतुलन का सिद्वान्त –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के मतानुसार राजा केन्द्रीय शक्ति रखते हुए भी अनियन्त्रित एवं निरकुश नहींहो सकता था उस पर धर्म,आचार्यों,जनता,न्यायालय एवं पौर जानपदों जैसी संस्थाओं द्वारा नियन्त्रण एवं संतुलन बनाया रखा जाता था।	भारत में सरकार के तीनों अंगों जैसे विधायिका,कार्यपालिका एवं न्यायपालिका द्वारा पृथक–पृथक अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह के साथ ही साथ एक–दूसरे पर नियन्त्रण रखकर शासन में संतुलन स्थापित किया गया है।

सन्दर्भ सूची (References) -

1. गैरोला वाचस्पति, **''कौटिलीय अर्थशास्त्रम्''**, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ 64
2. शास्त्री, टी गणपति, अनु.**''कांमदक नीतिसार''**, त्रिवेन्द्रम्, 1912
3. गैरोला वाचस्पति, **''कौटिलीय अर्थशास्त्रम्''**, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ 71
4. उपर्युक्त से, पृष्ठ 70
5. विद्याशंकर, सत्यकेतु, **''मौर्य साम्राज्य का इतिहास''**, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली 1995, पृष्ठ 37
6. **वंशत्थप्पकासिनी** (सिंहली संस्करण),पृष्ठ 119

7. **परिशिष्ट पर्व,** 8, (194–201)

8. **बृहत्कथाकोष,**cxliii, 3

9. कनिंघम, "**स्तूप ऑफ भरहूत,**" पृष्ठ 140

10. **बृहत्कथाकोष,**cxliii, 5

11. **परिशिष्ट पर्व,** 8, (225)

12. गैरोला वाचस्पति, "**कौटिलीय अर्थशास्त्रम्**", चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ 71

13. आश्वलायन, **गृह्यसूत्र,** 3,13,16

14. जायसवाल, के.पी., "**हिन्दू राजतंत्र**" 1, पृष्ठ 6का फुटनोट

15. गैरोला वाचस्पति, "**कौटिलीय अर्थशास्त्रम्**", चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ72

16. वात्स्यायन, '**कामसूत्र**', 1

17. विशाखदत्त, **मुद्राराक्षस,** 1,(7)

18. **कौटिलीयम अर्थशास्त्रम्,** 1,(1)

19. शास्त्री, टी.गणपति, "**द अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य,**" भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1990

20. कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, 1,(8)

21. गैरोला वाचस्पति, "**कौटिलीय अर्थशास्त्रम्**", चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृष्ठ 68

22. कांगले, आर.पी., "**कौटिल्य अर्थशास्त्र,**" मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1972

23. जायसवाल, के.पी., "**हिन्दू राजतंत्र,**" परिशिष्ट '**ग**'पहले खण्ड के अतिरिक्त नोट, पृष्ठ 327–367

24. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 15,(1)

25. उपर्युक्त, 15,(1)

26. उपर्युक्त, 2,(1)

27. शर्मा, डॉ. देवकान्ता, "**कौटिल्य के प्रशासनिक विचार,**" प्रिण्टवेल, जयपुर, 1998

28. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 15,(1)

29. उपर्युक्त, 1,(1)

30. उपर्युक्त, 1,(1)

31. उपर्युक्त, 1,(2)

32. रंगराजन, एल.एन.,"**कौटिल्य द अर्थशास्त्र**",पैग्विन बुक्स इण्डिया लि., नई दिल्ली, 1995

33. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 1,(2)

34. उपर्युक्त, 3,(1)
35. उपर्युक्त, 1,(2)
36. उपर्युक्त, 1,(2)
37. उपर्युक्त, 3,(1)
38. उपर्युक्त, 3,(1)
39. विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''**मौर्य साम्राज्य का इतिहास,**'' श्री सरस्वती सरन, नई दिल्ली 1995 पृष्ठ 263
40. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 1,(3)
41. उपर्युक्त, 1,(6)
42. उपर्युक्त, 1,(8)
43. उपर्युक्त, 2(2)
44. उपर्युक्त,1,(18)
45. **गोलकनाथ बनाम स्टेट ऑफ पंजाब** ए.आई.आर.1967, एस.सी.1643
46. इन.दी बेरूबारी यूनियनए.आई.आर. 1960, एस.सी. 845
47. 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा समाविष्ट किये गये है।
48. पाण्डे, जयनारायण, ''**भारत का संविधान**''**,** पृष्ठ 32
49. बसु, डी.डी., ''**इन्ट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया,**'' तीसरा संस्करण, 1964, पृष्ठ 23
50. **बकिंघम एण्ड कर्नाटक कम्पनी लि. बनाम वैन्कटैय्या,** ए.आई.आर.1964, एस.सी. 1272
51. गांधी, एम.के., ''**इण्डिया ऑफ माई ड्रीम्स**''**, पृष्ठ 9–10**
52. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 9,(11)
53. उपर्युक्त, 3,(7)
54. उपर्युक्त, 1,(3)
55. चाणक्य, **चाणक्य सूत्राणि,** सूत्र (13)
56. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 5,(6)
57. चाणक्य, **चाणक्य सूत्राणि**, सूत्र (12)
58. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 6,(1)
59. उपर्युक्त, 1,(4)
60. उपर्युक्त, 1,(18)
61. अवस्थी एवं अवस्थी, **भारतीय प्रशासन,** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 129

62. सी.ए.डी. भाग IV पृष्ठ 734

63. भारतीय संविधान, **अनुच्छेद 54,55**

64. भारतीय संविधान, **अनुच्छेद, 61**

65. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 6,(1)

66. उपर्युक्त, 2,(35)

67. एम.लक्ष्मीकान्त, **''लोक प्रशासन'',**टाटा मेकग्राहिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 2012, अध्याय 12

68. भारतीय संविधान, **अनुच्छेद 40**

69. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(5)

70. उपर्युक्त, 1,(3)

71. उपर्युक्त, 1,(8)

अध्याय–तृतीय

कार्मिक प्रशासन तन्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य

1.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन

1.II वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन

2.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भर्ती व्यवस्था

2.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में भर्ती व्यवस्था

3.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्गीकरण व्यवस्था

3.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में सेवा वर्गीकरण

4.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रशिक्षण व्यवस्था

4.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में प्रशिक्षण व्यवस्था

5.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदोन्नति व्यवस्था

5.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में पदोन्नति व्यवस्था

6.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वेतनमान प्रणाली

6.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में वेतनमान प्रणाली

7.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अनुशासनात्मक कार्यवाही

7.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में अनुशासनात्मक कार्यवाही

8. तुलनात्मक विश्लेषण

अध्याय–तृतीय

कार्मिक प्रशासन तन्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य

सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि तत्कालीन एवं समकालीन कार्मिक प्रशासन की मूलभूत मान्यताओं एवं अवधारणाओं का विश्लेषण किया जाए जिनके सन्दर्भों में उक्त तुलनात्मक परीक्षण किया जाना है।

सर्वप्रथम यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि वर्तमान में जहाँ राजनीति एवं प्रशासन के पृथक्करण को सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों स्तरों पर स्वीकार्य एवं मान्य मानते हुए लागू किया है। वही दूसरी और सैन्य एवं असैन्य (Civil) प्रशासन को भी परस्पर एक दूसरे से पृथक किया गया है तथा वस्तुतः सामान्य प्रशासन की सर्वोच्चता को स्थापित किया है।

इससे साथ ही योग्यता को चयन का एक मात्र आधार होने का सिद्धान्त जातिगत आरक्षण, निष्ठागत परीक्षणों का अभाव, पूर्णतः व्यावसायिक एवं गुणवत्ता उन्मुख शैली की लोक सेवा प्रणाली की एक ऐसी व्यवस्था से तुलना जिसमें निष्ठागत, अनुवांशिकी एवं योग्यता आधारित प्रणाली प्रभावी थी। जिसमें सैन्य–असैन्य, राजनीति–प्रशासन समस्त एक दूसरे में घुले हुऐ है। जिसमें स्पष्ट विभेदीकरण संभव नहीं है किन्तु प्रत्येक प्रणाली की अपनी अन्तर्निहित विशिष्ठताऐं, गुण तथा सकारात्मकता एवं श्रेष्ठताऐं होती हैं। जिन्हें परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में भी परिवर्तित स्वरुपों में लागू किया जा सकता है तथा प्रत्येक स्थिति में कुछ सीखने की संभावना बनी रहती है।

उक्त अध्याय में इसी पर्यावरण को दृष्टिगत रखते हुए कौटिल्यकालीन कार्मिक प्रशासन एवं वर्तमान कार्मिक प्रशासन का एक तुलनात्मक एवं तार्किक विश्लेषण किया गया है।

कार्मिक प्रशासन के विभिन्न पक्ष जैसे लोक सेवाओं का वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवाशर्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि से सम्बन्धित उन्हीं पक्षों को अध्ययन का आधार बनाया है, जहाँ व्यावहारिक रुप से तुलना संभव है, क्योंकि किसी भी प्रणाली की श्रेष्ठता एवं प्रभावशीलता केवल उसकी तत्कालीन आवश्यकताओं एवं लक्ष्यों की पूर्ति करने की उसकी क्षमता के आधार पर ही निर्धारित की जा सकती है।

कार्मिकों की सेवाशर्तें, आचरण नियम एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही कार्मिक प्रशासन के ऐसे आयाम है, जो उसकी व्यक्तिगत सच्चरित्रता एवं नैतिकता को सुनिश्चित करते है और सुशासन की नींव स्थापित करते है। उक्त की महत्ता को देखते हुए इन पक्षों पर इस अध्याय में विस्तार से विवेचन किया गया है।

दोनों ही प्रणालियाँ (कौटिल्यकृत / वर्तमान) सुशासन एवं सुव्यवस्था के लक्ष्य को लेकर स्थापित की गई थी किन्तु दोनों ही प्रणालियाँ अपने गुण दोषों से युक्त रहीं है। जो उनके तुलनात्मक अध्ययन को और महत्वपूर्ण बनाता है।

तुलना का उद्धेश्य किसी एक प्रणाली की श्रेष्ठता को स्थापित करना न होकर सीखे जाने योग्य तत्वों को ज्ञात करना है तथा उनके वर्तमान में व्यवहारिक उपयोग की संभावनाओं का पता लगाना है।

1.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मौर्य साम्राज्य को सुव्यवस्थित ढ़ंग से संचालित करने एवं प्रशासन में सुशासन को स्थापित करने वाले श्रेष्ठ कार्मिक प्रशासन का वर्णन किया है। इस कार्मिक प्रशासन के संगठन, कार्यात्मक प्रकियाओं एवं प्रशासनिक गतिविधियों को सही तरीके से समझने के लिए कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के चार अधिकरणों –**1. विनयाधिकारिक अधिकरण 2. अध्यक्ष प्रचार, 3. कण्टकशोधन 4. योगवृत** में उल्लेखित तथ्यों का शोधपरक अध्ययन करना आवश्यक है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अधिकरण **योगवृत** के अध्याय तीन में हीं निम्नस्तरीय कर्मचारी वर्ग की भर्ती के साथ ही कार्मिक प्रशासन के अन्य विषय जैसे– विभिन्न पदाधिकारियों के वेतनमान, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण और सेवानिवृति के लाभ, पेंशन आदि के बारे में उल्लेख किया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नांकित है –

1. सुदृढ़ प्रशासनिक तन्त्र की आवश्यकता –

कौटिल्य का यह स्पष्ट मानना था कि एक विशाल राष्ट्र को सुव्यवस्थित ढ़ंग से संचालित करने हेतु उसके राष्ट्रप्रमुख को एक सुसंगठित प्रशासनिक तंत्र या लोकसेवा संगठन की आवश्यकता होती है, जैसे कि **"एक रथ को एक पहिए से गतिमान नहीं कराया जा सकता है, उसी भांति एक राज्य के शासन कार्यों को भी बिना सहायता व सहयोग से संचालित नहीं किया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों (अधिकारियों) की नियुक्ति करे, उनके परामर्श को हृदयंगम करे, और उनके सहयोग से प्रशासकीय कार्यों को संचालित करे।"**[1]

2. राजवृत्ति (राजकार्य) के प्रकार –

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने राजवृत्ति (राजकीय कार्य) के **तीन** प्रकार बताए हैं।[2] ये निम्नलिखित हैं –

1. प्रत्यक्ष राजवृति – इसके अन्तर्गत वे सभी राजकार्य सम्मिलित किये गये हैं जो राजा के सामने या उसके प्रत्यक्ष हैं।

2 परोक्ष राजवृति – ये वे राजकार्य होते हैं, जो दूसरों के द्वारा बताये जाए अर्थात इनको दूसरों के द्वारा जाना जाए।

3 अनुमेय राजवृति – सम्पादित कार्यों से किये जाने वाले कार्यों का अनुमान करना ही अनुमेय राजवृति कहलाती है।

सभी राजकार्य एक साथ नहीं किये जाते हैं। ये विविध प्रकार के होते हैं और बहुत से स्थानों पर भी कार्यान्वित होते हैं।

एक राजा इन सभी कार्यों को अकेला नहीं कर सकता है चाहे वह कितना भी योग्य और शक्तिशाली क्यों ना हो। राजकार्यों के सम्पादन में देश, काल का अतिक्रमण न हो, एतदर्थ अमात्यों के द्वारा परोक्ष रूप से राजा उन कार्यों को सम्पादित करवाये। इस हेतु कौटिल्य ने अमात्यों की नियुक्ति और उनकी कार्य के लिए योग्यता परीक्षा के लिए वैसा व्यवस्थित विधान भी वर्णित किया है।

3. अमात्य प्रकृति (लोक सेवक वर्ग) –

कौटिल्य द्वारा वर्णित राज्य के **सप्तांग सिद्वान्त** में उल्लेखित सात प्रकृतियों में से एक प्रकृति अमात्य[3] भी थी। इस प्रकृति का सम्बन्ध ही राज्य के कार्मिक प्रशासन एवं उसके अन्तर्गत कार्यरत लोक सेवकों से था। कौटिल्य राजा एवं अमात्य प्रकृति को राज्य प्रशासन के सफल संचालन के लिए सबसे महत्वपूर्ण मानते थे।

4. विभागीकरण की व्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अमात्यों के **विभव** (राजकार्य) को **तीन** कारकों के आधार पर विभक्त किया गया है। ये तीन कारक हैं[4]–

1. देश –राज्य के किस प्रदेश या स्थान पर अमात्य की नियुक्ति करनी है।

2. काल – कितने समय के लिए अमात्य की नियुक्ति की जाती है।

3. कर्म –अमात्य को कौनसा राजकीय कार्य किया जाना है।

यहाँ ये स्पष्ट हो जाता है कि विविध स्थानों, विविध समय और विविध कार्यों के लिए बहुत से अमात्यों की नियुक्ति की जायेगी। इससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि

कौटिल्यकाल में प्रशासकीय कार्यों के सन्दर्भ में **विभागीकरण** की अवधारणा का विकास हो गया था।

5. राजा की प्रशासन में केन्द्रीय स्थिति–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा पर ही सम्पूर्ण प्रशासनिक विचारधारा को केन्द्रित किया है, अतः किसी कार्मिक के व्यवहार से राजा और उसका अधिकार क्षेत्र किस प्रकार प्रभावित होता है इस सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए ही सम्पूर्ण कार्मिक प्रशासन पर विचार हुआ है।

6. प्रशासन में सुशासन हेतु गुणवत्ता का महत्व –

राजकीय लोक सेवक वर्ग की गुणवत्ता के बारे में इस ग्रंथ में विस्तृत ब्यौरा दिया गया है। ऐसा हो भी क्यों न, क्योंकि सरकारी मशीनरी तंत्र और कार्मिकों की बाबत किसी सुनिश्चित लिखित संविधान के अभाव में राजा और उसके अधीनस्थ राजकीय कर्मचारीवर्ग की गुणवत्ता ही तो थी, जो कौटिल्य के समय में सरकार के चरित्र एवं उसके सुदृढ़ अस्तित्व का आधार थी। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय कार्मिकवर्ग के लिए एक सुस्पष्ट आचार संहिता का भी उल्लेख मिलता है। कार्मिकों से यह अपेक्षा की गई है कि वह राजा के शुभचिंतक रहें तथा बिना किसी द्वेषभाव के एवं गुटबन्दी के राज्य की सेवा करें।

7. योग्यता सिद्धान्त का महत्व –

कौटिल्य इस बात से परिचित थे कि सुदृढ़ प्रशासनिक तन्त्र पर भी सुदृढ़ राष्ट्र की नींव रखी जा सकती है। जनता को सुशासन के लाभ देने के लिए यह आवश्यक शर्त है। अतः राजकीय सेवाओं में कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण पर नियन्त्रण आवश्यक है। कौटिल्य भर्ती व्यवस्था में योग्यता के सिद्धान्त को मान्यता देते थे ताकि लोक सेवा में योग्यतम एवं निष्ठावान व्यक्ति आ सकें। कौटिल्य का यह भी सुझाव था कि भर्ती पक्षपात रहित अर्थात् निष्पक्ष हो इसलिए उन्होंने समस्त उच्चाधिकारी एवं निम्न स्तरीय कार्मिकों के लिए भिन्न–भिन्न योग्यताएँ निर्धारित की। इनका विस्तार से वर्णन भर्ती प्रक्रिया के अन्तर्गत आगे के पृष्ठों पर किया गया है।

8. उच्चाधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वैसे तो सम्पूर्ण कार्मिक वर्ग जैसे (उच्च, मध्य स्तरीय लोक सेवक एवं कर्मचारीवर्ग) का उल्लेख किया है, लेकिन फिर भी उच्चपदाधिकारी वर्ग (अमात्य एवं विभागीय अध्यक्ष) पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसका कारण था कि इनके पास अधिक सत्ता एवं उत्तरदायित्व होता था। इसके अतिरिक्त कौटिल्य का यह

मत था कि निम्न स्तरीय कार्मिक वर्ग के क्षय (हानि) की पूर्ति तो नयी नियुक्तियों से की जा सकती है, परन्तु उच्चपदाधिकारी की क्षय (हानि) की पूर्ति नहीं हो सकती क्योंकि उच्च कार्यकर्त्ता तो हजारों में से एक ही मिल पाता है और हो सकता है ना भी मिले[5]। इसलिए कौटिल्यकालीन कार्मिक प्रशासन में उच्चस्तरीय गुणवत्ता के कारण उच्चाधिकारियों को अधिक महत्व दिया गया था।

कौटिल्य ने निम्नस्तरीय कर्मचारीवर्ग की योग्यताओं के बारे में यद्यपि विस्तार से कुछ भी नहीं कहा है परन्तु इतना जरूर माना है कि इस वर्ग के कार्मिकों को उनका कार्य आना चाहिए एवं वे भ्रष्टाचारी नहीं होने चाहिए। इनकी शिक्षा (शैक्षणिक योग्यता) के बारे में अर्थशास्त्र में कहीं कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।

9. कार्मिक प्रशासन में सुशासन हेतु गुप्तचरों की भूमिका –

कौटिल्य अर्थशास्त्र में उच्चाधिकारियों (अमात्यों) व राजकर्मचारियों की गतिविधियों पर नियंत्रण हेतु राजा गुप्तचर विभाग का भी प्रयोग करता था। कौटिल्य ने अमात्यों की नियुक्ति करते हुए उनकी शुचिता (पवित्रता) की परख करना एक महत्वपूर्ण कार्य बताया था, ये कार्य उस समय गुप्तचर ही किया करते थे। कोई व्यक्ति अमात्य पद पर तब ही नियुक्त किया जाता था जब उसके सम्बन्ध में गुप्तचरों की सभी सूचनायें अनुकूल होती थी। अमात्य पद पर नियुक्त हो जाने के पश्चात् भी उस पर गुप्तचरों की निरन्तर तीक्ष्ण दृष्टि बनी रहती थी।

2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन की संगठनात्मक संरचना –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन की संगठनात्मक संरचना इस प्रकार से है–

(i) राजा – सर्वोच्च प्रशासक व नियोक्ता के रूप में –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में केन्द्रिकृत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। अतः इस शासन व्यवस्था में राजा ही कार्मिक प्रशासन का सर्वोच्च प्रशासक व नियोक्ता होता था। सम्पूर्ण लोक सेवा के कार्मिकों की नियुक्ति एवं निष्कासन का सर्वोच्च अधिकार राजा के पास ही होता था।

अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि राजा स्वयं उन अमात्यों की नियुक्ति करता था, जो कि उसके प्रशासन में उसे मंत्री (मन्त्रिन) के रूप में सेवा प्रदान करते थे, जैसे कि **(अ) प्रधानमंत्री** और **पुरोहित**[6] **(ब) तीन या चार मंत्रियों** का वह समूह जो राजा को आवश्यक परामर्श देने के लिए हमेशा तत्पर रहें। ये राजा के प्रमुख सलाहकार के रूप में होते थे। **(स) मंत्रीगण** जो राजा की मंत्रीपरिषद् के सदस्य थे।

(ii) आन्तरिक परिषद् –

कौटिल्य के मतानुसार राजा के द्वारा प्रत्यक्ष रुप अमात्यों की नियुक्ति के अतिरिक्त जितनी भी राजकीय नियुक्तियाँ की जाती थी। उसके लिए एक भर्ती संस्थान का संगठन किया गया था। इस संस्थान को आंतरिक परिषद् कहा जाता था। इस संस्था के तीन सदस्य होते थे– राजा, प्रधानमंत्री और पुरोहित। ये त्रिसदस्यीय संस्था आधुनिक युग की भर्ती संस्था लोकसेवा आयोग की भांति हुआ करती थी। यह राज्य के सभी उच्चस्तरीय प्रशासनिक पदों अर्थात् विभागीय प्रमुखों (अध्यक्षों) की भर्ती एवं नियुक्ति करती थी।[7] मध्यम एवं निम्नस्तरीय कर्मचारी वर्ग की भर्ती किस प्रकार की जाती थी। उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित ये आंतरिक परिषद् ही वर्तमान की लोकसेवा आयोग संस्था की तरह राजकीय नियुक्तियों के लिए सर्वोच्च उत्तरदायी संस्था के रुप में कार्यरत थी।

1. II. वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन –

वर्तमान भारत में जटिल होती सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा प्रतिस्पर्धात्मक आर्थिक वातावरण में कुशल प्रशासनिक प्रक्रियाओं एवं संसाधनों की महत्ती आवश्यकता है। इसी सन्दर्भ में कुशल कार्मिक प्रशासन सुशासन के उन्नत विकास हेतु केन्द्र बिन्दु बन गया है।

1. वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन की आवश्यकता –

वर्तमान भारत मेंजबकि जनकल्याण के सभी कार्य और प्रशासन में सुशासन को विकसित करने सम्बन्धित कार्यों के लिए राज्य उत्तरदायी है तो ऐसे में लोकप्रशासन में कार्यरत कार्मिकों का विकास करना शासन का नैतिक दायित्व है क्योंकि –

1. कार्मिक वर्ग शासन के संरक्षण में कार्यरत है;
2. कार्मिक होने के साथ–साथ वे राज्य के नागरिक भी है;
3. नियोक्ता होने के नाते शासन (सरकार) के द्वारा कार्मिक का कल्याण करना आवश्यक है;
4. कुशल तथा संतुष्ट कार्मिकों के बिना संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति असंम्भव है;
5. सरकार या शासन की छवि कार्मिकों की कार्यशैली से प्रत्यक्षतः जुड़ी हुई है;
6. राज्य के दायित्वों की पूर्ति तथा क्रियान्वित करने में कार्मिक वर्ग ही एकमात्र विश्वव्यापी साधन है;

7. राज्य में सुशासन को स्थापित करने और विकसित करने मे सुव्यवस्थित, सुशिक्षित, सुप्रशिक्षित, सद्चरित्र, जवाबदेय, कार्मिक वर्ग प्रथम अनिवार्य तत्व है।

2. कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र–

कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत क्षेत्र विस्तार की दृष्टि के कार्मिक नीति का निर्माण, वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन भत्ते एवं आनुषंगिक लाभ, निष्पादन मूल्यांकन तथा सेवा अभिलेख संधारण, अनुशासनात्मक कार्यवाही, आचार–संहिता इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार कार्मिक प्रशासन का कार्यक्षेत्र कार्मिकों की सम्पूर्ण गतिविधियों से जुड़ा हुआ है।

3. कार्मिक प्रशासन की गतिविधियाँ –

भारत में उपर्युक्त वर्णित कार्यक्षेत्र के अतिरिक्त कार्मिक प्रशासन निम्नलिखित गतिविधियों से भी सम्बद्ध है।

1. कार्मिकों की शिकायतों का निवारण करना;
2. प्रशंसा, पुरस्कार तथा प्रोत्साहन प्रदान करना;
3. कार्मिकों को कॅरियर या वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध करवाना (जैसे उच्च अध्ययन हेतु भेजना);
4. कार्मिक संगठनों या संघों से वार्ता कर सौहार्द स्थापित करना;
5. कार्मिक पक्ष पर अनुसंधान तथा नवाचार का प्रयास करना;
6. कार्मिकों का स्थानान्तरण करना तथा पेंशन तथा सेवानिवृति लाभों इत्यादि की व्यवस्था करना।

2. वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन हेतु संगठनात्मक व्यवस्था –

भारत की वर्तमान संघीय राजव्यवस्था के अन्तर्गत कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित सम्पूर्ण नीति निर्धारण, क्रियान्वयन और सरकार के निगरानीकर्त्ता के रूप में एक पृथक मंत्रालय कार्यरत है। जिसका संरचनात्मक विवरण इस प्रकार से है–

1. कार्मिक, लोकशिकायत तथा पेंशन मंत्रालय–

इस मंत्रालय का गठन वर्ष 1985 में **प्रधानमंत्रीराजीव गांधी** सरकार द्वारा **कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय** के नाम से एक पृथक नवीन मंत्रालय के रूप में किया गया था। यह देश के कार्मिक और प्रशासनिक सुधार मामलों का केन्द्रीय संगठन है। कार्मिक, लोकशिकायत तथा पेंशन मन्त्रालय कार्मिक मामलों विशेषतः भर्ती, संवर्ग, प्रशिक्षण, जीविकावृति, विकास, कर्मचारी कल्याण और सेवानिवृति लाभ इत्यादि से सम्बन्धित मामलों में केन्द्र सरकार की समन्वयकारी ऐजेन्सी के रूप में कार्य करता है। यह मंत्रालय

जवाबदेय, जन अभिमुख, सुशासन एवं आधुनिक प्रशासन के संवर्धन की दिशा में भी कार्य करता है।

वर्तमान में कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मन्त्रालय को तीन विभागों में विभक्त किया गया है[8]–

(i) कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग (डीओपीटी);

(ii) प्रशासनिक सुधार और लोकशिकायत विभाग;

(iii) पेंशन एवं पेंशनभोगी कल्याण विभाग।

2.मंत्रालय की संगठनात्मक व्यवस्था –

वर्तमान भारत सरकार के इस मंत्रालय का पृथक से कोई कैबिनेट मंत्री प्रभारी नहीं बनाया जाता है। अतः यह मंत्रालय प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में कार्य करता है। प्रधानमंत्री की सहायता हेतु एक या दो राज्य मंत्रियों की नियुक्ति कर दी जाती है। राज्य मंत्री (कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन) के पास संसदीय कार्य तथा प्रधानमंत्री कार्यालय का पद भी है। प्रशासनिक स्तर पर इस मंत्रालय का शीर्ष अधिकारी सचिव (कार्मिक) कहलाता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। दूसरा सचिव, प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग के कार्य को देखता है। इस मंत्रालय के समस्त नियोजन, संगठन, निर्देशन, बजट, प्रतिवेदन तथा नियन्त्रणकारी कार्य सचिव (कार्मिक) के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में होते है। सचिव (कार्मिक) के अधीन दो अतिरिक्त सचिव जो आई.ए.स. अधिकारी होते है, कार्य करते है। सचिव (प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत) के अधीन अतिरिक्त निदेशक (लोक शिकायत) तथा निदेशक (पेंशननीति एवं पेंशन कल्याण) कार्यरत है।

3. कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग –

प्रस्तुत शोध विषय में कार्मिक प्रशासन सम्बन्धित विभिन्न मामलों को सुशासन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण मानते हुए वर्णित किया है। अतः इस सन्दर्भ में कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग की भूमिका ही अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए इस विभाग का ही वर्णन अन्य दो विभागों की तुलना में विस्तार से किया गया है, इस विभाग का विजन कुशल, प्रभावी, दायित्वपूर्ण, संवेदनशील तथा पारदर्शी सुशासन हेतु सरकार के मानव संसाधन के विकास तथा प्रबंध हेतु सक्षम परिवेश का विकास करना है।

(i) कार्मिक प्रशिक्षण विभाग के उद्देश्य –

उपरोक्त वर्णित विजन की प्राप्ति हेतु विभाग के उद्देश्य इस प्रकार से हैं –

(1) कार्मिक नीतियों तथा शासकीय (सरकारी) कामकाज को प्रभावी बनाने के लिए एक सक्षम ढांचे का प्रावाधान करना।

(2) शासन में सक्षमता तथा नवीनता का विकास।

(3) लोकसेवाओं को भलीभांति सम्पन्न करने के लिए शासन के सभी स्तरों पर मानव संसाधनों का क्षमता निर्माण।

(4) सार्वजनिक मामलों में पारदर्शिता, दायित्व की भावना लाने तथा भ्रष्टाचार को पूर्णतः समाप्त करने के लिए परिवेश का निर्माण करना तथा उसे समर्थन देना।

(5) पणधारियों के साथ सकारात्मक कार्य करने के लिए प्रणाली को संस्थागत बनाना।[9]

(ii)कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग का संगठन–

इस विभाग में सचिव (कार्मिक) के प्रभार में छः विंग कार्यरत है। ये छः विंग इस प्रकार से है –

(1) अवस्थापना अधिकारी (2) सेवाएं तथा सतर्कता(3) अवस्थापन(4) प्रशासनिक न्यायाधिकरण तथा प्रशासन(5) प्रशिक्षण (6) केन्द्रीय सेवाएं।

इनमें से प्रत्येक विंग में संयुक्त सचिव अथवा अपर सचिव रैंक के अधिकारी अध्यक्ष होते हैं।यह विभाग न केवल भारत की संघीय सरकार की कार्मिक नीतियाँ तैयार करने के लिए उत्तरदायी है, बल्कि यह शासन में वरिष्ठ स्तर की नियुक्तियों की देखरेख भी करता है। इस प्रयोजन हेतु इस विभाग का स्थापना अधिकारी और अपर सचिव को उत्तरदायित्व दिए गए हैं इसके अतिरिक्त अवस्थापना अधिकारी कैबिनेट की नियुक्ति समिति के सचिव, सिविल सेवा बोर्ड के पदेन सदस्य सचिव, तथा केन्द्रीय अवस्थापना बोर्ड के सदस्य सचिव के रूप में भी अपनी सेवाऐं देता है।[10]विदेशी नियुक्तियों और भारतीय प्रशासनिक सेवा संवर्ग नियमावली 1954 के नियम 6 (2) के अन्तर्गत नियुक्तियों के अनुमोदन के लिए सचिव (कार्मिक) और वित्त सचिव को मिलाकर मंत्रीमण्डलीय सचिव की अध्यक्षता वाली एक छानबीन समिति गठित की गई है। सयुक्त सचिव और उससे ऊपर के स्तर के अधिकारियों से सम्बन्धित मामलों के लिए समिति की सिफारिशों पर प्रधानमंत्री का अनुमोदन प्राप्त किया जाता है।

(iii) कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग से सम्बद्ध अभिकरण इस प्रकार से हैं –

1. संघ लोक सेवा आयोग(UPSC)
2. कर्मचारी चयन आयोग (SSC)
3. केन्द्रीय सतर्कता आयोग (CVC)
4. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI)

5. केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (CAT)

6. केन्द्रीय सूचना आयोग (CIC)

7. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान (IIPA)

8. सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबध संस्थान (ISTM)

9. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी (LBSNAA)

10. संयुक्त सलाहकार परिषद् (JMC)

(iv) कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग की भूमिका–

कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग की निम्निखित शीर्षकों के अनुरूप भूमिका इस प्रकार से है[11]–

(1) कार्मिक नीतियाँ –

यह विभाग भर्ती नियमों, पदोन्नति तथा वरिष्ठता लचीली अनुपूरक योजना, छुट्टी यात्रा रियायत, प्रतिनियुक्ति और बच्चों के देखभाल हेतु छुट्टियों सहित सेवा–शर्तों को अभिशासित करने वाले नियम बनाने, सेवा को अभिशासित करने तथा विनियम के लिए उत्तरदायी है। उच्च सिविल पदों पर कार्मिकों की भर्ती हेतु **संघ लोक सेवा आयोग** द्वारा आयोजित प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से की जाती है, समूह ख तथा ग श्रेणी के अराजपत्रित कर्मचारियों की भर्ती कर्मचारी चयन आयोग के द्वारा की जाती है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों तथा दिव्यांग व्यक्तियों के उत्थान तथा कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह विभाग केंद्र सरकार की विभिन्न सेवाओं में इन समूहों के लिए आरक्षण के प्रावाधान सम्बन्धी नीतियां बनाने तथा उसके कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है।

(2) संवर्ग प्रबन्धन –

यह विभाग अखिल भारतीय सेवा संवर्गों (आई.ए.एस., आई.पी.एस. तथा आई.एफ. एस.) तथा तीनों सचिवालय सेवाओं अर्थात् केन्द्रीय सचिवालय सेवा, केन्द्रीय सचिवालय आशुलिपिक सेवा और केन्द्रीय सचिवालय लिपिक सेवा के सम्बन्ध में प्रबन्धन हेतु जिम्मेदार है। इसके अतिरिक्त यह विभाग गृह मन्त्रालय तथा पर्यावरण एवंविदेश मंत्रालय के परामर्श से अखिल भारतीय सेवाओं अर्थात आई.पी.एस तथा आई.एफ.एस. की भर्ती की शर्तों के सम्बन्ध में नियमों तथा विनियमों को बनाता है। उनमे संशोधन भी करता है। यह विभाग आवधिक आधार पर 58 केन्द्रीय सेवाओं **समूहक** के संवर्ग समीक्षा हेतु जिम्मेदार है।

(3) भारतीय सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्ति –

यह विभाग वरिष्ठ स्तर पर नियुक्तियों तथा भारत सरकार की कार्मिक नीतियों के संबंध में कार्य करता है। संघीय भारत सरकार के अधीन वरिष्ठ पदों पर नियुक्तियों के उन सभी प्रस्तावों पर इस विभाग द्वारा कार्यवाही की जाती है, जिसके सम्बन्ध में मंन्त्रीमण्डल की नियुक्ति समिति (एससी) का अनुमोदन किया जाना अपेक्षित होता है। इनमें केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में बोर्ड–स्तर की नियुक्तियाँ, मंत्रालयों/विभागों में संयुक्त सचिवों, निदेशकों और उपसचिवों के पदों पर केन्द्रीय स्टाफिंग पैटर्न की नियुक्तियों शामिल होती है। इसके अतिरिक पदोन्नति द्वारा की जाने वाली ऐसी सभी नियुक्तियों के मामलों जिसके संबंध में मन्त्रिमडल की नियुक्ति–समिति का अनुमोदन किया जाना अपेक्षित होता है, पर इस विभाग द्वारा कार्यवाही की जाती है।

(4) प्रशिक्षण नीति तथा कार्यक्रम –

यह विभाग सरकारी कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने हेतु केन्द्रीय विभाग है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग (डीओपीटी) का प्रशिक्षण विंग प्रशिक्षण के क्षेत्रों की पहचान कर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार कर, प्रशिक्षकों तथा प्रशिक्षण क्षमताओं का तथा प्रशिक्षण में प्रशासनिक नीतियों का विकास कर प्रशिक्षण कार्यक्रमों से सम्बन्धित नीतियाँ बनाता है तथा उन नीतियों को कार्यान्वित करता है।

(5) प्रशिक्षण संस्थान –

लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी,(उत्तराखण्ड) एवं **सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबन्ध संस्थान (आईएसटीएम), नई दिल्ली** इस विभाग के सीधे प्रशासनिक नियन्त्रण में दो प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान हैं। ये संस्थान केन्द्र सरकार के सभी अधिकारियों को समय–समय पर प्रशिक्षण देकर मानव संसाधन विकास की अपेक्षाओं को पूरा करते हैं ताकि उनके कॅरियर में प्रगति हो सके। यह विभाग भारतीय लोक प्रशासन संस्थान को प्रशासकों तथा अनुसंधानकर्ताओं को लोकप्रशासन से जुड़े मुद्दों पर उन्नत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के लिए भी सहायता प्रदान करता है, जो कि एक स्वायत्त संगठन है।

(6) प्रशासनिक सतर्कता –

यह विभाग सरकार की सतर्कता तथा नीति बनाने तथा कार्यान्वित करने के लिए एक नोड़ल अभिकरण के रुप में भी कार्य करता है। इस विभाग का प्रशासनिक सतर्कता विंग अनुशासन बनाये रखने तथा लोकसेवाओं से भ्रष्टाचार का उन्मूलन किए जाने के सरकार के कार्यक्रमों पर निगरानी रखता है। यह विभाग संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन में भ्रष्टाचार के विरूद्ध सरकार की नीति को तैयार करता है। केन्द्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) सभी

तरह के सतर्कता मामलों में केन्द्र सरकार को सलाह देता है इस आयोग के अधिकार क्षेत्र में वे सभी संगठन आते हैं जिस पर भारत सरकार की कार्यकारी शक्तियाँ लागू होती हैं।

(7) केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो–

यह विभाग केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) के द्वारा न केवल रिश्वत तथा भ्रष्टाचार के मामलों की, बल्कि केन्द्रीय वित्तीय कानूनों के उल्लंघन, भारत–सरकार के विभागों से जुड़े मुख्य घोटालों, लोक संयुक्त स्टाफ कम्पनियों, पासपोर्ट घोटालों तथा संगठित व्यवसायिक अपराधियों द्वारा किए गए गंभीर अपराधों की भी जाँच करता है।

(8) संयुक्त परामर्शदायी तंत्र–

इस विभाग के अन्तर्गत ही केन्द्र सरकार और इसके कर्मचारियों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देने, आम हितों के मामले में केन्द्र सरकार तथा कर्मचारियों के बीच अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए तीन स्तरों पर संयुक्त परामर्श के प्रयोजन से केन्द्र सरकार से एक तंत्र का प्रावाधान किया है। इसका उद्देश्य कर्मचारियों के हितों के साथ–साथ लोकसेवाओं की दक्षता को बढ़ाना है। इस **त्रिस्तरीय तंत्र** में निम्नलिखित शामिल हैं –

(1) **राष्ट्रीय परिषद्**– कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग के अधीन शीर्ष स्तर पर कार्यरत।

(2) **विभागीय परिषदें**– मंत्रालयों/विभागों के अधीन कार्यालयों/संगठनों में कार्यरत।

(3) **कार्यालय परिषदें** – विभिन्न मंत्रालयों/विभागों के अधीन कार्यालयों/संगठनों में कार्यरत।

यह योजना, सेवा मामलों आदि के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की शिकायतों के सौहार्दपूर्ण निपटारे के लिए एक प्रभावी तंत्र के रूप में कार्यरत है।

(9) केन्द्रीय प्रशासनिक अभिकरण –

इस विभाग में ही सरकार के निर्णयों से व्यथित कर्मचारियों को शीघ्र और सस्ता न्याय दिलवाने के प्रयोजन से सरकार ने 1985 में केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (कैट) स्थापित किया था। जो अब सेवा से सम्बन्धित सभी मामलों पर विचार करता है। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण की 17 खण्ड पीठे है इनमें से 15 उच्चन्यायालयों की प्रधान सीटों से संचालित होती है और शेष दो **जयपुर** तथा **लखनऊ** में है।

(10) कर्मचारी कल्याण –

देश के सबसे बड़े एकमात्र नियोक्ता होने के नाते केन्द्र सरकार कर्मचारियों के कल्याण के अपने दायित्व को विभिन्न कल्याणकारी उपायों के द्वारा पूरा करती है। यह विभाग विभिन्न कर्मचारी कल्याण उपायों को भी सहायता प्रदान करता है। कार्मिक और

प्रशिक्षण विभाग सरकारी कर्मचारियों और उनके परिवार के कल्याण हेतु स्थापित चार पंजीकृत समितियों के सम्बन्ध में नोडल अभिकरण है। इसके अतिरिक्त ये विभागीय केण्टीन के लिए नीतियाँ भी निर्धारित करता है तथा आवासीय कल्याण संघों को सहायता प्रदान करता है।

(11) सूचना का अधिकार–

इस विभाग ने भारत के नागरिकों को शासन के सभी मामलों में केन्द्र सरकार से लेकर स्थानीय स्वशासन तक सूचना का अधिकार सुनिश्चित करने की दृष्टि से एक व्यापक कानून तैयार किया है। इस कानून (सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005) में एक तंत्र का प्रावधान है। जिसमें केन्द्रीय सूचना आयुक्त, केन्द्र में शीर्षस्थ निकाय होने के नाते अपने नागरिकों को समयबद्ध आसान और वहनीय दर पर सूचनाऐं सुलभ कराता है।

(12) विभाग द्वारा निष्पादित कार्यों का परिणामी ढाँचा –

इस विभाग की देखरेख में ही सभी सरकारी मंत्रालयों/विभागों के कार्य निष्पादन की निगरानी (मॉनीटरिंग) तथा मूल्यांकन के लिए एक प्रणाली विकसित की गई है। इस प्रणाली में वर्ष के लिए मुख्य उद्देश्यों तथा तद्नुरूपी कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण देते हुए एक रिजल्ट फ्रेमवर्क दस्तावेज (आरएफडी) तैयार करने का प्रावधान है। कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग ने वर्ष के अन्त में एक निश्चित समयावधि में अपने कार्य–निष्पादन की मॉनीटरिंग तथा समुचित मूल्यांकन हेतु प्राप्त किए जाने वाले विभिन्न उद्देश्यों को सूचीबद्ध करते हुए एक एफआरडी तैयार किया है। इस एफआरडी कार्य के एक हिस्से के रूप में इस विभाग ने सभी भागीदारों के परामर्श से पाँच वर्षों के लिए एक नीति तथा नीतिगत योजना तैयार की है।

(13) हिन्दी का प्रभावी प्रयोग –

यह विभाग राजभाषा के रुप में सरकारी कामकाज में हिन्दी के उपयोग को बढावा देने के लिए तथा **राजभाषा अधिनियम, 1963** के उपबंधों तथा उसके अन्तर्गत बनाए गए नियमों के अनुपालन को बढ़ाने का कार्य भी करता है। इस विभाग में एक राजभाषा प्रभाग है जो विभाग में नीति की मॉनिटरिंग तथा कार्यान्वयन करता है।

2.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भर्ती व्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य के सफल संचालन व राजकीय लोकसेवा में योग्य व श्रेष्ठ लोक सेवकों की भर्ती व नियुक्ति के लिए एक सुविकसित प्रणाली को सर्वाधिक महत्व दिया। इसलिए कौटिल्य ने भर्ती प्रणाली का वैज्ञानिक एवं तार्किक विवरण प्रस्तुत किया है। कौटिल्य का यह स्पष्ट मत था कि राज्य के प्रशासकीय तंत्र की सफलता एवं

जनता को सुशासन प्रदान करने के लिए सद्चरित्र, सक्षम, सुयोग्य ईमानदार एवं निष्ठावान कर्मचारी वर्ग अति आवश्यक है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आचार्य कौटिल्य एक निष्पक्ष एवं योग्यता आधारित भर्ती प्रक्रिया का समर्थन करते थे। अर्थशास्त्र के शोधात्मक अध्ययन से पता चलता है कि सम्भवतः उस समय के राजकीय पदों नियुक्ति के लिए सभी वर्गों को समान अवसर व समान स्वतन्त्रता प्रदान की गई थी। अर्थशास्त्र में कुछ विशिष्ट राजकीय पदों को छोड़कर अन्य पदों पर किसी सामाजिक वर्ग विशेष के लिए आरक्षण का उल्लेख नहीं किया है। यहाँ ये तथ्य उल्लेखनीय है कि कौटिल्यकाल में जाति व्यवस्था पर आधारित कोई आरक्षण व्यवस्था नहीं थी, जबकि वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में आरक्षण जाति पर आधारित है।

कौटिल्य ने सरकारी कर्मचारियों की नियुक्तियों में सर्वाधिक बल उनकी सद्चरित्रता और शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं को दिया था। अर्थशास्त्र मे उल्लेखित भर्ती व्यवस्था के अन्तर्गत योग्यताओं के अतिरिक्त कुछ निश्चित परीक्षाओं का भी उल्लेख किया गया है जो उम्मीद्वारों को उपयुक्त पदों पर नियुक्ति हेतु उत्तीर्ण करनी आवश्यक थी। ये परीक्षा पदों पर भर्ती के लिए आवश्यक शर्तों के रूप में शामिल की गई थी।

1. भर्ती के प्रकार –

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भर्ती के दो प्रकारों का उल्लेख किया गया है। ये दो प्रकार निम्नलिखित है –

(i) प्रत्यक्ष भर्ती

(ii) अप्रत्यक्ष भर्ती

1. प्रत्यक्ष भर्ती –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उस काल में मंत्री (प्रधानमंत्री) और पुरोहित के पदों (कार्यालयों) से संवैधानिक महत्ता जुड़ी हुई थी। अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि राजा स्वयं उन अमात्यों की नियुक्ति करता था, जो कि उसके प्रशासन में उसे मंत्री (मन्त्रिन) के रूप में सेवा प्रदान करते थे, जैसे कि **(अ)प्रधानमंत्री** और **पुरोहित (ब) तीन या चार मंत्रियों** का वह समूह जो राजा को आवश्यक परामर्श देने के लिए हमेशा तत्पर रहें। ये राजा के प्रमुख सलाहकार के रूप में होते थे। **(स)मंत्रीगण** जो राजा की मन्त्रिपरिषद् के सदस्य थे। इस प्रकार की भर्ती को प्रत्यक्ष भर्ती कहा गया है।[12]

2. अप्रत्यक्ष भर्ती –

उन उपरोक्त वर्णित तीन मंत्री वर्गों से संबंधित भर्ती के अतिरिक्त जितनी भी प्रशासनिक भर्ती एवं नियुक्तियाँ की जाती थी उनको राजा अपने मंत्री (प्रधानमंत्री) और पुरोहित के सहयोग एवं परामर्श से करता था। इस प्रकार की भर्ती को अप्रत्यक्ष भर्ती कहा जा सकता है।

2. भर्ती की प्रशासनिक संस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अप्रत्यक्ष भर्ती के लिए एक प्रशासनिक संस्था का भी उल्लेख किया है। ये संस्था इस प्रकार से है –

(i) आंतरिक परिषद् (लोकसेवा आयोग) –

कौटिल्य के मतानुसार राजा के द्वारा प्रत्यक्ष रुप अमात्यों की नियुक्ति के अतिरिक्त जितनी भी राजकीय नियुक्तियाँ की जाती थी। उसके लिए एक भर्ती संस्थान का संगठन किया गया था। इस संस्थान को आंतरिक परिषद्[13] कहा जाता था। इस संस्था के तीन सदस्य होते थे। राजा, प्रधानमंत्री और पुरोहित। ये त्रिसदस्यीय संस्था आधुनिक युग की भर्ती संस्था लोकसेवा आयोग की भांति हुआ करती थी। यह राज्य के सभी उच्चस्तरीय प्रशासनिक पदों अर्थात् विभागीय प्रमुखों (अध्यक्षों) की भर्ती एवं नियुक्ति करती थी। मध्यम एवं निम्नस्तरीय कर्मचारी वर्ग की भर्ती किस प्रकार की जाती थी उसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित ये आंतरिक परिषद् ही वर्तमान की लोकसेवा आयोग संस्था की तरह राजकीय नियुक्तियों के लिए राजा के बाद सर्वोच्च उत्तरदायी संस्था के रुप में कार्यरत थी।

3. योग्यता आधारित भर्ती सिद्धांत –

कौटिल्य भी राजकीय पदों पर नियुक्ति हेतु **योग्यता सिद्धात** को सर्वाधिक महत्व देते हैं। कौटिल्य ने राजकीय सेवा के हर पद के लिये निश्चित शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं का निर्धारण किया था। कौटिल्य ने विशेषतः अमात्य पद के लिये आवेदन करने वाले उम्मीदवारों को धर्म (Duty), अर्थ (Wealth), काम(Moral Character), भय (Fear) पर आधारित चार प्रकार की विशिष्ट परीक्षण प्रणाली से परीक्षित (Tested) करने का उल्लेख किया है।

इससे ज्ञात होता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित भर्ती व्यवस्था योग्यता सिद्धात पर आधारित भी जो सुशासन की स्थापना की प्राथमिक शर्त है।

4. योग्यता आधारित भर्ती प्रक्रिया –

इन भर्ती पद्धति को निम्नलिखित पदों के लिए निर्धारित योग्यताओं के आधार पर इस प्रकार से समझा जा सकता है –

(i) प्रधानमंत्री पद के लिये योग्यताएं –

राजा के बाद यह प्रशासनिक स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण पद माना गया है। कौटिल्य ने इस पद के लिये निश्चित योग्यताएँ बतायी हैं। इस पद हेतु उम्मीदवार राज्य का निवासी हो, कुलीन वंश का हो, अवगुणों से रहित हो, निपुण सवार एवं ललितकलाओं का ज्ञाता हो, अर्थशास्त्र का विद्वान हो, बुद्धिमान, चतुर, दबंग, वाक्पटु, उत्साही, प्रतिवाद और प्रतिकार करने में समर्थ हो साथ ही वह प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, दृढ़, स्वामीभक्त, सज्जन, स्वस्थ, धैर्यवान, प्रियदर्शी, निरभिमानी, स्थिरप्रकृति, द्वेषवृतिरहित, पुरूष ही प्रधानमंत्री पद के योग्य हैं।

इनमें से एक चौथाई या आधी योग्यताएं हों उन्हें मध्यम एवं निकृष्ट मन्त्री समझना चाहिए।

प्रधानमन्त्री की नियुक्ति से पूर्व राजा द्वारा निम्न तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है –

1. राजा को चाहिए की वह मंत्री की नियुक्ति से पूर्व प्रामाणिक, सत्यवादी और आप्त पुरूषों से उसके निवास स्थान एवं आर्थिक स्थिति का पता लगाये।
2. सहपाठियों के द्वारा उसकी योग्यता व शास्त्रप्रवेश का ज्ञान प्राप्त करे।
3. नये–नये कार्यों में नियुक्त करके उसकी बुद्धि, स्मृति व चतुराई को परखे।
4. व्याख्याओं व सभाओं द्वारा उसकी वाक्पटुता, दबंगता व प्रतिभा को जाने।
5. आपत्तियों में उसके उत्साह, प्रभाव, सहिष्णुता को।
6. व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता, दृढता व स्वामीभक्ति को जाँचें।
7. सहवासियों व पड़ोसियों के द्वारा उनके शील, स्वस्थ्य, बल, गौरव, अप्रमाद और स्थिर प्रकृति गुणों का पता लगाये।
8. राजा स्वयं उनके मधुर स्वभाव व द्वेषरहित प्रकति की परीक्षा करे।

उपरोक्त सभी प्रकार की जाँच पड़ताल करने के बाद ही राजा संतुष्ट होकर मंत्री की नियुक्ति करे।

(ii) पुरोहित पद हेतु योग्यता –

कौटिल्य ने इस पद के लिए उम्मीदवार में निम्न योग्यताएँ आवश्यक बतायी हैं –

वह पुरूष उच्चकुलोत्पन्न, शीलगुणसम्पन्न, वेद एवं छः वेदागों का ज्ञाता, ज्योतिष, शगुनशास्त्रों व दण्डनीति में पारंगत हो। साथ ही साथ वह अथर्ववेद में वर्णित आपदाओं के निराकरण का ज्ञाता भी हो। इस पद की महत्ता को बताते हुए, कौटिल्य ने लिखा है कि जैसे गुरू के पीछे शिष्य को ,पिता के पीछे पुत्र को, स्वामी के पीछे सेवक को चलना चाहिए वैसे ही राजा को पुरोहित का अनुगामी होना चाहिए।[15]

(iii) अमात्य पद पर नियुक्ति हेतु योग्यताऐं –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय प्रशासन के महत्वपूर्ण उच्चाधिकारी (अमात्यों) की नियुक्ति के लिए भर्ती किये जाने वाले उम्मीद्वारों के लिए निर्धारित योग्यताओं का भी उल्लेख किया गया है। कौटिल्य ने इस सन्दर्भ में प्राचीन आचार्यों के मतों को भी प्रस्तुत किया है। ये विविध आचार्यों के मत संक्षेप में इस प्रकार से हैं – जैसे **आचार्य भारद्वाज** राजा के सहपाठियों को, **आचार्य विशालाक्ष** राज्य के गुप्तकार्यों में सहायक व्यक्तियों को, **पाराशर** के मतानुसार जो राजा के प्राणों की रक्षा करें, **पिशुन** का मत था जो बुद्धिमान हो वो **कोणपदन्त** ने कहा कि वंशपरम्परा से उपलब्ध व्यक्ति को, जबकि आचार्य **बाहुदन्तीपुत्र** का मानना था कि जो बुद्धिमान, कुलीन और राजकार्यों में निपुण हो इत्यादि को अमात्य पद पर नियुक्ति के योग्य माना जाए।

यहाँ आचार्य कौटिल्य का मत उद्धृत करना आवश्यक है कि भारद्वाज से लेकर बाहुदन्तीपुत्र तक की विचार परम्परा अपने–अपने स्थान पर ठीक है, लेकिन किसी भी पुरूष की सामर्थ्य की स्थिति उसके कार्यों की सफलता पर निर्भर है, और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या–बुद्धि के बल पर ही आँकी जाती है। इसलिए राजा को यह चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवेहलना न करे। परन्तु राजा के लिए यह परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण दोष, देश काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे, किंतु उन्हें अपना मंत्री कदापि न बनाये।[16]

(iv) राजदूत पदों के लिए योग्यताएं –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के राजदूत पदों का उल्लेख किया गया है। ये तीन प्रकार के राजदूत एवं उनके लिए निर्धारित योग्यताऐं इस प्रकार से हैं –

(1) निसृष्टार्थ (राजदूत)–

ये सर्वोच्च राजदूतपद है। इस पर नियुक्त किये जाने वाले उम्मीदवार में अमात्य के पूर्वोक्त गुणों (योग्यता) का होना अनिवार्य था।

(2) परिमितार्थ (राजदूत)–

इस राजदूत पद के लिए अमात्य पद के लिए निर्धारित योग्यताओं में से एक चौथाई कम योग्यता हो सकती थी।

(3) शासनहर (राजदूत)–

इस राजदूत पद के लिए उम्मीदवार में अमात्य पद के लिये निर्धारित योग्यताओं में से आधी योग्यताओं का होना आवश्यक था।[17]

(v) गुप्तचर पदो ंके लिए योग्यतायें –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में दो प्रकार के गुप्तचर पदों की व्याख्या की गई है इन पदो ंके लिए निर्धारित योग्यतायें निम्नलिखित हैं –

(1) स्थायी गुप्तचरों की योग्यताएं – इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले गुप्तचरों के लिए बुद्धिमान, सदाचारी, दूसरों का रहस्य जानने की क्षमता एवं दबंग होना इत्यादि योग्यतायें बतायी गई हैं[18]।

(2) सत्री (भ्रमणशील) गुप्तचरों की योग्यतायें –

कौटिल्य ने लिखा है कि इन गुप्तचरों के लिए आवश्यक योग्यतायें है – राजा के संबंधी न हो, सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण, धर्मशास्त्र, शकुनशास्त्र, पक्षिशास्त्र, कामशास्त्र, सम्मोहनशास्त्र एवं तत्संबंधी नाचने–गाने की कला में निपुणता हो[19]।

(vi) अंगरक्षक पदो ंके लिए योग्यता –

कौटिल्य ने राजा के अंगरक्षक पद को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। अतः इस पद पर नियुक्त उम्मीद्वार के लिए उन्होंने विशिष्ट योग्यतायें निर्धारित की है। वे योग्यताऐं हैं– वंश परम्परा से अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और हर कार्य को भली–भाँति समझने वाला हो। कौटिल्य ने यहाँ ये निषेध भी किया है कि धन–सम्मान रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार सेवा से पृथक हो कर पुनः नियुक्त स्वदेशी व्यक्ति को भी राजा के अंगरक्षक के पदों पर नियुक्ति नहीं दी जाये।[20]

(vii) अध्यक्ष पद के लिए योग्यता –

कौटिल्य के मतानुसार उत्तम, मध्यम, निकृष्ट जैसे भी कार्य हों उनके अनुसार ही उनके लिए अध्यक्ष नियुक्त किये जाये। एक ही कार्य को करने वाले अनेक व्यक्तियों में

उसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए। जो निपुण, गुणी, यशस्वी हो और जिसे दण्ड देने के पश्चात् राजा को पश्चाताप न कराना पड़े।

5. भर्ती हेतु परीक्षण पद्धति –

कौटिल्य ने विशेषतः अमात्य पदों पर स्थायी नियुक्ति के लिए विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं का उल्लेख किया है। अमात्य पद के लिए योग्य उम्मीदवार के चयन हेतु आचार्य ने एक सुव्यवस्थित और निष्पक्ष परीक्षा प्रणाली का उल्लेख किया है। इन परीक्षणों के द्वारा आमात्य पद के सुयोग्य व्यक्ति की योग्यताओं का परीक्षण किया जा सकता था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य के इस मत का उल्लेख है कि सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके राजा मंत्री (प्रधानमंत्री) व पुरोहित के सहयोग से गुप्त उपायों के द्वारा उनके (अमात्य पद के उम्मीदवारों) आचरण व्यवहार की परीक्षा करे। विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं पर आधारित इस भर्ती पद्धति के अन्तर्गत परीक्षण के चार प्रकार बताए गये है। ये चार प्रकार के परीक्षण निम्नलिखित हैं –

(i) धर्मोपधा परीक्षा –

इस परीक्षा के अन्तर्गत गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य पद के उम्मीदवार की हृदय की पवित्रता की जाँच की जाती थी। इस परीक्षा विधि में राजा पुरोहित को परीक्षक के रूप प्रयुक्त करता था। राजा द्वारा पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने और पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता था। जब पुरोहित इस कार्य के लिए मना करता था। तो राजा उसे पद्च्युत करता था। वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर(महिला व पुरूष) के माध्यम से शपथ पूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराता था। वह अमात्य से कहता था कि राजा अधार्मिक है। अतः उसके स्थान पर उसके वंशज, किसी श्रेष्ठ पुरूष, सामन्त या धार्मिक व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए तथा सबने उसके (पुरोहित) मत को स्वीकार कर लिया है। इस बारे में अमात्य की क्या राय है यदि अमात्य इसे अस्वीकार कर दे तो सिद्ध हो जाता है कि वह पवित्र हृदय व्यक्ति है[21]।

(ii) अर्थोपधा परीक्षा –

इस परीक्षा के लिए राजा सेनापति को नियुक्त करता था। राजा सेनापति को किसी निन्दनीय व्यक्ति का सत्कार करने का आदेश दे। जब राजा की इस बात से सेनापति रुष्ट हो जाये तो राजा उसे पदच्युत कर दे। ये पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्त भेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये । सेनापति की बातों से यदि अमात्य अप्रभावित रहे और विरोध करे तो

समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र हृदय है। इस प्रकार गुप्त आर्थिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा ही अर्थोपधा परीक्षा कहलाती है[22]।

(iii) कामोपधा परीक्षा –

गुप्त काम सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को कामोपधा परीक्षा कहते है। इसमें राजा किसी सन्यासिनी वेषधारी गुप्तचर स्त्री को प्रयुक्त करता है। वह उसे अन्तःपुर में ले जाकर उसका सादर सत्कार करे और फिर वह स्त्री एक–एक अमात्य के निकट जाकर यह प्रस्ताव रखे, कि महारानी उन्हें पसन्द करती है तथा उनसे सम्बन्ध रखना चाहती है। इसकी पूरी व्यवस्था कर दी गई है और उन्हें इस हेतु यथेष्ट धन भी दिया जायेगा। यदि उपरोक्त प्रस्ताव का अमात्य विरोध करे तो उसे पवित्रचित्त समझा जाता था और वह इस परीक्षा में सफल घोषित होते हैं[23]।

(iv) भयोपधा परीक्षा –

इस परीक्षा के अन्तर्गत कौटिल्य ने वर्णित किया है कि नौका विहार के लिए एक अमात्य दूसरे अमात्यों को बुलाये। इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर इन सबको दण्डित कर दे। तदन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ छात्र वेषधारी गुप्तचर तिरस्कृत अमात्य के निकट जाकर यह प्रस्ताव रखे कि यह राजा बुरा है इसका वध करके दूसरे राजा को नियुक्त करना चाहिए। इस प्रस्ताव पर सभी अमात्यों की स्वीकृति है आप की क्या राय है। यदि अमात्य उसका विरोध करे तो उसे शुचिचित समझाना चाहिए गुप्त भय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही भयोपधा परीक्षण कहते हैं[24]।

(v) सर्वोपधाशुद्ध –

उसके अन्तर्गत जो अमात्य उपरोक्त वर्णित चारों प्रकार की परीक्षाओं की कसौटी पर खरा उतरे अर्थात् जिसे धन का लालच न हो, जो दूसरे के डर से कोई कार्य न करे, काम के वश में होकर अपने कर्तव्य से विरक्त न हो, धार्मिक भावनाओं के प्रभाव में आकर असत् मार्ग पर प्रवृत न हो तो वह सर्वोपधाशुद्ध कहलाता है।

6. अमात्यों की नियुक्ति एवं पद स्थिति –

कौटिल्य ने अमात्यों के लिए निर्धारित चार प्रकार की परीक्षाओं में सफल उम्मीदवारों के लिए उपयुक्त पदों पर नियुक्ति प्रक्रिया का भी विस्तार से वर्णन किया है। जो इस प्रकार से है–

(i) न्यायिक पदों पर नियुक्ति –जो अमात्य **धर्मोपधा परीक्षा** में उत्तीर्ण हो जाते थे, उन्हें **धर्मस्थानीय** (दीवानी) तथा **कंटकशोधन**(फौजदारी) न्यायालयों में न्यायिक कार्यों हेतु नियुक्त किया जाता था।

(ii) राजस्व व कोष (वित्तीय) पदों पर नियुक्ति –

जो अमात्य **अर्थोपधा परीक्षा** में सफल घोषित किये जाते थे, उन्हें **समाहर्ता** (राजस्व संग्राहक) तथा **सन्निधाता** (कोषाध्यक्ष) के पदों पर नियुक्त किया जाता था।

(iii) अन्तःपुर(राजकीय आवास) पदों पर नियुक्ति –

वे अमात्य जो **कामोपधा परीक्षण** में उत्तीर्ण हुए हों, उन्हें राजकीय आवास में राजकीय महिलाओं से सम्बन्धित विभागों में नियुक्त किया जाता था। ये राजा के **अन्तःपुर** एवं **बाहरी विलासस्थानों** (विहारों) दोनों स्थानों के लिए नियुक्त होते थे।

(iv) अंगरक्षक (राजा के) पदों पर नियुक्ति –

भयोपधा परीक्षा में उर्त्तीण अमात्यों को उनकी स्वामिभक्ति एवं साहस के कारण राजा के **अंगरक्षक** पदों पर नियुक्त किया जाता था। इन्हें **आसन्नाकार्येषु** कहा है।

(v) मन्त्री पदों पर नियुक्ति –

कौटिल्य के मतानुसार जो अमात्य चारों प्रकार के परीक्षणों में सफल होते थे अर्थात् **सर्वोपधाशुद्ध** हो। वे ही**मंत्री** (मन्त्रिण) पद पर नियुक्त किये जाते थे ।

यहाँ ये मत उद्‌धृत करना आवश्यक है कि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने यह मत प्रतिपादित किया था कि राज्यकार्यों में सहायता करने और परामर्श देने के लिए अमात्यों या सचिवों को नियुक्त करना अनिवार्य है। पर सभी अमात्य (सचिव) मंत्री भी हो यह आवश्यक नहीं है।

इस उक्ति का विश्लेषण इस प्रकार से किया जा सकता है कि **अमात्य** एक व्यापक संज्ञा थी, जिसमें राज्य के सभी प्रमुख पदाधिकारियों का बोध होता था। मंत्री का पद कतिपय विशिष्ट **सर्वोपधाशुद्ध** अमात्यों को ही प्राप्त होता था।

मन्त्रियों की नियुक्ति करते हुए राजा मंत्री (प्रधानमंत्री) और पुरोहित संज्ञा के दो प्रधान अमात्यों से परामर्श लेता था और उनकी सम्मति के अनुसार ही राज्य के सब प्रधान अमात्यों की नियुक्ति की जाती थी।

(vi) सामान्य पदों पर नियुक्ति –

इसके अन्तर्गत वे सभी वे सभी व्यक्ति आते थे जो अमात्य पद के लिए योग्य है परन्तु जो परीक्षित नहीं है या जिसने परीक्षा को नहीं दिया है वह सभी सामान्य विभागों में रखे जा सकते थे।

(vii) अन्य पदों पर नियुक्ति –

वे अमात्य जो उपरोक्त वर्णित चारों प्रकार के परीक्षणों में अनुर्त्तीण हो जाते थे, उन्हें राज्य के दूर के स्थानों पर खानों, लकड़ी या हाथियों के वनों या कारखानों में सुपरिटेन्डेण्ट के पदों पर परिश्रम साध्य कार्यों पर नियुक्त किया जाता था[25]।

आरेख 3.1

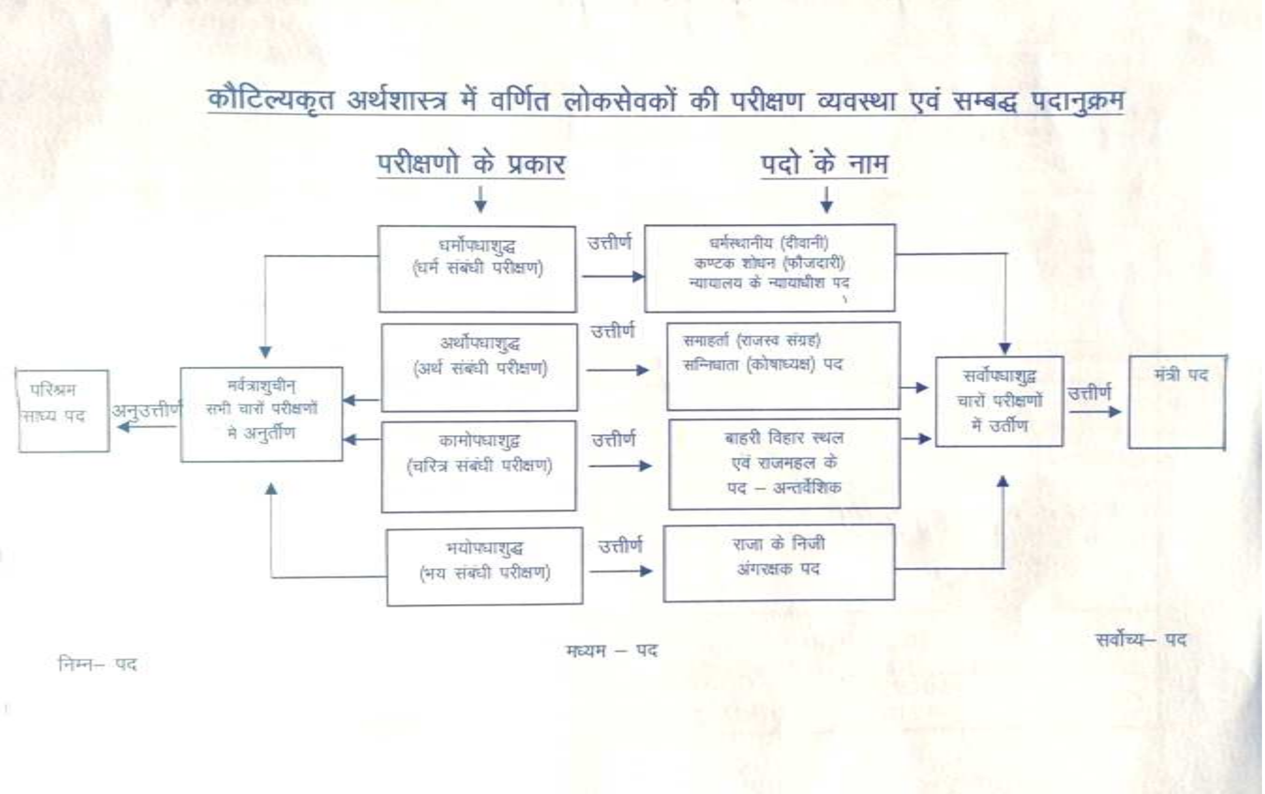

7. परीक्षा पद्धति एवं नियुक्ति प्रकिया में आवश्यक निषेधात्मक तथ्य –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अमात्य पदों के लिए ली जाने वाली परीक्षा और नियुक्ति प्रकिया में कुछ सावधानियों को प्रयुक्त करने का भी उल्लेख किया है। कार्मिक प्रशासन की दृढ़ता बनाये रखने के लिए इन्हें ध्यान में रखना आवश्यक प्रतीत होता है। ये इस प्रकार हैं –

सभी पुरातन अर्थशास्त्रविद् आचार्यों का यह अभिमत था कि धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित हृदय से पवित्र अमात्यों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्यभार या पद नियुक्ति दी जानी चाहिए ।

कौटिल्य ने यहाँ एक संशोधन प्रस्तुत किया है कि अमात्यों की नियुक्ति हेतु परीक्षा अवश्य ली जाये परन्तु उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने स्वयं को तथा रानी को न बनाये[26]। इसका कारण कौटिल्य ने यह बताया था कि कभी–कभी किसी निर्दोष अमात्य को छलप्रपंचयुक्त इन गुप्त रीतियों से ठगा जाना वैसा ही है जैसे की शुद्ध पानी में विष घोल देना है। इस बात की सम्भावना है कि उक्त रीतियों से नाराज हुआ अमात्य कभी सुधर न सकें क्योंकि कपट उपायों से ठगे हुए चरित्रवान् व्यक्ति की बुद्धि जब तक चैन नहीं लेती है तब तक की वह अपना अभीष्ट प्राप्त न कर ले। (अर्थात् अपने अपमान का बदला न ले ले)। इसलिए राजा और प्रशासन की सुरक्षा की दृष्टि से उक्त चारों उपायों से परीक्षण करने के लिए राजा किसी बाह्य वस्तु को ही परीक्षण का माध्यम बनाये और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा ले[27]।

8. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में आरक्षण व्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भी राजकीय पदों की भर्ती के सन्दर्भ में आरक्षण व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इस आरक्षण व्यवस्था का मुख्य आधार मौर्य युग के समाज में प्रचलित **चतुर्वर्ण्य** (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र) व्यवस्था थी। समाज के इन चारों वर्णों के **स्वधर्म** नियत थे और हर व्यक्ति के लिए ये आवश्यक और उपयोगी माना जाता था, कि वह अपने–अपने स्वधर्म में स्थिर रहे। कौटिल्य भी इस मत का समर्थन करते थे। कौटिल्य का मानना था कि यदि स्वधर्म का अतिक्रमण किया जायेगा तो शासन व प्रशासन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी और इसके लोक (समाज) नष्ट हो जायेगा। अतः राजसंस्था (राजा) का मुख्य कार्य है कि वह मनुष्यों को अपने–अपने स्वधर्म में स्थिर रखें उन्हें स्वधर्म का अतिक्रमण न करने दें। जो राजा स्वधर्म को कायम रखता है वही राष्ट्र की उन्नति एवं भविष्य का विकास करता है, लेकिन कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि परिस्थितिवश ब्राह्मण,

वैश्य इत्यादि कृषि, व्यापार कर सकते है तथा साथ ही साथ शुद्र कृषि, व्यापार में सहायता व युद्ध में भाग ले सकते हैं।

कौटिल्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण वर्ण की स्थिति सबसे उच्च एवं सम्मानित थी। राज्य की राजनीतिक व्यवस्था में भी उनका महत्व एवं प्रभाव था। अतः कौटिल्य राज्य के प्रशासनिक कार्यों के सफल संचालन में उनका सहयोग चाहते थे। इसलिए उनको कुछ विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण राजकीय पद पर आरक्षण दिया गया। यहाँ ये बताना भी आवश्यक है कि कौटिल्य ने पुरूषों के साथ ही साथ कुछ पद महिलाओं के लिए आरक्षित किये थे। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में आरक्षण व्यवस्था का वर्णन इस प्रकार से है –

1. पुरूषों के लिए आरक्षित पद –

(i) पुरोहित एवं मंत्री पद पर आरक्षण की व्यवस्था–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित अठारह तीर्थों (विभागों) में सर्वप्रमुख दो तीर्थ थे – पुरोहित व मंत्री। इन दोनों विभागों के प्रमुख पदाधिकारी ब्राह्मण वर्ण से ही नियुक्त किये जाते थे। ये राजा को मर्यादा में रखने का महत्वपूर्ण कार्य करते थे। इससे स्पष्ट होता है कि उपरोक्त दोनों पद (पुरोहित, मंत्री) केवल ब्राह्मण वर्ण के लिए ही आरक्षित किये गये थे।

(ii) अंगरक्षक पदों पर आरक्षण –

कौटिल्य ने राजा की सुरक्षा के लिए नियुक्त अंगरक्षक पदाधिकारियों की नियुक्ति में भी आरक्षण का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने लिखा है कि इन अंगरक्षक पदों पर वंश परम्परा से आने वाले उम्मीदवारों को ही नियुक्त करना चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि अंगरक्षक के पद पर आरक्षण की व्यवस्था लागू की गई थी।

(iii) सैन्य वर्ग में आरक्षण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लिखा है कि सर्वश्रेष्ठ सेना क्षत्रियों की होती है। लेकिन साथ ही साथ ये मत भी प्रतिपादित किया कि युद्ध की सफलता के लिए आवश्यकता होने पर विजिगीषु राजा को सेना में वैश्य एवं शुद्रों को नियुक्ति देनी चाहिए अर्थात् सैनिक पदों पर वैश्य एवं शुद्र वर्ग को आरक्षण की सुविधा दी गई थी।

2. महिलाओं के लिए आरक्षित पद–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने राजकीय पदों की भर्ती में न केवल पुरूषों को वरन् स्त्रियों को भी आरक्षण की सुविधा दी थी, स्त्रियों को राजकीय पदों में दिया जाने वाला आरक्षण इस प्रकार से है –

(i) संचार वर्ग के गुप्तचर पदों में आरक्षण –

कौटिल्य ने **संचारवर्ग** (भ्रमणशील) गुप्तचर पदों से सम्बन्धित कुछ पद स्त्रियों के लिए आरक्षित किए थे। ये पद थे – परिव्राजिका (सन्यांसिनी) मुंडा (बौद्ध भिक्षुणी) और वृषली (शुद्रा) इत्यादि। इन पदों पर गुप्तचर के रूप में स्त्रियों को ही नियुक्त किया जाता था।

(ii) गणिका पद पर आरक्षण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह भी बताया गया है कि राजमहल में राजा और उसके सम्बन्धियों की सेवा और मनोरंजन कार्यों के लिए सेविकाओं की नियुक्ति की जाती थी। इन सेविकाओं को **गणिका** कहा जाता था। गणिकाध्यक्ष नामक अधिकारी द्वारा राजा के लिए प्रधान गणिका और उसकी सहायक गणिकाओं के पदों पर गणिका परिवार में उत्पन्न स्त्रियों को ही नियुक्ति दी जाती थी। लेकिन इस नियम का अपवाद भी हो सकता था। इस प्रधान गणिका को 1000 पण वेतन मिलता था। इनको (गणिकाओं) राजा की और से विशिष्ट सुविधायें और संरक्षण प्राप्त था।

(iii) सूत (वस्त्र) उद्योग में आरक्षण व्यवस्था –

मौर्य युग में सूत (वस्त्र) उद्योग एक मुख्य सरकारी उद्योग था। इसमें सूत कातने के लिए राज्य की और से विधवा, विकलांग, कन्या, प्रव्रजिता, राजदण्डित स्त्रियों, वेश्याओं की बूढ़ी माता, वृद्ध राजदासी इत्यादि को रखा जाता था। इस तरह से सूत कातने का कार्य स्त्रियों के लिए ही आरक्षित रखा गया। इसके लिए उन्हें वेतन भी दिया जाता था[28]।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भी राजकीय पदों की भर्ती के संदर्भ में आरक्षण व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। लेकिन यहाँ ये उल्लेखनीय तथ्य है कि कौटिल्य ने आरक्षण को चतुर्वर्ण्य एवं स्वधर्म पर आधरित माना था। कौटिल्य ने **जातिगत आरक्षण** जैसे किसी भी तथ्य का उल्लेख नहीं किया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में जिस विशेष आरक्षण की जानकारी दी है, वह राजकीय पदों की भर्ती के योग्यता सिद्धांत को कमजोर नहीं वरन् मजबूत करता है तथा भर्ती में उच्च आदर्शों को बनाये रखने में सहायक है। इस प्रकार की आरक्षण व्यवस्था से प्रशासन में स्थायित्व एवं स्थिरता बनाये रखी जा सकती थी।

2.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में भर्ती व्यवस्था–

स्वंतत्रता के पश्चात् विकासशील राष्ट्र के रूप में भारत के लिए कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत लोक सेवाओं में योग्य, सक्षम और कार्य कुशल लोगों को आकर्षित करने तथा उनकी भर्ती में पक्षपात और भाई–भतीजावाद को रोकना अत्यावश्यक बन गया। साथ ही साथ इन लोक सेवाओं में उन लोगों को निकाल बाहर करना भी आवश्यक था, जो इन सेवा के पदो ंके योग्य और उपयुक्त नहीं है। ऐसा करके ही भारतीय कार्मिक प्रशासन को लोककल्याणकारी राज्य के आदशों को साकार करने के योग्य बनाया जा सकता था। सुदृढ़ व निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था के द्वारा ही भारत जैसे विशाल राष्ट्र में सुशासन के सिद्वान्तों को सफलता पूर्वक लागू किया जा सकता था। भारत में लोक सेवाओं की भर्ती के तरीकों और स्परूप में निरन्तर सुधार किया जाता रहा है ताकि ये प्रासंगिक बनी रहें और भारतीय जनता को सुशासन प्रदान करने हेतु तथा उनकी आशाओं एवं आकांक्षाओं पर खरी उत्तर सकें। वर्तमान भारत में सन् 1985 में स्थापित कार्मिक, लोकशिकायत और पेंशन मंत्रालय का कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग भर्ती सम्बन्धित नियमों व व्यवस्था को नियन्त्रित करता है।

I. भर्ती के प्रकार –

वर्तमानभारत में लोक सेवकों की भर्ती दो प्रकार से की जाती है जो इस प्रकार से है–

(i) प्रत्यक्ष भर्ती –

समय–समय पर केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर क्रमशः संघीय एवं राज्य लोक सेवा आयोगों द्वारा सीधी भर्ती (प्रत्यक्ष भर्ती) हेतु खुली प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। इस हेतु देश के प्रमुख अखबारों एवं अन्य संचार साधनों में विज्ञापन दिये जाते है। योग्य उम्मीदवार पदों पर चयन हेतु आवेदन कर इन परीक्षाओं में भाग लेते है तथा परीक्षाऐं उत्तीर्ण कर नियुक्ति के पात्र बनते है। इस भर्ती प्रणाली को ही प्रत्यक्ष या सीधी भर्ती कहा गया है।

(ii) अप्रत्यक्ष भर्ती –

भारत में अप्रत्यक्ष भर्ती भी होती है जिसे पदोन्नति द्वारा भरा जाता है। इसे ही अप्रत्यक्ष भर्ती कहा गया है। पदोन्नति से भरे जाने वाले पदों का अनुपात प्रायः सेवा की प्रकृति पर आधारित रहता है। उदाहरणार्थः भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) के 33 प्रतिशत पद राज्य सेवाओं में कार्यरत प्रशासनिक अधिकारियों को पदोन्नत करके भरे जाते हैं। पदोन्नति द्वारा की जाने वाली भर्ती सीमित होती है। भारतीय लोक सेवा में कुछ पद

विशुद्ध रूप से प्रशासनिक प्रकृति के होते है इनका दायित्व योग्य और सक्षम व्यक्तियों को ही सौंपा जाता है। इसलिए इस अप्रत्यक्ष भर्ती प्रणाली को अपनाया गया है।

2. भर्ती के लिए संवैधानिक संस्थान –

भारत में लोक सेवाओं की भर्ती करने के लिए मुख्य अधिकरण हैं– संघीय स्तर पर संघीय लोकसेवा आयोग, राज्य स्तर पर राज्य लोक सेवा आयोग, संयुक्त राज्य सेवा आयोग, रेल्वे सेवा आयोग तथा सांविधानिक नियमों के अनुसार निजी भर्ती मण्डल अथवा आयोग। इस प्रकार के भर्ती आयोगों का अपना महत्व है। ये राजनीतिक एवं अन्य प्रभावों को भर्ती की प्रक्रिया से दूर रखते हैं तथा योग्य कर्मचारियों के चयन को सम्भव बनाते है। इस शोध के विषय को ध्यान में रखते हुए यहाँ केवल संघीय लोक सेवा आयोग का वर्णन ही वांछनीय है। अतः संघीय लोक सेवा आयोग के बारे में ही तथ्यात्मक जानकारी निम्नलिखित प्रकार से है –

1.संघ लोक सेवा आयोग[29]–

वर्तमान भारत में संघीय स्तर पर प्रमुख भर्ती कर्त्तासंस्था **संघ लोक सेवा आयोग** है। इसका गठन भारतीय संविधान द्वारा हुआ है। अतः यह एक स्वतंत्र संवैधानिक निकाय है। संविधान में इस आयोग की संरचना, इसके सदस्यों की नियुक्ति, पदच्युति, शक्तियों और कार्यों तथा इसकी स्वतंत्रता से सम्बन्धित प्रावाधानों का विस्तृत उल्लेख है।

(i) संघ लोक सेवा आयोग का संगठन (Organization of U.P.S.C.) –

संविधान के अनुच्छेद,313 (1) में व्यवस्था है कि ''लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति यदि संघ आयोग या संयुक्त आयोग है, तो राष्ट्रपति द्वारा और यदि वह राज्य आयोग है तो राज्य के राज्यपाल द्वारा की जाएगी।''

(ii) सदस्य संख्या –

भारतीय संविधान में आयोग के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की गई है। इसका निर्धारण राष्ट्रपति के विवेक पर छोड़ दिया गया है।वर्तमान में इस आयोग में अध्यक्ष के अतिरिक्त सामान्यतः 9 से 11 सदस्य होते है। इसके अतिरिक्त संविधान में यह प्रावाधान है कि आयोग के आधे सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जो केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष कार्य कर चुके हों।

(iii) सेवा शर्तें –

आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा शर्तों के निर्धारण के लिए संविधान ने राष्ट्रपति को प्राधिकृत किया है।

(iv) सदस्यों का कार्यकाल –

संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों का कार्यकाल छः वर्ष अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक जो पहले होता हो। राज्य आयोग या संयुक्त आयोग की स्थिति में 65 वर्ष की जगह 62 वर्ष की आयु का प्रावाधान है। आयोग का अध्यक्ष या कोई भी सदस्य अपने कार्यकाल से पूर्व ही राष्ट्रपति को सम्बोन्धित कर अपने हस्ताक्षर सहित लेखा द्वारा पद से त्यागपत्र दे सकता है।

(v) सदस्यों की पद्च्युति –

संविधान के **अनुच्छेद 317** में आयोग के सदस्यों को अपदस्थ करने की प्रक्रिया का वर्णन दिया गया है। राष्ट्रपति निम्नलिखित स्थितियों में संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष या किसी सदस्य को कार्यकाल से पूर्व भी हटा सकता है – (1) यदि अध्यक्ष या सदस्य दिवालिया हो गया हो, (2) यदि आयोग के सेवाकाल में उन्होंने अन्य वेतन भोगी पद स्वीकार किया हो, (3) यदि राष्ट्रपति के विचार में अध्यक्ष या सदस्य शारीरिक अथवा मानसिक दुबर्लता के कारण पद का कार्यभार संभालने में असमर्थ हो।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त ''दुराचरण और कदाचार के अपराध''में भी राष्ट्रपति उन्हें सर्वोच्च न्यायालय से जाँच कराकर पदच्युत कर सकता है[30]।

आयोग के सदस्य की सेवा–शर्तों में उसकी नियुक्ति के बाद ऐसे परिवर्तन नहीं किये जाते हैं जो अलाभकारी हों। ऐसे सदस्यों को सरकारी दबाव से मुक्त रहकर स्वतंत्रता और निर्भीकता से करने देने के लिए किया गया है।

(vi) संघ लोक सेवा आयोग की कार्य –

संघ लोक सेवा आयोग के कार्य संविधान के अनुच्छेद,320 में उल्लेखित किए गये है किन्तु संविधान के अनुच्छेद,321 में यह व्यवस्था भी दे दी गई कि संसद और राज्य विधान मण्डल क्रमशः विधि द्वारा संघ तथा राज्य लोक सेवा आयोगों को संघ की या राज्य की सेवाओं के बारे में तथा किसी स्थानीय प्राधिकारियों (Local Authorities) अथवा किसी सार्वजनिक संस्था की सेवाओं के बारे में अतिरिक्त कार्य सौंप सकते हैं।संघीय लोक सेवा आयोग के प्रमुख कार्यों का विवरण निम्नानुसार है –

(1) यह अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं और केन्द्र शासित राज्यों की लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाएँ आयोजित करता है।

(2) यह उन राज्यों के अनुरोध पर किसी ऐसी सेवा के लिए संयुक्त भर्ती सम्बन्धी योजना की तैयारी और उसे संचालित करने का कार्य करता है, जिस सेवा के लिए विशेष योग्यताधारी अभ्यार्थियों की आवश्यकता होती है।

(3) यह राष्ट्रपति की स्वीकृति और राज्यपाल के अनुरोध पर राज्य की किसी एक अथवा सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(4) यह (आयोग) राष्ट्रपति को निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित सलाह भी देता है –

(i) सिविल सेवाओं और सिविल (असैनिक) पदों पर भर्ती की पद्धति से जुड़े सभी मामले।

(ii) असैनिक सेवाओं और पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानान्तरण या पदोन्नत किये जाने के समय के अनुसरणीय सिद्धान्तों से सम्बन्धित सभी मामलों पर परामर्श देना।

(iii) असैनिक सेवाओं और पदों पर नियुक्ति के लिए एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानातरण या पदोन्नति और स्थानान्तरण या प्रतिनियुक्ति पर नियुक्ति के लिए अभ्यार्थियों की उपयुक्तता। पदोन्नतियों की सिफारिश सम्बद्ध विभाग करता है और संघीय लोक सेवा आयोग से उसकी पुष्टि करने का अनुरोध करते हैं।

(iv) अन्य कोई ऐसा मामला जो कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा विशेष रूप से उनको सौंपा जाए।

(v) भारत सरकार के अधीन सेवारत किसी व्यक्ति से सम्बन्धित सभी प्रकार के अनुशासनिक मामले।

(5) किसी सरकारी सेवक द्वारा सरकारी ड्यूटी के निष्पादन सम्बन्धित कानूनी कार्यवाही में होने वाले व्यय की भरपाई सम्बन्धी कोई भी दावा।

(6) भारत सरकार के अधीन सेवारत किसी व्यक्ति के चोटग्रस्त हो जाने के फलस्वरूप पेंशन दिए जाने अथवा पेंशन की राशि से सम्बन्धित दावा।

(7) एक वर्ष से अधिक अवधि तक अस्थायी नियुक्ति को नियमित करने से सम्बन्धित मामले।

(8) सेवा विस्तार की मंजूरी तथा कुछ सेवानिवृत सिविल सेवकों को पुनः रोजगार देने से संबधित मामले।

(9) आयोग को भेजे गए कार्मिक प्रबंन्धन से जुड़ा अन्य कोई भी मुद्दा।

(vii) आयोग के अधिकार क्षेत्र के बाहर के पद –

आयोग के कार्यक्षेत्र से पदों को अलग करके इसका अधिकार क्षेत्र कम किया जा सकता है। निम्नलिखित नियुक्तियों के चुनाव के सम्बन्ध में आयोग से परामर्श नहीं किया जाता है –

(1) न्यायाधिकरण (Tribunals) अथवा आयोग की सदस्यता अथवा अध्यक्षता।

(2) उच्च राजनयिक प्रकृति के पद।

(3) तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के अधिकांश कर्मचारी जो केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की कुल संख्या का 98 प्रतिशत है। आयोग के कार्यक्षेत्र से बाहर है।

(viii) संघ लोक सेवा आयोग का प्रतिवेदन–

संघीय लोक सेवा आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को अपने द्वारा किए गए कार्य निस्पादन के बारे में प्रतिवर्ष प्रतिवेदन दे तथा ऐसे प्रतिवेदन के मिलने पर राष्ट्रपति उन मामलों के बारे में यदि कोई हो जिसमें आयोग का परामर्श स्वीकार नहीं किया गया। ऐसी अस्वीकृति के कारणों को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन से सहित इस प्रतिवेदन की प्रतिलिपि संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।

आयोग की सलाह को अस्वीकृत किए जाने सम्बन्धी मामलों पर नियुक्ति से जुड़ी केन्द्रीय कैबिनेट समिति का अनुमोदन प्राप्त होना चाहिए। किसी मंत्रालय या विभाग विशेष को इस आयोग की सलाह को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं है।

आयोग की सलाह की उपेक्षा करके सरकार द्वारा की जाने वाली मनमानी कार्यवाही के विरूद्व यह एक सुरक्षा है। फिर भी यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक लगता है कि सरकार को इस बात की स्वतन्त्रता होती है कि वह आयोग द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सके।

3. योग्यता आधारित भर्ती सिद्वान्त –

भारत में स्वतन्त्रता के आद लोक सेवाओं में लूट प्रथा तथा पक्षपात को समाप्त करने के लिए योग्यता आधारित भर्ती प्रणाली को महत्व दिया गया है।इस प्रणाली के अनुसार लोक सेवाओं में उम्मीदवारों की भर्ती हेतु कुछ अर्हताऐं निश्चित की गई है जो निम्नलिखित है –

4. लोक सेवाओं हेतु अर्हताएँ –

वर्तमान भारत में लोक सेवाओं के कर्मचारियों के लिए आवश्यक अर्हताओं सम्बन्धी प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन अर्हताओं पर लोक सेवाओं की बहुत कुछ कुशलता

निर्भर करती है। लोक सेवाओं के लिए आवश्यक अर्हताएँ दो प्रकार की होती हैं – (1) सामान्य तथा (2) विशेष। सामान्य अर्हताएँ सभी लोक कर्मचारियों पर लागू होती हैं और एक प्रकार से सार्वभौमिक रूप से प्रयोग में आने वाली होती है। वे नागरिकता, अधिवास, लिंग–भेद तथा आयु से सम्बन्ध रखती है। विशेष अर्हताएँ शिक्षा, अनुभव, प्राविधिक ज्ञान तथा वैयक्तिकविशेषताओं से सम्बन्धित होती हैं। संक्षेप में, इन अर्हताओ की चर्चा निम्नवत् है –

(1) सामान्य अर्हताएँ –

(i) नागरिकता(Citizenship) **–** लोक सेवा के लिए आवेदन करने वालों के लिए राज्य का नागरिक होना आवश्यक है। विदेशियों को लोक सेवा में कोई भी पद नहीं दिया जा सकता है। यदि कोई विदेशी नियुक्त कर भी लिया जाता है तो उसका कार्यकाल थोड़े समय के लिए ही होता है। भारत में नेपाल के नागरिकों के लिए भी लोक सेवा के पदों पर नियुक्ति की सुविधाएँ है, क्योंकि भारत के साथ इस देश के दृढ़ ऐतिहासिक सम्बन्ध हैं।

(ii) अधिवास या निवास (Domicile or Residence)**–** अधिवास सम्बन्धी अर्हता की संयुक्त राज्य अमेरीका द्वारा अवस्था की गयी थी, जहाँ आज भी संघीय राज्यों को राष्ट्रीय सेवाओं में यथोचित प्रतिनिधित्व दिया जाता है। भारत में अधिवास सम्बन्धी नियम 1957 तक लागू थे।

राज्य पुनर्गठन आयोग ने राज्य की लोक सेवाओं की पात्रता के लिए इन प्रावधानों पर आपत्ति की थी। ''स्थानीय लोगों की यह इच्छा कि राज्य की सेवाओं में मुख्यतः उसी राज्य के सपूतों की नियुक्ति होनी चाहिए'' ठीक होते हुए भी एक सीमा तक ही ठीक है। अधिवास नियमों की आलोचना के फलस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने लोक सेवा योजना (निवास सम्बन्धी आवश्यकता) अधिनियम, 1957 पारित किया। इस अधिनियम द्वारा देश की लोक सेवाओं में प्रवेश पाने के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करके देश की प्रशासकीय एकता को सुदृढ़ बनाया गया है। लेकिन तेलंगाना राज्य में कुछ सेवाओं में केवल मुलकियों को ही भतियों को ही भर्ती के अधिकार प्रदान हैं। मुलकी तेलंगाना क्षेत्र के स्थायी निवासी है।[31]

(3) लिंग–भेद (Sex)**–** वर्तमान भारत में महिला एवं पुरूष में कोई भेदभाव नहीं किया जाता है। भारतीय संविधान स्पष्ट रूप से यह निर्धारित करता है कि ''सभी नागरिकों को राज्य के अधीन पदों पर नियुक्ति या नियुक्ति सम्बन्धी मामलों में समान अवसर प्राप्त होंगे।

(4) आयु (Age)– भारत, ब्रिटेन जैसे देशों में लोक सेवाओं में नवयुवकों की भर्ती की जाती है। इसके विपरीत, संयुक्त राज्य अमरीका में अधिक परिपक्व स्त्री–पुरूषों को ही नौकरी में लेते है। इसका सरकार के सेवीवर्ग सम्बन्धी ढाँचे पर अमिट प्रभाव पड़ता है।

फिर भी, आधुनिक समय में जबकि प्रशासनिक कार्यों में दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, उच्चतर आयु–समूह के व्यक्तियों को भी लोक सेवाओं में प्रवेश पाने से पूर्णतः वंचित नहीं किया जाना चाहिए। वर्तमान भारत में 18 से 30 वर्ष तक के युवक एवं युवतियाँ लोक सेवाओं में प्रवेश प्राप्त कर सकते है। अनुसूचित जाति, जनजाति के लिए 5 वर्ष की तथा पिछड़ा वर्ग के अभ्यार्थियों के लिए 3 वर्ष की छूट है। विशिष्ट कृत्यों से सम्बन्धित सेवाओं के लिए अधिक आयु के अनुभवी व्यक्तियों को भी नियुक्त किया जाता है। आयु की ऊपरी सीमा 1986 में घटाकर 26 वर्ष कर दी गयी थी, जो अब पुनः 30 वर्ष कर दी गयी है।

2. विशेष अर्हताएँ (Special Qualifications) –

(i) शिक्षा सम्बन्धी अर्हताएँ (Educational Qualification)–

भारतीय प्रणाली पर ब्रिटिश प्रणाली की छाप है। प्रशासकीय सेवाओं में प्रवेश पाने के लिए भारत में अनिवार्य न्यूनतम अर्हता कला, विज्ञान, तकनीकी प्रबन्धन या चिकित्सा विषयों में विश्वविद्यालय की स्नातक उपाधि होती है। लिपिक सेवाओं (निम्नवर्गीय) में प्रवेश पाने के लिए न्यूनतम अर्हता 2010 से 12वीं या उसके समकक्ष निर्धारित है। अभ्यर्थियों की संख्या भी आवश्यक रूप से अधिक न हो एवं उनकी व्यवस्था हो सके। इसके लिए 1979 से एक व्यक्ति को सिविल सेवा प्रतियोगों परीक्षा में अधिकतम चार बार तक बैठने की छूट दी गई है।

(2) अनुभव (Experience)–

संयुक्त राज्य अमरीका में, जहाँ लोक सेवाओं में किसी भी आयु में प्रवेश किया जा सकता है, कार्य के वास्तविक अर्नुभव का बहुत अधिक महत्व है तथा उसकी बहुत अधिक माँग रहती है। भारतीय प्रणाली में महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त युवकों की भर्ती की जाती है, फिर भी प्राविधिक सेवाओं के लिए अनुभव को वांछनीय अर्हता समझा जाता है।

(3) व्यक्तिगत अर्हताएँ (Personal Qualification)–

लोक–सेवक में निष्पादक की योग्यता, चातुर्य, युक्ति, ईमानदारी, क्षमता, सच्चाई और दूसरों के साथ मिलजुलकर काम करने की योग्यता होना आवश्यक होता है। उसे व्यक्तियों का नेता होना चाहिए तथा लोकहित उसमें कूट–कूट कर भरा होना चाहिए। उसका चालचलन आलोचना तथा लांछन से मुक्त और सीजर की पत्नी की भांति संशय से

परे होना चाहिए। उसे किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखनी चाहिए क्योंकि वह अति जटिल प्रशासनिक संगठन का एक भाग होता है।

(4) प्राविधिक अनुभव (Technical Experience)–

सरकार अर्थशास्त्रवेत्ताओं, सांख्यिकों, लेखाकर्मियों, कानूनी परामर्शदाताओं, इंजीनियरों, वैज्ञानिकों तथा ऐसे भी प्राविधिक कर्मचारियों को अधिकाधिक शासकीय सेवा में भर्ती कर रही है। हमारे जैसी किसी भी विकासोन्मुखी सरकार के लिए बहुत बड़ी संख्या में सामान्यवादी प्रशासकों एवं प्राविधिक प्रशासकों की भर्ती करना तथा उन्हें प्रशिक्षित करना ही आवश्यक है। प्राविधिक कर्मचारियों को भर्ती करने से एक प्रश्न यह उत्पन्न हो गया है कि प्राविधिक तथा प्रशासकीय सेवी वर्ग के मध्य क्या समुचित सम्बन्ध होने चाहिए ? अभी तक इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं हुआ है। इसी दौरान प्राविधियों की शिकायतें निरन्तर बढ़ती जा रही है। यह सत्य है कि कुछ हद तक प्राविधिक **''एक विचार''** वाले व्यक्ति होते हैं और उनमें मामलों के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण अपनाने की क्षमता नहीं होती, फिर भी हमारे जैसी विकासवादी प्रशासन बहुत समय तक उनकी अवहेलना नहीं कर सकता।

5. भर्ती हेतु परीक्षा पद्धति –

वर्तमान भारत में सिविल सेवा परीक्षा प्रणाली की एक एकीकृत योजना है। जिसके द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं जैसे – आई.ए.एस., आई.एफ.एस., आई.पी.एस. तथा प्रथम श्रेणी केन्द्रीय सेवाओं में अधिसंख्या पदों हेतु भर्ती की जाती है इसमें अभ्यर्थी एक ही परीक्षा देकर अपनी श्रेष्ठता के आधार पर इनमें से किसी भी सेवा में चयनित हो सकता है।

सिविल सेवा प्रतियोगी परीक्षा की दो अवस्थाऐं होती है। जो इस प्रकार हैं –

(i) प्रारम्भिक परीक्षा –

प्रधान परीक्षा में चयन हेतु सिविल सेवा प्रारम्भिक परीक्षा वस्तुपरक (बहुविकल्पीय प्रश्न) प्रकार की होती है। सिविल सेवा परीक्षा (प्रारम्भिक) 2011 की प्रणाली और पाठ्यक्रम का नया स्वरूप 18 अक्टूबर 2010 को भारत सरकार (Government of India) द्वारा संघ लोक सेवा आयोग की सलाह पर जारी किया है।

यहाँ ये स्पष्ट करना आवश्यक है कि वही अभ्यर्थी जो प्रारम्भिक परीक्षा में सफल हो जाता है आगे की मुख्य परीक्षा में बैठ सकता है। अतः प्रारम्भिक परीक्षा छँटनी करने की परीक्षा है। यदि यह ही छँटनी गलत हुई तो लोक सेवा में हानि होगी। साथ ही प्रारम्भिक परीक्षा के द्वार जितने अधिक विद्यार्थियों के लिए खुल सके उतना ही अच्छा है।

(ii) मुख्य परीक्षा –

प्रारम्भिक परीक्षा में सफल अभ्यर्थी ही प्रमुख परीक्षा में बैठ सकता है। इसमें लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार दोनों आते हैं। इस मुख्य परीक्षा एवं साक्षात्कार के स्तर पर नया ''विस्तृत बदलाव'' 2013 से लागू किया गया है[32]। इसे वर्तमान में 2013:CSATकहा गया है। ये बदलाव द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग एवं अन्य समितियों के सुझावों पर किये गये है।

(iii) साक्षात्कार परीक्षण –

मुख्य परीक्षा के अन्तर्गत आने वाली लिखित परीक्षा में सफल होने वाले उम्मीदवारों को साक्षात्कार (Interview) के लिए बुलाया जाता है। यह साक्षात्कार संघ लोक सेवा आयोग द्वारा लिया जाता है। इसमें अभ्यर्थी से लगभग 30 मिनिट विभिन्न विषयों पर वार्तालाप किया जाता है। साक्षात्कार के पहले 250 अंक होते थे किन्तु 1993 से **सतीशचन्द्र समिति** की सिफारिश के आधार पर 300 अंक कर दिये गये और न्यूनतम अंक नहीं रखे गये। साक्षात्कार बोर्ड में 7–8 सदस्य होते है। जो अभ्यर्थी की क्षमता, योग्यता, निर्णय लेने की कुशलता आदि बातें जाँचने का प्रयत्न करते है।

लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार के अंक जोड़कर मेरिट लिस्ट अर्थात् सफल अभ्यर्थियों की सूची तैयार की जाती है। इस सूची में बता दिया जाता है कि कौन किस सेवा में गया है। इसके बाद **लाल बहादुर शास्त्री नेशनल अकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी** में प्रशिक्षण प्रारम्भ होता है। इस अकादमी के प्रशिक्षण को पूर्ण करके अभ्यर्थी लोक सेवक बनकर लोक सेवा के पदों पर नियुक्त होते हैं।

6. आरक्षण व्यवस्था –

भारत में संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संविधान के अनुच्छेद 16(4) और 335 के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को पदों की भर्ती की रिक्तियों में क्रमशः 15 और 7, 1/2 प्रतिशत आरक्षण निर्धारित किया गया है। यह आरक्षण संघ लोक सेवा आयोग के माध्यम से खुली प्रतियोगिता परीक्षा या किसी अन्य संस्थान द्वारा ली जाने वाली खुली प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा अखिल भारतीय आधार पर होने वाली सीधी भर्ती वाली नियुक्तियों में किया जाता है। खुली प्रतियोगिता से अलग आधार पर अखिल भारतीय स्तर की सीधी–भर्ती में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये निर्धारित प्रतिशत क्रमशः 16, 2/3 और 7,1/2 प्रतिशत है।

समूह **'ग'** और **'घ'** पदों की सीधी भर्ती में जिसके लिये सामान्यतः किसी स्थान या क्षेत्र के उम्मीदवार ही आते है, आरक्षण की प्रतिशतता का निर्धारण सम्बन्धित राज्य/संघ,

राज्य क्षेत्र या क्षेत्र विशेष में रह रहे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की संख्या के अनुपात में किया जाता है। उपयुक्तता की शर्त पर वरिष्ठता द्वारा सभी पदोन्नतियों में सीमित विभागीय प्रतियोगिता परीक्षा (समूह 'ख', 'ग' तथा 'घ' में) द्वारा पदोन्नति में और समूह **'क'** के निम्नतम स्तर तक पदोन्नति योग्यता द्वारा चयन में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये क्रमशः 15% और 7, 1/2% आरक्षण किया गया है कितु शर्त यह है कि ऐसे सभी ग्रेडों/सेवाओं में सीधी भर्ती का अंश 66, 2/3% से अधिक न हो।

इसके अलावा इन संवैधानिक प्रावधानों में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों की तुलना में अनेक रियायतें भी दी गई है। सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति के लिए उपलब्ध रियायतों में अधिकतम आयु में छूट, निर्धारित अवसरों से अधिक अवसर देना, परीक्षा शुल्क में सामान्य शुल्क से 25से 50% तक की कमी करना, कार्यकुशलता का निम्नतम स्तर प्राप्त करते ही चयन व्यवस्था, पदोन्नति की विशेष व्यवस्था/उपयुक्तता के मापदण्ड में छूट तथा साक्षात्कार के लिये यात्रा–किराया आदि लाभ की मंजूरी देना आदि शामिल है।

लोक सेवाओं में पिछड़ें वर्गों को आरक्षण–

सन् 1977 में मोरारजी देसाई सरकार ने पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध में **विन्ध्येश्वरी प्रसाद मण्डल** की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया। इस आयोग को **मण्डल आयोग** भी कहा जाता है। इन आयोग ने अपना प्रतिवेदन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी को 31 दिसम्बर 1980 को दिया। सन् 1980 से 1989 तक आयोग के प्रतिवेदन में दी गई सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। लेकिन अगस्त 1990 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री विश्वनाथप्रतापसिंह ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को उत्तरी भारत में लागू करने का निर्णय लिया। इस निर्णय के विरूद्व आंदोलन छिड़ गया। इसमें राष्ट्रीय सम्पति एवं युवाओं की जानमाल का काफी नुकसान हुआ। सरकार के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। 16 नवम्बर 1992 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक फैसले में सरकारी नौकरियों में पिछड़ी जातियों (3,743 जातियाँ) के 27% आरक्षण देने सम्बधी विश्वनाथप्रतापसिंह सरकार के अगस्त 1990 के आदेश को वैध ठहराया। परन्तु साथ ही यह शर्त भी रखी की इस पर अमल करने से पूर्व अन्य पिछड़े वर्गों में से सामाजिक रूप से समृद्व तबके अथवा सदस्यों को इसमें सम्मिलित न किया जाय और इसका पता लगाने के लिये चार माह में आवश्यक कदम उठाये जाएँ। न्यायालय ने स्पष्ट

किया है कि असाधारण परिस्थितियों के अतिरिक्त किसी भी स्थिति में 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण की व्यवस्था नहीं की जा सकती है।

बहुमत के निर्णय में यह स्पष्ट किया गया कि संविधान के अनुच्छेद 16(4) के अनुरूप 50% से अधिक आरक्षण नहीं किया जाना चाहिये, परन्तु दूर–दराज के पिछड़े लोगों के लिए विशेष व्यवस्था की जा सकती है। न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत आरक्षण देने का प्रावधान एक अधिशासी आदेश से किया जाता है और यह आवश्यक नहीं है कि संसद या विधायिका इसके लिये कानून बनाये। न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 16(4) के अन्तर्गत केवल आरम्भिक नियुक्ति में ही आरक्षण का लाभ मिल सकता है। पदोन्नति के मामलें में इसे लागू नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में अनुसूचित जातियों/जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने के संवैधानिक प्रावाधान निश्चित किये गये हैं। इससे सामाजिक न्याय और सुशासन के समानता, पारदर्शिता, जवाबदेयता, जनसहभागिता, प्रतिनिधित्वता के लक्ष्य को साकार करने में बड़ी सहायता मिली है।

3.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्गीकरण व्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत राजकीय सेवा में कार्यरत लोकसेवकों के पद वर्गीकरण का भी उल्लेख किया गया है। चूँकि कौटिल्य ने केन्द्रीकृत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का वर्णन किया है जिसमें सम्पूर्ण कार्मिक प्रशासन राजा (केन्द्रीय सरकार) के अधीन होता है। इस लिए इस व्यवस्था में एक ही प्रकार की लोक सेवा अर्थात् **केन्द्रीय लोक सेवा** ही सम्पूर्ण प्रशासन का संचालन करती है। इस व्यवस्था में अन्य अधीनस्थ सेवाऐं नहीं होती है। इस केन्द्रीय सेवा में नियुक्ति एवं निष्कासन का सम्पूर्ण अधिकार राजा को दिया गया है। इसी सन्दर्भ में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार केन्द्र सरकार के कुल 18 विभाग (तीर्थ) थे। इनके प्रमुख अध्यक्ष (**अमात्य**) इस प्रकार से है–मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दौवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, सन्निधाता, प्रदेष्ठा, नायक, पौर, व्यावहारिक, कार्मान्तिक, सभ्य, दण्डपाल, अन्तपाल एवं दुर्गपाल[33]।

केन्द्रीय सेवा के उक्त अठारह प्रकार के विभागों (तीर्थो) के राज्याधिकारियों को कौटिल्य ने तीन वर्गों में विभक्त किया है और उसी क्रम में उनका वेतन भी निर्धारित किया है।

यह पद वर्गीकरण श्रेणियों के अनुसार इस प्रकार से हैं –

1. प्रथम श्रेणी(Ist Rank)–इस श्रेणी के पदाधिकारियों में मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज नामक पदाधिकारी सम्मिलित किये गये थे।

2. द्वितीय श्रेणी (IInd Rank) –

दूसरी श्रेणी क्रम में दौवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, सन्निधाता नामक अधिकारियों को रखा गया था।

3. तृतीय श्रेणी (IIIrdRank)–

तीसरी श्रेणी क्रम के पदाधिकारी थे – प्रदेष्ठा, नायक, पौर, व्यावहारिक, कार्मान्तिक, सभ्य, दण्डपाल, दुर्गपाल तथा अंतपाल।

इन तीनों श्रेणियों (Ranks)केअधिकारियों का वेतन प्रतिवर्ष क्रमशः 48000 पण (रौप्य), 24000 पण और 12000 पण निर्धारित किया है।

उपरोक्त वर्णित तीनों श्रेणियों के अधिकारियों के अतिरिक्त कौटिल्य ने अनेक सहायक राजकीय कर्मचारी वर्ग का भी उल्लेख किया है। उन्हें उनके पदों के अनुसार वर्गीकृत किया गया था और वेतनमान भी दिया जाता था।

इससे स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकाल में केन्द्रीय सेवाओं में सेवा वर्गीकरण एवं वेतनमानों के निर्धारण के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध था।

3.II. वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में सेवा वर्गीकरण –

वर्तमान भारत में लोक सेवाओं का वर्गीकरण कुछ उलझा हुआ तथा अस्पष्ट है। वस्तुतः भारत में वर्गीकरण का आधार **पद** या कर्त्तव्य नहीं है। अपितु कर्मचारी की व्यक्तिगत स्थिति (Rank) के आधार पर वर्गीकरण किया हुआ है। इसे हम स्थिति (Rank) या दर्जावर्गीकरण कहते है। दूसरे शब्दों में कहे तो किसी कर्मचारी के दायित्व बदलने से उसकी स्थिति नहीं बदलती है। इस स्थिति वर्गीकरण में समान कार्य वाले पद एक ही वर्ग में नहीं होते है। इस वर्गीकरण में समान दायित्व होने पर भी वेतन तथा स्थिति (Position) में अन्तर होता है। इस प्रणाली का दोष यही है कि यह ''**समान कार्य के लिए समान वेतन**'' के सर्वमाननीय सिद्धान्त का प्रतिकार करती है।

''वर्तमान सेवा संरचना यद्यपि एकीकृत नहीं है फिर भी विशेषीकृत कार्य एवं सामान्य प्रकृति के कार्य तथा विभिन्न प्रवृति वाले कार्य के समन्वय एवं एकीकरण से किए जाने वाले कार्यों को संचालित करने के लिए उपयुक्त है[34]।'' भारतीय लोक सेवा की संरचना में संघीय, राज्य और स्थानीय तीनों स्तरों की सेवाएं है। ये राजनीतिक, कार्यपालिका को संघीय नीति रचना और कार्यान्वित करने में सहयोग देती है। सरकारी

नीतियों और कार्यक्रमों की वास्तविक कार्यान्विति के लिए या तो सामान्य सेवाएं या कार्यात्मक सेवाएं उत्तरदायी है। कार्यात्मक सेवाएं वहाँ स्थापित की जाती है जहाँ सम्बन्धित कार्य विशेषीकृत प्रकृति का है और मात्रा में इतना अधिक है कि उसके लिए पृथक सेवा की आवश्यकता हैजैसे–आयकर, चुंगी, आबकारी, लेखा एवं लेखा परीक्षा सेवाएँ आदि इसका उदाहरण है। कार्यात्मक सेवाओं के अलावा विशेषज्ञ सेवाएँ भी होती है। इन पर नियुक्तियाँ व्यवसायिक योग्यताओं के अनुभव के आधार पर की जाती है।

भारत में सेवाओं के वर्गीकरण की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ केवल असैनिक सेवाओं को ही वर्गीकृत नहीं किया गया है, वरन् असैनिक पदों को भी वर्गीकृत किया गया है। अर्थात् श्रेणी, स्तर और विशेषाधिकार पदों के साथ जोड़ दिये गये हैं। कभी–कभी एक पदाधिकारी अपने योग्यता और वरिष्ठता की अपेक्षा ऊँचे पद के दायित्व भी निभाता है। यह स्थिति कार्यवाहक (Officiating) कही जाती है। जो अस्थायी अथवा मध्यकालीन होती है। यहाँ वर्गीकरण स्थायी–अस्थायी दोनों प्रकार के पदों का होता है। ज्योंही गृह मंत्रालय और वित्तमंत्रालय से विचार करके कोई पद निर्मित होता है, त्योंही उसे वर्गीकृत कर दिया जाता है। वर्गीकरण से यह स्पष्ट किया जाता है कि पद किस श्रेणी का है तथा यह लिपिक वर्गीय पद है अथवा गैर–लिपिकीय पद है। यह अन्तर स्पष्ट करता है कि लिपिकीय सेवाएँ अधीनस्थ सेवाएं होती है और उनके कार्य पूर्णतः या मूलतः लिपिकीय प्रकृति के होते हैं।

गैर–सैनिक सेवाएँ पुनः राजपत्रित और अराजपत्रित इन दो भागों में विभाजित की जाती हैं।राजपत्रित सेवाऐं वे होती है, जिस पर नियुक्ति की सूचना भारत सरकार के राजपत्र (Gazette) में प्रकाशित होती है। यह स्तर एवं मान्यता प्रथम श्रेणी (Class I) की सभी सेवाओं तथा द्वितीय श्रेणी के गैरलिपिकीय एवं निष्पादक पदों को दिया जाता है। द्वितीय श्रेणी के लिपिकीय पद तथा तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के सभी पद अराजपत्रित श्रेणी के होते हैं।

(अ) वर्तमान भारत में लोक सेवाओं का वर्गीकरण–

भारत में सेवाओं का वर्गीकरण मुख्यतः उन नियमों के अन्तर्गत होता रहा है जो मूल रूप से 1930 में बनाए गए थे। इनमें समय–समय पर संशोधन किया जाता रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् लोक सेवाओं की संरचना में परिवर्तन हुए। वर्तमान में भारतीय लोक सेवाओं[35]का सेवा वर्गीकरण इस प्रकार है –

1. अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services)
2. केन्द्रीय लोक सेवाएँ (CentralServices)
3. विशेषज्ञ सेवाएँ (Specialist Services)

4. राज्य लोक सेवाएँ (State Civil Services)
5. स्थानीय सेवाएँ (Local Services)

1. अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services) –

स्वतन्त्रता के बाद संविधान में अखिल भारतीय सेवाओं के लिये विशिष्ट प्रावधान किये गये है। संविधान के अनुच्छेद 312 (2) में **'भारतीय प्रशासनिक सेवा'** और **'भारतीय पुलिस सेवा'** नाम की दो अखिल भारतीय सेवाओं का किया गया है। 1966 में **'भारतीय वन सेवा'** नामक तीसरी अखिल भारतीय सेवा का गठन किया गया है। इस प्रकार वर्तमान में भारत में तीन अखिल भारतीय सेवाएँ है –

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.)
2. भारतीय पुलिस सेवा (I.P.S.)
3. भारतीय वन सेवा (I.F.S.)

अखिल भारतीय सेवा एक्ट 1951 के अनुसार केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों से परामर्श के आधार पर भर्ती और सेवा शर्तों के नियमों का निर्माण करती है। इस सेवाओं के लोगों की भर्ती एवं प्रशिक्षण केन्द्र सरकार द्वारा किया जाता है तथा उन्हें विभिन्न राज्यों में पदांकित किया जाता है। अखिल भारतीय सेवा के सदस्य राज्यों में कार्यरत रहने के साथ केन्द्रीय सरकार में प्रतिनियुक्ति पर भी कार्य (निश्चित अवधि तक) करने के बाद पुनः अपने राज्यों में लौटे जाते हैं। विभिन्न राज्यों में कार्यरत होते हुए भी उनकी सेवा की शर्तें, स्थिति, समान वेतनमान तथा एक ही सेवा 'अखिल भारतीय सेवा' के सदस्य होते है। यही इनकी पहिचान है।

भारत में तीनों 'अखिल भारतीय सेवा' प्रथम श्रेणी (ग्रुप–ए) सेवाएँ हैं। इनकी निम्न तीन श्रेणियाँ है–

1. सुपर टाइप स्केल,
2. सीनियर स्केल,
3. जूनियर स्केल,

केन्द्रीय सरकार में तीनों अखिल भारतीय सेवाएँ मन्त्रालयों द्वारा होती हैं–

1. **अखिल भारतीय सेवाएँ –** सेवीवर्ग मन्त्रालय द्वारा।
2. **भारतीय पुलिस सेवा –** गृह मन्त्रालय द्वारा।
3. **भारतीय वन सेवा –** वन और पर्यावरण मंत्रालय द्वारा।

2. केन्द्रीय लोक सेवाएँ (Central Civil Services) –

भारत सरकार के मन्त्रालयों में कार्य करने वाले अधिकारी एवं कर्मचारी केन्द्रीय सेवाओं के सेवीवर्ग होते है। ये सेवाएँ चार वर्गों या श्रेणियों में विभक्त हैं –

1. **केन्द्रीय सेवाएँ** : समूह **'क'**
2. **केन्द्रीय सेवाएँ** : समूह **'ख'**
3. **केन्द्रीय सेवाएँ** : समूह **'ग'**
4. **केन्द्रीय सेवाएँ** : समूह **'घ'**

केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारियों की स्थिति अखिल भारतीय सेवाओं जैसी ही दिखाई देती है। क्योंकि इन सेवाओं के अधिकारी समस्त भारत में स्थित केन्द्रीय कार्यालयों में कार्यरत हैं फिर भी इनकी स्थिति अखिल भारतीय से निम्न है।

केन्द्रीय सेवाओं को चार श्रेणियों में बाँटकर उनके कार्य और योग्यता को निश्चित किया गया है। इन सेवाओं के कुछ नामों के आगे भारतीय, कुछ के आगे केन्द्रीय तथा कतिपय सेवाओं से सम्बन्धित विभाग का नाम दिया हुआ है। इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। छटवे वेतन आयोग के अनुसार केन्द्रीय लोक सेवाओं में कर्मचारियों की संख्या 41.76 लाख थी।

केन्द्रीय लोक सेवाएँ : समूह 'क' (Central Civil Service : Group "A")

अभी इस वर्ग में 35 प्रकार की सेवाएँ सम्मिलित हैं, जो इस प्रकार है –

1. भारतीय विदेश सेवा
2. भारतीय लेखा परीक्षा एवं लेखा सेवा
3. भारतीय पुरातत्व सेवा
4. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण सेवा
5. भारतीय भू–सर्वेक्षण सेवा
6. भारतीय सुरक्षा लेखा सेवा
7. भारतीय मौसम सेवा
8. भारतीय डाक सेवा
9. भारतीय डाक–तार संचार सेवा
10. भारतीय राजस्व सेवा (भारतीय सीमा शुल्क सेवा, केन्द्रीय एक्साइज सेवा तथा आयकर सेवा समाहित)
11. भारतीय नमक सेवा
12. भारतीय जन्तु सर्वेक्षण सेवा
13. भारतीय सीमा प्रशासन सेवा

14. भारतीय विदेश सेवा शाखा (ब) (सामान्य कैडर की प्रथम तथा द्वितीय कोटियाँ)
15. भारतीय निरीक्षण सेवा
16. भारतीय पूर्ति सेवा
17. भारतीय सांख्यिकी सेवा
18. भारतीय आर्थिक सेवा
19. केन्द्रीय अभियान्त्रिकी सेवा
20. केन्द्रीय विद्युत अभियान्त्रिकी सेवा
21. केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा
22. केन्द्रीय राजस्व रासायनिक सेवा
23. केन्द्रीय सचिवालय सेवा
24. सामान्य केन्द्रीय सेवा
25. केन्द्रीय विधिक सेवा
26. भारतीय सूचना सेवा (पूर्व नाम केन्द्रीत सूचना सेवा)
27. व्यापारिक जहाजरानी प्रशिक्षण जलयान सेवा
28. खदान विभाग सेवा
29. समुद्रपार संचार सेवा
30. भारत सर्वेक्षण सेवा
31. तार अभियान्त्रिकी सेवा
32. रेलवे निरीक्षण सेवा (प्रथम)
33. तार यातायात सेवा (प्रथम)
34. रेलवे कार्मिक सेवा
35. भारतीय लागत लेखा सेवा।

केन्द्रीय लोक सेवाएँ : समूह 'ख' (Central Civil Service : Group "B")

ये सेवाएँ द्वितीय श्रेणी की हैं अर्थात् पूर्व वर्णित केन्द्रीय सेवाओं के अधीन ही इन सेवाओं के आधिकारी भी कार्यरत है।

1. भारतीय जलवायु सेवा
2. भारतीय निरीक्षण सेवा
3. भारतीय भू–सर्वेक्षण सेवा
4. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण सेवा
5. भारतीय सर्वेक्षण सेवा

6. भारतीय जन्तु सर्वेक्षण सेवा
7. भारतीय नमक सेवा
8. सामान्य केन्द्रीय सेवा
9. केन्द्रीय अभियान्त्रिकी सेवा
10. केन्द्रीय विद्युत् अभियान्त्रिकी सेवा
11. केन्द्रीय स्वास्थ्य सेवा
12. केन्द्रीय एक्साइज सेवा (अधीक्षक तथा जिला अफीम अधिकारी इत्यादि)
13. सीमा शुल्क आकलन सेवा (प्रधान आकलन तथा मुख्य आकलन Appraiser)
14. सीमा शुल्क आकलन सेवा (प्राकलन)
15. सीमा शुल्क निरोधक सेवा (मुख्य निरीक्षक)
16. सीमा शुल्क निरोधक सेवा (निरोधक)
17. डाक निरीक्षण सेवा
18. तार अभियांत्रिकी एवं बेतार सेवा
19. तार यातायात सेवा
20. आयकर सेवा
21. श्रम अधिकारी सेवा
22. केन्द्रीय सचिवालय सेवा (अनुभाग अधिकारी)
23. केन्द्रीय सचिवालय सेवा (ग्रेड प्रथम)
24. केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवा (ग्रेड प्रथम)
25. केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवा (सम्मिलित)।

केन्द्रीय लोक सेवाएँ – ग्रुप 'सी' तथा 'डी' (Central Civil Service : Group "C" and "D")

ये सेवाएँ अराजपत्रित श्रेणी की अधीनस्थ सेवाएँ होती हैं। ग्रुप 'सी' सेवाओं में केन्द्रीय सचिवालय लिपिक वर्ग तथा डाक एवं तार लेखा सेवा इत्यादि सम्मिलित है। जबकि ग्रुप 'डी' की श्रेणी में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, यथा – चपरासी, जमादार तथा बागवान इत्यादि सम्मिलित है। ग्रुप 'सी' में 20.32 लाख कर्मचारी तथा ग्रुप 'डी' में 8.48 लाख कर्मचारी कार्यरत है।

उपर्युक्त वर्णित समूह 'क' तथा 'ख' के अधिकारियों की भर्ती 'संघ लोक सेवा आयोग' द्वारा होती है। ग्रुप 'सी' की भर्ती 'कर्मचारी चयन आयोग' द्वारा होती है तथा ग्रुप 'डी' की भर्ती सम्बन्धित 'विभाग या कार्यालय' स्वयं के स्तर पर करता है। केन्द्रीय सेवाओं के समूह

'क', 'ख' तथा 'ग' के कार्मिकों से सम्बन्धित कार्मिक प्रशासन के कार्य भारत सरकार के कार्मिक, लोकशिकायततथा पेंशन मन्त्रालय द्वारा सम्पादित होते है। केन्द्रीय तथा राज्य सेवाओं के कुल कार्मिकों में से 90 प्रतिशत कार्मिक तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के ही है।

3. विशेषज्ञ सेवाएँ –

बहुत से प्रशासनिक एवं विभागीय कार्य तकनीकी प्रकृति के है जिनको संचालित करने हेतु अनेक संस्थान, कार्यालय तथा संगठन कार्यरत है। इन संगठनों में सम्बन्धित कार्य की प्रकृति के अनुसार कार्मिक यथा– डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, नर्स तथा प्राध्यापक इत्यादि भर्ती किये जाते है। सम्बन्धितविभाग की संरचना तथा कार्यप्रणाली के अनुरूप ये विशेषज्ञ पद वर्गीकृत किये जाते है।विशेषज्ञों के कुछ पद लोक सेवा आयोग द्वारा तथा अधिकांश पद उस सम्बन्धित विभाग द्वारा स्वयं भरे जाते है।

केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन स्थापित स्वायत्तशासी संस्थाओं तथा औद्योगिक संस्थानों (लोक उपक्रमों) के कार्मिकों का वर्गीकरण उस संस्थान के नियमों के अनुसार किया जाता है जो प्रायः सरकारी विभागों के अनुरूप ही होता है।

4. राज्य लोक सेवाएँ –

संघ सरकार के समान राज्य सरकारों में भी अपनी–अपनी लोक सेवाएँ होती है। राज्य की लोक सेवाएँ भी श्रेणियाँ तथा ग्रेड्स में विभक्त होती है। राज्य सरकारें उन्हीं विषयों या विभागों पर सेवा नियम बनाती हैं जो राज्य सूची के अन्तर्गत समाविष्ट है। राज्यों की लोक सेवाओं में पदों तथा सेवा–शर्तों में विभिन्नता देखने को मिलती है, क्योंकि प्रत्येक राज्य अपनी ऐतिहासिक निरन्तरता, पर्यावरण आवश्यकता तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासन संचालित करता है। सामान्यतः राज्यों में लोक सेवाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार होता है –

1. राज्य प्रशासनिक सेवाएँ।
2. राज्य लेखा सेवाएँ।
3. राज्य लेखा अधीनस्थ सेवाएँ।
4. राज्य सचिवालय सेवाएँ।
5. विभागीय सेवाएँ।

5. स्थानीय सेवाएँ –

केन्द्र एवं राज्य के समान स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं में भी सेवाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत के विभिन्न राज्यों में स्थानीय सेवाऐं कार्यरत है। संविधान के **73वें** तथा **74वें संशोधन संवैधानिक अधिनियम, 1993** के बाद स्थानीय संस्थाओं को अनेक प्रकार के कार्य

एवं उत्तरदायित्व सौंपे गये है। इन्हें पूर्ण करने के लिए **नगरीय एवं पंचायती राज संस्थाओं** में कुशल, ईमानदार, तकनीकी ज्ञान रखने वाले सेवीवर्गों की आवश्यकता है। स्थानीय शासन की संस्थाओं के कार्य–संचालन में सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुतः नीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों का प्रभावशील क्रियान्वयन सेवाओं की गुणवत्ता पर निर्भर करता है।

1. **स्थानीय सेवाएँ** ये दो प्रकार की होती है। –

(i) नगरपालिका सेवा

(ii) पंचायत सेवा।

प्रायः सभी राज्यों में पंचायत संस्थाओं के वरिष्ठ अधिकारी राज्य की नियमित लोक सेवा के सदस्य होते है। जिन्हें राज्य सरकार पंचायत संस्थाओं में नियुक्ति/प्रतिनियुक्त करती है। इस प्रकार नियुक्त किये गये लोक सेवक ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं में अपनी सेवाओं का कुछ समय बिताकर पुनः राज्य सरकार की सेवा में चले जाते है। रिक्त स्थानों पर पुनः दूसरे राज्य सेवक प्रतिनियुक्त कर दिये जाते है। इस प्रकार प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की सेवाओं की भर्ती, पदोन्नति एवं नियन्त्रण राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में रहती है। सामान्यतया सभी राज्यों में पंचायत संस्थाओं में प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के अधिकारी राज्य सरकार की लोक सेवा के सदस्य होते है[36]।

4.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रशिक्षण व्यवस्था–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि आचार्य कौटिल्य ने कार्मिक प्रशासन के सन्दर्भ में भर्ती प्रणाली, उम्मीद्वारों की योग्यता, परीक्षण के प्रकारों, वेतनमान, सेवानियमों, आचार–व्यवहार, अनुशासनात्मक कार्यवाही, प्रोत्साहनों इत्यादि की तो विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है, लेकिन प्रशिक्षण प्रणाली के सन्दर्भ में अलग अध्याय या प्रकारण के अन्तर्गत वर्णन प्रस्तुत नहीं किया है। केवल राजा, राजकुमार (युवराज) और सैन्य कर्मचारियों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण पद्धति का संक्षिप्त उल्लेख किया है। अन्य राजकर्मचारियों के लिए किस प्रकार की प्रशिक्षण व्यवस्था की गई थी इसका उल्लेख नहीं किया गया है। चूंकि राजा प्रशासनिक विभाग का सर्वोच्च प्रमुख था, अतः उसके प्रशिक्षण के लिए प्रयुक्त प्रक्रिया का कौटिल्य ने विस्तार से वर्णन किया है। इस प्रशिक्षण पद्धति के वर्णन से उस समय की प्रशिक्षण व्यवस्था के बारे में अनुमान किया जा सकता है। ये प्रशिक्षण प्रणाली इस प्रकार से है –

1. राजा के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण **विनयाधिकारिक** (राजवृति) निरूपण के **प्रकरण दो** और **अध्याय चार** के **वृद्ध संयोग** शीर्षक के अन्तर्गत राजा को प्रशिक्षित करने की पद्धति का उल्लेख किया है। राजा को विभिन्न आचार्यों द्वारा विभिन्न विद्याओं में प्रशिक्षित करने हेतु शिक्षण व नियमन करना चाहिए। **मुण्डन संस्कार** के बाद राजा को **भाषाशास्त्र** (वर्णमाला) और **अंकमाला** में प्रशिक्षित किया जाए। **उपनयन संस्कार** के बाद उसे विद्वान आचार्यों द्वारा **त्रयी** तथा **आन्वीक्षकी,** विभागीय अध्यक्षों द्वारा **वार्ता** (कृषि, व्यापार, वाणिज्य) और वक्ता–प्रयोक्ता विशेषज्ञों द्वारा **सन्धि, विग्रह यान, आसन, द्वैधीभाव** और आचार्यों से **दण्डनीति** का प्रशिक्षण दिया जाए। सोलह वर्ष पर्यन्त तक वह ब्रह्मचर्य का पालन करे। विवाह के बाद अपने **विनय** (शिक्षा) की वृद्धि के लिए सदा ही विद्वान पुरूषों की संगत करे। क्योंकि विनय का प्रशिक्षण उन्हीं के द्वारा प्राप्त होता है। राजा को दिन के पहले भाग में हाथी, घोड़ा, रथ, अस्त्र–शस्त्र इत्यादि सैन्य कला का प्रशिक्षण लेना चाहिए। दिन के दूसरे भाग में वह इतिहास (पुराण) इतिवृत, आख्यायिका, उदाहरण (मीमांसा) धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र ये सभी विषय इतिहास के अन्तर्गत है) को सुनने में लगाये। दिन और रात के बाकी बचे समय में वह नये ज्ञान का अर्जन और अधीत ज्ञान का मनन, चिंतन करे। जो विषय एक बार सुनने में बुद्धिस्थ न हो उसको बार–बार सुने। इस प्रकार शास्त्र श्रवण से बुद्धि का विकास होता है। उससे योगशास्त्रों में रुचि और योग से आत्मबल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से विद्या द्वारा विनीत (प्रशिक्षित) राजा ही सर्वोच्च शासक अर्थात् विजीगीषु के कर्त्तव्यों को निभा सकता है।

1. युवराज का प्रशिक्षण –

जब राजकुमार समझने योग्य हो जावे तो विभिन्न विषयों में पारंगत विद्वानों द्वारा उसको शिक्षा दे कर राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए[37]।

3. सेनापति का प्रशिक्षण –

कौटिल्य के अनुसार सेनापति युद्धविद्या और अस्त्रशास्त्रों की विद्या में सुचारू रूप से सुशिक्षित (प्रशिक्षित) होकर हाथी, घोड़े व रथ के संचालन में समर्थ हो सकेगा। वह चतुरंग (पदाति, अश्व, रथ और हस्ति) बल के कार्यों तथा स्थान को भली भाँति जाने। अपनी भूमि (मोरचा) युद्ध का काल, शत्रु की सेना, सुदृढ़ व्यूह के भेद, टूटे हुए व्यूह का फिर से निर्माण, एकत्र सेना को तितर–बितर करना बिखरी हुई सेना का संहार करना, किले तोड़ना, और युद्ध यात्रा के समय इत्यादि विषयों में पूर्ण पारंगत होना चाहिए[38]। यह

सेना विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था, अतः इसके लिए उसे युद्ध नीति में विशारद होना व सैन्य संचालन में समर्थ होना आवश्यक था।

4. सैन्यकर्मियों की प्रशिक्षण व्यवस्था –

आचार्य के अनुसार माह के संधिदिनों को छोड़कर सूर्योदय के बाद पैदल, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेनाओं को कवायद (शिल्पदर्शन) का प्रशिक्षण दिया जाय। राजा को चाहिए कि वह सेनाओं पर बराबर ध्यान रखे और उनकी कवायद का भी निरीक्षण करता रहे[39]।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित उपरोक्त प्रशिक्षण सम्बन्धी तथ्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय राजकर्मचारियों की भर्ती प्रकिया में योग्यताओं को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया था। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय सेवाओं में वहीं उम्मीदवार नियुक्त किये जाते थे जो सद्चरित्र और योग्य हों। सम्भवतः इसलिए ही उन्हें प्रशिक्षण की ज्यादा आवश्यकता नही होती होगी। अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि राजा, युवराज और सेनापति इत्यादि के लिए जो प्रशिक्षण प्रणाली निर्धारित की गई थी उसमें भी सेवा–पूर्व प्रशिक्षण पद्धति को ही अधिक महत्व दिया गया था। ये प्रशिक्षण प्रशिक्षित विशेषज्ञों द्वारा दिया जाता था जिससे इस बात की तो पुष्टि होती है परन्तु यह प्रशिक्षण किन संस्थाओं में कितने समय के लिए दिया जाता था, इसकी जाँच की क्या विधि थी इसका उल्लेख कौटिल्य ने नहीं किया है।

4.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में प्रशिक्षण व्यवस्था–

वर्तमान समय में देखा जाए तो भर्ती के समय प्रत्याशी की प्रायः सम्भावनाओं एवं क्षमताओं का मात्र अनुमान लगाया जाता है। इस अनुमान को साकार रूप देने के लिए तथा कार्मिक को उसके कार्य के अनुरूप ढालने के लिए प्रशिक्षण की अनिवार्य आवश्यकता है। सुशासन को स्थापित करने के लिए तो प्रशिक्षण को महत्ता और अधिक बढ़ जाती है। प्रशिक्षण को लोकसेवकों की सफलता का मुख्य आधार माना जाता है। प्रशासकीय दृष्टिकोण से समझा जाए तो एक कार्मिक की कुशलता, शक्ति, बुद्धि एवं दृष्टिकोण को एक निश्चित दिशा में सशक्त करने का प्रयास करना ही प्रशिक्षण कहलाता है। **टोरपें** के अनुसार, **''प्रशिक्षण का अर्थ एक ऐसी प्रक्रिया से है, जो कर्मचारियों की कुशलता, आदत, ज्ञान और दृष्टिकोण को विकसित कर सकें और कर्मचारियों को भावी सरकारी स्थितियों के लिए तैयार किया जा सकें।''**

1. भारत में लोकसेवाओं में प्रशिक्षण व्यवस्था –

भारत में संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न लोकसेवकों की भर्ती लोकसेवा आयोग (संघीय, राज्य एवं संयुक्त लोक सेवा आयोग) द्वारा की जाती है किंतु उनके प्रशिक्षण का दायित्व विभिन्न सरकारें (केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारों) का होता है। भारत में संघीय स्तर पर कार्यरत लोकसेवाओं के प्रशिक्षण हेतु कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय को अधिकृत किया गया है। इस मंत्रालय के अन्तर्गत कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग का प्रशिक्षण प्रभाग ही मुख्यतः लोक प्रशासन तथा सामान्य प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रशिक्षण नीतियाँ तैयार करने और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समन्वय करने के लिए उत्तरदायी है। जिसका उद्देश्य प्रशासनिक कार्यकुशलता में सुधार लाना तथा उसे अधिक कारगर बनाना ताकि विकास कार्यक्रमों के द्वारा तीव्र गति से जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए एवं उन्हें सुशासन प्रदान करने के लिए भारतीय प्रशासन को चुस्त बनाया जा सके।

2. प्रशिक्षण प्रभाग की भूमिका (उत्तरदायित्व) –

इस विभाग की जिम्मेदारियाँ केन्द्रीय सरकार की सामान्य प्रशिक्षण नीतियाँ तैयार करना, राज्य सरकारों को अपनी प्रशिक्षण नीतियों तथा कार्यकलापों के प्रतिपादन में सहायता करना, प्रशिक्षण की आवश्यकताओं का पता लगाना, विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना उनका संचालन करना और प्रशिक्षण कार्यकलापों के लिए संस्थाओं तथा संगठनों को सहायता उपलब्ध करवाना है। यह सीधे **''लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी''** मसूरी और **''सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान''** नई दिल्ली के प्रशासन के लिए भी उत्तरदायी है। वर्ष 1981 में **भारतीय लोक प्रशासन संस्थान** नई दिल्ली भी इसके नियन्त्रणाधीन आ गया है। प्रशिक्षण प्रभाग आपसी सहयोग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ समन्वय करने के लिए केन्द्रीय (संघीय) सरकार के एक आदर्श (Model) ऐजेन्सी के रूप में कार्य करता है।

2. प्रशिक्षण नीतियों का निरूपण –

प्रशिक्षण प्रभाग केन्द्रीय मंत्रालयों, विभागों और संवर्ग प्राधिकरणों के परामर्श से एक विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं उनसे सम्बन्धित नीतियों का निरूपण करता है।

4. भारत में प्रशिक्षण की प्रक्रिया–

भारत में परीक्षाओं द्वारा उच्च लोक सेवा के लिए चयनित प्रत्याशी को पद भार देने से पूर्व प्रशिक्षण के लिए भेज दिया जाता है। भारत में केन्द्रीय संस्थागत प्रशिक्षण (Central Institutional Training) और काम पर प्रशिक्षण (On the job Training) की पद्धति

अपनायी गई है। इस कार्य के लिए एक राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी है। जहाँ पर सभी चुने हुए प्रत्याशियों को एक निश्चित अवधि के लिए भेजा जाता है। भिन्न–भिन्न सेवाओं के लिए पृथक–पृथक प्रशिक्षण स्कूल है, इनमें उन सेवाओं के लिए चुने गए प्रत्याशी व्याख्यानों के रूप में औपचारिक अनुदेश (Formal Instruction) प्राप्त करते हैं। प्रशिक्षण पाने के बाद तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी परीक्षणों को उत्तीर्ण करने के बाद उन्हें कार्यालयों में भेजा जाता है जहाँ वे व्यावहारिक रूप से कार्य करते हुए कार्य पर प्रशिक्षण प्राप्त करते है। प्रशिक्षण में अभिनव पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) द्वारा लोक सेवकों के ज्ञान और कुशलता को बनाए रखने का प्रयत्न किया जाता है। वर्तमान में तो लोकसेवकों को **सुशासन** के लिए भी विशिष्ट प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

5. भारत में प्रशिक्षण के प्रकार–

भारत में प्रशिक्षण औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही प्रकार का दिया जाता है। जो निम्नलिखित है –

1.अनौपचारिक प्रशिक्षण– यह वह प्रशिक्षण है जिसमें कार्य करके त्रुटियों से सीखकर एवं अभ्यास के द्वारा प्रशासकीय कुशलता प्राप्त की जाती है। अनौपचारिक प्रशिक्षण अप्रत्यक्ष रूप से दिया जाता है। अतः प्रशिक्षणार्थी के मन पर यह गहरा प्रभाव छोड़ता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण की रीति अंग्रेजों ने भारत में अपनाई थी। अनौपचारिक प्रशिक्षण की सफलता प्रायः उच्च पदाधिकारी की वरिष्ठता तथा अनुभव और नवनियुक्त अधिकारी के प्रति उसकी रूचि पर निर्भर करती है। **गोरवाला** का सुझाव था कि कुछ उपयुक्त वरिष्ठ अधिकारियों को (उसकी वरिष्ठता के होते हुए भी) कुछ जिलों में इसलिए भेजना चाहिए कि उन जिलों को युवकों के लिए प्रशिक्षण क्षेत्र बनाया जा सके। वर्तमान में अखिल भारतीय सेवाओं में इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है।

2.औपचारिक प्रशिक्षण–

इस प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारी के सेवाकाल के विभिन्न चरणों पर सुनिश्चित पाठ्यक्रमों द्वारा प्रशासकीय कुशलता का संचार करना है। इस पर अब अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है, क्योंकि अब प्रशासकों की संख्या बढ़ाने, उन्हें उन्नत करने एवं सुशासन के सन्दर्भ में विशेष आवश्यक अनुभव के रुप में की जा रही है। परिणामतः अनौपचारिक प्रशिक्षण की पूर्ति अनिवार्यतः औपचारिक प्रशिक्षण द्वारा पूर्ण की जानी चाहिए। यह आवश्यक है, कि प्रशिक्षण योजनाएँ औपचारिक अनुदेश जारी करके बढ़ाई जाए। यह प्रशिक्षण अनुदेश

व्याख्यान, समूहचर्चा, सेवीवर्ग प्रशासन के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम, वित्तीय प्रबन्ध, सम्मेलन, निर्माणशालाओं तथा गोष्ठियों का आयोजन करके किया जा सकता है।

औपचारिक प्रशिक्षण के विभिन्न रूपों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(i) प्रवेश–पूर्व प्रशिक्षण (Pre Entry Training)–

वर्तमान भारतीय प्रशासन में लोकसेवकों के लिए प्रवेश–पूर्व प्रशिक्षण का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सेवा में प्रवेश करने से पूर्व ही उसके सम्बध में उम्मीदवार द्वारा विश्वविद्यालय, प्रशिक्षण संस्था, पुस्तकालय आदि स्थानों पर जो प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता है, वे सब इस श्रेणी में आता है। यह किसी धन्धे या व्यवसाय की ओर संकेत नहीं करता है। भारत में केवल राजस्थान सरकार ने इस प्रशिक्षण का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

(ii) पुनरावलोकन प्रशिक्षण (Orientation Training)–

इस प्रशिक्षण का उद्देश्य नव–नियुक्त कर्मचारी को कार्य सम्बन्धी बुनियादी अवधारणाओं, उसके नवीन कार्य पर्यावरण, संगठन तथा उसके लक्ष्य से परिचित कराना है। भारत में यह प्रशिक्षण महत्वपूर्ण बनाया जा रहा है ताकि नौकरशाही, विशेषतः ग्राम्य नौकरशाही (पंचायतीराज व्यवस्था सम्बन्धित) नवीन उत्तरदायित्वों से ताल–मेल मिलाकर चल सके। मसूरी में सामुदायिक विकास अध्ययन तथा अनुसंधान का केन्द्रीय विद्यालय विशेष रूप से इस प्रकार का प्रशिक्षण देता हे।

(iii) सेवाकालीन प्रशिक्षण (In Sevice Training) – इस प्रशिक्षण के दो लक्ष्य होते है – पहला, कर्मचारी को अच्छे से प्रयत्नों के लिए उत्साहित करना; और दूसरा, उसके कार्यपालन को सुधारने में उसकी सहायता करना। भारतीय भर्ती प्रणाली की ये विशिष्ठता है कि यहाँ सामान्य योग्यताओं रखने वाले युवकों को लोकसेवक चुना जाता है। अतः उच्चतर सेवाओं के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की एक व्यापक योजना की व्यवस्था की गई है। हाल के वर्षो में उच्चत्तर सेवाओं के लिए इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार किया गया है।

(4) प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण (Post-Entry Training)– सेवाकालीन प्रशिक्षण और प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण के मध्य स्पष्ट भिन्नता नहीं दर्शायी जा सकती है। यद्यपि इस प्रशिक्षण का एकदम सीधा सम्बन्ध कर्मचारियों के कार्य से नहीं होता है, फिर भी यह संगठन के लिए काफी महत्वपूर्ण है। भारत में इस प्रशिक्षण पद्धति की आवश्यकता को अधिकाधिक अनुभव किया गया है। सन् 1961 में केद्रीय सरकार ने निश्चय किया कि अध्ययन हेतु छुट्टी केवल ऐसे अध्ययनों के लिए ही दी जा सकती है, जो भले ही कर्मचारी के कार्य से निकट या सीधा

सम्बन्ध न रखते हो, किंतु लोकसेवक के रूप में उसकी योग्यताओं में सुधार हेतु आवश्यक हो और उसे इस योग्य बनाते हो कि वह लोकसेवाओं की अन्य शाखाओं में कार्य करने वाले कर्मचारियों को सहयोग दे सके।

6. **भारत में विभिन्न प्रकार की लोकसेवाओं के अन्तर्गत प्रशिक्षण व्यवस्था–**

वर्तमान भारतीय परिवेश में कार्यरत विभिन्न प्रकार की संघीय लोक सेवाओं के अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित प्रकार से है –

1.भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का प्रशिक्षण–

वर्तमान में **लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी** ही आई.ए.एस. के परिवीक्षाधीन सदस्यों को इस अखिल भारतीय सेवा के लिए प्रशिक्षण प्रदान करती है।

(i) भारतीय प्रशासनिक सेवा का प्रशिक्षण (Training of I.A.S.) –

भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षण कार्यक्रम में निम्नलिखित घटक एवं अवधि शामिल है –

1. आधारात्मक प्रशिक्षण :	4 माह
2. व्यावसायिक प्रशिक्षण :	2 माह
3. राज्य में जिला प्रशिक्षण :	12 माह
4. व्यावसायिक प्रशिक्षण :	3 माह
योग :	21 माह

राष्ट्रीय अकादमी द्वारा आयोजित आधारात्मक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम अखिल भारतीय सेवा में नवागंतुकों अर्थात् आई.ए.एस., आई.पी.एस. और आई.एफ.एस. (भारतीय वन सेवा) के परिवीक्षाधीन सदस्यों केन्द्रीय सेवा ग्रुप ए (भारतीय विदेश सेवा सहित) जिसमें केंन्द्रीय सचिवालय सेवा शामिल नहीं है, के लिए संयुक्त प्रशिक्षण पाठ्यक्रम होता है। अकादमी में यह संयुक्त प्रशिक्षण एक ही स्थान पर निम्नलिखित उद्देश्य से प्रदान किया जाता है –

(1) उच्चतर लोक सेवा के सदस्यों में आपसी सम्बद्धता की भावना और समान तथा व्यापक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए।

(2) संवैधानिक, आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक, विधायी, प्रशासनिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भों की जानकारी देने के लिए जिसमें प्रशासकों को कार्य करना और अपना योगदान देना होता है।

(3) परिवीक्षाधीन सदस्यों में व्यावसायिक, प्रशासनिक तथा मानवीय मूल्यों को मन में बैठाने के लिए।

आधारात्मक प्रशिक्षण पूरा होने के बार अन्य सेवाओं के अधिकारियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए सम्बद्ध प्रशिक्षण संस्थानों में भेज दिया जाता है। जबकि आई.ए.एस के परिवीक्षाधीन सदस्यों को व्यावसायिक प्रशिक्षण (जिसे संस्थानिक प्रशिक्षण भी कहते है) के लिए अकादमी में ही रोक लिया जाता है।वर्ष 1969 में आई.ए.एस. के परिवीक्षाधीन सदस्यों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम में **प्रशासनिक सुधार आयोग प्रथम** की सिफारिश पर **सैंडविच**[40] 'नामक नवीन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शामिल कर इस कार्यक्रम में बदलाव लाया गया। तब से परिवीक्षाधीन सदस्यों को अकादमी में व्यावसायिक प्रशिक्षण एक वर्ष के अंतराल पर दो चरणों में प्रदान किया जाता है। एक वर्ष के इस अंतराल का उपयोग राज्यों में जिला स्तर का प्रशिक्षण प्रदान करके किया जाता है, जिसे **कार्य क्षेत्र** या **व्यावहारिक प्रशिक्षण** भी कहते है।

आई.ए.एस. के परिवीक्षाधीन सदस्य व्यावसायिक/संस्थानिक प्रशिक्षण के प्रथम चरण में भारतीय प्रशासन, जिला प्रशासन, भारतीय दण्ड संहिता, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, संवैधानिक और विधायी प्रणाली, आर्थिक नियोजन और अन्य विषयों से जुड़ी समस्याओं का विस्तृत अध्ययन करते है। इसके बाद उन्हें आंवटित राज्य में क्षेत्रीय प्रशिक्षण (Field Training) के लिए भेज दिया जाता है। आई.ए.एस. के परिवीक्षाधीन सदस्यों की तैनाती स्थल का निर्धारण राज्य सरकार के मुख्य सचिव द्वारा किया जाता है। इस प्रशिक्षण के विषय इस प्रकार है–

1. राज्य प्रशिक्षण स्कूल में संस्थानिक प्रशिक्षण;
2. कलेक्टर की देख रेख में जिले में व्यावसायिक प्रशिक्षण;
3. राज्य सचिवालय में प्रशिक्षण।

राज्य में इस एक वर्ष के प्रशिक्षण की समाप्ति के बाद परिवीक्षाधीन सदस्य पुनः राष्ट्रीय अकादमी आते हैं, जहाँ उनको दूसरे चरण का व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। इस अवस्था में ये अपना ध्यान उन समस्याओं और प्रश्नों पर लगाते हैं, जो उनको व्यावहारिक प्रशिक्षण के दौरान आई थी या उनका उन्होंने अनुभव किया था। इस चरण का प्रशिक्षण समस्या अभिमुख अधिक होता है और इसके साथ ही परिवीक्षाधीन आई.ए.एस. का 21 माह का प्रशिक्षण सत्र पूरा होता है।

(ii) भारतीय पुलिस सेवा का प्रशिक्षण (Training of I.P.S.)–

आई.पी.एस के प्रशिक्षण कार्यक्रम में विभिन्न घटक व अवधि ये हैं –

(1) आधारात्मक प्रशिक्षण : 4 माह

(2) व्यावसायिक प्रशिक्षण (प्रथम चरण) : 12 माह

(3) राज्यों में जिला स्तर का प्रशिक्षण : 8 माह

(4) व्यावसायिक प्रशिक्षण (द्वितीय चरण) : 3 माह

योग : 27 माह

भारतीय पुलिस सेवा के परिवीक्षाधीन सदस्यों को आधारात्मक प्रशिक्षण अखिल भारतीय सेवा के अन्य अधिकारियों/सदस्यों के साथ–साथ **राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी** में दिया जाता है।

संयुक्त आधारात्मक प्रशिक्षण पूर्ण करने के बाद आई.पी.एस. के प्रोबेशनरों को सरदार वल्लभाई पटेल राष्ट्रीय अकादमी (हैदराबाद) में व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए भेजा जाता है। पुलिस प्रशिक्षण से सम्बन्धित गोरे समिति (1974) की सिफारिश पर आई.पी.एस. के प्रोबेशनरों के व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम में सैंडविच नाम से एक नया पाठ्क्रयम शामिल कर वर्ष 1986 में उसमें बदलाव लाया गया। यह नया पाठ्यक्रम आई.ए.एस. प्रोबेशनर के सैंडविच पाठ्यक्रम की तर्ज पर ही है। इसलिए वर्ष 1986 मे आई.पी.एस. प्रोबेशनरों को भी व्यावसायिक प्रशिक्षण दो चरणों में पुलिस अकादमी (हैदराबाद) में 8 माह के अंतराल (35 सप्ताह) पर लेना होता है। इस अंतराल का उपयोग राज्यों में जिला स्तर के (Field Training) प्रशिक्षण में किया जाता है।

(iii) भारतीय वन सेवा का प्रशिक्षण (Training of I.F.S.)–

भारतीय वन सेवा के परिवीक्षाधीन अधिकारियों को तीन वर्षों के लिए प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम के विभिन्न घटक और उनकी अवधि नीचे दी गई है –

(1) आधारात्मक प्रशिक्षण	:	4 माह
(2) पेशेवर प्रशिक्षण	:	24 माह
(3) कैडर राज्यों में सेवाकालीन प्रशिक्षण	:	8 माह
कुल	:	36 माह

आई.एफ.एस. अधिकारियों को आधारात्मक प्रशिक्षण अखिल भारतीय एवं अन्य केन्द्रीय सेवाओं (संघीय सेवाओं) के परिवीक्षाधिकारियों के साथ **राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी** में प्रदान किया जाता है। इसके बाद इन्हें पेशेवर प्रशिक्षण के लिए **इन्दिरा गांधी नेशनल फॉरेस्ट अकेडमी, देहरादून** में भेज दिया जाता है।

(iv) भारतीय विदेश सेवा का प्रशिक्षण (Training of I.F.S.)–

आई.एफ.एस. (भारतीय विदेश सेवा) परिवीक्षाधीनों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण की अवधि भी तीन वर्ष है। उनके प्रशिक्षण कार्यक्रम के विभिन्न घटक तथा उनकी अवधि इस प्रकार से है –

1.	राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी,मसूरी में (अखिल भारतीय सेवा और केन्दीय सेवा के प्रोबेशनरों के साथ–साथ) आधारात्मक प्रशिक्षण	:	4 माह
2.	विदेश सेवा संस्थान,नई दिल्ली में व्यावसायिक प्रशिक्षण (सैन्यबल के साथ प्रशिक्षण और भारत दर्शन यात्रा सहित)	:	12 माह
3.	विदेश मंत्रालय से संबद्व होकर आवश्यक प्रशिक्षण	:	6 माह
4.	विदेश स्थित किसी भारतीय मिशन में भाषा प्रशिक्षण	:	14 माह
	कुल	:	36 माह

आई.एफ.एस. के परिवीक्षाधीनों के लिए प्रारंभिक प्रशिक्षण की यह प्रणाली वर्ष 1987 से लागू है। इससे पहले सात चरणों की प्रशिक्षण प्रणाली थी, जिसमें 6 माह का जिला स्तरीय प्रशिक्षण भी था। प्रोबेशनरों को इण्डियन स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली में सांस्थानिक प्रशिक्षण दिया जाता था। बाद में इस संस्थान का नाम विदेश सेवा संस्थान, नई दिल्ली रखा गया।

(v) अन्य उच्च से सेवाओं का प्रशिक्षण (Training of other Higher Services) –

राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी मसूरी में चार माह की अवधि का संयुक्त आधारात्मक प्रशिक्षण पूरा होने के बाद विभिन्न उच्च लोक सेवाओं के परिवीक्षाधीनों में (प्रोबेशनरों) को व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए संबद्ध प्रशिक्षण संस्थानों को भेज दिया जाता है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैं –

(1) भारतीय लेखा और लेखा परीक्षा सेवा के परिवीक्षाधीनों को व्यावसायिक प्रशिक्षण **भारतीय लेखा एवं लेखा सेवा कर्मचारी प्रशिक्षण कॉलेज**,(Indian Audit and Accounts Service Staff training College)**शिमला** में दिया जाता है।

(2) आयकर सेवा के प्रोबशनरों को व्यावसायिक प्रशिक्षण **भारतीय राजस्व सेवा प्रत्यक्ष कर प्रशिक्षण संस्थान**, **नागपुर** में दिया जाता है।

(3) रेल सेवा के परिवीक्षाधीनों को **रेल्वे स्टाफ कॉलेज, बड़ौदा** (बड़ोदरा) में प्रशिक्षित किया जाता है।

(4) केन्द्रीय सचिवालय सेवा के प्रोबेशनरों को आधारात्मक प्रशिक्षण और व्यावसायिक प्रशिक्षण दोनों **सचिवालय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान**, **नई दिल्ली** में दिए जाते हैं। केन्द्रीय सचिवालय सेवा के परिवीक्षाधीनों को **मसूरी** में चार माह की अवधि को आधारात्मक प्रशिक्षण में शामिल नहीं होना होता है।

(5) भारतीय डाक सेवा के परिवीक्षाधीनों को **पोस्टल स्टाफ कॉलेज, गाजियाबाद** (उत्तरप्रदेश) में प्रशिक्षित किया जाता है।

(6) भारतीय उत्पाद शुल्क सेवा के परिवीक्षाधीनों को **कस्टम एण्ड सेंट्रल एक्साइज ट्रेंनिग स्कूल, फरीदाबाद** में प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।

(7) भारतीय सूचना सेवा के परिवीक्षाधीनों को व्यावसायिक प्रशिक्षण **इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ मॉस कम्यूनिकेशन**, **नई दिल्ली** में दिया जाता है।

इन विभिन्न उच्च लोक सेवाओं के परिवीक्षाधीनों को दिए जाने वाले दीर्घकालीन व्यावसायिक प्रशिक्षण के निम्नलिखित दो घटक है –

1. संबद्ध प्रशिक्षण संस्थानों में सैद्वान्तिक दिशा–निर्देशन।
2. वरिष्ठ अधिकारियों के मार्गदर्शन में क्षेत्र (Field) में प्रायोगिक प्रशिक्षण।

यहाँ ये उल्लेख करना भी आवश्यक है कि वर्तमान भारत में संघीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है अतः संघीय सेवाओं के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था संघीय सरकार द्वारा द्वारा की जाती है लेकिन परिवीक्षाधीनों को क्षेत्रीय प्रशिक्षण राज्यों में कार्य करके प्राप्त होता है। संघीय शासन व्यवस्था होने के कारण राज्यों में राज्य सेवाओं के लिए प्रशिक्षण की पृथक व्यवस्था है, जिसकी देखरेख राज्य सरकारों द्वारा स्थापित प्रशिक्षण संस्थायें करती है।

5.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदोन्नति व्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय सेवा में नियुक्त अधिकारियों और कर्मचारी वर्ग के लिए पदोन्नति की व्यवस्था के सन्दर्भ में कोई व्यवस्थित सिद्धांत या नियम के बारे में विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। अर्थशास्त्र में वर्णित कार्मिक प्रशासन के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः उस काल में पदोन्नति का आधार **वरिष्ठता का सिद्धांत** न होकर **योग्यता सिद्वान्त** पदोन्नति का आधार रहा होगा। कौटिल्य ने प्रशासकीय पदों की भर्ती प्रक्रिया में उम्मीदवारों के चयन हेतु योग्यता व सद्चरित्रता को अनिवार्य व सर्वाधिक महत्व दिया था । योग्यता व सच्चरित्रता की परीक्षा के लिए ही विविध (चार) प्रकार की

परीक्षाओं का वर्णन किया था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि पदोन्नति मुख्यतः योग्यता सिद्धांत पर ही आधारित रही होगी।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने एक स्थान पर ये मत उल्लेखित किया है कि जो पदाधिकारी आदिष्ट कार्य को पूरा करके, स्वेच्छया से किसी दूसरे हितकर कार्य को भी करता है तो उसे पदोन्नति और सम्मान देना चाहिए। कौटिल्य का पदोन्नति के सन्दर्भ में यह भी सुझाव था कि जो अध्यक्ष राजधन का अपहरण (गबन) नहीं करते वरन् न्यायपरायण होकर राजा की समृद्धि में यत्नशील रहते हों, ऐसे सच्चरित्र अध्यक्षों को सदा सम्मानपूर्वक उच्च पद पर बनाये रखना (स्थायी) चाहिए[41]।

मध्यम और निम्नस्तरीय सरकारी कर्मचारी सेवा या कार्य की सुरक्षा को पसन्द करते है अतः यहां कौटिल्य यह सिफारिश करते है कि कर्मचारियों का वह समूह जो ईमानदार, सक्षम और स्वामीभक्त हो, तो उन्हें राजकीय सेवा में पदोन्नति के रूप में स्थायी कर देना चाहिए। परन्तु साथ ही इन पर निरिक्षण करना भी आवश्यक है, जिससे की वे सेवा में स्थायित्व की प्राप्ति के बाद आलसी (कामचोर) ना हो जाए।

5.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में पदोन्नति व्यवस्था –

भारत में सन् 1669 में **ईस्टइण्डिया कम्पनी**अपने कर्मचारियों को वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति देने का निश्चय किया था तथा ब्रिटिश सरकार से आग्रह किया, कि भारत में कार्यरत उसके कार्मिकों का निरीक्षण करने के लिए ब्रिटेन से अधिकारी न भेजे जाऐं बल्कि वरिष्ठ कार्मिकों को ही यहाँ पदोन्नत किया जाए। सन् 1771 में योग्यता को भी पदोन्नति का आधार बनाना स्वीकार किया गया। सन् 1854 की **मैकाले रिपोर्ट** में लोकसेवाओं में योग्यता के सिद्धांत को महत्ता प्रदान की गई किन्तु वरिष्टता का सिद्धांत भी न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहा। सन् 1861 के आई.सी.एस. अर्थात् भारतीय लोकसेवा अधिनियम ने योग्यता सिद्धांत का भी अनुमोदन किया।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के विभाजन (1947) के कारण बहुत से अधिकारी ब्रिटेन या पाकिस्तान चले गये। ऐसी स्थिति में उच्च लोकसेवकों को शीघ्र पदोन्नतियाँ प्राप्त हुई किन्तु निम्न पदों पर वरिष्ठता का सिद्धांत यथावत बना रहा। वर्तमान में उच्च पदों पर वरिष्ठता तथा योग्यता का संयुक्त आधार पदोन्नति में सहायक होता है जबकि निम्नपदों पर वरिष्ठता का ही सिद्धांत लागू है। केन्द्रीय वेतन आयोगों सहित सभी सुधार समितियों तथा प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग आदि ने पदोन्नति के निर्धारण के लिए प्रभावी सिद्धांत वरिष्ठता के साथ योग्यता को ही बताया है। ये उल्लेखनीय तथ्य है कि पदोन्नतिके नियम

या सिद्धांत केन्द्र तथा राज्यों के अधीन विभिन्न मंत्रालयों/विभागों में पृथक–पृथक है। पदोन्नत करने वाला प्राधिकारी विभाग प्रमुख होता है, परन्तु उच्चतर पदों पर पदोन्नतियाँ लोकसेवा आयोग की सलाह से की जाती है। विभागीय स्तर की पदोन्नतियों हेतु प्रत्याशियों का चयन करने के लिए विभागीय पदोन्नति समितियाँ या (बोर्ड) गठित की जाती है। पदोन्नति के सम्बध में कोई सर्वमान्य नीति या सिद्धांत लागू नहीं है।

(1) वर्तमान भारत में पदोन्नति की स्थिति–

वर्तमान भारत में पदोन्नति की स्थिति इस प्रकार से है –

1.वर्तमान भारतीय **संघीय** सरकार (केन्द्रीय सरकार) में पदोन्नति तथा वरिष्ठता लचीली अनुपूरक योजना इत्यादि को कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय का कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग (डीओपीटी) नियन्त्रित करता है।

2. अखिल भारतीय सेवा अधिनियम 1951 में स्पष्ट किया गया है कि आई.ए.एस., आई.पी. एस. और आई.एफ.एस. के अधिकतम 33,1/2 वरिष्ट पदों को राज्य सेवाओं में कार्यरत अधिकारियों से भरा जाए। इस प्रकार की पदोन्नति प्रत्येक राज्य में गठित चयन समिति की सिफारिशों पर की जाती है। इन समिति की अध्यक्षता संघ लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य करता है।

3. भारत में **प्रशासनिक सुधार आयोग** ने सिफारिश की है कि पदोन्नतियों के लिए **गोपनीय–रिपोर्टकी पद्धति** के स्थान पर **निष्पादन रिपोर्ट पद्धति** लागू की जाए।

4.पदोन्नति के लिए प्रशासनिक कर्मचारियों को निम्न पाँच श्रेणियों में रखा जाता है[42]–

(i) असाधारण

(ii) बहुत अच्छा

(iii) संतोषजनक

(iv) उदासीन

(v) बेकार

5. पदोन्नति प्राप्त किए कार्मिक को किसी भी उस प्राधिकारी द्वारा नहीं हटाया जा सकता जो उसे पदोन्नत करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ है। (संविधान के अनुच्छेद (धारा) 311 के अनुसार)।

6. प्रथम श्रेणी अर्थात ग्रुप **क** की (केन्द्रीय सेवाओं) सेवाओं में 45 प्रतिशत पर पदोन्नति से भरे जाते हैं।

7.द्वितीय श्रेणी अर्थात केन्द्र सरकार में ग्रुप **ख** के 65 प्रतिशत राजपत्रित पद पदोन्नति से भरे जाते हैं।

8.द्वितीय श्रेणी ग्रुप **ख** मेंतीन चौथाई से भी अधिक अराजपत्रित पद पदोन्नति से भरे जाते है।

9.तृतीय श्रेणी या ग्रुप **ग** के अधिकांश पदों पर बाहरी भर्ती होती है। कुछ पद (लगभग 10%)पदोन्नति से पूर्ण होते हैं।

10.चतुर्थ श्रेणी पद चूंकि निम्नतम है अतः पूर्णतया बाहरी भर्ती से भरा जाता है।

11.विशेषज्ञ सेवाओं, यथा– शिक्षा, चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग इत्यादि में अधिकांश उच्च पद पदोन्नति से भरे जाते हैं। राज्यों में तो इन सेवाओं के उच्च पदों पर बाहरी भर्ती लगभग नगण्य है। इन सेवाओं में प्रायः वरिष्ठता का सिद्वान्त अपनाया जाता है।

भारत में पदोन्नति की व्यवस्था सम्बन्धित विभाग या सेवा के लिए निर्धारित सेवा नियमों पर निर्भर करती है। कुछ विभागों में पदोन्नति के अवसर बहुत अधिक हैं जबकि कुछ विभाग ऐसे हैं जहाँ पदोन्नति के अवसर नगण्य है।

(2) पदोन्नति की प्रक्रिया –

वर्तमान भारत में कार्मिकों के लिए पदोन्नति प्रक्रिया निम्नलिखित है –

अ.वरिष्ठता पर आधारित पदोन्नति हेतु –

(i) वरिष्ठता क्रमांक के अनुसार –

वरिष्ठता के आधार पर होने वाली पदोन्नतियों के लिए सम्बन्धित विभाग सेवा ग्रहण की तिथि को आधार मानकर कार्मिकों की वरिष्टता सूची जारी करता है तथा प्रत्येक कार्मिक को उसके संवर्ग के अनुसार वरिष्ठता क्रमांक प्रदान कर दिया जाता है। ज्यों ही कोई उच्च पद रिक्त होता है, वरिष्टता क्रमांक से पदोन्नति दे दी जाती है। यदि कार्मिक का निष्पादन मूल्याकंन बहुत खराब न रहा हो।

(ii) **विभागीय पदोन्नति समिति –**

पदोन्नति कार्यों के निष्पक्षता तथा वैधानिकता प्रदान करने के लिए **विभागीय पदोन्नति समिति** (D.P.C) का भी प्रावधान होता है। इस समिति में सम्बन्धित विभाग का अध्यक्ष, वित्त तथा कार्मिक विभाग के अधिकारी तथा लोकसेवा आयोग के प्रतिनिधि को समाविष्ट करने का नियम है। यह समिति उपलब्ध कार्मिकों की पदोन्नति पात्रता का परीक्षण करने तथा पदोन्नति की अनुशंसा का कार्य करती है, किंतु वस्तु स्थिति यह है कि अधिकांश राज्यों के विभागों में डी.पी.सी का गठन नियमित रूप से नहीं होता है।

ब. योग्यता आधारित पदोन्नति–

योग्यता आधारित पदोन्नति के लिए संघ लोकसेवा आयोग तथा कर्मचारी चयन आयोग विभागीय प्रतियोगी परीक्षाऐं आयोजित करवाते है, जो निम्नस्तरीय पदों के लिए होती है।

पदोन्नति से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पदों पर विभागों द्वारा लोकसेवा आयोग से परामर्श लेना आवश्यक है।

भारत सरकार ने **81वें संविधान संशोधन** (2000) के माध्यम से यह व्यवस्था कर दी है कि पदोन्नति में आरक्षण उचित है तथा अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के बकाया रिक्त पदों को आरक्षण के 50 प्रतिशत की हद से बाहर रखा जाएगा।सन् 1955 से अनुसूचित जाति एवं अनुसूचितजनजाति के कार्मिकों को पदोन्नति में मिल रही आरक्षण सुविधा गलत है, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद–16(4) के अन्तर्गत आरक्षण की सुविधा केवल प्रारम्भिक भर्ती पर देय है। (1992 का S.C. का निर्णय।)

इस प्रकार भारतीय प्रशासनिक संस्थानों में पदोन्नति एक महत्वपूर्ण आयाम है जो कार्मिक संतुष्टि को निर्णायक स्तर प्रभावित करता है। अतः कार्मिक को सुशासित करने हेतु इस दिशा में गम्भीरतापूर्वक मनन करके सार्थक पदोन्नति नीति बनानी चाहिए।

6.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र मेंवेतनमान प्रणाली–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय सेवा में नियुक्त अधिकारी और कर्मचारी वर्ग के लिए सुनिश्चित किये गये वेतनमान का विस्तृत एवं संरचनात्मक वर्णन मिलता है। कौटिल्य ने इस वेतनमान प्रणाली का उल्लेख अर्थशास्त्र के **पाँचवें अधिकरण योगवृत** में **प्रकरण 91** के अन्तर्गत **अध्याय 3** में जो **भृत्यभरणीयम्** नाम से जाना जाता है में किया है। इस अध्याय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोकसेवा (राजकीय सेवा) विभिन्न श्रेणियों एवं वेतनमान द्वारा सुव्यवस्थित थी। राजकीय पदों को विभिन्न श्रेणियों (पदक्रम) एवं वेतनमान पद्धति द्वारा वर्गीकृत किया गया था। कौटिल्य ने इस वेतनमान संरचना का बहुत विस्तृत ब्योरा प्रस्तुत किया है जो प्रशासनिक मशीनरी की वृहदता एवं जटिलता को दर्शाते हैं। ये राष्ट्र की विभिन्न आवश्यकताओं एवं उनकी आपूर्ति का प्रतीक है।

कौटिल्य का मत था कि दुर्ग और जनपद की शक्तिनुसार (वित्तीय क्षमता) कार्मिकों को भर्ती किया जाय और राज्य की राजस्व आय का चौथा भाग प्रशासनिक संस्थाओं के कार्मिकों के भरणपोषण पर व्यय किया जाना चाहिए। कार्यकुशल कार्मिक जितने भी वेतन पर मिले, उन्हें राजकीय सेवा में नियुक्त किया जाये किंतु इसके साथ ही ऐसा न हो जाये

की आमदनी कम हो और व्यय अधिक हो। ऐसा कोई भी कार्य न किया जाय जिससे की धर्म और अर्थ की व्यर्थ क्षति हो[43]। कौटिल्य का यह भी मानना था कि वेतनमान इस प्रकार निर्धारित हों कि लोकसेवक अपने कार्यों को ठीक से पूर्ण कर सकें। उन्हें इतना वेतन मिले की जिससे उनका मनोबल बना रहे और उनकी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सके।

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वेतनमान की सरंचना –

कौटिल्य ने वेतनमान के वर्गीकरण की संरचनात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत की है। जिसके अनुसार राज्य के प्रत्येक राजकर्मचारी को उसके पद और वरिष्टता के क्रमानुसार वेतन दिया जा सके। कौटिल्य ने यह वेतनमान मासिक के स्थान पर वार्षिक आधार पर निर्धारित किये थे। उन्होंने इस वेतनमान की संरचना को सुनिश्चित करने के लिए कुछ कारकों का भी ध्यान रखा है। जो निम्नलिखित प्रकार से है –

(i) प्रथम स्तरीय वेतनमान(48000 पण, वार्षिक)–

यह उस समय का सर्वाधिक वेतनमान था। जो वर्तमान समय के **अखिल भारतीय लोक सेवाओं** में नियुक्त वरिष्ठ लोकसेवा अधिकारियों के सुपर स्केल वेतनमान के समकक्ष था। ये राज्य के सर्वोच्च स्तरीय लोक सेवा अधिकारी वर्ग को दिया जाता था। इसमें ये उच्चाधिकारी शामिल थे जैसे–मन्त्री (प्रधानमंत्री), पुरोहित, सेनापति और युवराज। सम्राट के पारिवारिक सदस्यों में से इसमें राजमाता, राजमहिषी (महारानी) इत्यादि को शामिल किया गया था[44]। कौटिल्य के मतानुसार इन सभी को इतना धन वेतनमान के रूप में देने का मुख्य कारण यह था कि वे राजा के प्रति विद्रोह की भावना न रखें और उन्हें राजा के विरूद्ध कोई व्यक्ति विशेष भड़का ना सके।

(ii) द्वितीय श्रेणी वेतनमान (24000 पण, वार्षिक) –

इस वेतन श्रंखला के अन्तर्गत दौवारिक, अन्तर्वेशिक, प्रशास्ता, समाहर्ता, सन्निदाता इत्यादि अमात्य शामिल थे। इन्हें ये वेतन देना इसलिए आवश्यक था, जिसमें की वह अपना कार्य कुशलता (दक्षता) से कर सकें।

(iii) तृतीय श्रेणी वेतनमान (12000 पण, वार्षिक)–

इस वेतनमान के अन्तर्गत राजकुमार (युवराज के भाई) उनकी माताएँ, नायक, पौर व्यवहारिक (न्यायाधीश), कार्मान्तिक, मंत्रिपरिषद् के सदस्य, प्रांतपाल और अन्तपाल इत्यादि आते थे। इनको प्रतिवर्ष 12000 पण वेतन दिया जाता था, जिससे ये सभी सदैव राजा के अनुकूल रहेंगे और उसकी सहायता के लिए हमेशा तत्पर रहेंगे।

(iv) चतुर्थ श्रेणी का वेतनमान (8000 पण, वार्षिक) –

ये वेतन मुख्यतः श्रेणि मुख्यों, हाथी घोड़े रथों के अध्यक्ष और प्रदेष्टा (कंटकशोधन का न्यायाधीश) को दिया जाता था। यह वेतन उन्हें इसलिए दिया जाता था कि वे अपने समूह के कर्मचारियों को हमेशा अपने अनुकूल रख सकें।

(v)पंचम श्रेणी वेतनमान (4000 पण, वार्षिक)–

यह वेतन पैदल सेना अश्वसेना, रथसेना और गजसेना के अध्यक्षों और लकड़ी व हाथी के जंगलों के अध्यक्षों को दिया जाता था।

(vi) षष्ठम् श्रेणी वेतनमान (2000 पण, वार्षिक)–

इस वेतनमान के अन्तर्गत रथशिक्षक गजशिक्षक, चिकित्सक, अश्वशिक्षक, मुर्गा व सूअर को पालने वाले अध्यक्षों को रखा गया है।

(vii) सप्तम् श्रेणी वेतनमान (1000 पण, वार्षिक)–

इस वेतनमान के अन्तर्गत कौटिल्य ने मार्तान्तिक (सामुद्रिक), नैमितिक (सकुन बताने वाले), ज्योतिषी, कथावाचक, मागध (स्तुतिवाचक), सुराध्यक्ष, राजा को यज्ञ स्थान पर लाने वाले सारथी, कापटिक, उदास्थित, वैदेहक, तापस और गृहपतिक आदि वेषधारी गुप्तचरों को रखा था।

(viii) अष्ठम् श्रेणी वेतनमान (1000 पण से 500 पण तक वार्षिक)–

कौटिल्य के मतानुसार आर्य (सत्पुरूष) माणवक (वेदाध्यायी विद्यार्थी) शेलखनक (पत्थर पर नक्काशी करने वाला) सर्वोपास्थायिन आचार्य (निपूर्ण गायनाचार्य) और विद्वान इन लोगों को योग्यतानुसार 500 से 1000 पण वेतन प्रति वर्ष दिया जाता था।

(ix) नवम् श्रेणी वेतनमान (500 पण, वार्षिक)–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इस वेतनमान वर्ग में चित्रकार, पादाता (खिलाड़ी) गणक (संख्यायक) और लेखकवर्ग इत्यादि कर्मचारियों एवं धोबी, नाई (गॉव के नौकर) गॉव के मुखिया, सत्री, तीक्ष्ण, भिक्षुकी आदि के वेष में कार्य करने वाले गुप्तचरों को शामिल किया गया था। इन सभी को प्रतिवर्ष 500 पण वेतन दिया जाता था।

(x) दसम् श्रेणी वेतनमान (250 से 120 पण वार्षिक) –

कुशीलव (नट, नर्तन, गायक) और गुप्तचरों को इधर–उधर भेजने वाले कर्मचारियों को 250 पण वेतन दिया जाता था। दूसरे साधारण कारीगरों को प्रतिवर्ष 120 पण वेतन दिया जाता था।

(xi) निम्नतम श्रेणी वेतनमान (60 पण से 20 पण वार्षिक) –

इस वेतनमान श्रेणी में कौटिल्य ने पशुचिकित्सक, चिकित्सक (सिविल सर्जन) परिचारक, गौरक्षक (ग्वालों) और बेगार करने वालों के लिए प्रतिवर्ष 60 पण वेतन निर्धारित किया था। दस योजन से सौ योजन चलने वाले दूत को बीस पण वेतन देने और मध्यगति से एक योजन तक आने–जाने वाले दूत को दस पण वेतन दिया जाता था।

यहाँ ये ध्यान देने योग्य तथ्य है कि वे सरकारी कर्मचारी जो 100 पण से 1000 पण वार्षिक वेतनमान की श्रेणी में आते थे, उन्हें अध्यक्षों के अधीन रखा जाता था। ये ही उन कर्मचारियों को यथोचित वेतन दिलाने, राजाज्ञा का पालन करवाने, पारितोषिक, नियुक्ति एवं कार्य उत्तरदायित्व (विशेष) की व्यवस्थाओं के लिए उत्तरदायी थे। जब कार्य नहीं होता था तो उन्हें राजकीय भवनों की देख–रेख करने दुर्ग की किलाबन्दी करने और राष्ट्र की सुरक्षा के कार्यों के लिए स्थान्तरित कर दिया जाता था।

2. स्थायी वेतन के अतिरिक्त विशेष वेतनभत्तों की व्यवस्था –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में स्थायी वेतनमानों के अतिरिक्त विशेष वेतनभत्तों की व्यवस्था का भी उल्लेख किया है। कौटिल्य का मानना था कि राजकर्मचारी अपने–अपने कार्यों का सम्पादन सुचारू रूप से करते रहें, इस प्रयोजन से यह व्यवस्था भी की गई थी कि योग्यता और कार्य के अनुसार उन्हें विशेष वेतन व भत्ते भी दिये जाये। ये विशेष वेतन व भत्ते की व्यवस्था इस प्रकार से है –

(1) राजा को राजसूर्य यज्ञों के अवसर पर मंत्री (प्रधानमंत्री) व पुरोहित आदि को उनके निर्धारित वेतन से तिगुना वेतन देना चाहिए तथा राजा को यज्ञस्थल तक लाने रथवाहक को भी हजार पण का भुगतान करना चाहिए।

(2) जब किसी दूत को विशेष कार्य देकर कहीं बाहर भेजा जाता था तो उसे दस पण प्रति योजन के हिसाब से पारिश्रमिक प्रदान किया जाता था। यदि उसे दस योजन से सौ योजन की यात्रा पर जाना हो, तो इस पारिश्रमिक की मात्रा दुगनी हो जाती थी।

(3) इसी प्रकार स्थायी या अस्थायी कर्मचारियों की योग्यता और कार्यक्षमता के अनुसार कम या ज्यादा वेतन भत्ता दिया जाता था।

(4) सामान्यतया 60 पण वेतन पाने वालों को एक आढक भर अन्न भत्ते के रूप में दिया जाय। ये आढक 3200 माष के बराबर होता था। यदि माष को वर्तमान समय के मासे के तुल्य माना जाय तो यह आढक तीन सेर के लगभग बैठता है।

3. वेतनमान के भुगतान का आधार वर्ष (कार्यिक वर्ष) –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय कर्मचारियों को वेतन के भुगतान के लिए आधार वर्ष की भी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। कौटिल्य के मतानुसार तीन सौ चौवन दिन रात का एक **कर्मसंवत्सर**[45] होता है। इसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमा को समझी जाती थी। कौटिल्य के अनुसार पन्द्रह दिन–रात का एक पक्ष होता है। दो पक्ष का एक महीना होता है। वेतन देने के लिए तीस दिन–रात का एक महीना माना जाता है।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजकीय कर्मचारियों के वेतन भुगतान में इसी वर्ष गणना को आधार माना था। आचार्य का यह मत था कि प्रत्येक अध्यक्ष या उच्चाधिकारी को वेतन इस वर्ष गणना के अनुसार ही दिया जाना चाहिए। यदि अध्यक्ष की नियुक्ति वर्ष के मध्य में हुई है, तो उसको कम वेतन दिया जाय और यदि उसने पूरे वर्ष (कार्यिक वर्ष) कार्य किया है तो उसे पूरा वेतन दिया जाना चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी के कार्य (सेवा) का ब्यौरा उपस्थिति रजिस्टर से देखना चाहिए। तभी वेतन रकम दी जानी चाहिए।[46] यहाँ ये बताना आवश्यक है कि घोड़ों के सइसों को वेतन देने के लिए पैंतीस दिन–रात का एक महीना माना जाता था और हाथियों की सेवाओं में नियुक्त कर्मचारियों का एक महीना चालीस दिन–रात का होता था। इस जानकारी से यह स्पष्ट होता है कि उस समय कुछ विशिष्ट कर्मचारियों को वेतनमान के अन्तर्गत महीनों के दिनों के निर्धारण में विभेद रखा जाता था।

4. वेतनमान के सन्दर्भ में भुगतान की पद्धति –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय कर्मचारियों की वेतनमान संरचना के अन्तर्गत वेतनमानों की भुगतान पद्धति का भी विस्तार से उल्लेख किया है। ये भुगतान प्रणाली निम्नलिखित प्रकार की है –

1. नकद (मुद्रा) भुगतान पद्धति –

कौटिल्य ने राज्य कर्मचारियों के वेतन भुगतान के सन्दर्भ में नकद (मुद्रा) वेतन को ही भुगतान का मुख्य आधार माना था। कौटिल्य ने वेतन के भुगतान के लिए **'पण'** मुद्रा को निश्चित किया था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह मत भी उद्धृत है कि मुद्रा पद्धति का संचालन, मुद्रा का निर्माण और मुद्रा पर नियंत्रण राज्य के द्वारा ही किया जाता था। **रूप्य, पण, माषक** इत्यादि अनेकविध सिक्कों को ढ़ालने की व्यवस्था थी, जो **लक्षणाध्यक्ष** नामक अध्यक्ष के अधीन होती थी। इन सिक्कों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया था –

प्रथम वर्ग **कोशप्रवेश्य** (Legal tendor) और दूसरा वर्ग **व्यावहारिक** (Token Money) था। प्रमुख सिक्का 'पण' था जिसे रूप्य–रूपक भी कहते थे, यह चांदी का बना

होता था। परन्तु इसमें चांदी के अतिरिक्त चार भाग ताँबा और सोलहवाँ भाग त्रपु व सीसे जैसी घटिया धातुओं का भी रहता था। इससे स्पष्ट होता है कि ये पूर्ण शुद्ध चांदी का नहीं होता था। पण के अतिरिक्त अर्द्धपण, पादपण, अष्टभागपण भी बनाये जाते थे। यह 'पण' मुद्रा कोशप्रवेश्य सिक्का माना गया था तथा ये ही नकद वेतन में मुद्रा के रूप में प्रयुक्त किया था। यहां ये उल्लेख करना भी आवश्यक है कि व्यावहारिक सिक्के के रूप में **माषक, अर्द्धमाषक, काकणी** और **अर्द्ध काकणी सिक्के** होते थे जो तांबे के बने होते थे।

2. अन्य प्रकार की भुगतान पद्धति –

कौटिल्य ने नकद वेतन के अलावा भी कार्मिकों को उनकी सेवाओं के बदले भुगतान करने के अन्य आधार या तरीके भी बताए हैं, जो निम्नलिखित प्रकार से है –

(1) यदि राजकीय कोष में मुद्राओं की कमी हो तो राजा के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह राजकर्मचारियों को निर्धारित दर से वेतन दे। इस दशा में राजा को अधिकार था कि वह अपने कर्मचारियों को मुद्रायें कम दें पर कुप्य (जंगल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य) पशु तथा भूमि आदि प्रदान करके मुद्राओं की कमी की क्षतिपूर्ति कर सके[47]।

(2) अगर राजा नवीन भूमि को अधिकृत कर वहाँ बसावट कर रहा है, तो उसे भुगतान धन के रूप में ही अधिक करना चाहिए न की भूमि के रूप में भुगतान करना चाहिए। जिसे बसे हुए गांव के मूल्य आदि का निर्णय, व्यवहार की स्थापना के लिए ठीक तौर पर किया जा सके।

(3) राजा अपने अधिकारी को वेतन में भूमि भी दे सकता है जिस पर की वह अपने लाभ के लिए खेती (उत्पादन) कर सकता है।

(4) राजा पुरोहित, ब्राहमणों (वेदों के ज्ञाता), उपदेशकों, पुजारियों इत्यादि को उनकी सेवा के बदले अनुदान में भूमि प्रदान कर सकता था। इस प्रकार की अनुदान में प्राप्त भूमि को कर वसूली व जुर्मानों से स्वतंत्र रखा गया था। यह अनुदानित भूमि इन दान प्राप्तकर्ताओं के उत्तराधिकारियों को भी उत्तराधिकार में प्राप्त होती थी।

(5) राजा के द्वारा अपने इन अधिकारियों, कर्मचारियों व प्रजाजनों को वेतन के अलावा भूमि भी दी जाती थी। ये अधिकारी व कर्मचारी इस प्रकार हैं – विभागीय अध्यक्ष, सांख्यक, गोप, स्थानिक, अनीकस्थ (हस्तिशिक्षक), चिकित्सक, अश्वचिकित्सक व जंघाकारिक (दूर देश में जाकर जीविकोपार्जन करने वालों)। ये अधिकारी व कर्मचारी इस प्रकार प्राप्त भूमि को न तो गिरवी ही रख सकते थे और न ही इसे बेच सकते थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य वेतन भुगतान की इस पद्धति द्वारा राजकीय कर्मचारियों को संतुष्टदायक व सुरक्षित कार्य वातावरण देना चाहते थे, जिससे वे क्रोधित न हो और राज्य सुरक्षित, उन्नतिशील एवं सुशासित रहे।

5. स्थायी वेतनमानों के वेतनमूल्यों में अन्तर की विश्लेषणात्मक व्याख्या–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्यकर्मचारियों (उच्च अधिकारी वर्ग) और राज्य सेवा में कार्य करने वाले कारु, शिल्पी कर्मकार आदि के वेतनों की जो दरें दी गई है, वे उच्चस्तर 48000 पण से लेकर निम्नतम स्तर 60 पण वार्षिक तक बतायी गयी हैं। इससे यह पता चलता है कि मौर्य युग में अधिकतम और न्यूनतम वेतनों में बहुत अधिक अंतर मिलता था। जहां मंत्री (प्रधानमंत्री) और सेनापति जैसे राजपुरूषों को 4000 पण मासिक (48000 पण वार्षिक) प्राप्त होते थे, वहां ऐसे भी बहुत से कर्मचारी थे, जो 5 पण मासिक (60 पण वार्षिक) पर ही संतोष करते थे। पर उस युग में वस्तुओं के मूल्य इतने कम थे कि 5 पण मासिक प्राप्त करने वाला कर्मचारी भी अपना निर्वाह कर सकता था। काकणी और अर्द्ध काकणी जैसे बहुत छोटे सिक्कों का प्रचलन जहाँ कीमतों के कम (सस्ते) होने का परिचायक है, वहाँ कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह निर्देश भी विद्यमान है कि जिससे जीवन निर्वाह और वेतन के विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है। ग्वालों, बगीचों के रखवालों व खेती के मजदूरों के लिए सवा पण मासिक वेतन देने का विधान उल्लेखित है। यदि खेती मजदूर सवा पण मासिक दर पर अपना जीवन निर्वाह कर सकता था, तो सबसे निम्न स्तर के सरकारी नौकर के लिए 5 पण मासिक वेतन को कम नहीं समझा जा सकता है[48]।

उपरोक्त विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि कौटिल्य सम्भवतः प्रथम अर्थशास्त्री थे जो यह सुझाव देते है कि प्रभावकारी या सक्षम वेतन देना चाहिए। **प्रभावकारी मजदूरी** के सिद्धांतानुसार कार्मिकों को बाजार मूल्य से ऊँचें मूल्यों के अनुसार मजदूरी (वेतन) देनी चाहिए। जिससे कार्मिकों के द्वारा कामचोरी का प्रयत्न नहीं किया जा सकता है।

6.II वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में वेतनमान प्रणाली –

वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत कार्यरत सभी प्रकार के लोकसेवकों की कार्यकुशलता के लिए एक उचित और पर्याप्त पारिश्रमिक व्यवस्था को अपनाया गया है। भारत में राजकीय कर्मचारियों को वेतन के अलावा अनेक प्रकार के भत्ते भी दिये जाते है। इनमें प्रमुख है –महंगाई भत्ता (D.A.), मकान किराया भत्ता (H.R.A.), यात्रा भत्ता (T.A.),

दैनिक भत्ता (D.A.), वाहन भत्ता (C.A.), नगर प्रतिपूर्ति भत्ता,अवकाश यात्रा भत्ता (C.T.C.), चिकित्सा भत्ता इत्यादि। इसके अतिरिक्त उन्हें उपार्जित अवकाश का नकद भगुतान, छुट्टियों की सुविधा, सरकारी आवास देना, मकान बनाने एवं वाहन खरीदने के लिए ऋण प्राप्त करने तथा सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन प्राप्त करने की सुविधा भी दी है।

1. भारत में वेतनमान निर्धारण के सिद्धान्त –

भारत में भी अन्य आधुनिक राष्ट्रों की तरह लोकसेवकों के वेतनमानों के निर्धारण के लिए कोई एक निश्चित सिद्धान्त नहीं है। वास्तव में वेतनमानों को तय करते समय अनेक सिद्धान्तों पर विचार किया जाता है। भारतीय लोकसेवकों का वेतन निर्धारण करते समय निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है –

(1)मांग तथा पूर्ति सम्बन्धी विचार –(Supply and Demand Consideration)

(2) समान कार्य के लिए समान वेतन –(Equal pay for Equal Work)

(3) उपयुक्त तुलना –(Fair Comparison)

(4) कार्य का मूल्याकंन –(Job Evalution)

(5) मजदूरी एवं उत्पादकता –(Wages and Productivity)

(6) मॉडल नियुक्तिकर्त्ता की अवधारणा –(The Concept of Nodal Employer)

(7) न्यूनतम प्रतिफल –(Minimum Remuneration)

2. वेतन आयोग –

भारत में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत कार्यरत लोक सेवकों के वेतनमान का निर्धारण संघीय सरकार द्वारा नियुक्त **वेतन आयोग** की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है। लेकिन यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वेतन आयोग द्वारा दी गई सभी सिफारिशों को लागू करने के लिए सरकारें (संघीय व राज्य सरकारें) बाध्य नहीं है।

संघीय सरकार एवं राज्य सरकारें उनकी सिफारिशें अपनी सुविधा अनुसार लागू करती है। स्वतन्त्रता के बाद समय–समय पर भारत में लोकसेवकों के वेतनक्रम को निर्धारित करने के लिए विभिन्न वेतन आयोगों की नियुक्ति की गई है। अब तक भारत में सात वेतन आयोग नियुक्त किये जा चुके है। सन् 1950 में प्रथम वेतन आयोग, 1959 में द्वितीय वेतन आयोग, 1973 में तृतीय वेतन आयोग, 1983 में चतुर्थ वेतन आयोग,1994 में पाँचवाँ वेतन आयोग, 2007 में छटा वेतन आयोग एवंमें सातवें वेतन आयोग, 2013 में नियुक्त किया गया है। सभी भारतीय लोकसेवकों को चाहे वे केन्द्रीय सरकार में कार्यरत हों या राज्य सरकारों में उन्हें वर्तमान में सातवाँ वेतन आयोग[49] के द्वारा निर्धारित वेतनमान के अनुरुप वेतन दिये जा रहे हैं।

3. भारतीय वेतन व्यवस्था की अन्य विशेषताऐं –

भारतीय वेतन व्यवस्था की कुछ अन्य महत्वपूर्ण विशेषताऐं संक्षेप में निम्नलिखित हैं –

(1) भारतीय वेतन व्यवस्था की एक अन्य विशेषता समयमान (Time Scale)व्यवस्था है। इसका अर्थ है, ऐसे वेतन से है, जो सामयिक वृद्धियों द्वारा न्यूनतम दरों से अधिकतम दरों तक पहुँच जाता है। इस व्यवस्था में दक्षता अवरोध (Efficicecy Bar) भी संलग्न है।

(2) वेतन प्रशासन के लिए अधिकृत अधिकारी – भारत में सरकारी कार्मिकों के वेतन प्रशासन तथा विकास कार्य प्रत्येक मंत्रालय व्यक्तिगत रुप से देखता है। यह मंत्रालय वित्तमंत्रालय के समग्र पर्यवेक्षण में रहकर कार्य करता है। किसी मंत्रालय में जब भी कोई नया पद स्थापित किया जाता है तो सबसे पहले वह मंत्रालय विचारधीन पद या सेवा के कार्यों एवं दायित्वों की प्रकृति पर विचार करता है। उसके बाद वह गृह मंत्रालय के स्थापना अधिकारी, वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग तथा संघीय लोक सेवा आयोग के साथ विचार विमर्श कर उस पद या सेवा का वेतन तथा अन्य कार्य की शर्ते निर्धारित करता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार कोई भी पद या सेवा के वेतनमान का विवाद अन्तर्विभागीय विषय है।

(3) राजपत्रित एवं अराजपत्रित श्रेणियाँ –वर्तमान कार्मिक प्रशासन में वेतनमान के प्रशासन के लिए एक अलग तरीका भी अपनाया जाता है। इस हेतु समस्त लोक सेवाऐं दो श्रेणियों में समूहीकृत की गई है– (1) राजपत्रित (Gazatted) (2) अराजपत्रित (Non Gazatted) |

सभी राजपत्रित अधिकारी वेतन एवं भत्ते स्वयं ही सीधे तौर से प्राप्त करते हैं और इसी कारण वे **Self Drawing officers**कहलाते है। इन अधिकारियों की नियुक्ति भारत के राजपत्र में अधिसूचित की जाती है। जबकि अराजपत्रित अधिकारियों का वेतन एवं भत्ते स्थापना वेतन बिल(Estabishment Pay Bill)के द्वारा एक विभागी अधिकारी द्वारा लिए जाते है। ये अधिकारी वेतन बिलों को निकालने एवं बांटने के लिए जिम्मेदार होता है[50]।

(4) महालेखाकार का दायित्व – वेतन सम्बन्धी समाप्त मामले तथा अभिलेख महालेखाकार द्वारा बनाये जाते है अर्थात् कानूनी भाषा में कहें तो सरकारी कर्मचारियों के वेतन प्रशासन का दायित्व महालेखाकार के कार्यालय का होता है। वास्तव में केवल राजपत्रित अधिकारी ही अपना वेतन ग्रहण करने के लिए महालेखाकार के कार्यालय के सम्पर्क में आते हैं। अन्यथा गैरराजपत्रित कार्मिकों का वेतन सम्बन्धी कार्य तो सम्बन्धित मंत्रालय के प्रशासनिक कार्यालय द्वारा ही सम्पन्न कर दिया जाता है।

7.Iकौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अनुशासनात्मक कार्यवाही –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लोकसेवकों के लिए एक सुविकसित आचरण संहिता एवं कठोर अनुशासन पालन करवाने का उल्लेख किया गया है। कौटिल्य ने उन विषयों का भी उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत लोकसेवकों पर उचित एवं कठोर अनुशासनिक कार्यवाही की जाती थी। ये विषय निम्नांकित हैं –

(1) आचरण नियमों का उल्लंघन करना।

(2) राजकीय कोष के धन को हानि पहुँचाना।

(3) राजकीय कर वसूली में अनियमितताएं।

(4) जनता के साथ अनुचित व्यवहार करना।

(5) राजकीय आय–व्यय संबंधी मामलों में गडबड़ी करना।

(6) राजकीय धन का गबन करना।

(7) राजकीय उत्तरदायित्व निर्वाह में लापरवाही बरतना इत्यादि।

1. अनुशासन अधिकारी –

कौटिल्य ने लोकसेवकों पर की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए अधिकृत अधिकारियों का भी वर्णन किया है। ये अनुशासन अधिकारी निम्नलिखित हैं –

(i)राजा –कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजतंत्रात्मक प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन गया है। अतः उच्चस्तरीय लोकसेवकों (मन्त्रिण एवं अमात्यों) के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही राजा द्वारा ही की जाती थी। यह अनुशासनिक कार्यवाही दो प्रकार की हो सकती थी– कम (लघुशास्ती) एवं कठोर (बड़ी शास्ति) कार्यवाही।

कौटिल्य ने लिखा है कि राजा को चाहिए की वह अपने अध्यक्ष (अमात्य) के थोड़े अपराध के लिए क्षमा कर दे अर्थात् उसकी थोड़ी गलती के लिए उसके विरूद्ध लघु अनुशासनिक कार्यवाही करे। इसके विपरीत अन्य प्रसंग में कौटिल्य ने यह मत भी प्रतिपादित किया है कि अमात्य यदि व्यसनी (कल्याण मार्ग से विमुख हो) हो गये हों तो उनके स्थान पर राजा अव्यसनी अमात्यों को नियुक्त कर सकता है[51]। इससे स्पष्ट होता है कि राजा अमात्यों के विरूद्ध कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाही के अन्तर्गत उन्हें पद्च्युत कर सकता था।

(ii) अध्यक्ष –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मध्यम एवं निम्नस्तरीय कार्मिकों के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही विभागीय स्तर पर की जाती थी। कौटिल्य ने विभागीय अध्यक्ष को इस कार्य के लिए अधिकृत किया था। अध्यक्ष का ये भी दायित्व था की वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों में अनुशासन बनाये रखे[52]।

2. अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रकार –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लोकसेवकों के विरूद्ध की जाने वाली अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रकार निम्नलिखित हैं –

(1) अध्यक्ष द्वारा की जाने वाली थोड़ी गलती पर उसे क्षमा कर देना।

(2) उच्च पदस्थ अधिकारी द्वारा कार्यों में प्रमाद करने पर वेतन का दुगुना दण्ड किया जाये।

(3) नियमित राजकीय आय में अधिकारी की अज्ञानता, प्रमाद एवं आलस्य के कारण कमी हुई है तो अपराध के अनुसार दुगुना, तिगुना दण्ड दिया जाए।

(4) नियमित आय से दुगुनी आय दिखाना (प्रजा को पीड़ित कर धन वसूली करना) इस दुगुनी आमदनी को राजकोष के लिए भेजने पर उसे उतना ही दण्ड दिया जाये कि वह आगे इस तरह का अनुचित कार्य न कर सके। लेकिन वह उस अधिक धन को राजकोष न भेजकर स्वयं हड़प ले, तो उसे अपराधानुसार कठोर दण्ड दिया जाय।

5. जो अधिकारी व्ययनिमित्त निर्धारित राशि को खर्च न करके बचा लेता है (मजदूरों के पारिश्रमिक में कटौती) उसको कार्यहानि के मूल्य तथा मजदूरी अपहरण का यथोचित दण्ड दिया जाये।

6. व्यसनी अमात्यों को उनके पद से हटा दिया जाए।

इस प्रकार कौटिल्य ने अनुशासनात्मक कार्यवाही में कम एवं कठोर दोनों प्रकार की कार्यवाहियों का समर्थन किया है।

7.II वर्तमान भारतीयकार्मिक प्रशासन में अनुशासनात्मक कार्यवाही –

भारत में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत उस लोक सेवक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जाती है जो अपने कार्य (सेवा) के दौरान आचरण सम्बन्धी नियमों का उल्लघंन करता है। भारत में संघीय स्तर पर आचरण नियम निम्नलिखित हैं –

1. अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम – 1954
2. केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम – 1955

3. रेल्वे सेवा (आचरण) नियम – 1956

उपरोक्त वर्णित आचरण नियमों के उल्लंघन करने पर लोक सेवक के विरुद्ध संघीय स्तर पर भारत सरकार के कार्य आवंटन नियम 1961 के तहत् **कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय** कार्यवाही करता है। यह मंत्रालय इस कार्यवाही में संघ लोक सेवा आयोग से भी परामर्श करता है।

भारतीय संदर्भ में अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रकृति सुधारात्मक की अपेक्षा प्रतिरोधात्मक अधिक है। इसमें दण्ड का निश्चय अपराध की प्रकृति के आधार पर किया जाता है। बिना किसी कारण या केवल शंका मात्र से किसी को दण्डित नहीं किया जा सकता है। अतः दण्ड की सूची का पहले ही उल्लेख होता है। यह ध्यान रखा जाता है कि दोषी लोक सेवकों को सदैव उपयुक्त दण्ड ही दिया जाए न कम न ही ज्यादा।

1. अनुशासन अधिकारी –

नियुक्ति एवं पदोन्नति की तरह ही अनुशासनीय कार्यवाही करने का अधिकार भी विभागीय अध्यक्ष को दिया जाता है किन्तु अधीनस्थों की बड़ी संख्या होने के कारण व्यवहार में यह अधिकार अन्य अधीनस्थ को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। अतः किसी विशेष शाखा या कार्यालय के लोक सेवक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही वहाँ के मुख्य अधिकारी द्वारा ही की जाती है। यदि दण्डित व्यक्ति इस कार्यवाही को अन्यायपूर्ण मानता है तो उच्चतर अधिकारी के यहाँ अपील कर सकता है।

2. अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया –

लोक सेवाओं में सभी लोक सेवक चाहे वो किसी भी पद पर कार्य करते हो जनता के सेवक होते है। कोई भी उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ को मनमाना दण्ड नहीं दे सकता है और न ही उसके साथ नौकर जैसा बर्ताव कर सकता है। इसलिये अनुशासनात्मक कार्यवाही के समय उसे एक निर्धारित प्रक्रिया का अनुशीलन करना होता है जो निम्नानुसार है –

1. जिस कार्मिक के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही शुरु की गई है उससे स्पष्टीकरण मांगना।
2. यदि स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं है तो आरोप तय करना।
3. आरोपों की सुनवाई और कर्मचारी को अपने बचाव का अवसर देना।
4. यदि लोक सेवक के पद पर बने रहने से जाँच पड़ताल में कठिनाई की आशंका रहती है, अतः उसे सेवा से निलम्बित करना।
5. निष्कर्ष एवं रिपोर्ट बनाना।

6. प्रस्तावित दण्ड के बारे में कर्मचारी को अपने बचाव में दूसरा अवसर देना।
7. दण्ड का आदेश।
8. अपील यदि आवश्यकता है तो अपील की जाती है।

भारत में लोक सेवकों को अनुशासनात्मक कार्यवाही द्वारा दण्ड देने पर दो मुख्य परम्पराओं का अनुशीलन किया जाता है ये हैं –

1. दण्ड देने वाला अधिकारी नियुक्ति करने वाले अधिकारी के समान स्तर का होना चाहिये।
2. दण्ड देने से पूर्व नियोक्ता अधिकारी की राय ली जानी चाहिये।

3. अनुशासनात्मक कार्यवाही के प्रकार –

भारतीय नागरिक सेवा नियमों में अनुशासनात्मक कार्यवाही को दो भागों में बाँटा गया है। (1) छोटी शास्ति एवं (2) कठोर शास्ति ।

1. छोटी शास्तियाँ (कार्यवाही) निम्न है –

(1) परिनिन्दा।
(2) असंचयी प्रभाव से वेतन वृद्धि रोकना।
(3) संचयी प्रभाव से वेतन वृद्धि रोकना।
(4) पदोन्नति रोकना।
(5) कार्मिक की लापरवाही से की गई सरकार की आर्थिक क्षति को वसूल करना।

2. कठोर शास्तियाँ निम्न है –

(1) निरन्तर सेवा, ग्रेड या पद पर अथवा निरन्तर सेवा वेतनमान में अवनत कर देना या पेन्शन पर मिलने वाली राशियों में कमी कर देना।
(2) आनुपातिक पेन्शन पर अनिवार्य सेवा निवृति।
(3) राजकीय सेवा में पृथक करना (किन्तु यह भविष्य में राजकीय सेवा में नियोजन के लिये अयोग्यता नहीं है।)
(4) राजकीय सेवा से निष्कासित या बर्खास्त करना है। (यह आदेश सरकार में पुनः नियोजन के लिये अयोग्य है।)

4. भारतीय संविधान की धारा 311[53]–

वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में विभिन्न विभागीय और सेवा नियमों सम्बन्धी प्रावधानों के अतिरिक्त भारतीय संविधान के द्वारा भी संघ तथा राज्य सरकारों के लोक सेवकों को कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षायें दी गई हैं। इस अनुच्छेद का मूल उद्देश्य लोक सेवकों को अपेक्षित सुविधा प्रदान करना है। क्योंकि इसके द्वारा ही यह व्यवस्था की गई है कि वे

राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल के प्रसाद–पर्यन्त ही अपने पद पर बने रहेंगे। यह संवैधानिक धारा केवल असैनिक पदों पर ही लागू होती है। भारतीय संविधान की अनुच्छेद 311 में निम्नलिखित प्रावधान उल्लेखनीय है –

1. संघीय या राज्य असैनिक सेवा के सदस्यों को उन्हें नियुक्त करने वाले अधिकारी से नीचे स्तर के किसी भी अधिकारी द्वारा पद्च्युत नहीं किया जायेगा।
2. संघीय या राज्य स्तरीय असैनिक सेवा के किसी भी सदस्य को उसके पद से हटाने से पूर्व उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों से अवगत कराया जायेगा, उसे दोषारोपों के बारे में सुनवाई का युक्तियक्त अवसर दिया जायेगा। यदि उस पर कोई दण्ड आरोपित किया गया है तो उसके बारे में उसे अपील करने का अवसर दिया जायेगा।
3. एक व्यक्ति पदमुक्त/पंक्तिच्युत किये जाने के बाद भी वर्तमान सेवा नियमों के तहत् राष्ट्रपति अथवा गर्वनर से अपील करने का अधिकार रखता है।

(2. एवं 3.) प्रावधान उस समय लागू नहीं होगें जबकि – (1) एक लोक सेवक को ऐसे आचरण के आधार पद पदयुक्त या पंक्तिच्युत किया जाता है। जिसके कारण फौजदारी आरोप में उस पर मुकदमा चल रहा है। (2) यदि उसे पदमुक्त या पंक्तिच्युत करने वाली सत्ता कुछ कारणों से, जिसका वह लिखित में उल्लेख करे यह समझें कि उसमें व्यक्ति को कारण बताने का अवसर देना तर्कसंगत ढंग से व्यावहारिक नहीं है। (3) यदि राष्ट्रपति या गर्वनर के मतानुसार उस व्यक्ति को ऐसा अवसर देना राज्य की सुरक्षा के हित में उपयुक्त नहीं है।

4. जिस मामले में यह कार्यवाही की जा रही है, उसे सम्बन्धित अधिकारी द्वारा लिखित रुप में अभिलेखित किया जाना चाहिये।

इससे स्पष्ट होता है कि अनुच्छेद 311 में उल्लेखित प्रावधान लोक सेवकों की सेवा सुरक्षा के लिये महत्वपूर्ण है। लेकिन यही अनुच्छेद लोक सेवकों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही करने में समस्या उत्पन्न करता है। अतः इस अनुच्छेद में उल्लेखित विशिष्टताओं को वर्तमान समय की **सुशासन** कीमांग के अनुसार परिवर्तित करना आवश्यक है। जिससे की जनता को लोक सेवकों द्वारा अधिकारों के दुरूपयोग से संरक्षण दिया जा सके तथा वे जनता के सेवक बनकर अपना उत्तरदायित्व निभायें न कि जनता के मालिक बनकर उनका शोषण करे। वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत सुशासन के मापदण्ड़ों को स्थापित करने एवं उनके विकास हेतु यह अत्यन्त आवश्यक कदम होगा।

इस प्रकार अनुशासनात्मक कार्यवाही के अन्तर्गत अखिल भारतीय सेवाओं के तथा सेना के आयुक्त अधिकारी केवल राष्ट्रपति द्वारा पद्च्युत किये जा सकते है। साथ ही साथ

राज्यों में कार्यरत अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों को राज्य सरकार द्वारा दण्ड दिया जा सकता है। लेकिन कठोर दण्ड के लिये केन्द्रीय अनुज्ञा आवश्यक है। अन्य वर्गों के सम्बन्ध में अनुशासनात्मक कार्यवाही भारत सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा अधिकृत है। छोटी–मोटी अनुशासनात्मक कार्यवाही अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा विभागीय स्तर पर की जा सकती है।

वर्तमान कार्मिक प्रशासन में उपयुक्त अनुशासनात्मक वातारण बनाये रखने हेतु, उपरोक्त वर्णित अनुशासनिक कार्यवाही को अपनाया गया है। लोक सेवकों द्वारा आचरण नियमों के पालन करने हेतु यह आवश्यक भी है।

8. तुलनात्मक विश्लेषण –

कौटिल्यकृत अर्थशास़्त्र में वर्णित कार्मिक प्रशासन एवं वर्तमान भारत के कार्मिक प्रशासन के तुलनात्मक विश्लेषण को निम्नांकिंत सारणियों के द्वारा स्पष्ट किया गया है –

तालिका 3.1

भर्ती व्यवस्था

क्र.सं.	कोटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन के अन्र्तगत भर्ती व्यवस्था	वर्तमान भारत के कर्मिक प्रशासन में भर्ती व्यवस्था
1	**भर्ती के उद्‌देश्य –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भर्ती का मुख्य उद्देश्य राजकीय पदों पर सबसे योग्यतम, कुशल, सदचरित्र और निष्ठावान कार्मिकों की भर्ती करना था।	वर्तमान भारतीय संदर्भ मे भर्ती का मुख्य उद्‌देश्य राजनीतिक प्रभाव की समाप्ति, पक्षपातवाद पर रोक और अनुपयुक्त उम्मीदवारों को सेवा से बाहर रखना है।
2	**भर्ती के सिद्वांत –** 1. कौटिल्य ने भी लोकसेवकों की भर्ती हेतु **योग्यता सिद्वांत** को मान्यता दी है। लेकिन कुछ पदों की भर्ती में कुलीनता व वंशानुगतता जैसी विशेषताओं का समर्थन किया।	वर्तमान भारत में लोकसेवकों की भर्ती हेतु योग्यता सिद्वान्त को ही मान्यता दी है।
3.	**भर्ती के पद –** 1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भर्ती सैनिक व असैनिक दोनों प्रकार के पदों के लिए की जाती है।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में भर्ती के सन्दर्भ में केवल असैनिक पदों के लिए भर्ती की जाती है।
4.	**भर्ती के प्रकार –** 1. कौटिल्य ने भर्ती के दो प्रकार बताए है। (1) **प्रत्यक्ष भर्ती** राजा द्वारा तथा (2) **अप्रत्यक्ष भर्ती** आन्तरिकपरिषद् द्वारा की जाती थी।	भारत में **प्रत्यक्ष भर्ती** लोक सेवा आयोग द्वारा तथा **अप्रत्यक्ष भर्ती** पदोन्नति द्वारा की जाती है।
4.	**भर्ती के संस्थान –** 1. कौटिल्य ने भर्ती के लिए दो संस्थान बताये – 1. राजा 2. आन्तरिकपरिषद्।	वर्तमान भारत में लोक सेवाओं में भर्ती हेतु एक पृथक एवं स्वतन्त्र मंत्रालय **कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय** बनाया गया है। इस मंत्रालय

		का कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग भर्ती हेतु नीतियों एवं विनियमों का निर्धारण करता है।
	2.कौटिल्य द्वारा वर्णित **आन्तरिक परिषद्** राजा द्वारा नियन्त्रित भर्ती की एक प्रमुख सलाहकारी संस्था थी।	जबकि भारत में संविधान द्वारा भर्ती हेतु एक स्वतन्त्र व निष्पक्ष निकाय बनाया गया है। जो केन्द्र में **संघीय लोक सेवा आयोग** एवं राज्यों में **राज्य लोक सेवा आयोग** के नाम से जाना जाता है।
	3. कौटिल्य द्वारा वर्णित आन्तरिक परिषद् **त्रिसदस्यीय** थी।	भारत में विशेषतः संघ लोक सेवा आयोग में **09** से **11** सदस्य होते है। राज्य के लोक सेवा आयोगों में सदस्य संख्या अलग–अलग हो सकती।
6.	**भर्ती की प्रक्रिया –**	
	कौटिल्य ने भर्ती के लिए किसी भी प्रकार की **खुली प्रतियोगी परीक्षा पद्धति** के आयोजन एवं इस हेतु उम्मीदवारों को आकर्षित करने के लिए किसी भी प्रकार के **विज्ञापन** किये जाने का उल्लेख नहीं किया है।	जबकि भारत में भर्ती हेतु **खुलीप्रतियोगी परीक्षाओं** का आयोजन किया जाता है तथा योग्य उम्मीदवारों को आकर्षित करने हेतु **विज्ञापन प्रक्रिया** का प्रयोग किया जाता है।
7.	**भर्ती के अवसर –**	
	1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भर्ती के लिए उम्मीदवार को दिये जाने वाले अवसरों के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता है।	वर्तमान भारत में उम्मीदवारों को भर्ती हेतु उनकी श्रेणी जैसे– सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के अनुसार अवसरों में भिन्नता मिलती है।
	2. कौटिल्य ने सभी पदों पर महिला व पुरूषों को भर्ती में समान अवसर दिये जाने का समर्थन नहीं किया है।	भारत के संविधान में **समता का मौलिक अधिकार** के द्वारा महिला व पुरूषों को भर्ती में समान अवसर दिया गया है।

8.	**भर्ती में आरक्षण –** 1. कौटिल्य ने भर्ती में विशिष्ट प्रकार के **आरक्षण** का उल्लेख किया है। जो **चतुर्वर्ण्यस्वधर्म** सिद्वान्त पर आधारित था। 2. कौटिल्य ने कुछ विशिष्ट पद ब्राह्मण वर्ण एवं महिलाओं के लिए आरक्षित किये थे।	वर्तमान भारतीय लोक सेवाओं की भर्ती में **जातिगत** आरक्षण व्यवस्था को लागू किया गया है। भारत में आरक्षण महिला व पुरूष दोनों उम्मीदवारों को ही समान रूप से दिया गया है।
9.	**भर्ती हेतु सामान्य योग्यताएँ** 1. कौटिल्य ने राजकीय सेवाओं में भर्ती हेतु उम्मीदवार का राष्ट्र का नागरिक होना अनिवार्य बताया गया है। 2. कौटिल्य ने भर्ती में उम्मीदवारों के लिए शैक्षिक योग्यताओं के साथ ही साथ चारीत्रिक योग्यताओं पर सर्वाधिक जोर दिया है। 3. कौटिल्य ने लोक सेवकों के लिए भर्ती की निश्चित आयु के बारे में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा है।	जबकि भारत में लोक सेवाओं में आवेदन करने वाले व्यक्ति के लिये भारतीय नागरिकता का होना अनिवार्य है। भारत के पड़ौसी देशों जैसे नेपाल एवं भूटान के नागरिकों को सेवा पदों पर नियुक्ति की सीमित सुविधायें दी गई हैं। वर्तमान भारत में भर्ती हेतु उम्मीदवारों की शैक्षिक योग्यताओं पर आचरण सम्बन्धी योग्यताओं की अपेक्षा अधिक जोर दिया है। जबकि भारत में लोक सेवाओं में भर्ती के लिए उम्मीदवार की आयु 18 से 30 वर्ष तक निश्चित की है। इसमें आरक्षित वर्गों को अधिकतम आयु में छूट के प्रावाधान है।
10.	**भर्ती हेतु परीक्षा पद्धति** कौटिल्य ने शासकीय पदों पर सीधी भर्ती के लिये कुछ विशिष्ट परीक्षाओं का विस्तार से उल्लेख किया है। लेकिन परीक्षा की ये पद्धतियाँ **लिखित** थी या	जबकि वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न लोक सेवाओं में चाहें वे संघीय स्तर की हों या राज्य स्तर की। सीधी भर्ती के लिए

	नहीं इसके बारे में तथ्यात्मक जानकारी नहीं मिलती है। 2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह भी वर्णित है कि अमात्यों की नियुक्ति के बाद गुप्त उपायों द्वारा उनके आचरण की परीक्षा की जाये। 3. कौटिल्य ने अमात्यों के आचरण परीक्षण हेतु **चार** प्रकार की विशिष्ट परीक्षाओं का उल्लेख किया है। ये **धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा** और **भयोपधा** के नाम से वर्णित है।	लिखित प्रतियोगी परीक्षाओं को ही मान्यता दी गई है। जबकि वर्तमान भारत में भर्ती के लिए योग्य उम्मीदवार को नियुक्त होने से पूर्व ही परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती है। उसके आचरण की जाँच के लिए कोई परीक्षण प्रणाली नहीं है। वर्तमान में लिखित प्रतियोगी परीक्षाओं के अन्तर्गत परीक्षा योजना को दो भागों में विभाजित किया गया है –1. **प्रारम्भिक परीक्षा** (Preliminary Exam) 2. **मुख्य परीक्षा** (Main Exam)एवं **साक्षात्कार** (Interview)। उम्मीदवार को नियुक्ति हेतु उपर्युक्त दोनों परीक्षाओं को उतीर्ण करना आवश्यक है।
	3. अन्य विशेषताएँ – **(1)** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित भर्ती व्यवस्था सरल एवं कम समय में पूर्ण होने जाने वाली होती थी। **(2)** कौटिल्य ने उम्मीदवारों की योग्यताओं एवं आचरण पर सर्वाधिक बल दिया था।	 वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में भर्ती व्यवस्था जटिल एवं लम्बी प्रक्रिया है। जबकि भारत में भर्ती के अन्तर्गत उम्मीदवारों के शैक्षिक ज्ञान एवं बौद्धिकता पर अधिक जोर दिया गया है।

तालिका 3.2

पद–वर्गीकरण

क्र. सं.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पद–वर्गीकरण व्यवस्था –	वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन में पद वर्गीकरण व्यवस्था –
1.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था वर्णित है। अतः उस प्रशासन में एक ही प्रकार की केन्द्रीकृत लोक सेवा का उल्लेख मिलता है।	वर्तमान भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संघीय एवं राज्य क्षेत्रों के लिए भिन्न–भिन्न लोक सेवाऐं कार्यरत है। जैसे – अखिल भारतीय सेवा, केन्द्रीय सेवा, राज्य सेवाऐं, केन्द्रीय सचिवालय सेवाऐं इत्यादि।
2.	कौटिल्य काल में एक ही प्रकार की लोक सेवा कार्यरत थी। अतः पदों की संख्या सीमित थी।	जबकि भारत में लोक सेवाओं की संख्या अधिक है। अतः पदों की भी संख्या अधिक है।
3.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पद संख्या सीमित होने के कारण पद वर्गीकरण प्रणाली सरल व सुलझी हुई थी।	भारतीय कार्मिक प्रशासन में पदों की संख्या अधिक होने से पद वर्गीकरण प्रणाली कठिन एवं जटिल है।
4.	कौटिल्य ने केवल एक ही लोक सेवा केन्द्रीय लोक सेवा का वर्णन किया है तथा उसे विभिन्न स्तरों में विभाजित नहीं किया था।	वर्तमान भारतीय परिवेश में केन्द्रीय लोक सेवाऐं **सेवा** (Servcice), **श्रेणी** (Class) व **स्तर** (Grade) के रुप में विभाजित है।
5.	कौटिल्य ने पद वर्गीकरण में **सैन्य** व **असैन्य** दोनों ही प्रकार के पदों को सम्मिलित किया है।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में केवल **असैनिक** सेवाओं के पदों का ही वर्गीकरण किया गया है।
6.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदों को **राजपत्रित** एवं **गैर–राजपत्रित** दोनों ही प्रकारों में विभाजित नहीं किया था।	भारत में सेवाओं के पदों को **राजपत्रित** एवं **गैर–राजपत्रित** पदों में विभजित किया जाता है।

7.	कौटिल्य ने सम्भवतः पद दायित्व पर आधारितवर्गीकरण किया है।	जबकि वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में पद वर्गीकरण, **श्रेणी** (Rank) के आधार पर वर्गीकृत किये गये है।
8.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र से उपलब्ध तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि उस समय पदों के सवंर्ग प्रबन्धन के लिए राजा के अतिरिक्त कोई विभाग उत्तरदायी नहीं था।	जबकि भारत में पदों के वर्गीकरण व संवर्ग प्रबन्धन के लिए विशिष्ट मंत्रालय उत्तरदायी होता है।

तालिका 3.3

प्रशिक्षण

क्र.सं.	**कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन की प्रशिक्षण व्यवस्था**	**वर्तमान भारत के कार्मिक प्रशासन की प्रशिक्षण व्यवस्था**
1.	**प्रशिक्षण उद्‌देश्य –** (1) कौटिल्य ने लोक सेवकों में उनके पद सम्बन्धी दायित्वों के निर्वहन में सक्षम बनाने के लिए प्रशिक्षण की अपेक्षा **विशिष्ट योग्यताओं** (शारीरिक व मानसिक) का होना महत्वपूर्ण माना है। (2) कौटिल्य का मत है कि विशिष्ट योग्यताओं से युक्त कार्मिकों को पदों पर नियुक्ति करने मात्र से ही स्वयं कार्मिक, प्रशासनिक संगठन, उनके उद्देश्यों, कार्यों एवं जनता का हित सुनिश्चित हो जाता है।	वर्तमान भारत में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत यह मान्यता है कि लोकसेवकों को उनके पद सम्बन्धी दायित्वों के निर्वाह के लिए तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षण द्वारा ही सक्षम बनाया जा सकता है। जबकि वर्तमान भारतीय मान्यता यह है कि केवल प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा ही कार्मिकों का प्रशासनिक चरित्र उन्नत किया जा सकता है। जिससे की कार्मिक स्वयं, प्रशासनिक संगठन, उसके उद्देश्यों, कार्यों एवं जनहित के लिए उपयोगी हो सकें।

2.	**प्रशिक्षण के शासकीय अभिकरण –** (1) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अन्तर्गत वर्णित है कि उस समय कोई मंत्रालय या विभाग प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए अधिकृत नहीं किया गया था लेकिन केवल शिल्पियों एवं व्यापारिक श्रेणियों में कार्यरत कार्मिकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण **श्रेणियों** द्वारा ही दिया जाने का उल्लेख अवश्य किया गया हैं। (2) कौटिल्य ने कार्मिकों को उनके पदों पर स्थायीचयन के लिये केवल विशिष्ट योग्यताओं से युक्त होना ही अनिवार्य माना है।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन के अंतर्गत केन्द्र सरकार ने **कार्मिक, लोकशिकायत एवं पेंशन मंत्रालय** के **कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग** को संघीय सेवाओं के लोक सेवकों के प्रशिक्षण के लिये उत्तरदायी संस्थान बनाया है। वर्तमान भारत में विशेषतः अखिल भारतीय सेवाओं में लोकसेवकों की स्थायी पद पर नियुक्ति हेतु शासकीय प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा आयोजित परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना अनिवार्य माना है।
3.	**प्रशिक्षण के प्रकार –** **(1) अनौपचारिक प्रशिक्षण –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि उस काल में अनौपचारिक प्रशिक्षण प्रकार को अधिक महत्वपूर्ण माना गया था। **(2) औपचारिक प्रशिक्षण –** (1) कौटिल्य के विशेषतः राजा और युवराज के प्रशिक्षण हेतु विशिष्ट औपचारिक प्रशिक्षण प्रणाली का विस्तार से वर्णन किया है। (2) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में औपचारिक प्रशिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत प्रवेश–पूर्व प्रशिक्षण विधि को विस्तार से समझाया गया है। यहाँ ये विधि राज्य	वर्तमान भारत में भी लोक सेवकों के लिये इस प्रशिक्षण पद्धति को अपनाया गया है। वर्तमान भारतीय सेवाओं में जैसे अखिल भारतीय सेवाओं एवं राज्य स्तरीय सेवाओं में इस प्रशिक्षण प्रणाली को अपनाया है। भारत में लोक सेवा में कार्यरत कार्मिकों के लिये औपचारिक प्रशिक्षण के अन्तर्गत

	के युवराज को प्रशिक्षित करने हेतु प्रयोग करने की बात कही गयी है। (3) कौटिल्य ने बुद्धिमान एवं विशिष्ट योग्यताओं वाले लोक सेवकों को स्वतः ही सुशासन के लिये प्रशिक्षित माना है।	प्रवेश–पूर्व प्रशिक्षण, पुनरावलोकन प्रशिक्षण, सेवाकालीन प्रशिक्षण, और प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण इत्यादि सभी विधियों को लागू किया गया है। वर्तमान भारत में लोक सेवाओं को सुशासन के लक्ष्य हेतु विशिष्ट प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया जा रहा है।
4.	**अन्य विशेषताऐंः** (1) कौटिल्य ने पदों के चयन में कार्मिकों के लिए प्रशिक्षण के स्थान पर योग्यता को आधार माना। (2) कौटिल्य का मानना था कि लोक सेवकों को तकनीकी दक्षता के साथ ही मानवीय नैतिक गुणों से युक्त भी होना चाहिये। (3) कौटिल्य काल में सम्भवतः प्रशिक्षण व्यवस्था का आधार सेवा में आध्यात्मिक दृष्टिकोण का विकास था। जिससे कार्मिक अपने कार्यों द्वारा अधिक से अधिक शासन व जनता का हित कर सके। (4) कौटिल्यकालीन कार्मिकों प्रशासन में प्रशिक्षण व्यवस्था सैनिक एवं असैनिक दोनों ही प्रकार के अधिकारियों के लिए होती थी। (5) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित प्रशिक्षण व्यवस्था सरल, कम खर्चीली, कम अवधि वाली थी। (6) कौटिल्य ने कार्मिकों के अपने	 वर्तमान भारत में लोक सेवको के चयन के लिये प्रशिक्षण कार्यक्रम में सफल या प्रशिक्षित कार्मिक को ही योग्य माना है। वर्तमान भारत में मुख्यतः कार्मिकों को प्रशिक्षण तकनीकी दक्षता की प्राप्ति के लिये दिया जाता है। वर्तमान भारत में कार्मिकों का प्रशिक्षण भौतिक दृष्टिकोण पर आधारित है। क्योंकि प्रशिक्षित कार्मिकों को पदोन्नति, वेतन वृद्धि इत्यादि लाभ मिलते हैं। भारत में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत केवल असैनिक सेवाओं लिये ही प्रशिक्षण व्यवस्था की गई है। वर्तमान भारत में प्रशिक्षण पद्धति जटिल, अधिक समयावधि, खर्चीली एवं परीक्षाओं से युक्त उबाऊ पद्धति है। वर्तमान भारत में कार्मिकों को अलग से

	कार्यों को करते रहने के क्रम से ही प्रशिक्षित एवं दक्ष होने की बात की है।	प्रशिक्षण लेने के बाद कार्य में दक्ष होने को महत्व दिया है।

तलिका 3.4

पदोन्नति

क्र.सं.	**कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रशासन में पदोन्नति की व्यवस्था –**	**वर्तमान भारत के में पदोन्नति व्यवस्था –**
1.	**पदोन्नति का सिद्धान्त –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदोन्नति सम्बन्धित सिद्धान्तों का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया गया है। लेकिन अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य पदोन्नति में **योग्यता आधारित सिद्धान्त** को मान्यता देते थे।	भारत में कार्मिकों को पदोन्नत करने के लिये तीन सिद्धान्तों को मान्यता दी गई है, ये है – (1) **योग्यता** आधारित सिद्धान्त (2) **वरिष्टता** आधारित सिद्धान्त (3) **योग्यता एवं वरिष्ठता** दोनों पर आधारित सिद्धान्त।
2.	**पदोन्नति के लिए अभिकरण –** कौटिल्य ने **राजा** को उच्च स्तरीय कार्मिकों (अध्यक्ष) को पदोन्नत करने के लिए तथा सौ से सहस्त्र पण वार्षिक वेतन पाने वाले राजकर्मचारियों को पदोन्नत करने के लिए **अध्यक्ष** को अधिकृत किया था।	वर्तमान भारत में कार्मिकों को पदोन्नत करने के लिए संघीय एवं राज्य स्तर पर **लोक सेवा आयोग, भर्ती बोर्डों, विभागीय समितियों** को अधिकृत किया है।
3.	**पदोन्नति के मापदण्ड –** (1) कौटिल्य का मानना था कि जो कार्मिक आदिष्ट कार्य को पूरा करके स्वेच्छा से किसी दूसरे हितकर कार्य को भी करता है तो उसे पदोन्नति दी जानी	जबकि वर्तमान भारत में उच्च पदों पर पदोन्नति हेतु वरिष्ठता तथा योग्यता सिद्धान्तों के आधार पर तथा द्वितीय श्रेणी के राजपत्रित एवं तृतीय श्रेणी पदों

	चाहिए ।	पर प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा पदोन्नति दी जाती है।
	(2) कौटिल्य ने कार्मिकों को पदोन्नति देने के लिए किसी प्रकार की **गोपनीय रिपोर्ट** या **वार्षिक प्रतिवेदन** का उल्लेख नहीं किया।	वर्तमान भारत में कार्मिकों को पदोन्नत करने के लिए **गोपनीय रिपोर्ट** एवं **वार्षिक प्रतिवेदन** को एक मुख्य आधार माना गया है।
4.	**पदोन्नति का स्वरुप –** (1) कौटिल्य के मतानुसार कार्मिकों को पदोन्नति उनके राजकीय सेवा सम्बन्धी कर्त्तव्यों को निष्ठापूर्वक पूर्ण करने के सम्दर्भ में उपहार या सम्मान स्वरुप दिया जाना चाहिए।	भारत में कार्मिकों को पदोन्नति मुख्यतः उनके राजकीय सेवा में निरन्तर कार्यरत रहने के लाभ स्वरुप दी जाती है । इसमें कार्मिक का पद स्तर बढ़ता है तथा उसे भौतिक लाभ मिलता है।
	(2) कौटिल्य पदोन्नति का आधार सेवा–अवधि की अपेक्षा सेवा को निष्ठा पूर्वक करना रखा था।	वर्तमान भारत में कार्मिकों की पदोन्नति उनकी सेवा–अवधि के आधार पर दी जाती है।
	(3) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिकों की सेवा में अनिवार्य पदोन्नति व्यवस्था का कहीं उल्लेख नहीं किया है।	भारत में कार्मिकों के एक बार सेवा में चयनित हो जाने के बाद अनिवार्यतः पदोन्नति पाना एक विशिष्टता है।
5.	**पदोन्नति में विशेष लाभ –**	
	(1) कौटिल्य ने कार्मिकों को पदोन्नति देने में किसी प्रकार की आरक्षण प्रणाली का उल्लेख नहीं किया है।	भारत में कार्मिकों को आरक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत विशिष्ट आरक्षित वर्ग का होने से भी पदोन्नति का लाभ मिलता है।
	(2) कौटिल्यकाल में कार्मिकों को पदोन्नति देने के लिए पक्षपातपूर्ण व्यवहार निषेध था।	वर्तमान भारत में पदोन्नति व्यवस्था में निष्पक्षता का अभाव है।
	(3) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदोन्नति हेतु राजनीतिक हस्तक्षेप से तात्पर्य केवल यह था कि राजा स्वयं योग्य, सक्षम, ईमानदार, न्यायपरायण, सद्चरित्र, राज्य का हित चाहने वाले तथा राज्य	वर्तमान भारत में कार्मिकों की पदोन्नति में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण वरिष्ठता सिद्धान्त का उल्लंघन करके योग्यता आधारित पदोन्नति का बहाना

	के प्रति वफादार अध्यक्ष को सम्मानपूर्वक उच्चपद पर पदोन्नत करने की बात कही गई है।	करके अपने कृपापात्रों को पदोन्नति दी जाती है। उदाहरणार्थ राज्यों में मुख्य सचिव एवं पुलिस महानिरीक्षक के पदों पर।
6.	**पदोन्नति का महत्व –** (1) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदोन्नति देने का मुख्य उद्देश्य राज्य एवं शासक की निष्ठापूर्वक सेवा करने की भावना को बढ़ावा देना था और कार्मिकों का सेवा के प्रति मनोबल बढ़ाना था। (2) कौटिल्यकाल में पदोन्नति कार्मिकों के लिए वेतनमान और पदस्तर में बढ़ोत्तरी करने वाले साधन की अपेक्षा मानसिक संतुष्टि का साधन रुप में अधिक प्रचलित थी।	वर्तमान भारत में कार्मिकों को पदोन्नत करने का मुख्य उद्देश्य वरिष्ठ एवं योग्य कार्मिकों को उनकी सेवा अवधि के अनुरुप पदस्तर, वेतनमान एवं अन्य लाभों में वृद्धि देना है। जबकि भारतीय कार्मिक प्रशासन में पदोन्नति कार्मिकों के लिए वेतनवृद्धि और पदस्तर में बढ़ोत्तरी करने वाले भौतिक साधन के रुप में अधिक मान्य है।

तालिका 3.5

वेतनमान व्यवस्था

क्र. सं.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत वेतनमान	वर्तमान भारत के कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत वेतनमान
1.	**राज्य की आय का सिद्वान्त –** (1) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखत है कि लोकसेवकों के वेतन निर्धारण में राज्य की कुल आय (करो से प्राप्त) का चौथा भाग, राज्य की आय स्तर, आय–व्यय के सन्तुलन आदि को ध्यान में रखा जाए।	वर्तमान भारत में लोक सेवकों के वेतन निर्धारण करते समय देश की आर्थिक स्थिति, प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी का स्तर, सरकार की वित्तीय स्थिति, साधन–स्त्रोतों को गतिमान करने की इच्छा एवं योग्यता, देश के विकास के

		लिये इन स्त्रोतों पर पड़ने वाले भार इत्यादि तत्वों का ध्यान रखा जाता है।
2.	**आवश्यकता पूर्ति का सिद्धान्त –** (1) लोक सेवकों को इतना वेतन दिया जाय कि उनका कार्य के प्रति उत्साह बना रहे वह अपने धर्म (Duty) और अर्थ (Wealth) के मार्ग से विमुख न हो।	लोक सेवकों की आवश्यकता की पूर्ति अनुरूप वेतनमान निर्धारित किया जाता है।
3.	**समान कार्य के लिए समान वेतन–** **कौटिल्य अर्थशास्त्र मे समान कार्य के लिए समान वेतन** सिद्वान्त का स्पष्टतः नहीं किया गया है।	वर्तमान में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39(d) 2में कहा गया है कि राज्य अपनी नीतियों को इस प्रकार निर्देशित करेगा की स्त्री एवं पुरूष को समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाय।
4.	**उपयुक्त तुलना सिद्धात–** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उस समय राजकीय सेवा का वेतन मान निजी क्षेत्र के वेतनमान से अधिक एवं संतुष्टि कारक था।	वर्तमान भारतीय सदर्भ में भी लोकसेवकों के वेतनमान निर्धारण में यह ध्यान में रखा है कि निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र में कार्यरत कार्मिकों का वेतनमान समान या अधिक हो।
5.	**कार्य मूल्यांकन सिद्धान्त –** कौटिल्य वेतन निर्धारण के कार्यमूल्यांकन सिद्धान्त के समर्थक मालूम होते हैं। कौटिल्य का यह मानना था कि राजा को अनिवार्यतः गुप्तचरों के द्वारा सभी कार्मिकों पर चाहे वह उच्चस्तरीय हो या निम्नस्तरीय निगरानी रखनी चाहिए। इससे उनके कार्यों का मूल्यांकन सही ढंग से किया जा सकता हैं।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में इस सिद्धान्त को औधोगिक सेवाओं में लागू किया है। उच्च वेतन वाले पद भी कदाचित इस प्रकार के विश्लेषण का विषय बनते है।

6.	**आदर्श नियुक्ति कर्ता की अवधारणा–** कौटिल्य ने राजा को एक आदर्श नियुक्ति कर्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। अर्थशास्त्र में इस की पुष्टि राजा के लिये **आत्मसम्पन्न** शब्द के प्रयोग से होती है। साथ ही कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि अमात्यवर्ग राजा (नियोक्ता संस्था) से सुरक्षित कार्य वातावरण की अपेक्षा करता है।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत भारत सरकार एवं राज्य सरकारें सबसे बड़े और आदर्श नियोक्ता के रूप में कार्यरत है तथा लोक सेवकों को सुरक्षित कार्य वातावरण भी देती हैं।
7.	**न्यूनतम प्रतिफल–** कौटिल्य के मतानुसार हर राजकर्मचारी को उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार वेतन एवं अन्य लाभ दिया जाय तथा कार्मिकों को बाजार मूल्य से ऊँचे मूल्यों के अनुसार वेतन दिया जाये ताकि कर्मचारी कामचोरी न करें।	वर्तमान भारतीय लोकसेवकों के न्यूनतम वेतन निर्धारण में उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं जैसे परिवार, भोजन, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि को ध्यान में रखा गया है। इसी के अनुसार उन्हें उचित वेतन एवं अन्य लाभ दिये गये है।
8.	**वेतन निर्धारण की संस्थात्मक व्यवस्था –** **(1) वेतन आयोगों की नियुक्ति –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वेतन निर्धारण के लिए किसी भी **वेतन आयोग** जैसी संस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। राजा ही सर्वोच्च नियोक्ता बताया गया है। अतः वह ही लोकसेवकों की नियुक्ति एवं निष्कासन के लिये भी उत्तरदायी है। इसलिए राजा द्वारा ही लोकसेवकों का वेतन निर्धारित किया जाता था।	वर्तमान भारत में लोक सेवकों के वेतन निर्धारण के लिए केन्द्र सरकार द्वारा हर दस वर्ष में एक **वेतन आयोग** की नियुक्ति की जाती है। ये वेतन आयोग वेतनमान निर्धारण के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार को अपनी अनुशंसाये बताता है। लेकिन सरकार उनको मानने के लिये बाध्य नहीं है। वर्तमान में सातवें वेतन आयोग द्वारा दी गई अनुशंसाओं के आधार पर ही कार्मिकों का वेतन निर्धारित किया है।

	(2)वेतनमान हेतु पदाधिकारी – कौटिल्य ने वेतन व्यवस्था के लिये राजा को ही प्रमुख पदाधिकारी बताया है। **समाहर्ता** एवं **अक्षपटलमध्यक्ष** नामक पदाधिकारी सम्भवतः राजा की इस कार्य में सहायता करते हों। विभागीय दायित्व का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।	वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में विभिन्न मंत्रालय ही व्यक्तिगत ढंग से वेतन प्रशासन एवं विकास कार्य की देखरेख करते है। लेकिन उनके इस कार्य पर वित्त मंत्रालय की कड़ी निगरानी होती है।
	(3) महालेखाकार का दायित्व – कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित है कि **समाहर्ता** के अधीन **अक्षपटलमध्यक्ष** द्वारा उसके कार्यालय **(अक्षपटल)** में राज्य से सम्बन्धित सभी लोकसेवकों के वेतन सम्बन्धी मामलों तथा अभिलेखों को **निबन्ध पुस्तकों** (एकाउण्टस बुक) में नियमित रखा (अंकित) जाता था।	वर्तमान भारत में कार्मिकों के वेतन सम्बंधी मामलें तथा अभिलेख महालेखाकार कार्यालय द्वारा बनाये जाते है। इसका मुख्य अधिकारी महालेखाकार होता है। ये कार्यालय वित्त मंत्रालय के व्यय–विभाग के अन्तर्गत कार्य करता है।
9.	**वेतन का स्वरूप –** **(1) नकद मुद्रा में देना –** कौटिल्य ने लोकसेवकों को वेतन नकद मुद्रा में अदा करने के साथ ही यह बात कहीं है कि राजकोष में धन की कमी होने पर वेतन वन–उत्पाद, पशु, भूमि (खेती योग्य) व थोड़ी मुद्राओं के रूप में दिया जा सकता है।	वर्तमान भारत में लोकसेवकों को वेतन अनिवार्यतः नकद मुद्रा में ही दिया जाता है। किसी भी अन्य उत्पाद को वेतन के रुप में नहीं दिया जा सकता है।
	(2) वेतन का आधार – कौटिल्य ने राजकीय कार्मिकों को वेतन देने के लिए गणना का आधार वार्षिक रखा था।	वर्तमान भारत में लोकसेवकों को वेतन मासिक आधार पर दिया जाता है।
	(3) वेतन का विभाजन – कौटिल्यकाल में लोकसेवकों को मूल	वर्तमान भारत में कार्मिकों के वेतन के

	वेतन ही दिया जाता था, उसके अन्तर्गत किसी प्रकार का विभाजन नहीं होता था।	अन्तर्गत निम्न भाग है – मूल वेतन, मंहगाई भत्ता, शहरी भत्ता, मकान का किराया इत्यादि।
	(4) वेतन में वृद्धि – कौटिल्य ने कार्मिकों के पदानुसार निश्चित किये गये वेतनमानों में किसी प्रकार की वार्षिक वेतन वृद्धि एवं मंहगाई भत्ते में छः माह में बढोत्तरी का उल्लेख नहीं किया है।	वर्तमान भारत में वेतन में वार्षिक वृद्धि की अवधारणा को अपनाया गया है और प्रति छः माह के आधार पर मंहगाई भत्ते की बढ़ोत्तरी भी की जाती है।
	(5)पदानुसार वेतन – कौटिल्य की यह मान्यता थी की स्थायी या अस्थायी कर्मचारियों को योग्यता एवं कार्यक्षमतानुसार कम या अधिक वेतन भत्ते दिये जाये।	वर्तमान में भारतीय कार्मिकों को भी वेतन पद के दायित्वों के अनुपात में ही दिये जाते है।
	(6) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वेतनमान को कुल 12 श्रेणियों में विभाजित किया गया है तथा उनके कोई उपविभाजन नहीं किये गये हैं।	सातवें वेतन आयोग ने अपनी रिपार्ट में वेतन ग्रेडस को निर्धारित किया है। जिसे पी.वी. (Payband) 1 से पी. वी. 4 तक की श्रेणियों में विभाजित किया है।
	(7) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित वेतनमान संरचना में **न्यूनतम वेतन** (60 पण वार्षिक) व **उच्चतम वेतन** (48000 पण वार्षिक) है। ये वेतनमान अन्तर काफी ज्यादा रखा गया।	सातवें वेतन आयोग द्वारा सूझाये **न्यूनतम वेतन** (18,000 रू. मासिक) व **उच्चतम वेतन** (2.25 लाखरू.मासिक) के बीच है। यह वेतनमान अन्तर काफी कम है।

तालिका 3.6

अनुशासनात्मक कार्यवाही

क्र. सं.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अनुशासनात्मक कार्यवाही	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन के अन्तर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही
1.	**अनुशासनात्मक कार्यवाही के विषय –** कौटिल्य ने इसके अन्तर्गत आचरण संहिता के उल्लंघन, राजकोष की हानि (वित्तीय गबन), राजकीय सेवा में लापरवाही इत्यादि विषयों को सम्मिलित किया है।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में आचरण नियमों को उल्लंघन, गलत आचरण, वित्तीय भ्रष्टाचार, सेवाशर्तों के उल्लंघन एवं राजकीय कार्यों के प्रति लापरवाही इत्यादि विषयों को इस कार्यवाही के लिए आधार बनाया है।
2.	**अनुशासन अधिकारी –** 1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में चूंकि राजतन्त्रात्मक व्यवस्था का वर्णन है। अतः **राजा** को ही अमात्य एवं अध्यक्षों के विरुद्ध अनुशासनीय कार्यवाही का सर्वोच्च अधिकार दिया है। 2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में **अध्यक्ष** (विभागीय अध्यक्ष) के द्वारा विभागीय स्तर पर अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का भी उल्लेख किया गया है। 3. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में किसी अन्य संस्था से अनुशासनात्मक कार्यवाही करने हेतु कोई परामर्श नहीं किया जाता था।	वर्तमान भारत में संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत अखिल भारतीय सेवा, केन्द्रीय सेवाओं के लिए **राष्ट्रपति** एवं राज्यों की लोक सेवाओं के लिए **राज्यपाल** को इस कार्यवाही का सर्वोच्च अधिकारी बताया है। भारतीय कार्मिक प्रशासन में भी ज्यादातर अनुशासनीय मामलें विभागीय स्तर पर **विभागीय अध्यक्ष** द्वारा ही सुलझाये जाते हैं। वर्तमान भारतीय प्रशासन में इस कार्यवाही हेतु लोकसेवा आयोगों से परामर्श किया जाना आवश्यक है।

3.	**कार्यवाही की प्रक्रिया –**	
	1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित अनुशासनात्मक कार्यवाही अपेक्षाकृत सरल एवं शीघ्रता से की जाती थी।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में यह प्रक्रिया अपेक्षाकृत जटिल, धीमी तथा अधिक समय लेने वाली होती है।
	2. कौटिल्य कठोर दण्डात्मक अनुशासनात्मक कार्यवाही का समर्थन करते थे।	जबकि वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में अपेक्षाकृत कम कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाही का समर्थन किया गया है।
4.	**अन्य विशेषताऐं –**	
	1. कौटिल्य इस कार्यवाही के अन्तर्गत लोकसेवकों को स्थायी रूप से पदच्युत करने पर जोर देते थे।	वर्तमान भारतीय सन्दर्भ में इस कार्यवाही के दौरान लोकसेवक को अस्थायी एवं स्थायी दोनों प्रकार से पदच्युत करने की परम्परा है।
	2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लोकसेवकों को पद की सुरक्षा सम्बन्धी किसी भी छूट का उल्लेख नहीं किया गया है।	जबकि वर्तमान भारत में लोकसेवकों को उनकी सेवा में सुरक्षा के लिए संविधान की **धारा 311** मेंविशिष्ट छूटों का उल्लेख किया गया है।
	3. कौटिल्य ने कार्मिक प्रशासन में अनुशासन को बनाये रखने के लिए आचरण संहिता के कठोरता से पालन करने को बहुत महत्व दिया है।	वर्तमान भारतीय कार्मिक प्रशासन में अनुशासनात्मक पर्यावरण को बनाये रखने के लिए आचरण नियमों के पालन को उतना महत्व नहीं दिया गया है।

सन्दर्भ (References) –

(1) कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(6)

(2) उपर्युक्त, 1,(8)

(3) उपर्युक्त, 6,(1)

(4) उपर्युक्त, 1,(8)

(5) उपर्युक्त, 8,(4)

(6) उपर्युक्त, 1,(8)

(7) उपर्युक्त, 1,(9)

(8) अवस्थी एंव अवस्थी, ''**भारतीय प्रशासन**'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2017, पृष्ठ, 303

(9) ''**वार्षिक रिपोर्ट**'', कार्मिक, लोकशिकायत तथा पेंशन मंत्रालय, 2013–14

(10) एम.लक्ष्मीकांत, ''**लोकप्रशासन**'', टाटा मेकग्रा हिल एज्यूकेशन. प्रायवेट लि., न्यू देहली, परिशिस्ट / 45–46

(11) ''**वार्षिक रिपोर्ट**'', कार्मिक,लोकशिकायत तथा पेंशन मंत्रालय, 2013–14

(12) मुखर्जी, राधा कुमुद, ''**चन्द्रगुप्त मौर्या एण्ड हिज टाइम्स**'', 'मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रायवेट लि., देहली, पृष्ठ 81

(13) उपर्युक्त, पृष्ठ 81

(14) कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(8)

(15) उपर्युक्त, 1,(8)

(16) उपर्युक्त, 1,(7)

(17) उपर्युक्त, 1,(15)

(18) उपर्युक्त, 1,(10)

(19) उपर्युक्त, 1,(11)

(20) उपर्युक्त, 1,(20)

(21) उपर्युक्त, 1,(9)

(22) उपर्युक्त, 1,(9)

(23) उपर्युक्त, 1,(9)

(24) मुखर्जी, राधा कुमुद, ''**चन्द्रगुप्त मौर्या एण्ड हिज टाइम्स**'', 'मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रायवेट लि., देहली, पृष्ठ 82

(25) कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(9)

(26) उपर्युक्त, 1,(9)

(27) उपर्युक्त, 1,(9)

(28) उपर्युक्त, 2,(23)

(29) भारतीय संविधान, '**अनुच्छेद 315**'

(30) भारतीय संविधान, '**अनुच्छेद 317**'

(31) अवस्थी एंव अवस्थी, ''**भारतीय प्रशासन**'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2017, पृष्ठ 286

(32) उपर्युक्त, पृष्ठ 294

(33) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् – 1,(11)

(34) **आई.आई.पी.ए. :''द ऑरगनाइजेशन ऑफ द गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया''**,1971पृष्ठ 489

(35) अवस्थी एंव अवस्थी, ''**भारतीय प्रशासन**'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2017, पृष्ठ 280

(36) उपर्युक्त, पृष्ठ 284

(37) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 1,(16)

(38) उपर्युक्त, 2,(33)

(39) उपर्युक्त, 5,(3)

(40) एम.लक्ष्मीकांत, '**लोकप्रशासन**', टाटा मेकग्रा हिल एज्यूकेशन. प्रायवेट लि., न्यू देहली,

(41) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् – 2,(9)

(42) अवस्थी एंव अवस्थी, '**भारतीय प्रशासन,**' लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2017, पृष्ठ 321

(43) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् – 5,(3)

(44) उपर्युक्त, 5,(3)

(45) उपर्युक्त, 2,(7)

(46) उपर्युक्त, 2,(7)

(47) उपर्युक्त, 5,(3)

(48) विद्यालंकार, सत्यकेतु, ''**मौर्य साम्राज्य का इतिहास,**'' श्री सरस्वती सदन, ए–1/32, सफ़दरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली, 1992, पृष्ठ 292

(49) **रिपोर्ट**, द सेवेन्थ सेन्ट्रल पे कमीशन, 2015

(50) डॉ. जैन. सी. एम., डॉ. शर्मा, हरिशचन्द्र, डॉ. राठौड़, ए.एस., **लोक सेवीवर्गीय प्रशासन,** रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृष्ठ 316–317

(51) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 8,(1)

(52) उपर्युक्त, पृष्ठ 5,(3)

(53) भारतीय संविधान, ''**अनुच्छेद 311**''

अध्याय–चतुर्थ

वित्तीय प्रशासन तन्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य

1.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय व्यवस्था

1.II वर्तमान भारत में वित्तीय व्यवस्था

2.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय संस्थान

2.II वर्तमान भारत में वित्तीय संस्थान

3.I कौटिल्यकृतअर्थशास्त्र में बजट प्रक्रिया

3.II वर्तमान भारत में बजट प्रक्रिया

4.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकर व्यवस्था

4.II वर्तमान भारत में राजकर व्यवस्था

5.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण

5.II वर्तमान भारत में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण

6.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय भ्रष्टाचार एवं रोकथाम

6.II वर्तमान भारत में वित्तीय भ्रष्टाचार एवं रोकथाम

7. तुलनात्मक विश्लेषण

अध्याय–चतुर्थ

वित्तीय प्रशासन तन्त्र एवं सुशासनः अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य

1.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय व्यवस्था –

प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन, काव्य, कला और साहित्य आदि सभी में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इस **वर्गचतुष्टय** की उपयोगिता पर अनेक प्रकार से विचार किया गया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में चूंकि लौकिक जीवन (भौतिक जीवन) से सम्बद्ध क्रिया व्यापारों की विवेचना प्रस्तुत की है। अतः उसमें मोक्ष को छोड़कर त्रिवर्ग (धर्म–अर्थ–काम) के सम्बन्ध में ही मुख्यतः प्रकाश डाला गया है।[1]धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंका पारस्परिक सम्बन्ध बताते हुए कौटिल्य ने यह स्वीकार किया है कि उनमें प्रमुखता **अर्थ** की है और शेष दोनों वर्ग धर्म व काम इस अर्थ पर निर्भर हैं।इसलिए त्रिवर्ग की समुचित उपलब्धि और राज्य व समाज को इसकी उपलब्धता प्रदान करवाने के लिए भी अर्थ की ही अनिवार्यता को कौटिल्य ने तर्कपूर्ण ढ़ंग से वर्णित व स्वीकार किया है।

कौटिल्य के लिए राज्य की स्थापना व विकास के साथ–साथ ही जनता को सुशासन प्रदान करने में **अर्थ** का इतना अधिक महत्व था कि उन्होंने अपने महान ग्रंथ का नाम ही **अर्थशास्त्र** रखा था। कौटिल्य ने अपने इस ग्रन्थ के नामकरण की भी व्याख्या प्रस्तुत की है जो निम्न लिखित प्रकार से है –

''मनुष्याणांवृतिरर्थः,मनुष्यवतीभूमिरित्यर्थः,
तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति।''[2]

(अर्थात् मनुष्य की जीविका को अर्थ कहते है। मनुष्यों से युक्त भूमि को भी अर्थ कहते है। इस प्रकार की भूमि को प्राप्त करना और उसकी (रक्षा) करने वाले उपायों का निरुपण करने वाला शास्त्र अर्थशास्त्र कहलाता है।)

यही अर्थशास्त्र धर्म, अर्थ, काम में व्यक्तियों को प्रवृत्त करता है, उनकी रक्षा करता है और अर्थ (धन) विरोधी अधर्मों को नष्ट करता है। इसके अतिरिक्त कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकोष की अवधारणा अर्थ, गुण व महत्व को भी वर्णित किया है जो निम्नलिखित है –

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कोष की अवधारणा –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के **छटे अधिकरणमण्ड़लयोनी** में अध्याय **प्रकृति सम्पद** के अन्तर्गत राज्य की सात प्रकृतियों को क्रमशः वर्णित किया है उसमें पाँचवीं प्रकृति के रुप में कोश का वर्णन किया है।

आचार्य कौटिल्य का यह स्पष्ट मत था कि किसी भी राज्य में सुशासन को स्थापित करने के लिए उस राज्य के पास पर्याप्त वित्त (धन) की उपलब्धता हो और उसके शासक में इसे सक्षम तरीके से उपयोग करने की क्षमता भी होनी चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम राजकोश की आवश्यकता है, क्योंकि सारे राजकीय कार्य कोश पर निर्भर है। इसलिए **विजिगीषु**राजा को चाहिए कि वह अपने को सर्वोच्च शक्तिशाली शासक के रुप में स्थापित करने के लिए सबसे पहले कोश एवं सेना पर ध्यान दे।

''कोषपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात् पूर्व कोशमवेक्षेत।[3]

2. कोष का अर्थ –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उल्लेखित त्रिवर्ग(धर्म, अर्थ, काम) में अर्थ की जब राजकर के रुप में एकत्र कर या रक्षा के पुरस्कार हेतु या सेवा के प्रतिदान के निमित्त शासन को प्राप्ति होती है और एक संरक्षित स्थान पर उसे एकत्र कररखा जाता है तब उसी को **राजकोष** के नाम से भी जाना जाता है।

3. कोष का गुण –

कौटिल्य का मत है कि राजकोश ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्वजों की तथा अपनी धर्म की कमाई (नियमानुसार कमाया गया धन) संचित हो। इस प्रकार धान्य, सुवर्ण, रजत (चांदी) नाना प्रकार के बहुमूल्य रत्न तथा हिरण्य से भरा पूरा हो, जो दुर्भिक्षएवं आपत्ति के समय सारी प्रजा की रक्षा कर सके। इन गुणों से युक्त खजाना **कोशसम्पन्न** कहलाता है।

'धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरुप्यप्रायश्चियत्रस्थूलरत्नहिरण्यों,

दीर्घामप्यापदमनयतिं सहेतेति कोशसम्पत्।[4]

4. कोष का महत्व –

कौटिल्य ने कोष के महत्व को निम्न बिन्दुओं की सहायता से समझाया है –

(1) राज्य के लिए कोष का महत्व –

कौटिल्यकृत अर्थशाऱ्त्र मे राजा को अपने राज्य का सर्वोत्तम शासन अर्थात् सुशासन को संचालित करने और अपनी शक्ति का निर्माण करने के लिए व्यवहारिक दृष्टि से कोश को संचित व सुरक्षित करने की सलाह दी है। मानव कल्याण के लिए एक सुशासित और आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न प्रशासन ही एक मात्र उपाय था। कौटिल्य द्वारा विवेचित राज्य

एक क्रियाशील राज्य था। राज्य में कृषि,पशुपालन,व्यापार और वाणिज्य के प्रोत्साहन में राजा (शासक) का प्रत्यक्ष व वैध उत्तरदायित्व था। राजा को अपने राजकीय प्रशासन को सुव्यवस्थित तरीके से चलाने के लिए चार विद्याओं जैसे आन्वीक्षकी,त्रयी,वार्ता, व दण्डनीति का अनिवार्यतः ज्ञान होना आवश्यक था। कौटिल्य ने **वार्ताविद्या** के विषय कृषि,पशुपालन और वाणिज्य बताये है। यह वार्ताविद्या ही धान्य, पशु, हिरण,ताम्र, चाँदी, सोना (खनि पदार्थ) और नौकर–चाकर आदि को देनेवाली परमउपकारिणी विद्या है। इसी विद्या के ज्ञान से उपार्जित कोष और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष और परपक्ष को वश में कर लेता है।[5]

(2) राजा के लिए कोश का महत्व –

कौटिल्य ने राजा के लिए कोष के महत्व को निम्नाकिंत तरीके से समझाया है –**i. राजा की दैनिक दिनचर्या में वित्तीय दायित्व –**

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण विनयाधिकारिक के अध्याय अठारह राजप्रणिधि (राजा के कार्य व्यापार) के अन्तर्गत राजा की दैनिक दिनचर्या का उल्लेख किया है। इसमें राजकार्यों को सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने हेतु राजा की दैनिक दिनचर्या को दिन – रात को अन्तर्गत आठ घड़ियों में बांटा गया है। इनमें यह बताया गया है कि दिन के पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा को बीते हुए दिन के आय–व्यय की जाँच करनी चाहिए। दिन के **चतुर्थ भाग** में बीते हुये दिन की अवशिष्ट आमदनी को संभालना चाहिए।

ii. राजा के नैमित्तिक व्रत के रूप में –

कौटिल्य ने **उद्योग करना** राजा के विविध नैमित्तिक व्रतों में से एक बताया है। इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवस्था सम्बन्धी व राज्य सम्बन्धी कार्यों को उचित रीति से पूरा करें। उद्योग ही अर्थ (वित्त) का मूल है। इसके विपरित उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है। राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों (योग) व प्राप्तव्य अर्थों(क्षेम) दोनों का ही नाश हो जाता है, किन्तु अगर राजा उद्योगी है तो वह शीघ्र ही उद्योग का मधुर फल प्राप्त करता है और इच्छित सुख सम्पदा का स्वयंभी और उसकी जनता भी उपभोग करती है।[6]

iii. सेना के संगठन में सहायक –

कौटिल्य अर्थशास्त्र में यह भी कहा गया है कि राजा कोश के आधार पर ही अपनी सेना का संगठन करता है और अपनी रक्षा करने में समर्थ होता है।

iv. वैदेशिक व्यवहार में महत्व –

वैदेशिक व्यवहार की दृष्टि से भी राजा कोश एवं सेना के बल पर ही विजिगीषु राजा की पदवी प्राप्त कर सकता है।

कोष की वृद्धि, संरक्षण एवं कोश क्षय इत्यादि के बारे में भी कौटिल्य ने विस्तार सेलिखा है। यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि कौटिल्य यह मानते थे कि राज्य के सफल संचालन के लिए कोश परम आवश्यक है, परन्तु उसको (राजकोश) एकत्र करने में वे राजा को स्वतन्त्रता एवं स्वेच्छाकारिताबरतने के विरूद्ध थे।

(ब) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य की अर्थनीति के सिद्धान्त –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र मे वर्णित राजव्यवस्था की अवधारणा के अन्तर्गत एक सुदृढ़ राज्य की पृष्ठभूमि उसके आर्थिक उन्नयन और विकास पर आधारित होती है। कौटिल्य के द्वारा उल्लेखित राज्य का आर्थिक ढाँचा और उसकी औद्योगिक व्यवस्था की संरचना का मूल आधार भूमि (Land) व उससे प्राप्त विविध उत्पादों जैसे– खनिज, धातु, कृषि व पशु उत्पाद, वन उपज इत्यादि थे।

कौटिल्य की अर्थनीति मुख्यतःतीन सिद्धान्तों जैसे राजा का स्वामित्व,जनता का स्वामित्व व सार्वजनिक वितरण पर राज्य का नियन्त्रण पर आधारित थी। इन तीनों सिद्धान्तों के अनुरुप ही राज्य की अर्थव्यवस्था कार्य करती थी।[7] इन तीनों सिद्धान्तों पर आधारित आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार से है–

(1) राज्य के स्वामित्व पर आधारित उद्योग –

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत ऐसे उद्योगों को रखा गया है जिस पर राज्य का ही पूर्ण स्वामित्व होता है और वे राज्य के द्वारा ही संगठित व संचालित किये जाते हैं। इन उद्योगों में पूंजी (Capital) श्रम (Labour) और प्रबन्ध (Management) इत्यादि का सम्पूर्ण दायित्व राज्य पर ही होता है। इस प्रकार की आर्थिक नीति का परोक्ष उद्देश्य एक सशक्त, आत्मनिर्भर और सर्वसाधनसम्पन्न राज्य की प्रतिष्ठा करना है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के मतानुसार इसमें सुवर्ण, रजत, तांबा, शीशा, लोहा, टिन,मणि,शिलाजित, प्रस्तर और लवण (नमक) आदि **आकर उद्योगों** (Industries based on mines) का प्रमुख स्थान है।

(2) जनता के स्वामित्व पर आधारित उद्योग –

इन दूसरे प्रकार के उद्योगों का सम्बन्ध जनता के स्वामित्व से है। इसके अन्तर्गत जो उद्योग रखे गये है वे राज्य के नागरिकों की **निजी सम्पत्ति**(Private Property) के रुप में वर्गीकृत किये गये है। इसके सघंटन, संचालन, पूंजी, श्रम व प्रबन्ध इत्यादि का दायित्व नागरिकों पर निर्भर करता है। इन पर जनता का पूर्ण स्वामित्व होता है। ऐसे उद्योगों मेंकृषि, सूत, शिल्प, गोपालन, अश्वपालन, हस्तिपालन, सुरा, माँस, वेश्यालय, नट, नर्तक, गायन, वादन आदि को शामिल किया गया है।

(3) सार्वजनिकवितरण व्यवस्था पर राज्य नियन्त्रण –

यह कौटिल्य की अर्थनीति का तीसरा सिद्धान्त था, जो समाज मे ऐसी सुव्यवस्था बनाये रखने से सम्बद्ध है जिसके अनुसार राज्य के सभी उत्पादन (Production) वितरण (Distribution)और उपभोग (Consumption) पर शासन सत्ता (राज्य) का प्रभावी व कठोर नियन्त्रण हो।

उक्त सभी प्रकार के उद्योगों व व्यवसायों पर राज्य का स्वामित्व (State-ownership) इसलिए माना गया है कि राजा का अर्थबल (आर्थिक व्यवस्था) सशक्त बना रहे और समाज का सभी वर्ग उद्योगशील (क्रियाशील) बना रहे।

1.II वर्तमान भारत में वित्तीय व्यवस्था (Financial System in Persent India) –

प्रशासन में वित्तीय प्रबन्ध का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वित्त को प्रशासन का जीवन रक्त (life blood) कहा जा सकता है। सभी प्रशासकीय कार्यों पर धन व्यय होता है, प्रशासकीय कृत्यों के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति की जाती है तथा उनके वेतनमान के लिए वित्त (धन) आवश्यक है। इसलिए प्रशासकीय इंजन का ईंधन वित्त है पहले का परिचालन दूसरे के बिना असंभव है।

वर्तमान भारत की संघीय शासन व्यवस्था के सफल संचालन एंव जनता को सुशासन के लाभ देने हेतु दृढ़ वित्तीय व्यवस्था का बहुत महत्व है। राजस्व आम नागरिक से ही प्राप्तकिया जाता है। अतः सरकार का नैतिक कर्त्तव्य है कि वह उस धन को कुशलता तथा मितव्ययिता से व्यय करे। अकुशल वित्तीय व्यवस्था के कारण शासन जनता से दूर हो जाता है और अन्त में शासन का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है। आधुनिक समय में शासकीय व्यय में असाधारण वृद्धि के कारण ये नितान्त आवश्यक हो गया है कि वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी उत्तम सिद्धान्तों, उपकरणों एवं पद्धति का विकास किया जाए व हर शासक द्वारा उनका पालन किया जाना चाहिए। वित्तीय प्रशासन बड़े निकट से जनता के सामाजिक, आर्थिक आचरण को प्रभावित करता है। वित्तीय प्रशासन में सुशासन की स्थापना हेतु उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

1. भारतीय वित्तीय प्रशासन में मुख्यतः निम्नाकिंत तथ्य सम्मिलित हैं–

(1) आय–व्यय का अनुमान लगाना अर्थात् आगामी वित्तीय वर्ष हेतु बजट तैयार करना।

(2) इस अनुमानित बजट को व्यवस्थापिका से स्वीकृत कराना।

(3) आय–व्यय सम्बधी सिद्धान्तों को कार्यान्वित करना, जिसे बजट का निस्पादन कहते हैं।

(4) कोश प्रबंध अर्थात् जमा की सुरक्षा और व्यय के लिए धन निकालने की व्यवस्था।

(5) बजट सम्बन्धी प्रकियाओं के सम्बन्ध में कानूनी उत्तरदायित्व लेना तथा परीक्षण करना।

वित्तीय प्रशासन के उपर्युक्त कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अनेक संगठनों का सहारा लिया गया है। भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था है, अतः संघीय कार्यपालिका एवं राज्यों की पृथक कार्यपालिकाएं राजकीय आय–व्यय और ऋणों का संगठन करती है और जाँच विभाग के रूप में केन्द्रीय संस्था **नियन्त्रकतथामहालेखा परीक्षक** सम्बन्धित आय–व्यय के लेखाओं की जाँच करता है। भारत सरकार का **रिजर्व बैंक** (केन्द्रीय बैंक) सरकारी खजांची के रूप में कार्य करता है। भारत में वित्तीय प्रशासन का प्रमुख उद्देश्य वित्तीय स्त्रोतों का सही ढंग से प्रयोग करना है।

2.भारत में वित्तीय प्रशासन के अभिकरण

(Agencies of Financial Administration in India) –

भारतीय वित्तीय प्रशासन में वे समस्त क्रियाएँ आती है, जो लोक सेवाओं पर व्यय हेतु आवश्यक धन राशि की **प्राप्ति**, **व्यय** तथा **लेखांकन**व **लेखापरीक्षण** से सम्बन्ध रखती है। ये क्रियाएँ एक नियन्त्रण श्रृंखला के रूप में कार्य करती है तथा निम्नलिखित अभिकरणों द्वारा सम्पादित होती है[8]–

(1) कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका (The Executive and Legislature)

(2) वित्त मंत्रालय (Ministry of Finance)

(3) लेखा परीक्षण विभाग(Audit Department)

(4) संसदीय समितियाँ (Parliamentery Committee)

इन विभिन्न अभिकरणों का कार्य योजना बनाना, निश्चिय करना निष्पादन तथा नियन्त्रण करना है।

(i) कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका –

भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है अतः संघीय एवं राज्यों में पृथक–पृथक कार्यपालिका कार्यरत है। संघीय एवं राज्य स्तर पर कार्यपालिका शाखा द्वारा वर्ष भर के लिए अपना वित्तीय कार्यक्रम बना लिया जाता है और वो केन्द्र में संसद एवं राज्यों में विधानमण्डलों को सरकार की वार्षिक वित्तीय आवश्यकओं के बारे में सूचित करती है। इस प्रकार भारत में बजट बनाने का उत्तरदायित्व केन्द्रीय एवं राज्यों की कार्यपालिका का है। केन्द्र में **संसद** एवं राज्यों के **विधानमण्डल** धनराशि उपलब्ध कराने तथा सरकार को अनुदान देने की आज्ञा प्रदान करने वाली संस्थायें हैं।

(ii) वित्तमंत्रालय (Ministry of Finance)

वित्तमंत्रालय सरकार के **वित्त का प्रशासन** करता है। वस्तुतः वित्तीय प्रशासन का सम्पूर्ण ताना–बाना इसी मंत्रालय के चारों ओर बुना हुआ है। वित्तमंत्रालय का यह

उत्तरदयित्व है कि वह अन्य प्रशासकीय मंत्रालयों के साथ परामर्श करके वार्षिक वित्तीय विवरण तैयार करे। बजट पर संसद का अनुमोदन प्राप्त हो जाने के पश्चात् वित्त मंत्रालय सरकार के सम्पूर्ण व्यय का नियन्त्रण करता है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रशासकीय मंत्रालयों द्वारा सार्वजनिक धन के व्यय में मितव्ययिता बरती जाये। राज्यों में भी **वित्तीय–विभाग** बनाये गये है।

(iii) लेखा–परीक्षण विभाग (Audit Department)–

द्रव्य का व्यय हो चुकने के बाद सम्पूर्ण व्यय पर एक स्वतन्त्र लेखा परीक्षण विभाग के द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है ताकि व्यय कि वैधता तथा औचित्य का निर्धारण किया जा सके। संसद के आदेशों का पालन किया गया है या नहीं, ये जानने के लिए यदि कोई प्रभावशाली व्यवस्था न की जाए तो कर लगाने तथा व्यय स्वीकार करने के सम्बन्ध में संसदीय अनुमोदन का कोई अर्थ नहीं रह जाता और न उसका कोई मूल्य ही है। स्वतंत्र परीक्षण यही ज्ञात करने की युक्ति है। भारत में शासकीय अनुदानों पर संसद द्वारा मतदान कर चुकने पर नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक निरीक्षण करता है और ये देखता है कि विनियोग अधिनियम (Appropriation Act) में स्वीकृत अनुमानित मद के अनुसार ही व्यय किया गया है या नही। दूसरे वह यह भी देखता है कि व्यय की राशि स्वीकृत धनराशि से अधिक तो नहीं है। भारत के संविधान के **अनुच्छेद 148 सें 151**तक **नियन्त्रकतथा महालेखा परीक्षक** के कार्यों तथा स्थिति को स्पष्ट व्यक्त किया गया है। यह कार्यपालिका से स्वतन्त्र रहकर कार्य करता है और संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। इस अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह जनता की प्रतिनिधि सभा (संसद) को उन व्ययों के विषय में सूचना दे जो संसद द्वारा घोषित मन्तव्यों के अनुरूप नहीं है और अनुदान के दुरूपयोग पर भी ध्यान आकर्षित करे।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि भारत में संघीय व्यवस्था होने के बावजूद भी राज्यों के लेखा परीक्षण को नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के नियन्त्रण में रखा गया है तथा राज्यों में पृथक से नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक पदाधिकारियों की नियुक्ति नहीं की गई है। येअपने अधीनस्थों द्वारा राज्यों के लेखा परीक्षण का कार्य करवाता है।

(iv) संसदीय समितियाँ –

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत करता है जो **'उन्हें संसद के प्रत्येक सदन मेंरखने के लिए उत्तरदायी है।'**[9]समय की कमी के कारण संसद केन्द्रीय सरकार के सभी लेखाओं की जटिलताओं को समझने, उनके विषय में महालेखा परीक्षक की टिप्पणियों पर ध्यान देने तथा नीतियों के क्रियान्वन के

दौरान सरकार द्वारा मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता पर समुचित ध्यान देने में असमर्थ रहती है। फलस्वरूप, संसद ने दो समितियाँ**लोकलेखा समिति**(Public Account Committee)तथा **अनुमान समिति** (Estimate Committee) का गठन किया है। ये समितियाँ निम्नांकित है –

1. लोक लेखा समिति (Public Account Committee) -

वित्तीय प्रशासन की संरचना में इस समिति का कार्य अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ठ है। नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों के सन्दर्भ में यह निम्नलिखित बातों कि पुष्टि सें केन्द्रीय सरकार के लेखाओं का परीक्षण करती है –

(1) लेखाओं में जो भुगतान दिखाया गया है, क्या वह उस सेवा या प्रयोजन के लिए है जिसके कारण वह धन खर्च किया गया है तथा वैध तरीके से प्राप्त है, और उपयोग किया गया है।

(2) क्या व्यय उस सत्ता के अनुरूप है जो उसको नियन्त्रित करती है।

2. अनुमान समिति (Estimate Committee) –

इसे मितव्ययिता समिति भी कहते हैं। यह सरकार के उद्देश्यों तथा नीति के अधीन व्यय सम्बन्धी मितव्ययिता का सुझाव देती है।

3. संसद की विभागीय (विषय) सम्बन्धित स्थायी समितियों (Departmental Committees)–

संसद में मंत्रियों पर अधिक कार्यभार होने के कारण लोक सभा के नियमों की समिति की अनुशंसा पर 8 अप्रेल 1993 में निर्णय लिया गया कि विभागीयसमितियों का गठन किया जाय, जो अन्य विषयों के अतिरिक्त, विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की अनुदान मांगों की, संसद में विचार तथा मतदान किऐ जाने से पूर्व संवीक्षा कर ले।वर्तमान में संसद की 24 स्थायी समितियाँ है। अब हर समिति में 21 लोक सभा तथा 10 सदस्य राज्य सभा से होते है। इनमें से 16 समितियाँ लोक सभा की तथा 8 राज्य सभा की है।इस प्रकार विभागीय स्थायी समितियों के निम्न चार कार्य है।

(1) सम्बन्धित मंत्रालयों की अनुदान मांगो पर विचार करना, और सदनों को उन पर प्रतिवेदन देना।

(2) सम्बन्धित मंत्रालयों से सम्बन्धित विधेयकों की जाँच करना।

(3) मंत्रालयों को वार्षिक प्रतिवेदनों पर विचार करना और उन पर प्रतिवेदन बनाना; और

(4) सदनों में प्रस्तुत किये गये राष्ट्रीय आधार दीर्घकालीन नीति प्रपत्रों पर विचार करना।

4. वित्त आयोग (Finance Commission)–

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 280**के तहत एक वित्त आयोग का प्रावधान किया गया है। वित्त आयोग का गठन राष्ट्रपति द्वारा प्रति पाँच वर्ष में अथवा आवश्यक होने पर इससे पहले भी किया जा सकता है। आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है।[10]

(i) वित्त आयोग का संगठन –

वित्त आयोग में एक अध्यक्ष एवं 4 अन्य सदस्य होते हैं। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। ये सदस्य अपने पद पर राष्ट्रपति के आदेश में निर्धारित समय तक बने रह सकते है। इनकी पुनर्नियुक्ति भी हो सकती है।

संविधान में संसद को आयोग के सदस्यों की योग्यता और चयन के ढंग के निर्धारण करने का अधिकार दिया है। इसलिए संसद ने **वित्त आयोग अधिनियम, 1951** के द्वारा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की योग्यता का निर्धारण किया है। आयोग का अध्यक्ष वही व्यक्ति हो सकता है, जिसे सार्वजनिक कार्य का गतिविधियों का अनुभव हो। आयोग के चार सदस्यों की नियुक्ति निम्नलिखित तरह से की जाती है –

(1) वह व्यक्ति जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या ऐसी योग्यता रखता हो।

(2) वह व्यक्ति जो सरकार की वित्तीय एवं लेखा प्रणाली का उत्तम ज्ञान रखता हो।

(3) वह व्यक्ति जिसे वित्तीय एवं प्रशासनिक विषयों का व्यापक अनुभव हो।

(4) वह व्यक्ति जिसे अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान हो।

(ii) वित्त आयोग के कार्य –

संविधान के अनुच्छेद 280 के अनुसार ये राष्ट्रपति को निम्न विषयों से सम्बन्धित अपनी सिफारिशें भेजता है –

(1) करों से प्राप्त कुल प्राप्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच बटँवारा और प्राप्तियों के हिस्से का राज्यों में आवंटन।

(2) केन्द्र द्वारा भारत की संचित निधि में से राज्यों को दी जाने वाली अनुदान सहायता को नियन्त्रित करने के सिद्धान्त।

(3) राज्यवित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के संसाधनों की संपूर्ति के लिए राज्य की संचित निधि में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उपायों से सम्बन्धित अनुशंसा।

(4) वित्त दृष्टि से हितकर कोई अन्य विषय जिसे राष्ट्रपति ने भेजा हो।

(5) अनुच्छेद 273 के अनुसार आयोग प्रतिवर्ष जूट और जूट उत्पादों के निर्यात शुल्क से हुई निवल प्राप्ति के हिस्से में से असम, बिहार, उड़ीसा एवं प. बंगाल राज्यों को दी जाने वाली

राशि भी निर्धारित करता है।

भारत में संघीय व्यवस्था होने की वजह से केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच करों से प्राप्त राशियों के उचित बटँवारे एवं राज्यों को दिये जाने वाले केन्द्रीय सरकार के अनुदानों के अन्तर्गत सन्तुलन बनाये रखने के लिए एवं देश में वित्तीय एकता बनाये रखने के लिए इस प्रकार की संवैधानिक संस्था का निर्माण किया गया है। ये अपने आप में भारतीय वित्तीय प्रशासन की विशिष्टता है।

3. वर्तमान भारत में आपातकालीन परिस्थितियों में वित्तीय उपबन्धों की व्यवस्था–

वर्तमान भारतीय संघीय संविधान के अन्तर्गत कुछ विशिष्ट आपातकालीन परिस्थितियों में वित्तीय प्रशासन के सन्दर्भ में निम्नलिखित उपबन्ध सम्मिलित किये गये हैं–

1. **अनुच्छेद 352**–अगरइसके तहत् राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा की जाती है। तो वह आदेश दे सकता है कि संघ और राज्यों के बीच आय–वितरण सम्बन्धी या कोई भी उपबन्ध चालू वित्तीय वर्ष में उसके निर्देशानुसार संशोधित होते रहेंगे, परन्तु ऐसा आदेश यथाशीघ्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जायेगा।
2. **अनुच्छेद 356** –इसके तहत् राष्ट्रपति आपातकाल की घोषणा करे और यदि लोक सभा का सत्र नहीं चल रहा हो, तो राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की स्वीकृति दे सकता है।
3. **अनुच्छेद 360** – इसके तहत् यदि राष्ट्रपति को ये विश्वास हो जाये की भारत में या उसके किसी भाग में आर्थिक साख को खतरा है तो वह वित्तीय संकट (Financial Emergency) की घोषणा कर सकता है। इस घोषणा के अन्तर्गत वह संघ तथा राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन भत्तों में कमी कर सकता है। वह आदेश दे सकता है कि राज्य के समस्त वित्त–विधेयक उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किये जायें। राष्ट्रपति केन्द्र तथा राज्यों में धन सम्बन्धी बंटवारें के प्रावाधानों में भी आवश्यक संशोधन कर सकता है।

ये उल्लेखनीय है कि अभी तक भारत में इस प्रकार के आर्थिक संकट काल की घोषणा नहीं की गई है।

2.I. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय संस्थान–

कौटिल्य के लिए एक सुदृढ़ राजव्यवस्था में वित्त (कोश) सबसे अहम मुद्दा है इसलिए यह अप्रत्याक्षित नहीं है कि उन्होनें प्रशासन की कार्य–प्रक्रियाओं में सबसे ज्यादा महत्व वित्त विभाग शासन को दिया है।ये वित्तविभाग ही राज्य की सम्पूर्ण वित्तीय व्यवस्था

और वित्तीय प्रशासन के प्रति उत्तरदायी था। यहाँ ये जानना भी आवश्यक है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार उस समय वित्त विभाग के अन्तर्गत ही राज्य की समस्त प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ भी सम्मिलित थी। लेकिन यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि कौटिल्य ने वित्त विभाग का पृथक से वर्णन नहीं दिया था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के **द्वितीय अधिकरण अध्यक्षप्रचार** के**5,6,7** अध्यायों के अन्तर्गत प्रसंगानुसारवित्त विभाग एवं उससे सम्बन्धित पदाधिकारियों व उनके कार्यों का विस्तार से वर्णन किया है। जिसके फलस्वरूप वित्त विभाग के संगठनात्मक स्वरूप को समझा जा सकता है। वित्त विभाग के संगठन का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है–

(1) वित्तविभागका संगठन–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार उस समय वित्त विभाग में प्रशासकीय व संरचनात्मक दृष्टिकोण से चार प्रमुख विभाग सम्मिलित किये गये थे। जो निम्नांकित हैं –

(i)समाहर्ता अधिकरण (राजस्व विभाग)

(ii) सन्निधाता अधिकरण (कोष विभाग)

(iii) अक्ष पटल कार्यालय (लेखा विभाग)

(iv) कार्मान्तिक अधिकरण (सार्वजनिक उद्योग विभाग)

(i) समाहर्ता अधिकरण (राजस्व विभाग)–

कौटिल्य ने लिखा है कि केन्द्रीय शासन के 18 तीर्थों (विभागों) में से एक विभाग समाहर्ता अधिकरण(राजस्व विभाग) भी था।[11]इस विभाग का प्रमुख पदाधिकारी **समाहर्ता** कहलाता था। ये अमात्य मंत्री स्तर का उच्चाधिकारी होता था तथा ये **अर्थोपद्यापरीक्षण** उत्तीण करने के बाद इस पद पर नियुक्त किया जाता था। ये अधिकारी सम्पूर्ण राज्य की राजस्व प्राप्ति के साधनों की देखरेख व निरीक्षण के लिए उत्तरदायी था। राजस्व विभाग के अन्तर्गत समाहर्ता का सर्वप्रधान कार्य सम्पूर्ण समाज के विभिन्न वर्गों, राष्ट्र में उत्पादित विभिन्न वस्तुओं,गाँव नगरों व कुलों पर राज्य के सभी व्यापारियों तथा शिल्पियों और राज्य की भूमि जो राज्यांश निर्धारित है उसकी वसूली करना, संचय करना तथा उससे सम्बन्धित सम्पूर्ण ब्यौरा निबन्ध–पुस्तिका में अंकित रखा गया है या नहीं उसकी जाँच करना भी था।

(ii) सन्निधाता अधिकरण (कोष विभाग)–

कौटिल्य ने इस विभाग के प्रमुख पदाधिकारी को **सन्निधाता** के नाम से सम्बोधित किया है।ये अमात्य भी मंत्रीस्तर का होता थातथा अर्थोपद्या परीक्षण को उत्तीर्ण करने के बाद इस पद पर नियुक्त किया जाता था। व्यापक परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो इसका उत्तरदायित्व राज्य के खजाने की सुरक्षा व देखरेख करना था। यह अमात्य राजकोष गृह

पण्यगृह, कोष्ठागार, कुप्यगृह, आयुधागार और बन्धनागार (जेल) इत्यादि संस्थानों का निर्माण कराता था और उनकी देखभाल भी करता था। इसके अधीनस्थ उपरोक्त भण्डारोंके अधिकारी कार्यरत होते थे। जैसे–कुप्याध्यक्ष, शास्त्रागाराध्यक्ष इत्यादि।

(अ) सन्निधाता द्वारा निर्मित संस्थाएं –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में सन्निधाता के अधीन विभिन्न गृहों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है –

(1) राजकोश गृह –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय कोष (वित्त)को सुरक्षित रूप से संचित करने हेतु कोशगृह नामक भवन के निर्माण (स्थापत्य) संरचना का भी बहुत सूक्ष्म वर्णन दिया गया है।[12]इस प्रकार के सुरक्षित कोशगृह में सन्निधाता द्वारा बहुमूल्य द्रव्यों को संचय कराया जाता था। विविध प्रकार के रत्न,मणि, माणिक्य और अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ उनकी जाँच में कुशल व्यक्तियों द्वारा परीक्षा के अनन्तर कोशगृह में संचित की जाती थी। कौटिल्य के अनुसार कोषाध्यक्ष (सन्निधाता) का कर्त्तव्य है कि वह रत्नों के मूल प्रमाण, लक्षण, जाति, रूप, प्रयोग, संशोधन, देश व काल के अनुसार उनका घिसना या नष्ट होना, मिलावट हानि का प्रत्युपाय आदि बातों का परिज्ञान भी रखे।

उपरोक्त वर्णित राजकोशगृह के अतिरिक्त सन्निधाता अमात्य के द्वारा जनपद के बाह्य क्षेत्रों में भी आपातकाल में काम आने वाली **ध्रुवनीधि** (गुप्त खजाना) के गृह (भवन) को बनवाना चाहिए। ये कार्य आचार्य के मतानुसार प्राणदण्ड पाये गये अपराधी पुरूषों से करवाना चाहिए ताकि भवन निर्माण का कार्य समाप्त होने तक वे भी खत्म हो जाए और खजाने के भवन से सबंन्धित स्थापत्य योजना का रहस्य भी गुप्त रह जाए और किसी को ज्ञात भी न हो।

(2) पण्यगृह–इसमें राजकीय पण्य (विक्रय पदार्थ) एकत्र किये जाते थे। राज्य की और से जो विविध प्रकार के उद्योगों व व्यवसायों का संचालन किया जाता था,उनके द्वारा तैयार किये गए पदार्थ सन्निधाता के अधीन पण्यगृह में भेज दिए जाते थे।

(3) कोष्ठागार – इसमें सन्निधाता द्वारा वे पदार्थएकत्र किए जाते थे जिसकी राज्य को आवश्यकता होती थी। जैसे–सेना और राजपुरूषों आदि का खर्च चलाने के लिए राज्य की और से खरीदा माल,स्वयंराजकीय कारखाने में बनाया जानेवालाया बदले में प्राप्त किया जानेवाला माल इत्यादि।

(4) कुप्यगृह – इसमें वे द्रव्यपदार्थ हैं जो जंगलों से प्राप्त होते थे जैसे – विविध प्रकार के काष्ट,ईधन, चर्म आदि।

(5) आयुधागार –इसमें सब प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों का संग्रह रहता था। आयुधागाराध्यक्ष का कर्त्तव्य था कि वह शस्त्रों की सही जाँच–पड़ताल के बाद उन्हें चिन्हित करके एवं सूचीबद्ध करके आयुधागार में संग्रहित करें। अस्त्र–शस्त्रों के लेने और उन्हें पुनः जमा करवाने के बारे में भी उसे पूर्ण जानकारी रखना आवश्यक था।

(6) बन्धनागार (जेल)–कौटिल्य ने लिखा है कि सन्निधाता द्वाराबन्धनागार के सभी कमरे सभी और से सुरक्षित बनाए जाये और महिला एवं पुरूषों के निवास के लिए पृथक–पृथक कमरों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2.सन्निधाता द्वारा कोष की सुरक्षा हेतु दण्डात्मक उपाय –

सन्निधाता अपने अधिकारक्षेत्र में आने वाले उपरोक्त भण्डारगृहों में संगृहित विभिन्न वस्तुओं की सुरक्षा के लिये भी उत्तरदायी था इसलिए उसने इन संगृहित वस्तुओं की सुरक्षा एवं उनकी चोरी रोकने के लिए कईदण्डात्मक उपाय भी किए थे। ये उपाय निम्नलिखित हैं–

(1) कोष्ठागाराध्यक्ष को चाहिए की वह हर वस्तुओं के विशेषज्ञों की सहायता लेकर नये और पुराने का अन्तर समझकर रत्न, वस्त्र,लकड़ी,चदंन आदि उपयोगी वस्तुओं को संगृहित करे अब यदि कोई व्यक्ति असली रत्न की जगह नकली रत्न रख दे और छल से असली रत्न को चुरा ले जाए तो चोरी करने वाले और करवाने वाले दोनों को ही उत्तम साहस दण्ड दिया जाय। चन्दन आदि वस्तुओं में कपट करने वाले व्यक्ति को मध्यम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए।वस्त्रों एवं चमड़े जैसे पदार्थों में छल करने वाले व्यक्ति से वैसी ही दूसरी वस्तु ले ली जाय या उसका मूल्य ले लिया जाय या उतना ही उससे दण्डरूप में वसूल कर लिया जाय।[13]

(2) सिक्कों के पारखी पुरूषों द्वारा स्वर्णमुद्रा का संग्रह किया जाना चाहिए। सिक्कों में से जो नकली मालूम हो, उसको तत्काल ही हटा दिया जाय, जिससे उसको व्यवहार में न लाया जा सके। नकली सिक्कों को लाने वाले पुरूष भी प्रथम साहस दण्ड के अपराधी हैं।

(3) धान्याधिकारी को चाहिए कि वह शुद्ध,पूरा तथा नया अन्न ले। यदि वह ऐसा न करे तो उससे दुगुना दण्ड वसूल किया जाय।

(4) इसी प्रकार पण्य,कुप्य और आयुध के सम्बन्ध में भी नियमों का पालन किया जाए।

(5) हर अधिकारी उसके सहकारियों तथा उन दोनों के बीच काम करने वाले पुरूषों (कर्मचारी वर्ग) को पहली बार किसी वस्तु का अपहरण करने पर क्रमशः एक पण,दो पणऔर चार पण दण्ड देना चाहिए। यदि वे फिर भी चोरी करें तो क्रमानुसार उन्हें प्रथम

साहस, मध्य साहस और उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए।इस पर भी वह न मानें तो उन्हें प्राणदण्ड दिया जाये।

(6) कोषाध्यक्ष स्वयं यदि सुरंग आदि उपाय से कोष की चोरी करे तो उसे प्राणदण्ड दिया जाये। इसमें अधीनस्थ लोगों को उसका आधा दण्ड दिया जाना जाए। यदि कोष का अपहरण करने में अधीनस्थ लोगों का हाथ न हो, तो उन्हें दण्ड न दिया जाय। केवल उनकी निन्दा तथा उपहास करके उन्हें दुत्कारा जाय।

(7) यदि चोर सेंध लगाकर चोरी करे, तो उसे कष्टकर प्राण दण्ड दिया जाय।

इसलिए सन्निधाता को चाहिए कि वह विश्वासी पुरूषों के सहयोग से ही धन संग्रह करे क्योंकि सन्निधाता का एक महत्वपूर्ण कार्य राजकोश की देखभाल करना भी था। अतः उससे यह आशा कि जाती थी कि वह जनपद तथा नगर की आय–व्यय का भली–भांति ज्ञान रखे। कौटिल्य ने लिखा है–**''सन्निधाता को सौ वर्षों की बाह्य एवं आभ्यान्तर आय के लेखा–जोखा का ज्ञान होना चाहिए। जिससे उसके बारे में वह पूछे जाने पर तत्काल जानकारी दे सके औरबचे हुए धन को वह सदा कोष में दिखाता रहे।''**[14]

(iii) अक्षपटल कार्यालय (लेखा विभाग)–

कौटिल्य ने लेखा विभाग के प्रमुख को **अक्षपटलमध्यक्ष** की संज्ञा दी है। इसका कार्यालय **अक्षपटल** कहलाता था।वेतनमान के दृष्टिकोण से देखा जाए तो अक्षपटलमध्यक्ष उपरोक्त वर्णित दोनों मन्त्रियों (अमात्यों) से कम वेतन पाता था। लेकिन इसके काम की महत्ता और जिम्मेदारी उच्च स्तर की होती थी। लेखा और लेखा परीक्षण ये दोनों ही कार्य इस **अक्षपटलमध्यक्ष** द्वारा ही किये जाते थे। इसके अधीनस्थ अधिकारी निम्नलिखित है–

1. **जिला लेखा अधिकारी–**

इसे कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में **गाणनिक्य** के नाम से सम्बोन्धित किया गया है। ये राजकीय अधिकारी **अक्षपटलमध्यक्ष** के अधीनस्थ अधिकारी होता था। इसका कार्य जिला लेखा सम्बन्धी तमाम कागजात (Record) जैसे– लेखा–पुस्तिकाएँ, जिन्से, सकल राजस्व की जानकारी इत्यादि अक्षपटलमध्यक्ष को देनी होती थी।

2. **अन्य राजकर्मचारी वर्ग–**

अक्षपटलमध्यक्ष के अधीन कई कर्मचारी कार्य करते थे। जैसे **गाणनिक्य** (जिलों का हिसाब किताब रखने वाले कर्मचारी),**कारणिक** (मुख्य अकांउटेंट),**संख्यायक** (गणना करने वाले), **कार्मिक** (अर्थकार्णिक का अधीनस्थ कर्मचारी)।

(iv) कार्मान्तिक अधिकरण (सार्वजनिक उद्योग निर्माण विभाग)–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में आचार्य कौटिल्य के अठ्ठारह तीर्थों (अधिकरण) का उल्लेख किया है। उसमें वित्तीय प्रशासन से सम्बन्धित एक तीर्थ (विभाग) **कार्मान्तिक** के नाम से सम्बोन्धित किया गया है। मौर्य युग में राज्य की ओर से अनेक प्रकार के उद्योगों का संचालन किया जाता था। इसके लिए राज्य द्वारा अनेक कर्मान्त (कारखानों) स्थापित किए गए थे।इनमें राज्य की खानों, वनों, खेतों से एकत्र कच्चे माल को भिन्न–भिन्न उपयोगों के लिए तैयार माल के रुप मे परिवर्तित करने के लिए राज्य की ओर से जो विविध कारखानेंस्थापित थे, उनका संचालन एवं नियन्त्रण कार्मान्तिक के अधिकरण द्वारा किया जाता था। कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि खानों से जो धातुएँ निकाली जाए वो उनके कारखानों में भेज दी जाए,जो माल तैयार हो, उसे बेचने का प्रबन्ध एक स्थान पर किया जाए। इन नियमों का उल्लंघन करने वाले क्रेता, विक्रेता, और कर्त्ता (पक्का माल तैयार करने वाले) को दण्ड दिया जाए। इस प्रकार मौर्य युग में राज्य द्वारा संचालित कारखानों की संख्या काफी बड़ी थी। अतः यह तीर्थ (अधिकरण) एवं इसका अधिकारी **कार्मान्तिक** वित्तीय प्रशासन मे विशेष महत्व रखता था।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार वित्त प्रशासन के अन्तर्गत ये चारों विभाग और उनके प्रधान एक दूसरे पर निर्भर थे। लेकिन अधिकार की दृष्टि से देखा जाए तो **समाहर्ता** (कलेक्टर जनरल) और **सन्निधाता** (मुख्य कोषाधिकारी) एक दूसरे से स्वतन्त्र होते थे। **समाहर्ता** राज्य की **राजस्व वसूली** पर नियन्त्रण करता था। जबकी **सन्निधाता** राज्य की **वित्तीय आवश्यकताओं** की आपूर्ति करता था। ये दोनों ही अमात्य राज्य के अन्य विभागों के अधीक्षकों पर अपने अधिकारों का प्रयोग करते थे।

इस क्रम मे तृतीय अधिकारी अक्षपटलमध्यक्ष (लेखा अधीक्षक) है। यह सम्भवतः समाहर्ता के अधीन प्रतीत होता है क्योंकि समाहर्ता के प्रदत्त अधिकारों में लेखा–परीक्षण का अधिकार भी सम्मिलित है। समाहर्ता अक्षपटलाध्यक्ष के सम्पूर्ण कार्य की जाँच पड़ताल कर सकता था। हालांकि यह जाँचपड़ताल खर्च(व्यय)और प्राप्तियों(आय) व नीवी(बचत) तक सीमित होती थी। लेखा शेष से इसका कोई मतलब नहीं होता था। इस प्रकार ये स्पष्ट होता है कि कौटिल्यकाल में वित्त विभाग समाहर्ता, सन्निधाता, अक्षपटलमध्यक्ष एवं कार्मान्तिक पदाधिकारियों एवं उनसे सम्बन्धित विभागों का मिलाजुला रूप था।

2.II वर्तमान भारत में वित्तीय विभाग–

किसी भी देश की आर्थिक एवं वित्तीय व्यवस्था का कुशल संचालन करना वहाँ की सरकार के समक्ष अत्यन्त महत्व का विषय होता है। इस व्यवस्था को चलाने वाले संगठन

को भारत में भी अधिकांश देशों की तरह **वित्त मंत्रालय** (Ministry of Finance) के नाम से जाना जाता है। ये मंत्रालय सरकार के वित्तीय मामलों की देखरेख करता है तथा देश के लिए **वार्षिक बजट** की रचना के लिए प्रधानतः उत्तरदायी संस्था है। इसका प्रमुख कार्य राज्य के लिए आवश्यक राजस्व एकत्रित करना और इसके लिए धनराशि निश्चित करना और कुछ हद तक व्ययों का स्वरूप निर्धारित करना भी है।

1. वर्तमान भारत में वित्त मंत्रालय –

वर्तमान भारत की संघात्मक शासन व्यवस्था के अर्न्तगत वित्तमंत्रालय केन्द्रीय सरकार का एक महत्वपूर्ण मंत्रालय है। यह मंत्रालय भारत सरकार के आय–व्यय का ब्यौरा रखता है। यह मंत्रालय केन्द्र सरकार के वित्त प्रशासन तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न राज्यों के वित्तीय मामलों को निपटाने के लिए भी उत्तरदायी संस्था है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 77 (3) संघ के राष्ट्रपति को संघीय सरकार के संचालन सम्बन्धी नियम बनाने का प्राधिकार प्रदान करता है।इसी के तहत् वित्तमंत्रालय को स्थापित किया गया है। वित्त मंत्रालय केन्द्र में **वार्षिक वित्तीय विवरण** (बजट) तैयार करने, संसद में उनके प्रस्तुतीकरण (वित्तमंत्री द्वारा) व संसद से स्वीकृति दिलवाने हेतु मार्गदर्शन करने, विभिन्न विभागों द्वारा स्वीकृत बजट के क्रियान्वयन के निरीक्षण, राजस्व एकत्र करने, प्रशासकीय विभागों को वित्तीय मंत्रणा देने तथा उन पर वित्तीय नियन्त्रण रखने के लिए उत्तरदायी संस्था भी है।

2. वित्त मंत्रालय का संगठन –

वर्तमान भारत में वित्तमंत्रालय का संगठन निम्न प्रकार से किया जाता है –

1. राजनीतिक संगठन 2. प्रशासकीय संगठन 3. संरचनात्मक संगठन।

1. राजनीतिक संगठन –

वित्तमंत्रालय के राजनीतिक संगठन के अन्तर्गत वित्त मंत्री एवं उसके सहायक राज्य मंत्री एवं उपमंत्री को रखा गया है। ये निम्नलिखित प्रकार से है –

(i) वित्तमंत्री –

वित्त मंत्रालय का प्रभारी मंत्री वित्तमंत्री कहलाता है। ये कैबिनेट स्तर का मंत्री होता है। जो साथ ही साथ एक वरिष्ठ,अनुभवी एवं कार्यकुशल राजनीतिज्ञ भी होता है। सत्तारुढ़ दल की नीतियों तथा कार्यकुशलता, आम बजट एवं जनकल्याण हेतु आरम्भ की जाने वाली नवीन योजनाओं के द्वारा वित्त मंत्री ही राष्ट्र के कोश का संरक्षक होता है तथा उसका कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रीय वित्त का उपयोग समझदारी एवं कुशलता से करे।

(ii) राज्यमंत्री एवं उपमंत्री –

वित्तमंत्री की सहायता के लिए वित्तमंत्रालय में राज्यमंत्री एवं उपमंत्री भी होते हैं।

2. प्रशासकीय संगठन –

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित प्रशासकीय अधिकारी वर्ग एवं कर्मचारियों को रखा गया है –

(i) वित्त सचिव –

वित्तमंत्रालय के मंत्री को प्रशासनिक सहायता प्रदान करने के लिए जो सचिव होता है उसे **वित्त सचिव** कहते है। ये मंत्रालय का प्रशासनिक प्रमुख होता है।

(ii) वित्त सचिव के अधीनस्थ सचिव वर्ग –

वित्त सचिव की सहायता के लिए सचिव क्रमशः आर्थिक मामलों के सचिव, व्यय सचिव एवं विनिवेश सचिव कार्यरत है। जो अपने–अपने विभाग के प्रमुख होते है। इन सचिवों की सहायता के लिए विशिष्ट सचिव, अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव तथा उपसचिव कार्यरत हैं।

वित्त विभाग के उपरोक्त अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षण सेवा,केन्द्रीय राजस्व सेवा, केन्द्रीय उत्पाद एवं शुल्क सेवा तथा केन्द्रीय सचिवालय सेवा से सम्बन्धित होते हैं।

(iii) अन्य कर्मचारी वर्ग –

वित्तमंत्रालय में उपरोक्त वर्णित अधिकारी वर्ग के अलावा कनिष्ठ अधिकारी/कर्मचारी हजारों की संख्या में कार्यरत है।

3. संरचनात्मक संगठन–

वर्तमान भारत में वित्तमंत्रालय के अन्तर्गत संरचनात्मक दृष्टि से निम्नलिखित पाँच विभाग कार्यरत हैं –

1. **आर्थिक कार्य विभाग**
2. **व्यय विभाग**
3. **राजस्व विभाग**
4. **विनिवेश विभाग**
5. **वित्तीय सेवाऐं विभाग**

वित्तमंत्रालय के इन विभिन्न विभागों एवं उनके सम्भागों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है–

1. आर्थिक कार्य विभाग –

यह विभाग समकालीन आर्थिक प्रवृत्तियों का परिवीक्षण करता है। साथ में यह आन्तरिक तथा बाह्य आर्थिक प्रबन्ध को प्रभावित करने वाले सभी मामलों के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देता है। इनमें वाणिज्यिक बैंकों तथा सार्वजनिक ऋणदाता संस्थाओं का कार्यसंचालन एवं पूंजी–निवेश का विनियमन करना सम्मिलित है। संघ सरकार तथा राज्य सरकारें जो राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत है, उनके बजट तैयार करने और संसद में प्रस्तुत करने का दायित्व इसी विभाग का है। इस विभाग में वर्तमान में निम्नलिखित दस संभाग है–

(1) आर्थिक संभाग	(2) एकीकृत वित्त संभाग
(3) बजट संभाग	(4) पूंजी बाजार संभाग
(5) द्विपक्षीय सहयोग संभाग	(6) सहायता, लेखा, एवं अंकेक्षण नियंत्रक संभाग
(7) बहुपक्षीय सम्बन्ध संभाग	(8) प्रशासन संभाग
(9) बहुपक्षीय संस्था संभाग	(10) आधार संरचना एवं निवेश संभाग

यह विभाग भारतीय मुद्रा, सिक्के, रुपये, स्टाम्प, डाक सामग्री, टिकट, ज्यूडिशियल स्टाम्प, भारतीय रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के चेक, राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र, किसान विकास पत्र, पोस्टल ऑर्डर, पासपोर्ट तथा प्रोमेसिरी नोट आदि छपवाने में यह विभाग नियन्त्रण रखता है। भारत में करेंन्सी नोट **नासिक** बैंक नोट **देवास** प्रेस से छपते है। 2006 से नियमित भारत प्रति मुद्रण निर्माण निगम लिमिटेड कम्पनी के द्वारा चारों टकसाल, सिक्यूरिटी पेपर मिल, मुद्रणालय, इस सार्वजनिक कंम्पनी के अधीन हो गई है। सेबी (SEBI) जो 1995 से सांविधिक संस्था है, ये पूंजी जारी करने वाली प्रतिभूतियों के अंतरण से सम्बन्धित कार्य देखता है।

2. व्यय विभाग –

वित्त मंत्रालय के अन्तर्गत कार्यरत यह विभाग मुख्यतः भारत सरकार के समस्त विभागों में मितव्ययिता लाने, व्यय को नियन्त्रण करने लोक सेवाओं पर नियन्त्रण रखने वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन करने, लागत लेखा पर परामर्श करने तथा लेखा सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करता है। इस विभाग के अधीन निम्नांकित 12 संभाग कार्यरत हैं –

(1) संस्थापना संभाग	(2) योजना वित्त – प्रथम संम्भाग
(3) योजना वित्त – द्वितीय सम्भाग	(4) वित्त आयोग संभाग
(5) वेतन अनुसंधान इकाई	(6) कर्मचारी निरीक्षण इकाई
(7) मुख्य सलाहकार लागत का कार्यालय	(8) राष्ट्रीय वित्त प्रबन्ध संस्थान

(9) केन्द्रीय पेंशन लेखा कार्यालय (10) लेखा महानियन्त्रक कार्यालय

(11) एकीकृत वित्त इकाई (12) लोक उपक्रम ब्यूरो

3. राजस्व विभाग –

वित्त मंत्रालय में स्थापित राजस्व विभाग सरकार के लिए आय एकत्र करने वाले करों (राजस्व) से सम्बन्धित प्रशासन को संचालित करता है।राजस्व विभाग सचिव (राजस्व) के पूर्ण निर्देशन एवं नियन्त्रण में कार्य करता है। यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संघीय करों से संबंधित मामलों के संबंध में अपने अधीनस्थ **दो कानूनी बोर्डों** नामतः **केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड** और **केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड** के माध्यम से नियन्त्रण करता है। प्रत्येक बोर्ड का एक अध्यक्ष होता है, जो कि भारत सरकार का पदेन विशेष सचिव भी होता है। **केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड** द्वारा सभी **प्रत्यक्ष करों** के लगाने ओर संग्रहण का कार्य किया जाता है। जबकि **सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सेवा कर** तथा **अन्य अप्रत्यक्ष कर** लगाने व संगहण से संबंधित कार्य **केन्द्रीय उत्पाद शुल्क** और **सीमा शुल्क बोर्ड** के कार्यक्षेत्र में आता है। ये दोनों बोर्ड **केन्द्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम, 1963** के अन्तर्गत गठित किए गए थे। वर्तमान में, केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड, प्रत्येक में, छह सदस्य है। राजस्व विभाग विभिन्न अधिनियमों को भी प्रशासित करता है।[15]

इस राजस्व विभाग के अधीन **चार कार्यकारी विभाग** कार्यरत है –

(1) आयकर विभाग (2) शुल्क विभाग

(3) केन्द्रीय उत्पादन शुल्क विभाग (4) स्वापक पदार्थ (Narcotics) विभाग

यह विभाग केन्द्र सरकार के प्रमुख कर स्त्रोत यथा शुल्क, उत्पाद शुल्क, सेवा शुल्क, कम्पनी कर, आयकर और स्टाम्प शुल्क इत्यादि को निर्धारित करने एवं वसूलने के कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यें स्वर्ण नियन्त्रण, विदेशी मुद्रा एवं स्वपाक औषधि (Narcotics) नियन्त्रण का कार्य भी करता है। राजस्व विभाग की आन्तरिक संरचना अग्राकिंत संभागों में विभक्त है–

(1) राजस्व मुख्यालय संभाग (2) प्रशासन संभाग

(3) समन्वय विभाग संभाग (4) नारकोटिक्स नियन्त्रण संभाग

(5) बिक्रीकर विभाग संभाग (6) आर्थिक सुरक्षा संभाग

(7) एकीकृत वित्तीय इकाई संभाग (8) हिन्दी संभाग

(9) परिवेदना निवारण संभाग (10) कम्प्यूटरीकरण प्रकोष्ठ

4. विनिवेश विभाग –

इस विनिवेश विभाग को 10 दिसम्बर, 1999 में बनाया गया था। इसे 6 नवम्बर 2001 में मंत्रालय का स्तर प्रदान किया गया किन्तु सन् 2004 में वित्त मंत्रालय के अधीन एक विभाग बना दिया गया है। वर्तमान में यह विभाग सन् 1991 के आर्थिक सुधारों के पश्चात् शुरू हुई **निजीकरण** प्रकिया को नियन्त्रित करने तथा तत्सम्बन्धी नीतिगत निर्णय करता है। वर्तमान में इस विभाग की नीति है कि **नवरत्न** का स्तर प्राप्त तथा लाभार्जन कर रहे लोक उपक्रमों का निजीकरण नहीं किया जाए, बल्कि इन्हें बाहरी बाजार से पूंजी एकत्रण एवं संसाधन गतिशीलन हेतु अधिक **स्वायत्तता** प्रदान की जाए। इसके अलावा अत्यन्त घाटे में चल रहे लोक उपक्रमों को श्रमिक हितों को ध्यान में रखते हुए बन्द किया जाना या निजीकरण किया जाना है।

वर्तमान में विभाग के मुखिया सचिव (विनिवेश) है। इनका चार संयुक्त सचिवों और एक आर्थिक सलाहकार द्वारा सहयोग किया जाता है। विभाग डेस्क अधिकारी पद्धति पर कार्य करता है और विनिवेश सम्बन्धी कार्य संयुक्त सचिव, निदेशक/उपसचिव और अवर सचिव स्तर पर किया जाता है।

5. वित्तीय सेवाएँ विभाग –

यह विभाग वित्त मंत्रालय में आर्थिक कार्य विभाग के बैकिंग एवं बीमा संभाग को पृथक करके बनाया गया है। यह विभाग वित्त मंत्रालय के निर्देशन में दी जाने वाली वित्तीय सेवाओं जैसे बीमा, बैंकिंग तथा पेंशनसुधार से सम्बन्धित नीतियों, कानूनों, कार्यक्रमों एवं कार्यों का निष्पादन करता है। जो पूर्व में आर्थिक कार्य विभाग द्वारा सम्पादित किये जाते थे।

3.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में बजट प्रक्रिया –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में केन्द्रियकृत राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का वर्णन किया गया था इसलिए इस शासन व्यवस्था में सम्पूर्ण राज्य के लिए एक ही केन्द्रिय बजट निर्मित किया जाता था।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में **द्वितीय अधिकरणअध्यक्षप्रचार** के **अध्याय छः'समाहर्तृसमुदयप्रस्थानम्'** शीर्षक के अन्तर्गत **प्रकरण 22** में **बजट प्रक्रिया** सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया गया है। कौटिल्य ने लिखा है कि **''समाहर्ता का अधिकरण ही राजकीय आय और व्यय अर्थात् राजकीय बजट की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है।''**

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में बजट–निर्माण की प्रक्रिया –

कौटिल्य ने बजट–निर्माण की प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीके से समझाया है –

(i) बजट हेतु राजवर्ष का निर्धारण –

कौटिल्य ने राज्य के समस्त राजकीय कार्यों को समय पर पूर्ण करने हेतु **राजवर्ष** के निर्धारण की प्रक्रिया का भी संक्षिप्त वर्णन किया है। आचार्य के अनुसार इस राजवर्ष का प्रारम्भ राजा के राज्याभिषेक के दिन से माना जाता था। राजा के हर कार्य में अर्थात् उसके द्वारा दिये जाने वाले हर राजकीय आदेश ने इसको व्युष्टनाम से अंकित किया जाता था। इसमें क्रमशः वर्ष, मास, पक्ष और दिन इन चारों बातों का उल्लेख करना आवश्यक था। इस राजवर्ष को तीन विभागों में विभाजित किया गया था –वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्म। इन तीन विभागों में हर विभाग के आठ–आठपक्ष होते थे, प्रत्येक पक्ष में पन्द्रह दिन होते थे, प्रत्येक ऋतु के तीसरे तथा सातवें पक्ष में एक–एक दिन कम माना जाता था। शेष छः पक्षों में पन्द्रह–पन्द्रह दिन माने जाते थे। इसके अतिरिक्त एक अधिमास (मलमास) भी माना जाता था।[16] यही काल–विभाजन राजकीय कार्यों में प्रयुक्त करने का कौटिल्य ने समर्थन किया था।

- **कर्मसंवत्सर –**

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह भी बताया गया है कि तीन सौ चौवन दिन–रात का एक कर्मसंवत्सर होता है। इसकी समाप्ति (वर्ष की समाप्ति) आषाढ़ी पूर्णिमा को समझनी चाहिए। इस वर्ष गणना के अनुसार ही प्रत्येक अध्यक्ष (राजकीय कार्मिक) को वेतन दिया जाना चाहिए।[17] दूसरे शब्दों में कहा जाये तो यह वर्तमान भारतीय वित्तीय प्रशासन में प्रयुक्त किये जाने वाले वित्तीय वर्ष (जिसके अनुसार वर्तमान भारत में बजट निर्माण किया जाता है) के समान ही होता है। समाहर्ता उपरोक्त वर्णित राजवर्ष एवं कर्मसवंत्सर का प्रयोग बजट निर्माण प्रक्रिया में करता था।

(ii) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में बजट की परिभाषा–

कौटिल्य ने बजट को परिभाषित करते हुए लिखा है कि **''समाहर्ता को चाहिए कि वह कौनसे कार्य हाथ में हैं (करणीय), कौन से कार्य सिद्ध हो चुके हैं (सिद्ध), कौन से कार्य शेष हैं, कितनी आय है, कितना व्यय है, और कितनी विशुद्ध आमदनी है आदि कार्यों को उचित रीति से सम्पन्न करे अर्थात् राज्य का बजट निर्माण करे।''[18]**

(iii) बजट निर्माण प्रक्रिया –

कौटिल्य ने करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय और नीवीं के अन्तर्गत रखी गई विभिन्न मदों का भी उल्लेख किया है। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. करणीय –

ये छः प्रकार का होता है। 1. संस्थान, 2. प्रचार, 3. शरीरावस्थान, 4. आदान, 5. सर्वसमुदयपिण्ड और 6. संजात।

2. सिद्ध–

ये भी छः प्रकार का होता है। 1. कोषार्पित, 2. राजहार, 3. पुरव्यय, 4. परसंवतसरानुवृत्त, 5.शासन मुक्त और 6. मुखाज्ञप्त।

3. शेष –

शेष के भी छः भेद है। 1. सिद्धकर्मयोग, 2. दण्डशेष, 3. बलात्कृत प्रतिस्तब्ध, 4. अवसृष्ट, 5. असार और 6. अल्पसार।

यहाँ ये उल्लेखनीय है कि उपरोक्त वर्णित विभिन्न तथ्यों के अर्थ एवं व्याख्या के बारे में जानकारी सीमित है।

4. आय–

ये तीन प्रकार की होती है। 1. **वर्तमान आय** – प्रतिदिन की आमदनी को वर्तमान आय कहते है।, 2. **पर्युषित आय**– पिछले वर्ष का बकाया या शत्रुदेश से प्राप्त धन इसके अंतर्गत आता है। 3. **अन्यजात आय –**भूले हुये धन की स्मृति,अपराध स्वरुप प्राप्त धन,कर के अतिरिक्त अन्य उपायों या प्रभुत्व से प्राप्त धन, कांजी हाउस से प्राप्त धन, भेंट स्वरूप प्राप्त धन,शत्रुसेना से अपहृत धन और लावरिस का धन अन्यजात आय कहलाती है।इसके अतिरिक्त सैनिक खर्च से बचा धन, स्वास्थय विभाग के व्यय से बचा धन,इमारतों के निर्माण से बचा धन,**व्ययप्रत्याय** कहलाता है। यह भी एक प्रकार की आय है।इसी प्रकार बिक्री के समय वस्तुओं की कीमत बढ़ जाने, निषिद्ध वस्तुओं के बेचने से, बाट तराजू आदि की बेइमानी से तथा खरीददारों की प्रतिस्पर्धा से प्राप्त धन भी आमदनी का धन है।

5. व्यय –

ये चार प्रकार का होता है–**1. नित्य** – प्रतिदिन के नियमित व्यय को नित्य कहते है।**2. नित्योत्पादिक** –यह नियमित व्यय से अधिक खर्च होने वाला धन कहलाता है।**3. लाभ**– पाक्षिक, मासिक वार्षिक आ तथाय के लिए व्यय किया जाने वाला धन लाभ कहलाता है। **4. लाभोत्पादिक**– ये पाक्षिक, मासिक तथा वार्षिक आय के लिए किए जाने वाले व्यय से अधिक खर्च होने वाला धन है।

6. नीवी –

सब तरह से आय–व्यय का भली–भांति हिसाब करके भी बचत रूप में निकलने वाले धन को **नीवी** कहा गया है।ये भी दो प्रकार का होता है–**1. प्राप्त**– वह धन जो खजाने मे जमा हो।**2. अनुवृत** – वह धन जो खजाने मे जमा किया जानेवाला हो।

समाहर्ता को चाहिए कि वह उपर निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय वित्त का संग्रह करे, आय–व्यय में बचत–हानि का लेखा–जोखा ठीक से रखे। कौटिल्य ने लिखा है कि **''समाहर्ता द्वारा यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहले से अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाए, व्यय में कमी करे, इससे विपरीत न होने दें।''**[19]

इस प्रकार कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय बजट निर्माण की प्रक्रिया के बारे में संक्षिप्त जानकारी मिलती है।

3.IIवर्तमान भारत में बजट प्रक्रिया (Budgetary Process in Present India) –

आधुनिक सरकार के बजट सम्बन्धी उत्तरदायित्व व्यापक तथा गम्भीर होते है। इस सम्बन्ध में ग्लेडस्टन (Gladstone) का यह कथन उद्धत किया जाता है कि **"व्यक्तियों की समृद्धि, वर्गों के परस्पर सम्बन्ध तथा राज्य की शक्ति की जड़"**तक बजट की पहुँच है। वर्तमान भारत में बजट–निर्माण में सरकार की वित्तीय नीति तथा सरकार के कई अंगों की महत्वाकांक्षाएँ तथाविचार प्रतिबिम्बित होते हैं। बजट सम्बन्धी उत्तरदायित्व निश्चय ही वित्त मंत्रालय का विषय है, लेकिन अन्य सभी मंत्रालय विभिन्न चरणों तथा विभिन्न क्षमताओं के अनुपात में इससे सम्बद्ध होते हैं।भारत में संसदीय शासन प्रणाली के अन्तर्गत बजट अनुमान तैयार करने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका काहोता है।

- **वर्तमान भारत में बजट (Budget in Persent India)–**

भारतीय संविधान में कहीं भी''बजट'' शब्द का उल्लेख नहीं है। लेकिन संविधान के अनुच्छेद 112 में कहा गया है कि "राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के सम्बन्ध में संसद के दोनो सदनों के समक्ष एक वार्षिक वित्तीय विवरण (Annual Financial Statement) रखवायेगा।"यहीं वार्षिक वित्तीय विवरण आगामी वित्तीय वर्ष के लिए भारत सरकार के अनुमानित आय तथा व्ययों का विवरण होता है और बजट कहलाता है। इस विवरण में तीनविवरण सम्मिलित होते हैं –(1) राजस्व सम्बन्धी विवरण (2) व्यय सम्बन्धी विवरण(3) एक पूर्ण विवरण (1 तथा 2 विवरणों का घाटा या बचत) तथा इसमें ऋण, पोस्ट–ऑफिस बचत, बैंक तथा राष्ट्रीय बचत पत्रों से प्राप्त आय भी शामिल है।

पहले सभीमंत्रालयों के लिए अनुदानों की मांगें सामूहिकढंग से संसद के समक्ष उपस्थित की जाती थी। सन् 1959–60से प्रत्येक मंत्रालय के लिए अलग–अलग रूप में ये माँगे प्रस्तुत की जाने लगी। इन माँगों में से हर एक के चार भाग होते हैं –

प्रथम भाग में जिस सेवा के लिए माँग की जाती है, उस सेवा को ओर समग्र धन राशि के योग को प्रकट किया जाता है। **द्वितीय भाग** में व्यय के विभिन्न आँकड़ों के सारांश दिया जाते हैं, जो सम्बन्धित मंत्रालय के लिए विनियोजित प्रमुख इकाइयों के क्रमवार व्यय को व्यक्त करते है। उन मंत्रालयों कोभी व्यक्त किया जाता है, जिसकी और से व्ययों की गणना की जाती है। **तृतीय भाग** में सामान्य रूप से व्यय धनराशि का विवरण दिया जाता है। **चतुर्थ भाग** में माँग के नीचे एक पद–टिप्पणी मात्र होती है।

भाग एक, दो एवं तीन में दिखाई गई धनराशियाँ कुल व्यय सम्बन्धी होती है, अतः अन्यसरकारों की तथा तदर्थ निधियों की बकाया वसूली तथा अन्तर्विभागीय समायोजनसम्बन्धी बकाया माँगे मुख्य माँग में नहीं दर्शायी जाती है। संसद की सूचना हेतु इन्हें चतुर्थभाग मेंप्रदर्शित किया जाता है, किन्तु व्यय कम होने की स्थिति में ये बकाया वसूलीलेखाओं में समायोजित कर दी जाती है। संसद की स्वीकृति की दृष्टि से स्थूल धनराशियाँ आवश्यक होती है। इन धनराशियों को संसद के अनुमोदन से संचित निधि के व्यय में सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है।

सरकारी लेखे चार मुख्य भागों में विभाजित किए जाते हैं–

(1) राजस्व (2) पूंजी (3) ऋण (4) जमा राशि

व्यय के अनुमानों –इनको दो भागों में विभाजित किया जाता है–(1) स्थायी व्ययों (Standing Charges) (2) नये व्ययों (Fresh Charges) को प्रकट करता है।

वित्तीय वर्ष 1962–63 से बजट तथा लेखे में कई परिवर्तन किए गये हैं।[20]

1. वर्तमान भारत में संघीय स्तर पर बजट की तैयारी–

वर्तमान भारत में संघात्मक व्यवस्था होने के कारण एक केन्द्रीय बजट के अलावा राज्यों के अपने पृथक–पृथक बजट होते हैं, लेकिन राज्यों में बजट की तैयारी, स्वीकृति एवं लागू करने की प्रकिया संघीय (केन्द्रीय) सरकार के अनुरूप ही होती है। यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि 2017 से पूर्व संघीय स्तर पर दो बजट होते थे। (1) सामान्य बजट –(2) रेल्वे बजट –(यह 1921 मे सामान्य बजट से पृथक कर दिया गया था)। लेकिन वर्तमान में कार्यरत प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की नेतृत्व वाली भाजपा सरकार ने 2017 के वित्तीय वर्ष के अन्तर्गत संघीय स्तर पर एक ही सामान्य बजट को ही प्रस्तुत किया है और पृथक रेल्वे बजट को समाप्त कर दिया है।

2.बजट की रचना में कार्यरत संस्थाएँ–

वर्तमान भारत में बजट निर्माण हेतु चार संस्थाऐं कार्यरत है।[21] जो निम्नांकित है–

(1) वित्त मंत्रालय

(2) प्रशासन मंत्रालय

(3) नीति आयोग (पहले इसकी जगह योजना आयोग नामक संस्था होती थी)

(4) लेखा नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक।

बजट की रचना का सारा उत्तरदायित्व वित्तमंत्रालय पर होता है, किन्तु प्रशासकीय आवश्यकताओं का व्यापक ज्ञान सम्बन्धित प्रशासकीय मंत्रालयों को ही होता है। बजट योजना की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करने के लिए वित्तमंत्रालय को **नीति आयोग** से निरन्तर निकट सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है। इसमें लेखा नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। वही अनुमानों को तैयार करने में आवश्यक लेखा सम्बन्धी सूचनाऐं उपलब्ध कराता है।

3. बजट की तैयारी –

भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रेल से आरम्भ होता है तथा आगामी 31 मार्च को समाप्त होता है। अतः बजट अनुमान की तैयारी सम्बन्धी कार्य आगामी वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के 6 या 8 मास पूर्व ही आरम्भ हो जाता है इसका श्री गणेश वित्त मंत्रालय से होता है। जो विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों तथा विभागों को व्यय के अनुमान तैयार करने के लिए एक पत्र भेजता है। नियम यह है कि हर विभाग जो धन व्यय करता है, उसे ही अपनी आवश्यकतानुसार आगामी वर्ष अनुमान भी तैयार करने चाहिए। प्रपत्रों की संरचना या प्रारूप वित्त मंत्रालय द्वारा प्रदान किये जाते है। इनमें अनुमान तथा अन्य आवश्यक सूचनाएँ सम्बन्धित विभागों को भरनी एवं भेजनी पड़ती है। प्रत्येक प्रपत्र में निम्नलिखित स्तम्भ (खाने) होते हैं –

(1) विनियोगों के शीर्ष तथा उपशीर्ष (Minorheads & Subheads of appropriation)

(2) गत वर्ष के यथार्थ अंक (Actuals for the last year)

(3) चालू वर्ष लिए स्वीकृत बजट अनुमान(Budget Estimates as Sanctioned for the current year)

(4) चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान Revised Estimates for the next year.

(5) आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान (Budget Estimates for the next year)

(6) घटत बढत का विवरण अथवा चालू वर्ष के यर्थात् अंक (Explanation for increase or decrease or Actuals of current year)

प्राक्कलन प्रपत्र की प्रतिलिपि (Specimen Copy of the Estimate form) जिसे यहाँ दे रहे हैं[22]–

2. आरेख– प्राक्कलन प्रपत्र की प्रतिलिपि

वर्ष 20.....20.... के लिए बजट अनुमान

Budgest Estimats (For the year 20---20---)

विनियोगों के शीर्ष तथा उप–शीर्ष (Minor Heads & Sub-heads of appropriaton)	गत वर्ष के यथार्थ (Actuals for the last year)	चालू वर्ष के लिए स्वीकृत बजट अनुमान (Budget Estimates as Sanctioned for the current year)	चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान (Revised Estimates for the current year)		आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान (Budget Estimates for the next year		घटत–बढ़त का विवरण (Explanation for Increase or Decrease)
			भुगतान अधिकारी (Disdursing Officer)	विभागध्यक्ष (Head of Deptt.)	भुगतान अधिकारी (Disdursing Officer)	विभागध्यक्ष (Head of Deptt.)	

आगामी वर्ष के अनुमान निम्नलिखित आधारों पर निर्मित किये गये हैं–

(1) चालू वर्ष के सशोंधित अनुमान।

(2) विगत तथा पिछले 15 महिनों के यथार्थ अंक।

(3) गत वर्षों के अंकों की कोई मान्यतायुक्त नियमितता।

(4) परिवर्तन उत्पन्न वाली कोई विशिष्ट परिस्थितियाँ।

धन व्यय करने वाले अधिकारी अपने तैयार किये गये अनुमानों को विभाग के प्रधान के पास दोभागों में भेजते हैं –पहले भाग में राजस्व के स्थायी प्रभारCharges का उल्लेख होता है। दूसरे भाग को दो प्रवर्गों में विभाजित किया जाता है –(क) इनमें उन विषयों का उल्लेख होता है, जो प्रतिवर्ष निरन्तर चलते रहते है। (ख) दूसरे प्रवर्ग में पूर्णतःनवीन विषय

होते हैं।

ये अनुमान विभाग के प्रधान के पास भेज दिये जाते हैं, जो आवश्यकतानुसार उनकी समीक्षा तथा संशोधन करके पूरे विभाग के लिए जोड़ता है। विभिन्न विभागों से प्राप्त अनुमानों को सम्बन्धित प्रशासकीय मंत्रालयों को भेज दिया जाता है। जहाँ पुनः दूसरी बार उस (मंत्रालय) की सामान्य नीति के सन्दर्भ में निरीक्षण किया जाता है। इसके बाद प्रशासकीय मंत्रालय इन अनुमानों को नवम्बर में वित्त मंत्रालय के **बजट सम्भाग** को भेजता है।

4. वित्त मंत्रालय के बजट संभाग की भूमिका –

वित्त मंत्रालय का **बजट सम्भाग** प्रशासकीय मंत्रालय द्वारा प्रस्तुत इन अनुमानों की सूक्ष्मतापूर्ण समीक्षा करता है। यह स्मरणीय है कि प्रशासकीय मंत्रालय द्वारा किये गये निरिक्षण से बजट सम्भाग द्वारा किया गया निरीक्षण भिन्न प्रकार का होता है। वह व्यय की नीतियों की समीक्षा नहीं करता हैनीति की समीक्षा करना तो मुख्यतः प्रशासकीय मंत्रालय का ही उत्तरदायित्व है। बजट संभाग तो मुख्यतः मितव्ययता से सम्बन्ध रखता है और इसे विभिन्न प्रशासकीय मांगों एवं मंत्रालयों की मांगों को सरकार की उपलब्ध निधियों की हदों के अन्दर ही रखना पड़ता है। बजट संभाग द्वारा जाँच या निरीक्षण, वित्तीय दृष्टिकोण से अर्थात् मितव्ययिता तथा निधियों की उपलब्धि के दृष्टिकोण से होती है। इस कार्य को करते समय वित्त मंत्रालय व्यय सम्बन्धित प्रस्तावों को विशेषज्ञ की दृष्टि से नहीं देखता है। वास्तव में वित्त मंत्रालय को **आलोचनातथा प्रति–परीक्षण** (Cross Examination) करने में विशिष्ट दक्षता प्राप्त है। जो लम्बे अनुभव का परिणाम है, किन्तु उसमें निरन्तर समयानुकुल अभिनव परिवर्तन होता रहता है।

यहाँ यह प्रकट करना उचित है कि परिनिरीक्षण (Scrutiny) केवल नये व्ययों के लिए किये गये प्रस्तावों पर ही काम में लाई जाती है। नियमानुसार किसी भी विभाग के नये या बढ़े हुऐ व्यय सम्बन्धी कोई भी प्रप्ताव वित्त मंत्रालय की सहमति के बिना बजट में सम्मिलित नहीं किये जा सकते हैं। सरकार को जो भी सीमित साधन उपलब्ध है, उनको देखते हुये प्रशासकीय मंत्रालयों को उनकी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक धन प्राप्त नही होना चाहिए।

वित्त मंत्रालय ही प्रशासकीय मंत्रालयों की मांगों को पारित करता है। व्ययों के औचित्य की समीक्षा करता है और प्रत्येक मंत्रालय के लिए एक राशि निश्चित करता है। **पंचवर्षीय योजना** सम्बन्धी आवश्यक मांगें, मंत्रालयों के नीति सम्बन्धी निर्णय, देश में विद्यमान परिस्थितियां, इन सभी बातों का प्रभाव बजट में दिखाई देता है और इस हद तक वे वित्त

मंत्री के अधिकार को सीमित करते है। वित्त मंत्रालय द्वारा उन सभी प्रस्तावों का बड़े ध्यान से निरीक्षण किया जाता है जो सरकार पर कोई नया या बढ़ा हुआ व्यय भार डालते है।

नये व्यय – ये दो प्रकार के होते हैं–(1) **क्रय एवं निर्माण सम्बन्धी अनुदान** (Grants forpurchases, constructions etc.) (2) **स्थापना के लिए अनुदान** (Grants for Establisment)यहाँ ये बताना आवश्यक है कि बड़ी रकम की खरीददारी या निर्माण कार्य मंत्रिमण्डल की सहमति से ही आरम्भ किये जाते हैं। स्पष्टतः बजट में ऐसे व्यय सम्मिलित करने के सम्बन्धमें वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण सीमित है किन्तु अतिरिक्त व्यय सम्बन्धी विभागों को वित्तमंत्रालय बड़े ध्यान से देखता है। यदि व्यय करने वाले किसी विभाग का प्रभारी मंत्री वित्तमंत्रालय की **अस्वीकृति** से सहमत नहीं होता है, तो वह उस मामले को मंत्रिमण्डल द्वारा विचार करने की मांग कर सकता है। मंत्रिमण्डल का निर्णय सभी सदस्यों को मान्य होता है। यदि मंत्रिमण्डल का सदस्य अपनी नीति एवं माँग पर दृढ़ रहता है और मंत्रिमण्डल के निर्णय से सहमत नहीं होता है, तो वह त्यागपत्र दे कर सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है। इसप्रकार मंत्रिमण्डल में वित्तमंत्री की स्थिति विलक्षण रूप से शक्तिशाली होती है, मंत्रिमण्डल को उसके विचारों को विशेष महत्व देना चाहिए विशेषकर विवादाग्रस्त व्यय की धनराशि पर्याप्त बड़ी होने पर।

5. विभिन्न मंत्रालयों के व्यय–अनुमानों पर वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण :–

वित्त मंत्रालय को विभिन्न मंत्रालयों के व्यय के अनुमानों पर नियन्त्रण दिये जाने के दो कारण है वे निम्नलिखित प्रकार से है –

(1) वित्त मंत्रालय स्वयं कोई व्यय करने वाला मंत्रालय नहीं है। अतः करदाता के हितों के लिए वह निष्पक्ष संरक्षक के रूप में कार्य कर सकता है।

(2) इस मंत्रालय को प्रस्तावित व्यय पूरे करने के लिए आर्थिक उपाय तथा साधन खोजने होते है। अतः यह उचित ही है कि उसे यह अधिकार होना चाहिए की अमुक व्यय किया जाना चाहिए या नहीं। व्यय करने वाले शासन के शेष मंत्रालयों की तुलना में वित्त मंत्रालय की स्थिति प्रधान है किन्तु यह स्थिति हाल के वर्षों में कई कारणों से आलोचना का विषय बन गई है।

6. बजट पर संसद की स्वीकृति : बजट का अधिनियमन

(Approval of Parliament: Enactment of the Budget) –

भारत में संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। जिसके अन्तर्गत संसदीय परम्परा का मूल सिद्धान्त है कि **संसद के पूर्वानुमोदन के बिना कोई कर नहीं लगाया जा सकता है। और न ही कोई व्यय ही किया जा सकता है।बजट** या **वार्षिक वित्तीय विवरण** का

संसद द्वारा पारित किया जाना बजट प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है, संसद में बजट को पारित करने के लिए निम्नलिखित पाँचअवस्थायें होती हैं –

(1) बजट का विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तुतीकरण (Presentation to the Legislature)

(2) बजट पर सामान्य चर्चा (General Discussion on Budget)

(3) अनुदान की मांगों पर मतदान (Voting on Demands for Grants)

(4) विनियोजन विधेयक पर विचार तथा उसे पारित करना (Consideration and Passing of the Appropriation Bill)

(5) कर सम्बन्धी प्रस्तावों अर्थात् वित्त विधेयक पर विचार करना तथा उसे पारित करना। (Consideration and Passing of the Taxation Proposals; ie., the Finance Bill)

7.वित्त मंत्री द्वारा बजट की प्रस्तुति –

वित्त मंत्री 26 फरवरी को लोक सभा में बजट भाषण प्रस्तुत करते हुए बजट प्रस्तुत करता है। लोकसभा में बजट भाषण समाप्त हो जाने पर बजट को राज्यसभा के समक्ष रखा जाता है। संसद में बजट पेश हो जाने बाद संसद लेखानुदान, अनुदानों की अतिरिक्त मांगे स्वीकार करती है। लेखानुदान की अवधि नये वित्त वर्षों के दो या अधिक महीने होती है। वित्त मंत्री संसद में बजट प्रस्तुत करने के साथ ही निम्नलिखित पाँच प्रलेख भी प्रस्तुत करता है–

(1) बजट प्रलेखों की कुंजी (Key to Budget Documents)

(2) बजट संक्षेप (Budget at Glance)

(3) प्राप्ति बजट (Receipts Budget)

(4) व्यय बजट (खण्डII) (Expenditure Budget, Vol,II)

(5) वित्त विधेयक की प्रक्रियाए समझाने वाला ज्ञापन।

(Memorandum Explaining the Process of the Finance Bill)

संसद में बजट पेश होते ही उस पर चर्चा तुरन्त शुरू नहीं हो जाती है। यह अवसर कुछ दिनों बाद आता है। जब आम बजट पर सामान्य बहस होती है। दो या तीन दिन तक लोकसभा में बजट सम्बन्धित सिद्वान्त के किसी प्रश्न पर समग्र रूप से बहस होती है। सामान्य बहस में संसदों को सरकार की वित्तीय तथा अन्य स्थितियाँ पर विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त होता है। समग्र बजट पर अथवा बजट से सम्बन्धित सिद्वान्त के किसी भी प्रश्न पर बोलने के लिए सांसद स्वतंत्र होते है। इस समय मतदान नहीं होता है और कटौती प्रस्तावों को अनुमति नहीं दी जाती है।

बजट सत्र के प्रथम भाग में अब केवलएक सामान्य बजट की प्रस्तुती की जाती है। इस बजट सत्र के प्रथम भाग की समाप्ति 21 मार्च को होती है। इसके बाद संसद के दोनों संदन एक माह के लिए स्थगित हो जाते है, ताकि विभागों से सम्बन्धित समितियाँ मंत्रियों की अनुदान मांगों पर विचार विमर्श कर सके।

बजट सत्र के द्वितीय भाग में लोकसभा द्वारा अनुदान माँगें स्वीकृत हो जाने के बाद उन मागों की पूर्ति हेतु आवश्यक धनराशि के विनियोजन हेतु एक विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। यह **विनियोजन विधेयक** (Appropriation Bill) कहलाता है। इस विधेयक के पारित होने से पूर्व बहस होती है। इस विधेयक के अधिनियमन (Enactment) के साथ ही सरकार के व्यय को संसद का अनुमोदन प्राप्त हो जाता है। व्यय का अनुमोदन करने के बाद संसद को आवश्यक राजस्व एकत्र की स्वीकृति देना चाहिए। इस प्रक्रिया हेतु वित्तविधेयक को संसदीय अनुमोदन दिया जाता है। वित्त विधेयक पर परिचर्चा होती है और इस अवसर पर भी वित्त मंत्री कुछ रियायतों की घोषणा कर सकता है। वित्त विधेयक पारित होने के साथ ही बजट को स्वीकृति प्राप्त हो जाती है। **यहां ये बताना आवश्यक है कि भारत में किसी भी अनुदान के लिए तब तक माँग नहीं की जा सकती जब तक की राष्ट्रपति उसकी सिफारिश न कर दे।**[23] इस प्रकार वर्तमान भारत में केन्द्रीय सरकार अपना बजट लागू कर देश के वित्तीय प्रशासन को आगे बढ़ाती है।

4.I. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकर व्यवस्था –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य कौटिल्य भी राजकीय करों के निर्धारण के सम्बन्ध में इस मान्यता का समर्थन करते थे कि राज्य के शासक को राजकर का निर्धारण धर्मग्रन्थों में उल्लेखित नीति–नियमों के अनुसार करना चाहिये तथा उसको लागू करने से पूर्व उस पर समाज (जनता) की स्वीकृति अनिवार्यतः प्राप्त करनी चाहिए। इस प्रकार धर्मशास्त्र द्वारा निर्धारित और समाज द्वारा स्वीकृत जो राजकर होता था, शासन व्यवस्था चाहे जैसी भी रहे, किन्तु राजकर के नियमों में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं आने पाता था और राजा प्रजा के बीच कोई विवाद खड़ा नहीं हो सकता था। ये तत्कालीन प्रशासन में सुशासन का स्थापित सिद्धान्त था कि राजकर में निष्पक्षता एवं पारदर्शिता को अपनाया जाये जो वर्तमान भारत में राजकर व्यवस्था के सन्दर्भ में सुशासन को स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण मापदण्ड हो सकता है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के **द्वितीय अधिकरण' अध्यक्षप्रचार'** में **अध्याय 21शुल्काध्यक्ष** एवं **अध्याय 22 शुल्क व्यवहार** के अन्तर्गत राजकर व्यवस्था को वर्णित किया गया है। इन अध्यायों (21,22) में तत्कालीन प्रशासन के राजकर सिद्धान्तों, राजकर की वसूली हेतु

संगठनात्मक व्यवस्था, करों की दरों, कर वसूली के नियमों, विविध प्रकार के करों तथा कर वसूली में लोक सेवकों द्वारा की जाने वाली लापरवाही को रोकने हेतु कठोर दण्डात्मक कार्यवाही का भी विस्तार से उल्लेख किया है।

राजकरों के सम्बन्ध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में एक विशिष्ट तथ्य का उल्लेख मिलता है कि जब कभी राष्ट्र को युद्ध तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं से धन की हानि हो तो राजा को यह अधिकार दिया गया था कि वह जनता से विशेष कर के रुप में धन की पूर्ति करे लेकिन यह कर केवल एक ही बार एकत्रित किया जा सकता था।

1.कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कर निर्धारण हेतु सिद्धान्त –

कौटिल्य ने राजकर निर्धारण हेतु कुछ सिद्धान्त बताये हैं। ये निम्नलिखित हैं–

(1) उचित राजकर निर्धारण का सिद्धान्त–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उचित राजकर निर्धारण के सन्दर्भ में कहा गया है कि राजा को चाहिये कि वह देश,जाततथा आचार के अनुसार नये एवं पुराने हर पदार्थों पर कर की व्यवस्था करे और उनमें जहाँ से नुकसान की सम्भावना हो,उसके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था करे।[24]

(2) आय–व्यय का सिद्धान्त –

कौटिल्य का मानना था कि अगर आय थोड़ी हो तथा खर्च (व्यय) अधिक हो तो क्षय (घाटा) है। इसके विपरित यदि आय अधिक तथा खर्च कम (व्यय) हो तो वृद्धि समझना चाहिये। इसी प्रकार बराबर आय–व्यय में समान (संतुलन) व्यवस्था समझनी चाहिये और इस सन्तुलन व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए कर निर्धारित किये जायें।

(3) आय–व्यय पर नियन्त्रण का सिद्धान्त–

कर निर्धारण के सन्दर्भ में आय–व्यय पर नियन्त्रण (ध्यान) रखने वाले राजा पर कभी कोई आर्थिक एवं सैन्य आपत्तियों नहीं आ सकती है।

(4) लोकहित का सिद्धान्त –

शासक को स्वदेशी एवं विदेशी वस्तुओं की बिक्री का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि प्रजा को कष्ट न हो। यदि किसी वस्तु में अधिक लाभ की सम्भावना है किन्तु उससे प्रजा को कष्ट पहुंचता हो, तो राजा को उस कार्य को तुरन्त रोक देना चाहिये। हर प्रकार का कर इस प्रकार निर्धारित करना चाहिए जिससे देश का उपकार हो।

(5) राष्ट्रहित का सिद्धान्त–

राष्ट्र को हानि पहुंचाने वाले विष, फल आदि माल को राजा नष्ट कर दे। यदि प्रजा का उपकार करने वाला तथा कठिनाई से प्राप्त होने वाला धान्य आदि माल है, तो

उस पर शुल्क(चुंगी) न लगायी जाय, जिससे उस माल का अपने देश में अधिक आयात हो सके। जिस प्रदेश में जो वस्तु पैदा होती होउसको वहीं पर बेचना नहीं चाहिए।

(6) कोष वृद्धि का सिद्धान्त –

राजा को चाहिये की वह दुष्ट पुरूषों का धन उसी प्रकार से ले, जिस प्रकार वाटिका से पके हुये, फल को लिया जाता है, किन्तु धर्मात्मा पुरूषों का धन उसी प्रकार छोड़ दे, जैसे कच्चे फल को छोड़ दिया जाता है। कच्चे फल के समान धर्मात्मा पुरूषों से वसूला गया धन प्रजा के क्रोध का कारण बन जाता है।[25]

(7) कर–वसूली सम्बन्धी सिद्धान्त –

राजा को जनता की क्षमतानुसार ही कर लगााना चाहिये अर्थात् जितना कर जनता दे सकती है उतना ही कर राजा को वसूल करना चाहिये। अन्यायपूर्ण तरीके से वसूले गये कर जनता को क्रोधित कर देते है और वह विद्रोह कर शत्रुओं से मिल सकती है तथा राज्य को नुकसान पहुँचा सकती है।

(8) सूचना का अधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में सूचना के अधिकार के बारे में भी उल्लेख किया है। कौटिल्य ने लिखा है कि राजा के महामात्र आदि मुख्य अधिकारी आय–व्यय व नीवी (बजट) सम्बन्धी सारी राजकीय व्यवस्थाऐं जनता कोसमझाये बुझायें। यदि उनमें से कोई भी अधिकारी इस राजकीय व्यवस्थाओं का झूठा प्रचार करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिये।[26]

(9) धन से धन की उत्पति कासिद्धान्त –

कौटिल्य का मत है कि जैसे एक हाथी द्वारा ही दूसरे हाथी को वश (पकड़ा) में किया जा सकता है, उसी प्रकार व्यक्ति को अधिक धन की प्राप्ति के लिये धन की ही आवश्यकता होती है। इस प्रकार धन से ही धन को प्राप्त किया जा सकता है। कौटिल्य के मतानुसार कर निर्धारण में इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिए।[27]

10. करारोपण में छूट का सिद्धान्त –

कौटिल्य ने लिखा है कि राजकीय भूमि में से कुछ भूमि राजा द्वारा ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य एवं श्रोत्रिय आदि को उनके जीवन निर्वाह के लिए दी जाती थी। इसको **ब्रह्मदेय** कहते थे। इनसे न कोई भूमिकर और न कोई जुर्माना लिया जाता था।

2. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कराधान हेतु राजस्व के स्त्रोत –

कौटिल्य ने राज्य के कराधान हेतु राजस्व के विविध स्त्रोतों का भी वर्णन किया है। कौटिल्य के मतानुसार समाहर्ता (कलक्टर जनरल) को 1. दुर्ग, 2. राष्ट्र, 3. खनि, 4. सेतु,

5. वन, 6. ब्रज और 7. व्यापार इत्यादि राजस्व स्त्रोतों को अपने अधीनस्थ अध्यक्षों की सहायता से एकत्र करना चाहिए।[28] ये राजस्व स्त्रोत संक्षेप में निम्नलिखित है–

1. **दुर्ग** –शुल्क(चुंगी),दण्ड (जुर्माना), पौतव (तराजू–बाट), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष (पटवारी, कानूनगो, अमीन) मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष (आबकारी अधिकारी) सूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, तेल–घी आदि का विक्रेता, सुवर्णाध्यक्ष, दुकान, वेश्या, द्यूत, वास्तूक (शिल्पी), बढ़ई, लुहार, सुनार, मन्दिरों के निरीक्षक, द्वारपाल और नट–नर्तक आदि से लिया जाने वाला धन दुर्ग कहलाता है।
2. **राष्ट्र** –सीता (खेती), भाग (धान्य का षष्ठांश), बलि (उपहार), कर (फल, वृक्ष आदि का टैक्स), वणिक् (व्यापार कर), नदीपालस्तर (नदी पार होने का टैक्स), नाव का कर, पट्टन (कस्बों की आय), विवीत (चरागाहों की आय), वर्तनी (मार्गकर), रज्जू (भूमि निरीक्षकों द्वारा प्राप्तव्य धन) और चोर रज्जू (चोरों को पकड़ने के लिए ग्रामवासियों से मिला धन) आदि आय के साधन राष्ट्र कहलाते थे।
3. **खनि** –सोना, चांदी, हीरा, मणि, मोती, मूँगा, शंख, लोहा, लवण, भूमि, पत्थर और खनिज पदार्थ खनि कहे जाते है।
4. **सेतु** –फूल, फल, केला, सुपारी, अन्न के खेत, अदरख और हल्दी के खेत इन सब को सेतु कहा जाता है।
5. **वन** –हरिण आदि पशु, लकड़ी आदि द्रव्य और हाथियों के जंगल को वन कहा जाता है। इससे प्राप्त राजस्व वन कहलाता था।
6. **व्रज** –गाय, भैंस, बकरी, भेड़, गधा, ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि जानवर व्रज नाम से कहे जाते है।इनसे प्राप्त कर को व्रज कहा जाता है।
7. **वणिक्पथ** –स्थल और जलमार्ग, व्यापार के इन दोनों मार्गों को वणिक्पथ कहा जाता है। इनसे प्राप्त राजस्व वणिक्पथ कहलाता था।

उपरोक्त वर्णित ये सभी सात साधन आमदनी के स्त्रोत थे। इन्हें कौटिल्य ने **आयशरीर**के नाम से सम्बोधित किया है। इनके अतिरिक्त **मूल**(अनाज, साग, सब्जी आदि को बेचकर एकत्र किया गया धन), **व्याजी** (कपटी व्यापारियों से दण्ड रूप में वसूल किया गया धन) **परिघ** (लावारिस का धन) **कल्पत** (नियत कर), रूपिक (नमककर) **अत्यय** (जुरमाने का धन) आदि भी आय के अन्य साधन हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कौटिल्य ने राजकीय व्यय को **व्ययशरीर** के नाम से वर्णित किया है। आचार्य ने इसके लगभग 22 प्रकार बताये थे। इसके अतिरिक्त राजकीय व्यय में राजकीय लोक सेवकों को दिया जाने वाला वेतन भी सम्मिलित था।

3. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकर वसूली हेतु संस्थाऐं –

कौटिल्य ने मौर्य साम्राज्य में राजकर वसूली हेतु नियुक्त संस्थाओं एवं उनके पदाधिकारियों का भी वर्णन किया है। ये निम्नलिखित है –

1. समाहर्ता अधिकरण–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य सम्राज्य की केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न जनपदों के प्रशासन के लिए नियुक्त अमात्यको समाहर्ता कहते थे। ये जनपदीय प्रशासन का प्रमुख प्रशासकीय व नियन्त्रक अधिकारी था तथा साथ ही साथ इसके अधीन राज्य का राजस्व विभाग भी होता था।

इस अधिकरण के अन्तर्गत समाहर्ता का सर्वप्रधान कार्य राजकीय करों का एकत्रीकरण करना था। ये राजस्व राज्य को विविध प्रकार के साधनों से प्राप्त होता था। इस समाहर्ता के अधीन करीब बीस अध्यक्ष होते थे। जो अपने–अपने विभाग के राजकीय करों को एकत्र करते थे और व्यापार–व्यवसाय व राज्य के उद्योगों का संचालन भी करते थे। समाहर्ता का यह भी दायित्व था कि वह राजस्व प्राप्ति के साधनों की देख–रेख व निरीक्षण करे तथा सही राजस्व वसूली हेतु अपनेअधीनस्थ अधिकारियों व कार्मिकों पर कठोर नियन्त्रण भी रखे।

2. शुल्काध्यक्ष –

कौटिल्य ने शुल्क (चुंगी) की वसूली के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति का भी प्रावाधान किया था। यह अधिकारी' **शुल्काध्यक्ष**' कहलाता था।[29] ये समाहर्ता (राजस्व विभाग का सर्वोच्यअधिकारी) के अधीन रहकर कार्य करता था। कौटिल्य का मानना था कि सब माल जो नगर में क्रय विक्रय के लिए आता है वो पहले शुल्काध्यक्ष के पास लाया जाए। जब उस पर शुल्क दे दिया जाता था। तब उस पर अभिज्ञान मुद्रा लगा दी जाती थी। उसके बाद ही माल का विक्रय किया जा सकता था। इस प्रकार शुल्काध्यक्ष ही चुंगी वसूली के लिए उत्तरदायी पदाधिकारी था।

4. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में विविध प्रकार के राजकर

अर्थशास्त्र में उल्लेखित विभिन्न प्रकार के राजकीय करों का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है –

1. भूमिकर –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य युग में राज्य कृषि भूमि पर कर लगाता था। इसे भूमिकर कहा गया है तथाइस कर को समाहर्ता के अधीन सीताध्यक्ष (कृषि विभागाध्यक्ष) द्वारा वसूल किया जाता था।ये कर दो प्रकार के थे –सीता और भाग (कर)।

(i) **सीता–** ये भूमि कर धान्य के रुप में वसूल किया जाता था।

(ii) **भाग कर** –मौर्य युग में सारी भूमि राजकीय स्वामित्व में नहीं होती थी। ऐसी भी भूमि थी, जिस पर स्ववीर्योपजीवि (अपने श्रम से स्वतन्त्र रूप से खेती करने वाले) किसान खेती करते थे। ये कृषक राजकीय सेवा में न होने के कारण कोई वेतन आदि प्राप्त नहीं करते थे। अपितु अपने हानि–लाभ के लिए स्वयं ही उत्तरदायी होते थे। राज्य इनसे **भाग कर**नामक भूमिकर वसूल करता था। इस भाग कर के अन्तर्गत राज्य किसानों से उपज का एक निश्चित भाग प्राप्त करता था। इस कर की मात्रा का निर्धारण दो आधारों पर किया जाता था। ये आधार थे–**पहला जमीनकी उपज** एवं **दूसरा सिंचाई के साधन।**

यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि इन स्वतंत्र किसानों का भूमि पर अविकल स्वत्तव स्वीकृत नहीं किया गया था। जो कृषक स्वयं खेती न करें,उनसे भूमि लेकर ऐसे व्यक्तियों को दे दी जाती थी, जो उस पर स्वयं खेती करें।

2. भाग कर वसूली के नियम –

भाग (कर) वसूली के ये नियम इस प्रकार से हैं–

(1) जो किसान पूर्णतया स्वतन्त्र रूप से खेती करते थे और सिंचाई की व्यवस्था भी स्वयं करते थे, उनसे जमीन की उत्कृष्ट एवं निकृष्ट क्षमता के अनुसार पैदावार का 1/4 या 1/5 भाग भूमिकर के रूप में लिया जाता था।

(2) जो किसान सिंचाई हेतु जल सरकार से लेते थे उनसे भूमिकर की दर अन्य थी।

(3) जिस भूमि की सिंचाई कुओं द्वारा अर्थात् हाथ से पानी खींचकर की जाती थी उसकी उपज का 1/5 भाग कर रूप में लिया जाता था।

(4) जो किसान चरस,रहट आदि से पानी खींच कर सिंचाई करते थे उनसे उपज का 1/4 भाग कर लिया जाता था।

(5) जिस भूमि पर पम्प, वातयंत्र सुदृश यंत्रों द्वारा सिंचाई की जाये उसकी उपज का 1/3 भाग कर लिया जाता था।

(6) नदी,तालाब,नहर आादि से सिंचाई की अवस्था में उपज का 1/4 भाग कर रूप में निर्धारित था।

(7) यदि कोई किसान नये तालाब या बाँघ बनाये तो उसे पाँच वर्ष के लिए तथा भग्न तालाब या बाँघ की जो किसान मरम्मत कराये उसे चार वर्ष के लिए भूमिकर में छूट की व्यवस्था भी की गई थी।

2. शुल्क (चुंगी) कर –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में शुल्क के सम्बन्ध में जो निर्देश दिये गये है वे **चुंगी** को सूचित करते थे। यह शुल्क माल के क्रय–विक्रय पर लिया जाता था। यह शुल्क एक प्रकार का उत्पादन शुल्क (Excise Duty) होता था। लेकिन जब किसी माल को विक्रय के लिए उत्पादन स्थान से अन्यत्र नगर आदि में ले जाया जाता था तो यहाँ पर राजकीय शुल्क देना पड़ता था जिसका स्वरुप विक्रय कर (Sales Tax) या चुंगी के समान होता था।

कौटिल्यने इस शुल्क (चुंगी) के प्रकार, शुल्क दर, शुल्क की वसूली हेतु, संगठनात्मक व्यवस्था एवं शुल्क व्यवहार (सही कर वसूली) के नियमों एवं नियमों के उल्लंघन पर दण्ड की व्यवस्था का भी विस्तार से वर्णन किया है। यह विवरण निम्नलिखित हैं–

1. शुल्क (चुंगी) के प्रकार –

कौटिल्य ने चुंगी के तीन प्रकार बताये थे –**1. बाह्य–** यह चुंगी अपने राज्य में उत्पन्न वस्तुओं पर ली जाती थी। **2. आभ्यान्तर**–राजमहल एवं राजधानी के भीतर उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर ली जाने वाली चुंगी। **3. आतिथ्य –**ये विदेश से आने वाले माल पर ली जाने वाली चुंगी होती थी।[30]

(2) शुल्क (चुंगी) की दर –

इस शुल्क की दर के सम्बन्ध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का यह निर्देश उल्लेखनीय है –

तालिका–4.1

माल के अनुसार शुल्क दर

क्र.सं.	पण्य (माल) का प्रकार	शुल्क दर (प्रतिशत)
1	नाप कर बेचे जाने वाले माल पर	6,1/4
2	तौल कर बेचे जाने वाले माल पर	5
3	गिनकर बेचे जाने वाले माल पर	9,1/11

यह शुल्क माल के मूल्य के अनुसार भी लगाया जाता था। यहाँ ये उल्लेखनीय है कि कौटिल्य का मानना था कि कोयला,नमक आदि कम चुंगी वाली वस्तुओं पर अंदाज से ही कर ले लेना चाहिये इन्हें तौलने की आवश्यकता नहीं है।

3. शुल्क शाला (चुंगीघर)–

कौटिल्य के मतानुसार शुल्काध्यक्ष का प्रमुख दायित्व शुल्कशाला (चुंगीकर) का निर्माण करवाना था। शुल्काध्यक्ष को चाहिये की वह इस शुल्कशाला के पूर्व तथा उत्तर की और प्रधान द्वार के पास शुल्कशाला की पहचान के लिए एक पताका (ध्वज) भी लगवा दे। इस शुल्कशाला में उसकी सहायता के लिये चार या छःकर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। ये कर्मचारी राज्य में माल लाने व ले जाने वाले व्यापारियों के नाम उनकी जाति निवास स्थान, माल का विवरण एवं उस पर कहाँ–कहाँ की मुहर लगी है इसका विवरण लिखते थे।जिस व्यापारी के माल पर मुहर न लगी हो, उससे चुंगी के माल का दुगुना जुर्माना लिया जाए।जो व्यापारी अपने माल पर नकली मुहर लगाये, उन पर चुंगी का आठ गुना जुर्माना लेना चाहिए। जो व्यापारी माल पर मुहर लगाकर उसको मिटा दे उन्हे तीन घड़ी तक (ढाई घड़ी का एक घण्टा) ऐसे स्थान पर बैठा कर रखा जाय जहाँ पर की आने–जाने वाले सभी व्यापारियों की नजर पड़े और वह उसके अपराध को जान सके। माल का नाम बदलने वाले व्यापारी पर सवा पण दण्ड करना चाहिए।

4. शुल्क शाला में कार्य–प्रक्रिया –

शुल्कशाला में व्यापारी लोग एकत्र होकर अपने–अपने माल का नाम उसकी कीमत और वजन आदि की बोली लगाये। तीन बार आवाज लगाने पर जो भी खरीद मूल्य दे, उसे माल दे देना चाहिये। यदि खरीदने वालों में प्रतिस्पर्धा हो जाये तो माल का मूल्य बढ़ाकर बोली बोली जाये और निर्धारित आमदनी से अधिक मूल्य एवं उसकी चुंगी राजकीय कोष में जमा करवा दी जाये। अधिक चुंगी देने के डर से यदि कोई व्यापारी अपने माल और उसके मूल्य को कम करके बताये तो उसके अतिरिक्त माल को राज्य जब्त कर ले या व्यापारी से इसके लिए आठ गुना शुल्क वसूल करे।इसी प्रकार का दण्ड उस व्यापारी को भी देना चाहिए जो कि बढ़िया माल की जगह उसी प्रकार की दूसरी पेटी में घटिया माल रखकर उसका मूल्य कम कर दे या जो व्यापारी नीचे के हिस्से में अच्छा माल और ऊपर से सस्ता माल भर दे और उसी के अनुसार चुंगी दे। प्रतिस्पर्धा के कारण जो ग्राहक किसी चीज का मूल्य बढ़ा दे, तो उस बढ़े हुये मूल्य को राजा ले ले या उस मूल्य बढ़ानें वाले खरीददार से दुगुनी चुंगी वसूल कर ली जाए।मित्रता या रिश्वत के कारण यदि अध्यक्ष किसी अपराधी व्यापारी को माफ कर दे तो अपराध के अनुपात में उससे आठ गुना दण्ड अध्यक्ष को दिया जाए। जो व्यापारी छिपकर या किसी छल से चुंगी दिये बगैर ही शुल्कशाला से चला जाय तो उनसे नियत शुल्क से आठ गुना अधिक शुल्क वसूला जाय। लकड़हारे व ग्वाले यदि सही रास्ते को छोड़कर इधर–उधर से निकल जाए तो उन पर

निगरानी रखी जाए। यदि कोई व्यापारी चुंगी दिये माल के साथ बिना चुंगी दिये माल को निकाल ले जाये, चुंगी दिये माल में बिना चुंगी का माल मिला दे उस व्यापारी का बिना चुंगी का माल जब्त कर लिया जाए और उस पर उतना ही दण्ड निर्धारित किया जाये। जो व्यापारी चुंगी देने के भय से अपना अच्छे माल को घटिया बताकर धोखे से निकालने की कोशिश करे उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाए।लोहा,शस्त्र,कवच, रथ,रत्न,अन्य,पशु आदि किसी भी प्रतिबन्धित वस्तु को लाने ले जाने वाले व्यापारी को पूर्व निर्धारित दण्ड दिया जाए और वस्तुओं को जब्त कर लिया जाए। लेकिन इनमें से यदि कोई वस्तु बाहर लायी जाए तो वह बिना चुंगी के दिए भी नगर की सीमाओं के बाहर बेची जा सकती है।

5. चुंगी कर से छूट वाले पदार्थ –

विवाह सम्बन्धी,विवाह में प्राप्त, सदाव्रत या क्षेत्रों के लिये दिया गया दान, यज्ञ कर्म एवं जन्मोत्सव,के लिए भेजा हुआ देव पूजा,गोदान, जनेऊ और व्रत आदि धार्मिक कार्यो से सम्बद्व माल पर चुंगी न ली जाए। किन्तु यदि कोई व्यापारी चुंगी दिये जाने के भय से अपने माल का सम्बन्ध उक्त कार्यों से बताये तो उसे चोरी का दण्ड दिया जाए।[31]

6. विदेशी व्यापारियों के लिए चुंगीकर –

अन्तपाल को चाहिए की वह विदेशी व्यापारियों के माल की भली–भाँति जाँच कर उस पर मुहर लगाये और रमन्ना काट कर उन्हें शुल्काध्यक्ष के पास भेज दें।जो व्यापारी घटिया माल को छिपाने का यत्न करे उस पर चुंगी से आठ गुना जुर्माना और जो बढ़िया माल को छिपाये उसका सारा माल जब्त कर लेना चाहिए।

7. शुल्क व्यवहार में उत्पन्न व्यवधान पर दण्ड की व्यवस्था –

कौटिल्य ने शुल्क व्यवहार में उत्पन्न व्यवधानों के निराकरण हेतु दण्ड की व्यवस्था को भी वर्णित किया है जो इस प्रकार से है[32]–

1. द्वारपाल को चाहिए कि वह नगर के मुख्य द्वार से प्रविष्ट होने वाली वस्तुओं पर, उनके नियत कर का पाँचवां हिस्सा टैक्स वसूल करे।

2. खानों से तैयार किया हुआ कच्चा माल खरीदने–बेचने वालों पर छः सौ पण दण्ड देना चाहिए।

3. फल–फूल के बगीचों में ही फल–फूल को खरीदने व बेचने वालों पर 54 पण का दण्ड देना चाहिए।

4. साक–सब्जी के खेतों में साक भाजी तथा कन्दमूल खरीदने–बेचने वालों को 52,3/4 पण दण्ड देना चाहिए।

5. इसी प्रकार अनाज के खेतोंमें ही अनाज खरीदने वालो को 53 पण दण्ड देना चाहिए।

6. अनाज को खेत से ही खरीदने व बेचने वालों को क्रमशः 1 पण और 1,1/2 पण दण्ड देना चाहिए।

3. प्रत्यक्ष कर –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से यह तथ्य प्रदर्शित होता है कि मौर्य प्रशासन में अनेक ऐसे भी कर थे उन्हें प्रत्यक्ष कर कहा जा सकता है क्योंकि ये व्यवसायियों से सीधे रूप से वसूल किये जाते थे। ये प्रत्यक्ष कर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किये गये हैं –

1. तौल एवं माप के बाट एवं मान पर कर –

ये तौल एवं माप के बाट और मान राज्य द्वारा प्रमाणित किये जाते थे जिसके लिए पौत्वाध्यक्ष द्वारा व्यापारियों से4 **माषक** कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त इन प्रमाणित बाटों एवं मानों के प्रयोग के लिए उन्हें एक **काकणी** प्रतिदिन भी देनी होती थी। जिस व्यापारी के बाट और मान राज्य द्वारा प्रमाणित न हो,उस पर 37,1/4 पण जुर्माना किया जाता था।[33]

2 द्यूत (जुआ) खेलने पर कर –

कौटिल्य के मतानुसार जुआरी लोग निर्दिष्ट स्थान पर ही जुआ खेल सकते थे। जो धन जुआ में जीता जाए उसकी 5 प्रतिशत राशि राज्य को प्रदान करनी होती थी। निर्दिष्ट स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थान पर जुआ खेलने, द्यूत–कीड़ा के लिए आवश्यक उपकरणों का दुरूपयोग करने और जुआ में अनियमितता करने के लिए विभिन्न प्रकार के जुर्मानों की व्यवस्था की गई थी।

3.रूपजीवाओं पर कर –

रूप से आजीविका चलाने वाली वेश्याओं,गणिकाओं आदि से दैनिक आमदनी का दुगना प्रति मास कर के रूप में लिया जाता था।

4. नट,नर्तक,गायक,वादक,कुशीलव,जादूगर और चारणों से भी उनकी दैनिक आमदनी का दुगना प्रतिमास कर लेने का नियम था। यदि नट,नर्तक,गायक आदि कही बाहर से आकर तमाशे दिखायें तो उन्हें 5 पण तमाशा दिखाने के लिए अनुमति प्राप्त करने की फीस के रूप में देना होता था।

5. विविध प्रकार के कारूओं (कारीगरों या व्यवसायियों) को भी अपने धन्धे करने के लिए राज्य को कर प्रदान करने होते थे। इनमें धोबी,सुनार,ततुंवाय,चिकित्सक,कुशीलव आदि सम्मिलित है। अगर ये नियमानुकूलकार्य न करें तो उनसे वसूल किये जाने वाले जुर्मानों का भी अर्थशास्त्र में विशद वर्णन किया गया है।

4. तटकर (आयात और निर्यात कर) –आचार्य कौटिल्य ने तटकर का भी विस्तार से उल्लेख किया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के माल का उल्लेख मिलता है जिस पर राज्य द्वारा शुल्क लिया जाता था। ये तीन प्रकार के माल हैं – बाह्य, आभ्यन्तर और आतिथ्य।[34]

यहाँ सम्भवतः**आतिथ्य** उस माल को कहते थे, जो विदेशों से आता था। देश से बाहर भेजे जाने वाले माल को **निष्क्राम्य** (निर्यात्) और विदेश से स्वदेश में आने वाले माल को **प्रवेश्य** (आयात) कहते थे। इन दोनों प्रकार के माल पर कर लिया जाता था। इन्हें क्रमशः निष्क्राम्य (निर्यात) और प्रवेश्य (आयात) कर कहते थे।

(1) प्रवेश्य (आयात) कर–

कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य में विदेश से आने वाले माल पर प्रवेश्य कर (आयात कर) वसूल किया जाता था इस कर की दर माल की मात्रा मूल्य का 20 प्रतिशत थी। पर इसके कुछ अपवाद भी थे। जैसे –

(i) पुष्प, फल, शाक, मूल, कंद, बीज, सूखी मछली और माँस के आयात पर मूल्य का छटा भाग (16,1/4 प्रतिशत) कर के रूप में लिया जाता था।

(ii) शंख, व्रज, मणि, मुक्ता, प्रवाल और हारों के आयात पर प्रवेश्य शुल्क लगाते हुए ध्यान में रखा जाता था कि वे किस श्रेणी के हैं, उनकी प्राप्ति व निर्माण में कितना समय, लागत लगी, कितना वेतन देना पड़ा और उनका क्या रूप है। इन बातों को ध्यान में रखकर विशेषज्ञ व्यक्ति इनके आयात पर शुल्क का निर्धारण करते थे।

(iii) क्षौम, रेशम, कवच, हरिताल, हिंगुल लौह एवं अन्य धातुओं अगरू, कटुक, किण्व, सुरा हाथीदाँत, वस्त्र, खाल और दुकूल बनाने के लिये कच्चा माल, कालीन, परदे, कृमिज व उसी माल के आयात पर प्रवेश्य कर की मात्रा उनके मूल्य का 10 से 15 प्रतिशत तक था।

(iv) वस्त्र, चौपाये, द्विपद (पशु या पक्षी) सूत, कपास, सुगन्ध, औषधि वल्कल, चर्म, मिट्टी के बर्तन, तेल, धान्य, क्षार, लवण, मद्य, पक्वान (मिठाई) आदि पर प्रवेश्य कर की दर 4.5 प्रतिशत तक थी।

2. प्रवेश्य कर के प्रकार –

प्रवेश्य कर के अन्तर्गत ही अन्य दो प्रकार के कर भी थे जो आयात माल पर राज्य द्वारा वसूल किये जाते थे। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है –

(i) द्वार देय कर–

प्रवेश्य–कर के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी कर था। ये द्वारदेय कर कहलाता था। ये कर सम्भवतः माल के नगर में प्रवेश करने के समय लिया जाता था। इसकी दर

शुल्क की 20 प्रतिशत थी। भिन्न–भिन्न देशों से आने वाले माल के सम्बम्ध में इस कर में रियायत भी की जा सकती थी। ऐसी रियायतों को **देशोपकार** और **आनुग्राहिक** कहते थे।

यदि कोई देश मौर्य साम्राज्य के माल के साथ रियायत करे तो उस देश से आने वाले माल पर मौर्य सरकार द्वारा**रियायत या अनुग्रह** किया जाता था। यदि कोई विदेशी राज्यमौर्य राज्य के माल पर अधिक शुल्क ले तो मौर्यों द्वारा भी उसके माल पर साधारण शुल्क के अतिरिक्त **अत्यय** वसूल किया जाता था।

(ii) वैधरण कर –

जिस व्यसाय पर राज्य का एकाधिकार था,उनके माल को बाहर से मंगाने पर एक अतिरिक्त कर भी लिया जाता था इसे ही **वैधरण कर** कहते थे। उदाहरण के लिए लवण (नमक) के व्यवसाय को लिया जा सकता है इस पर राज्य का एकाधिकार था। विदेशी नमक के स्वदेश में आने पर प्रवेश्य कर की दर 16,2/4 प्रतिशत थी पर इसके अतिरिक्त उतना वैधरण (अतिरिक्त कर) भी देना पड़ता था जितना की विदेशी नमक के आने सेनमक के राजकीय व्यवसाय को हानि पहुँची हो।यही व्यवस्था शराब आदि माल के आयात के सम्बन्ध में थी, क्योंकिइन पर भी राज्य का एकाधिकार था। प्रवेश्य कर जैसे करों को लगाने का उद्देश्य यहीं था कि राजकीय आमदनी में वृद्धि होसके क्योंकि कौटिल्य राजकोश को बहुत महत्व देते थे।

2. निष्क्राम्य (निर्यात्) कर –

इसके अन्तर्गत निष्क्राम्य (निर्यात्) पण्य पर शुल्क लिया जाता था। लेकिन इस कर की क्या दर थी इसके सम्बन्ध में कोई सूचना कौटिल्य ने नहीं दी है। सम्भवतः इस कर को समाहर्ता के अधीन **पण्याध्यक्ष** वसूल करता था।

पण्याध्यक्ष का एक कार्य यह भी था,कि वह अपने देश में उत्पन्न माल को अन्य देशों में बिकवाने का प्रयत्न करे। इस सम्बन्ध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कहा गया है कि परदेश में व्यापार के लिए पण्य एवं प्रतिपण्य (निर्यात् के बदले आने वाला माल) के मूल्य में से शुल्क,वर्तनी (सड़क कर) माल ढ़ोने का खर्च,छावनी का कर, नौका के भाड़े आदि का खर्च घटाकर शुद्ध मुनाफे (उदय) का अनुमान करे यदि यह पाया जाए की लाभ नहीं है तो यह मालूम करे की स्वदेशी पण्य के बदले में कोई ऐसा विदेशी पण्य प्राप्त किया जा सकता है या नहीं जिससे लाभ हो सके।

ये सब बाते मालूम करके अपने देश का माल स्थल मार्ग द्वारा भेजा जाए क्योंकि जल मार्ग में अधिक खतरे रहते है। माल ले जाने वाले व्यापारी विदेशी राज्य के आटविको,अन्तपालों, पुरमुख्यों और राष्ट्र(जनपद) मुख्यों के साथ सम्पर्क स्थापित करें ताकि

वे उनका अनुग्रह प्राप्त कर सकें। नदी मार्ग के सब व्यवहारों एवं चरित्रों को जान कर जहाँ माल भेजने से लाभ हो वहींमाल को भेजा जाये जहाँ हानि की सम्भावना हो वहाँ से दूर ही रहें।

5. आपातकाल में सम्पति पर विविध प्रकार के कर –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राज्य द्वारा लगाये गये सामान्य करों के अतिरिक्त संकटकालीन परिस्थितियों में सम्पत्ति पर विविध प्रकार के कर लगाने के सम्बन्ध में भी विस्तार से वर्णन किया गया है।[35] कौटिल्य का मत था कि किसी भी प्राकृतिक या मनुष्यकृत आकस्मिक विपत्ति की उपस्थिति होने पर राजा अनेक विधउपायों से धन संचय कर सकता था। इसी के अन्तर्गत सम्पत्ति पर विशिष्ट कर राज्य द्वारा वसूल किए जाते थे। ये कर निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किये गये है–

(1) कृषकों से लिए जाने वाले कर –

कौटिल्य का कहना था कि आपातकाल में राजा किसानों से विशिष्ट धन की मांग कर सकता था। जनपद चाहे विशाल हो या छोटा हो, चाहे वहाँ की भूमि **देवमातृका** (सिंचाई के लिए केवल वर्षा पर निर्भर) हो यदि वहाँ अन्न अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है तो राजा उत्पादन का **तृतीय** या **चतुर्थ अंश** की याचना करे। ऐसे अवसर पर यदि कोई अपने धान्यको छिपाने का प्रयत्न करे, तो उस पर छिपाये हुए अन्न का आठ गुना जुर्माना वसूल किया जाए।

(2) व्यापारी वर्ग से लिए जाने वाले कर –

संकटकाल में केवल किसानों से ही नहीं वरन् व्यापारियों से भी विशिष्ट कर वसूल किया जाता था। ये कर हैः सुवर्ण, रजत, मणि, मुक्ता, प्रवाल, अश्व, और हाथी सदृशबहुमूल्य पण्य के विक्रेताओ से 2 प्रतिशत सूत, वस्त्र, ताम्र, पीतल, औषधि, सुगन्धि और शराब विक्रेताओं से 2,1/2 प्रतिशत धान्य, द्रव पदार्थ, लौह बेचने वालों तथा शकट (गाड़ी) की व्यवहार करने वालों से 3,1/3 प्रतिशत, कॉंच के व्यापारियों एवं बड़े कारीगरों से 5 प्रतिशत, छोटे कारीगरों और वेश्यावृति कराने वालों से 10 प्रतिशत, वेणु, पाषाण, मिट्टी के बरतन, पक्वान्न और शाक सब्जी बेचने वालो से 20 प्रतिशत, कुशीलवों तथा रूपजीवाओं से 50 प्रतिशत विशिष्ठ कर लेने की व्यवस्था थी।

3.पशुपालकों पर कर –

पशुपालको पर भी संकटकाल में विशिष्ट कर लगाये जाते थे। ये है –मुर्गी और सूअर पालने वालों से इसकी दर 50 प्रतिशत, छोटे पशु (भेड़,बकरी आदि) पालने वालों से 16, 2/3 प्रतिशत, गाय,खच्चर,गधे–ऊँट पालने वालों से 10 प्रतिशत दर होती थी।

पर यहाँ ये उल्लेखनीय तथ्य है कि ये अतिरिक्त कर केवल एक बार ही लिए जा सकते थे दो बार नहीं।

4. पौर जानपदों से धन की याचना –

राजकोश की पूर्ति के लिए या अर्थ संकट के निवारण के लिए केवल विशिष्ट करों को ही पर्याप्त नहीं समझा जाता था।पौर जानपदों से विशिष्ट कार्य या प्रयोजन बताकर धन प्रदान करने के लिए भिक्षा (याचना) भी मांगी जाती अर्थात् चंदा एकत्र किया जाता था।

5. अन्य उपायों द्वारा कर वसूली –

अन्य उपायों के अन्तर्गत सबसे पूर्व राजा के विश्वस्त या राजा से मिले हुए व्यक्ति बड़ी मात्रा में धन प्रदान करते थे फिर उनका उदाहरण अन्य लोगों के सम्मुख रखकर उन्हें भी धन प्रदान करने के लिए उकसाया जाता था। कापटिक (कपट वेष बनाये हुए) गुप्तचर, नागरिक के रूप में अपने को प्रस्तुत करके उन व्यक्तियों की भर्त्सना करते थे, जो धन की स्वल्प राशि प्रदान करते हों।सम्पन्न लोगों से यह कहा जाता था कि वे अधिक से अधिक हिरण्य (सोना) राजा को प्रदान करें। जो कोई स्वेच्छापूर्वक राजकोश में धन प्रदान करे,उन्हें राजदरबार में ऊँचा पद छत्र,सम्मान सूचक पोशाक या शिरोवस्त्र और पदक आदि देकर उनका सम्मान किया जाता था।

6. कर प्राप्ति के निषेधात्मक उपाय –

पर कतिपय दशाओं में ये उपरोक्त उल्लेखित सब उपाय भी राज्य के अर्थ संकट का निवारण करने के लिए पर्याप्त नहीं होते थे तब कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कुछ ऐसे उपायों का भी प्रतिपादन किया है जो उन्हें सामान्य दशा में कभी भीउचित नहीं माना जा सकता था। ये ही वे निषेधात्मक उपाय हैं जो निम्नलिखित हैं–

(1) दुर्ग (पुर) और राष्ट्र (जनपद) के देवमन्दिरों की सम्पत्ति को देवताध्यक्ष द्वारा एक स्थान पर एकत्र कराके उसे राजकोश के लिए ले लेना।

(2) धार्मिक सम्प्रदायों और भिक्षु संघ के द्रव्य को प्राप्त कर लेना।

(3) अनेक प्रकार से जनता के अन्ध विश्वासों का लाभ उठाकर धन प्राप्त करना।

(4) वैदेहक (व्यापारी) का वेश बनाकर किसी गुप्तचर द्वारा लोगों से ऋण आदि के रूप में बड़ी मात्रा में धन एकत्र कर लेना और फिर घोषित कर देना की रात के समय यह सब धन लूट लिया गया है।

उपरोक्त कर व्यवस्था से यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में आचार्य ने जनता से नीति एवं न्यायपूर्ण तरीके से कर वसूलने के सिद्वान्तों का समर्थन तो किया था लेकिन साथ ही साथ कौटिल्य संकटकालीन परिस्थितियों में राज्य के द्वारा पड़ौसी पौर जानपदों से धन की याचना करने(चन्दा एकत्र करने) एवं जनता से निषेधात्मक तरीके से कर वसूल करने कोभी मान्यता प्रदान करते थे।

6. अन्य कर –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भूमिकर, बिक्रीकर, आयात–निर्यात् कर के अतिरिक्त कुछ अन्य करों का भी उल्लेख मिलता है। इन करों को समाहर्ता के अधीन विभिन्न अध्यक्ष एकत्र करते थे। ये अन्य कर निम्नांकित हैं–

1. **नावाध्यक्ष** द्वारा समुद्रतट और नदीतट पर स्थित ग्रामों से **कूलृप्त**या निर्धारित कर वसूल किया जाता था। ये मछुआरों से जो मछली पकड़े उसका छटांश कर के रूप वसूल करता था। समुद्र तट के व्यापारियों से बन्दरगाहों के नियमानुसार माल के मूल्य का पाँचवा या छठा भाग कर के रुप में लेता था।
2. **पण्याध्यक्ष** गौदाम में सुरक्षित माल का सोलहवां भाग कर के रुप में लेता था उसे व्याजी या मानव्याजी कर कहते थे।
3. **मुद्राध्यक्ष** भी जनपद में आने वाले और नगर से जाने वाले हर व्यक्ति को राजकीय मुहर लगा हुआ **पहचान–पत्र** के रुप में पासपोर्ट देता था तथा बदले में एक माशक कर की वसूली करता था।
4. **विवितााध्यक्ष** द्वारा भी जनता से दुर्ग के रास्ते जाने का कर, चोरों से की हुई रक्षा का कर, गो रक्षा का कर इत्यादि एकत्र करता था।
5. **सुराध्यक्ष** को बिना राजाज्ञा के जो व्यक्ति उत्सवों के अवसर पर शराब बेचे वे साधारण शराब, मेदक, अरिष्ट, मधु, ताड़ी और रसोत्तरा आदि सुराओं का पाँच प्रतिशत कर अदा करे। इस कर के अतिरिक्त सुराध्यक्ष दैनिक ब्रिकी और तौल–माप की उचित जानकारी प्राप्त कर नाप–तौल पर सोलहवाँ हिस्सा और नकद आमदनी पर बीसवाँ हिस्सा कर के रुप में वसूल करता था।
6. **अन्तपाल द्वारा कर की वसूली** कौटिल्य के मतानुसार अन्तपाल माल ढोने वाली प्रति गाड़ी से वर्त्तनी[36](मार्गरक्षाकर) के रूप में 1/4 पण कर वसूल करे। घोड़े

खच्चर गधे आदि एक खुर वाले पशुओं की गाड़ी पर एक पण, बैल आदि पशुओं की गाड़ी पर आधा पण, बकरी, भेड़ आदि छोटे पशुओं पर चौथाई पण और कंधे पर भार ढोने वाले व्यक्तियों से एक माष (ताँबे का सिक्का) कर ले। यदि किसी व्यापारी की कोई वस्तु गुम हो जाए, या चोरी हो जाए तो अन्तपाल उसका पता लगाए। नष्ट हुई वस्तु मिल जाए तो दे दे अन्यथा अपने ही पास रख दे।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित वित्त प्रशासन के अध्ययन करने से इस तथ्य की प्राप्ति होती है कि वित्त प्रशासन में सुशासन को स्थापित करने के लिए सही एवं नियमाधारित कर प्रणाली को लागू करना अति आवश्यक है। जिससे की जनता सरलता एवं अपनी क्षमतापूर्वक कर चुका सके और उस पर अतिरिक्त वित्तीय भार न हो। साथ ही कर वसूली करने वाले राजकीय कर्मचारी वर्ग द्वारा ईमानदारी से कर वसूली की जाये तथा कर वसूली में किसी भी प्रकार की अनियमितता होने पर उन्हें कठोर दण्ड दिया जा सके। तभी राजकोश सुरक्षित हो सकेगा, राज्य की उन्नति होगी तथा जनता को सुशासन की प्राप्ति हो सकेगी।

4.II. वर्तमान भारत में राजकर व्यवस्था–

वर्तमान भारत में संघीय प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्यों में अलग–अलग सरकारें कार्य करती हैं। यहाँ अनुदान एवं कर प्रस्तावों के सम्बन्ध में सभी मांगें कार्यपालिका (केन्द्र एवं राज्यों की कार्यपालिका) ही रखती है। राजकीय व्ययों पर स्वीकृति केन्द्रीय स्तर पर संसद एवं राज्योंमें सम्बन्धित विधानसभाओं द्वारा दी जाती है। यह कर व्यवस्था पवित्र सिंद्वात ''**बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं(No taxation without representation)"** के विचार में निहित है।

1. संविधान में करों के लिए प्रावाधान –

वित्तीय प्रशासन केक्षेत्र में कर दाताओं के हितों एवं अधिकारों की अभिरक्षा के लिए भारतीय संविधान में मूलतः तीन प्रावधान किये गये है–

1.कोई भी कर कानून की सत्ता के बिना न तो लगाया जा सकता है न ही आरम्भ किया जा सकता है न हीएकत्र किया जा सकता है। बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं का यही प्रसिद्ध सिद्वान्त है।(अनुच्छेद– 265)[37]

2 सार्वजनिक विधि से कोई भी व्यय तब तक नहीं किया जा सकता है, जब तक की संविधान द्वारा बताये गये तरीकों के अनुरूप तथा विधि के अनुसार न हो अर्थात् जब तक संसद ने उनका अनुमोदन न कर दिया हो तब तक कोई व्यय नहीं किया जा सकता है। (अनुच्छेद–114)[38]

3.संसद द्वारा स्वीकृत नीति के अनुसार ही धन व्यय करने के लिए कार्यपालिका अधिकृत है। संसद यह दायित्व नियन्त्रक एंव महालेखा परीक्षक के द्वारा निभाती है।

2. कराधान में छूट का सिद्धान्त –

वर्तमान भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संविधान द्वारा जन्म, जाति, धर्म, लिंग भेद, नस्ल इत्यादि के अनुसार किसी भी भारतीय नागरिक को **करदाता** के रुप में करों से छूट का प्रावाधान नहीं किया गया है, लेकिन अपवाद स्वरुप उन **दिव्यांग** व्यक्तियों को जो अगर परिवार के मुखियाँ अर्थात् एक मात्र कमाने वाले सदस्य के रुप में है तो उन्हें आयकर में भाग (Section) 80 DD वर्ष 2016 के तहत 75,000 तक की राशि आय पर कर में छूट का प्रावाधान किया है।

3. भारतीय संसद की कर व्यवस्था सम्बधित विशिष्ट शक्तियाँ –

वर्तमान भारत में कर व्यवस्था को वैधानिक नीति एवं सुचारू रूप से चलाने के लिए संविधान ने संसद को (विशेषतः लोकसभा) को कुछ विशिष्ट शक्तियाँ दी हैं। ये शक्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1.संविधान के अनुसार संसद की अनुमति के बगैर कोई कर नहीं लगाया जायेगा अर्थात् कर लगाने की शक्ति संसद की है।

2. संसद किसी भी कर को कम या खत्म कर सकती है परन्तु कर में वृद्धि नहीं कर सकती है।

3. संसद संघ सूची में शामिल विषयों/मदों पर कराधान सम्बन्धी कानून बना सकती है।

4. संसद के सदन लोकसभा को सरकार (केन्द्र) की किसी भी माँग (व्यय) को स्वीकार करने या अस्वीकार करने अथवा माँग को स्वीकार करते हुये उसमें बतायी गई धनराशि को कम करने का अधिकार है। (अनुच्छेद113) (1)

5.संसद भारत की संचित निधि से किये जाने वाले व्ययों पर मतदान नहीं कर सकती है परन्तु उस पर चर्चा अवश्य कर सकती है।(अनुच्छेद–113)

6. वित्तमंत्री द्वारा केन्द्रीय बजट को संसद में लोकसभा के समक्ष रखना होता हैं।

7. वित्त विधेयक को भी सर्वप्रथम लोकसभा में ही रखा जाता है।

8. संसद द्वारा बजट पर स्वीकृति देने के बाद ही सरकार बजट को लागू कर सकती है।

यहाँ ये निर्देशित करना आवश्यक है कि भारत जैसी संघीय शासन व्यवस्था मेंसंसद अपने ही क्षेत्र (केन्द्र) में कर लगा सकती है। इसलिए संसद संघ सूची में शामिल विषयों/मदों पर कराधान सम्बन्धी कानून बना सकती है। जबकि राज्यों की विधानसभाएँ राज्य सूची में शामिल मदों पर कराधान सम्बन्धी कानून बना सकती है। जबकि समवर्त्ती

सूची में वर्णित कराधान के विषयों पर संसद एवं राज्य सरकारें कानून बना सकती है। लेकिन इन कानूनों में विवाद होने पर संसद द्वारा निर्मित कानूनों को ही मान्य समझा जायेगा।

3. भारत में कराधान के विषय –

यहाँ प्रस्तुत शोध विषय के अन्तर्गत संघीय सरकार का ही वर्णन किया गया है। अतः संघीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों का ही उल्लेख किया गया है। यहाँ कराधान विषय वो लिए गये है जो विशेषतः संघ सूची के अन्तर्गत वर्णित है। ये विषय निम्नलिखित है –

1. संघसूची में राजस्व विषय [39]–

22. रेल्वे

31. डाकतार, टेलिफोन तार प्रसारण और अन्य संचार साधन

32. संघ की सम्पत्ति और इससे प्राप्त होने वाला राजस्व, किन्तु जहाँ तक प्रथम अनुसूची के भाग 'अ' या 'ब' में उल्लेखित किसी ऐसे राज्य में स्थित सम्पत्ति का सम्बन्ध है, उस पर राज्य को कानून बनाने का अधिकार है बशर्ते संसद द्वारा कानून में ऐसा प्रावाधान किया गया है।

35. संघ का लोकऋण (Public Debt)

36. करेन्सी, सिक्का निर्माण, और वैध निविदा, विदेशी मुद्रा।

37. विदेशी ऋण।

38. भारतीय रिजर्व बैंक।

39. डाकघर बचत बैंक।

40. भारत सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा आयोजित लॉटरी।

82. कृषि आय के अतिरिक्त अन्य आय पर कर।

83. कस्टम ड्यूटीज (Coustom Duties) जिसके अन्तर्गत निर्यात् शुल्क (Export Duties) सम्मिलित है।

84. भारत में बनी या उत्पादित वस्तुयें इन पर (Duties of Excise)लगाया गया है वे हैं – कच्चा पेट्रोलियम, हाई, स्पीड डीजल, मोटर स्पिरिटर (पेट्रोल), प्राकृतिक गैस, एविएशन टरबाईन, ईधन और तम्बाकू तथा तम्बाकू से उत्पन्न पदार्थ।

85. निगम कर।

86. व्यक्तियों एवं कम्पनियों की परिसम्पत्ति के पूंजी मूल्य पर कर, कम्पनियों की पूंजी पर कर।

87. कृषि भूमि से अलग सम्पत्ति के सम्बन्ध में सम्पदा शुल्क।

88. कृषि भूमि से अलग सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में शुल्क।

89. रेल, समुद्र एवं वायुमार्ग से ले जाने वाले माल एवं यात्रियों पर सीमा कर।

90. स्टाफ एक्सचेंजों एवं वायदा बाजारों (सट्टा बाजार) के संव्यवहारों पर स्टाम्प शुल्क से अलग कर।

91. विनियम पत्रों, चेकों, वचन पत्रों, बीमा पॉलिसियों, शेयरों के अन्तरण, डिबेन्चरों, परोक्षियों एवं प्राप्तियों के सम्बन्ध में स्टाम्प शुल्क की दरें।

92. में उल्लेखित विषय का उपरोक्त 101 संशोधन के द्वारा विलोपन किया गया है।

92. A समाचार पत्रों से अलग माल के क्रय या विक्रय पर अन्तर्राज्यीय व्यापार या वाणिज्य पर कर।

92. B अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार या वाणिज्य के दौरान माल के परेषण पर कर ।

92. Cके उल्लेखित विषय को भी 101 वे संशोधन के अन्तर्गत विलोपन करा गया है।

96. इस सूची के विषयों में से किसी विषय के सम्बन्ध में फीस किन्तु इसके अन्तर्गत किसी न्यायालय में ली जानें वाली फीस शामिल नहीं है।

4.वर्तमान भारत में कर वसूली की संस्थाएँ –

वर्तमान भारत के केन्द्रीय शासन में कर व्यवस्था को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिये सरकार ने कुछ संस्थाओं की स्थापना की है। केन्द्र सरकार में **वितमंत्रालय** के **राजस्व विभाग** के अन्तर्गत **दो केन्द्रीय कर बोर्ड** बनाये गये हैं। ये बोर्ड कर लगाने एवं कर वसूली सम्बन्धित नीतियाँ तैयार करने के लिये उतरदायी प्रशासनिक संस्थान है। इसके साथ ही 1 जुलाई 2017 से लागू हुई नवीन कर व्यवस्था **जीएसटी** के सफल संचालन हेतु एक **जीएसटी परिषद्** भी गठित की गई है। इन सभी संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

(1) केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड–(CBDT)

केन्द्रिय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (सीबीडीटी) केन्द्रीय राजस्व बोर्ड अधिनियम, 1963 के अन्तर्गत सृजित सर्वोच्च संस्था है। इसे भारत में प्रत्यक्ष कर कानूनों के अधिशासन की जिम्मेदारी सौंपी गई है। यह बोर्ड प्रत्यक्षकरों (Direct taxes); जैसे आयकर, निगम कर सेवा कर, ब्याज कर, सम्पत्ति कर, उपहार कर तथा व्यय कर से सम्बन्धित कानूनों का क्रियान्वयन, नियन्त्रण तथा कर चोरी में रोकथाम के कार्य सम्पादित करता है।[40]

- **संगठन –**

इस बोर्ड (सीबीडीटी) में एक अध्यक्ष और छः सदस्य होते हैं। ये सब पदाधिकारी भारत सरकार में वेतन के शीर्ष वेतनमान में पदेन विशेष सचिव हैं। यह आयकर विभाग का संवर्ग नियन्त्रक प्राधिकरण है। सीबीडीटी के कामकाज में निम्नलिखित निदेशालय भी उसकी सहायता करते है –

(i) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (प्रशासन)** : इसके अधीन निम्नांकित कार्यालय है –

(क) आयकर निदेशालय (जनसम्पर्क, मुद्रक, प्रकाशन एवं राजभाषा)

(ख) आयकर निदेशालय (वसूली)

(ग) आयकर निदेशालय (आयकर)

(घ) आयकर निदेशालय (टीडीएस)

(ङ) आयकर निदेशालय (लेखा परीक्षण)

(ii) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (प्रणाली)**

(iii) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (संभाग तन्त्र)** : इसके अन्तर्गत तीन कार्यालय है –

(क) आयकर निदेशालय (व्यय बजट)

(ख) आयकर निदेशालय (अवसंरचना)

(ग) आयकर निदेशालय (ओ.एण्ड एम.एस.)

(iv) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (विधि एवं अनुसंधान)**

(v) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (प्रशिक्षण)**

(vi) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (मानव संसाधन विकास)**

(vii) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (सतर्कता)**

(viii) **प्रधान आयकर महानिदेशालय (जोखिम आंकलन)**

- **केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के कार्य–**

केन्द्रीय प्रत्यक्ष करबोर्ड के अन्तर्गत उपरोक्त वर्णित विभागों के कार्य निम्नलिखित हैं–

1. देश भर में तैनात विभिन्न प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त (Direct tax) के संग्रहण के कार्य पर नजर बनाये रखते है, तथा ये करदाताओं को सेवायें उपलब्ध कराते हैं।
2. आयकर महानिदेशक (जाँच) जाँचतंत्र का निरिक्षण करता है जिसका काम कर अपवंचन को रोकना और लेखा बाह्य धन का खुलासा करने वाले तन्त्र निरिक्षण करना है।
3. आयकर महानिदेशक (आसूचना व अपराधिक जाँच) – आयकर सम्बन्धी अपराधों की आसूचना को एकत्र करने एवं जाँच करने वाले तंत्र की निगरानी करते है।

4. मुख्य आयकर आयुक्त (छूट) – ये छूट का कामकाज तथा देश भर के गैर–लाभकारी क्षेत्र का कार्य देखता है।

5. प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त (अन्तर्राष्ट्रीय कराधान) ये अन्तर्राष्ट्रीय कर और अन्तरण मूल्यन के क्षेत्र में कार्य करता है।

इन प्रधान मुख्य आयकर आयुक्तों की सहायता मुख्य आयकर आयुक्तों, प्रधान आयकर, आयुक्त और आयकर आयुक्तों द्वारा की जाती है। जबकि प्रधान आयकर महानिदेशकों/आयकर महानिदेशकों की सहायता प्रधान आयकर निदेशकों/आयकर निदेशकों द्वारा उनके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रहकर की जाती है।

6. आयकर आयुक्त (अपील) के रुप में तैनात आयकर आयुक्त, अपीलीय कार्यों का निर्वहन करते हुये करदाता एवं विभाग के बीच के विवाद का न्याय निर्णयन करते है।

7. आयकर विभाग देश भर के 530 शहरों एवं कस्बों तक फैला है, तथा 1.4.2015 की स्थिति के अनुसार उसका करदाता आधार लगभग 6.86 करोड़ का है।

8. आधुनिक सूचना प्रौधोगिकी के अन्तर्गत सीबीडीटी आयकर विभाग में एक विस्तृत कम्प्यूटरीकरण कार्यक्रम लागू कर रहा है। इसका उद्देश्य करदाता सहयोगी व्यवस्था स्थापित करना, कर आधार में वृद्धि, पर्यवेक्षण में सुधार और सरकार के लिए और राजस्व उत्पन्न करना है। ये मुख्यतः करदाताओं द्वारा स्वैच्छिक अनुपालन को बढ़ावा देने एवं गैर हस्तक्षशयी तथा गैर–विरोधात्मक कर प्रशासन तैयार करने के लिए है।

3. नागपुर स्थित राष्ट्रीय प्रत्यक्ष कर अकादमी (एनएडीटी) विभिन्न स्थानों पर स्थित क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थानों के साथ समग्र रुप से प्रधान आयकर महानिदेशक (प्रशिक्षण) के निगरानी के तहत कार्य करते है ताकि अधिकारियों एवं कर्मचारी वर्ग की प्रशिक्षण सम्बन्धी जरुरतों को पूरा किया जा सकें।

4. प्रधान मुख्यलेखा नियन्त्रक केन्द्रिय प्रत्यक्षकर बोर्ड जिसकी सहायता के लिए आंचलिक लेखाधिकारी होते है, को राजस्व संग्रहणों तथा आयकर विभाग द्वारा किये गये व्ययों का लेखा करने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है।

2. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड (CBIC) -

ये बोर्ड मुख्यतः अप्रत्यक्षकरों जैसे सीमा शुल्क (Coustom Duty) केन्द्रीय उत्पादशुल्क (Excise Duty) केन्द्रीय बिक्रीकर (Sales Tax) स्टाम्प ड्यूटीकर एकत्रण से सम्बन्धित नीति तैयार करता है। साथ ही साथ स्वर्ण नियन्त्रण एवं विदेशीमुद्रा से सम्बन्धित कानूनों का क्रियान्वयन एवं नियन्त्रण करता है। यह केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क एवं सेवाकर कार्यालयों से सम्बन्धित सभी प्रशासनिक मामलों के सम्बन्ध में नीति भी तैयार

करता है। बोर्ड अपने क्षेत्रीय कार्यालयों नामतः सीमा शुल्क और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क सेवा कर मण्डलों, सीमा शुल्क एवं केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्तालयों एवं विभिन्न निदेशालयों की सहायता से विभिन्न कार्यों को पूरा करता है। यह भी सुनिश्चित करता है कि आयातित तथा देश में निर्मित वस्तुओं और सेवाओं पर कर लगने वाले प्रयोजन करों का अधिशासन कानून के अनुसार किया जाता है और संग्रहण अभिकरण संग्रहित करों को सरकारी खजाने में तत्परता से जमा कराते है।केन्द्रिय मन्त्रिमण्डल ने इस बोर्ड के तहत आने वाले क्षेत्रीय कार्यालयों की केडर पुनर्रचना और पुनर्गठन 15.10.2014 में लागू किया है।

इस समय 23 समेकित केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवा कर जॉन, 4 अनन्य सेवाकर जॉन, 119 केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्तालय, और 22 सेवाकर आयुक्तालय कार्य कर रहें हैं। प्रत्येक केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सेवाकर आयुक्तालय में मानक तौर पर 5 प्रभाग और 25 रेन्जस कार्य करते है। केन्द्रीय उत्पाद दर शुल्क के ऐसे आयुक्तालय जो कि सेवाकर का भी काम देखते है, के पास एक अतिरिक्त प्रभाग और पाँच रेजेंस होंगें जो केवल सेवाकर से सम्बन्धित कार्य ही देखेंगें।

3. जीएसटी परिषद् (GST Council) –

संविधान का 101 वां संशोधन केन्द्र एवं राज्य सरकारों को वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को वसूल करने एवं उसको एकत्र करने का अधिकार देता है। इस संवैधानिक संशोधन की एक महत्वपूर्ण विशेषता इस कर की व्यवस्था के संचालन के लिए एक जीएसटी परिषद् के गठन से सम्बन्धित प्रावधान करना भी है। इस जीएसटी परिषद् का संगठन निम्नलिखित है[41]–

1. जीएसटी परिषद् – संरचना

इस परिषद् में अध्यक्ष पद पर केन्द्रीय वित्तमंत्री को नियुक्त किया गया है। इसके उपाध्यक्ष को इससे सदस्य राज्य सरकारों के मन्त्रियों में से निर्वाचित किया जायेगा। इसके सदस्यों में केन्द्रिय वित्त राज्य मंत्री, सभी 29 राज्यों के तथा 2 संघ राज्य क्षेत्रों की विधानसभाओं (दिल्ली व पुद्दुचेरी) के राज्य वित्त/कराधान मंत्रियों को सम्मिलित किया गया है।

2. जीएसटी परिषद् में गणपूर्ति –

इस परिषद् में गणपूर्ति के लिए परिषद् कुल सदस्यों का आधा अर्थात् 50 प्रतिशत रखा गया है।

3. जीएसटी परिषद् में मतदान प्रक्रिया –

संवैधानिक संशोधन धन से यह भी व्यवस्था सुनिश्चित की गई है कि इस परिषद् का हर निर्णय परिषद् में उपस्थित सदस्यों और वोटिंग के कम से कम तीन चौथाई वोटों द्वारा किया जायेगा। परिषद् की बैठक में केन्द्रीय सरकार के वोटों का मान कुल डाले गयें वोटों का एक तिहाई होगा। जबकि राज्य सरकारों के वोटों को एक साथ मिलाकर डाले गये कुल वोटों का 2/3 मूल्य होगा।

यहाँ यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि मतदान का मूल्य इस प्रकार से रखा गया है कि न तो केन्द्र सरकार और न ही राज्य सरकारों द्वारा कोई भी निर्णय अकेले लिया जा सकता है। क्योंकि वोटिंग में केन्द्र सरकार का 1/3 या 33 प्रतिशत मूल्य है। इसलिए इस परिषद् में कोई भी निर्णय लेने के लिए केन्द्र सरकार को राज्य सरकारों का समर्थन होना जरुरी होगा। यद्यपि अभी तक परिषद् में सभी निर्णय आम सहमति से लिए गये है। इसमें वोटिंग के लिए अभी तक कोई अवसर नहीं आया है।

4. जीएसटी परिषद् के कार्य –

देश में वस्तु और सेवाओं के लिए राष्ट्र व्यापी बाजार विकसित करने की दृष्टि से जीएसटी परिषद् का मार्गदर्शी सिद्वान्त केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच इस जीएसटी के विभिन्न आयामों की सुसंगतता को सुनिश्चित करना है। इस परिषद् का कार्य निम्नलिखित विषयों पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों को सिफारिश करना है –

1. केन्द्र, राज्य सरकारों और स्थानीय निकायों द्वारा वसूले जाने वाले कर, उपकर और अधिशुल्क जो जीएसटी के अन्तर्गत समाहित किये जा सकते है।
2. ऐसी वस्तुऐं और सेवाऐं जो इसके (जीएसटी) के अधीन या उससे छूट दी जा सकती है।
3. आदर्श जीएसटी कानून , उदग्रहण के सिद्वान्त, आईजीएसटी का बटवाँरा और आपूर्ति के स्थान को प्रशासित करने वाले सिद्वान्त।
4. जीएसटी के समूह के साथ न्यूनतम नियत दर सहित दरें।
5. उत्तर पूर्वी राज्यों, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू कश्मीर के सम्बन्ध में विशेष प्रावाधान ।
6. वह तारीख जिसको कच्चे तेल, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्पिरिट (पेट्रोल) प्राकृतिक गैस तथा एविऐशन टबाईन फ्यूल पर जीएसटी वसूल की जा सके।
7. वह रेखा जिसके नीचे वस्तु एवं सेवा के टर्नओवर को जीएसटी से छूट दी जा सके।

8. जीएसटी में आपदा (Natural Disaster) के दौरान अतिरिक्त संसाधन एकत्र करने के लिए किसी विशेष अवधि के लिए कोई विशेष दर या दरें।
9. जीएसटी परिषद् द्वारा यथानिर्णय जीएसटी से सम्बन्धित कोई अन्य मामला।

5. वर्तमान भारत में विविध प्रकार के कर –

भारत मे संघीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्य सरकारें विभिन्न प्रकार के कर लगाती एवं वसूल करती है। यहाँ पर केन्द्र सरकार द्वारा वसूल किये जाने वाले विविध करों को ही वर्णित किया गया है। इन करों को वर्तमान में मुख्यतः करों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में रखा गया है। ये तीन श्रेणियों निम्नांकित है–

(1) प्रत्यक्ष कर–

सामान्यतः आय लाभ या सम्पत्ति पर वसूल किये जाने वाले करों को इस श्रेणी में रखा गया है। **आयकर, निगमकर, धनकर** और **सम्पत्ति कर** इत्यादि प्रत्यक्ष कर के उदाहरण है।

(2) अप्रत्यक्ष कर –

ये कर वस्तुओं या सेवाओं के लेन–देन पर वसूल किये जाते हैं। उन्हें या तो विक्रेता या क्रेता द्वारा वसूल किया जाता है। हालांकि विक्रेता इन्हें क्रेताओं को हस्तांतरित कर सकते हैं या अधिकतर मामलों में हस्तांतरित कर ही देते है। इस अप्रत्यक्ष कर के कुछ उदाहरण है –**विदेशी** वस्तुओंके **आयात** पर **शुल्क**, **वाणिज्यिक संस्था** द्वारा दी गई **सेवाओं** पर **सेवा कर**, **वस्तुओं** के **उत्पादन** पर **उत्पाद कर**, **वस्तुओं** की **बिक्री**पर**बिक्री कर**इत्यादि।

3. वस्तु और सेवा कर (जीएसटी) (Goods and Service Tax (GST)–

नवीन वस्तु और सेवा कर मुख्य रुप से केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा वसूल किये जाने वाले सभी अप्रत्यक्ष करों को प्रतिस्थापित करने के लिये बनाया गया है। जीएसटी को संविधान के 122 वां संशोधन विधेयक पारित होने के बाद संविधान (101 वाँ संशोधन) अधिनियम 2016 के तहत अधिसूचित किया गया है।[42] ये सम्पूर्ण भारत में 1 जुलाई 2017 से लागू हो गया है।जीएसटी को जीएसटीपरिषद् द्वारा शासित कियाजाता है। इसके अध्यक्ष **केन्द्रीय वित्तमंत्री** होते हैं।

इस नवीन कर व्यवस्था के अन्तर्गत हर वस्तु और सेवा पर एक ही कर लगेगा जो देश के सभी राज्यों में समान होगा। यहाँ से उल्लेख करना आवश्यक है, कि कुछ क्षेत्र जैसे पेट्रोलियम, एल्कोहॉल, रियल स्टेट इत्यादि को जीएसटी के क्षेत्र से बाहर रखा गया है। वे पूर्ववर्ती कराधान व सरंचना के तहत ही आयेगें। सीमा शुल्क जारी रहेगा, परन्तु ये जीएसटी में एकीकृत हो जायेगा। जबकि स्थानीय निकायों (नगर निगम, ग्राम पंचायतों)

द्वारा लगाये जाने वाले करों को भी इससे बाहर रखा गया है। जीएसटी के तहत सम्मिलित होने वाले प्रमुख अप्रत्यक्ष कर है–**उत्पाद शुल्क, सेवा कर, तटकर** पर **विशेष अतिरिक्त शुल्क, राज्य वेट, राज्य बिक्री कर, मनोरंजन कर, प्रवेश** एवं **विलासिता कर।**

अब इस नवीन वस्तु और सेवा कर (जीएसटी) से 17 केन्द्रीय एवं राज्य कर और 22 प्रकार के उपकर केवल एक कर में सम्मिलित हो होगें। इससे विविध करों की जटिलता समाप्त हो जायेगी तथा अप्रत्यक्ष कर में एक महत्वपूर्ण सरलीकरण स्थापित होगा।

साथ ही साथ यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि जीएसटी गन्तव्य आधारित कर है। इसमें विशेषतः विनिर्माण करने वाले राज्यों को यह आशंका थी किइस कर को लागू करने से उनके राजस्व की हानि होगी। इसलिये राजस्व के नुकसान को रोकने के लिए 5 वर्षो तक की अवधि के लिए राज्यों को क्षतिपूर्ति करने की व्यवस्था भी की गई है।

(i) जीएसटी के अन्तर्गत कर वसूली –

भारत में संघीय व्यवस्था है इसलिए यहाँ केन्द्र और राज्यों की सरकारों को कराधान की स्वतन्त्र शक्तियों दी गई है। भारत में जीएसटी को दोहरे तरीके से वसूल किया जायेगा। जीएसटी के अन्तर्गत की जाने वाली कर वसूली निम्नलिखित है –

1. **सीजीएसटी (CGST) (केन्द्रीय कर)–**

   केन्द्र सरकार वस्तुओं और सेवाओं की अन्तर्राज्यीय आपूर्ति पर केन्द्रिय जीएसटी (**CGST**) लगायेगी और वसूलेगी।

2. **एसजीएसटी (SGST) (राज्य कर) –**

   राज्य सरकार द्वारा राज्य जीएसटी(SGST) या राज्य कर लगाया और वसूल किया जायेगा।

3. **आईजीएसटी (IGST) (एकीकृत कर)**

   केन्द्र सरकार वस्तुओं और सेवाओं की अन्तर्राज्यीय आपूर्ति पर एकीकृत जीएसटी भी लगायेगी और वसूल कर ली।

4. **यूटीजीएसटी (UTGST) (संघ प्रवेश कर)–**

   विधानमण्डल रहित केन्द्र शासित प्रदेशों में आने वाले माल पर केन्द्र शासित प्रदेश आपूर्ति पर संघ प्रादेशिक जीएसटी (GST) भी लगेगा।

5. **जीएसटी मुआवजा उपकर –**

जीएसटी शुरु होने के कारण राज्यों को हुये किसी भी नुकसान के मुआवजे का भुगतान करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अपेक्षित संसाधन जुटाने के लिए, विलासिता की कुछ वस्तुओं अथवा सेवाओं पर जीएसटी मुआवजा कर लगाया जा रहा है।

(ii) **जीएसटी करों की दरें –**

सभी वस्तुओं अथवा सेवाओं के लिए करों के चार स्तर रखे गये है– 5, 12, 18 और 28 प्रतिशत। बहुमूल्य धातुओं जैसे सोने इत्यादि 3 प्रतिशत की दर से कर के अधीन होंगी, जबकि अपरिष्कृत मूल्यवान रत्नों पर 0.25 प्रतिशत की दर से कर लगता है। कुछ विशिष्ट वस्तुओं और सेवाओं को छूट दी गई है।

(iii) **जीएसटी के अन्तर्गत नवीन संवैधानिक प्रावाधान[43]–**

जीएसटी को एक जुलाई 2017 में सम्पूर्ण भारत क्षेत्र में लागू कर दिया गया है। इस जीएसटी कर व्यवस्था को लागू कर देने के बाद संविधान में निर्दिष्ट कुछ अनुच्छेदों को संशोधित किया गया तथा कुछ अनुच्छेदों को जोड़ा गया। ये नवीन संशोधित एवं जोड़े गये अनुच्छेदों से सम्बन्धित विवरण निम्नलिखित है –

1. अनुच्छेद 246 (अ) –

इसके तहत यह व्यवस्था की गई है कि संसद को सीजीएसटी एवं आईजीएसटी लगाने का अधिकार होगा। राज्यों के विधानमण्डलों को एसजीएसटी लगाने का अधिकार होगा।

2. अनुच्छेद 268 (अ) –

अनुच्छेद 268 पहले सेवाकर (औषधियों एवं प्रसाधन सामग्री पर) का प्रावधान करता था। लेकिन अब इस 268 (अ) के अनुसार वह अनुच्छेद संविधान से समाप्त कर दिया गया है।

3. अनुच्छेद 269–

इसके तहत वे कर जो संघीय सरकार द्वारा लगाये एवं एकत्रित किये जाते थे किन्तु एकत्रित राजस्व को राज्यों में बाँट दिया जाता है।

4. अनुच्छेद 269 (अ) –

अनुच्छेद 269 में अब एक नवीन अनुच्छेद 269 (अ) को जोड़ा गया है। यह आईजीएसटी का प्रावाधान करता है। ये अन्तर्राज्यीय लेन–देन पर कर लगाता है। अब अगर वस्तु का बाहर से आयात होगा, वहाँ भी आईजीएसटी लगेगा अर्थात् सीमा शुल्क के साथ आईजीएसटी भी लगेगा। 1 जुलाई के बाद जो भी वस्तुऐं आयात होगीं वो वस्तु अन्ततः जिस राज्य में उपभोग होगी उस राज्य को उसके आयात पर आईजीएसटी का आधा हिस्सा भी मिलेगा।

इस प्रकार पहली बार राज्यों को आयात में कुछ हिस्सा मिलेगा। विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) पर भी आईजीएसटी लगेगा।

5. अनुच्छेद 270–

इस अनुच्छेद के तहत वे कर जो संघ सरकार के द्वारा लगाये एवं वसूल किये जाते थे उनसे एकत्र राजस्व को केन्द्र एवं राज्यों में वितरित कर दिया जाता था। अब जीएसटी से जो राजस्व एकत्रित होगा। उसमें अर्थात् सीजीएसटी और आईजीएसटी में केन्द्र का जो आधा हिस्सा है। यह कर भी पूल का हिस्सा बनेगा और वित्त आयोग की राय के अनुसार केन्द्र एवं राज्यों में विभाजित होगा।

6. अनुच्छेद 271–

इसमें दो बातें समाहित है– अधिभार और उपकर। इससे सम्बन्धित केन्द्र सरकार के पास विशेष उपाय थे। केन्द्र का कर संग्रह कम होने पर ये अनुच्छेद 269 और 270 में जो कर का प्रावाधान था। उन पर अधिभार या उपकर लगा सकती थी। जिसमें जो भी कर केन्द्र सरकार लगाती थी, उसका सारा पैसा केन्द्र को मिलता था और राज्य को कोई भी पैसा नहीं मिलता था। लेकिन अब इससे जो भी कर प्राप्त होगा। वह वित्त आयोग के सुझाव के अनुसार केन्द्र एवं राज्यों में बाँट दिया जायेगा।

केन्द्र के जो कर बचे है उस पर केन्द्र अधिभार भी लगा सकती है और उपकर भी जीएसटी के मामले में अब एक विशेष उपकर लगेगा और जीएसटी का जो उपकर है, उसका बटँवारा जीएसटी परिषद् के निर्देशों पर केन्द्र और राज्यों में होगा।

अब केवल एक ऐसा उपकर है जिसे जीएसटी उपकर कहते है, केन्द्र तथा राज्यों में बंटता जायेगा। अब जीएसटी उपकर का सारा पैसा राज्य क्षतिपूर्ति निधि में जायेगा। क्योंकि जीएसटी लगाने पर राज्य को जो घाटा होगा, उसकी क्षतिपूर्ति के लिए केन्द्र ने पाँच वर्ष की गारण्टी दी है। मंहगी वस्तुओं पर 15 प्रतिशत अधिभार है। (28 प्रतिशत कर है इसके बाद अधिभार लगेगा) साथ ही साथ स्वच्छ ऊर्जा का उपकर का पैसा अब राज्य को मिलेगा।

जीएसटी कर व्यवस्था से वित्तीय प्रशासन में सुशासन को स्थापित करने में सहायता मिलेगी। इससे शासन चुस्त होगा तथा नैतिक जवाबदेयता और पारदर्शिता बढ़ेगी। ये सभी सुशासन की आवश्यक शर्ते हैं।

5.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मौर्यकालीन वित्त व्यवस्था के अर्न्तगत राजकीयवित्त (सार्वजनिक धन)के सही, शुद्ध एवं तथात्मक लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस लेखांकन पद्धति एवं लेखा–परीक्षण का अर्थशास्त्र के **दूसरे**

अधिकरण'अध्यक्षप्रचार' में **अक्षपटलेगाणनिक्याधिकार** नामक **सातवें अध्याय** से तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त होती है।

(अ) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखांकन पद्धति[44]–

कौटिल्य ने लेखांकन कार्य के लिए अधिकृत अधिकारी,उसके कार्यालय,अधीनस्थ कर्मचारीवर्ग एवं लेखांकन की कार्य प्रक्रिया का भी वर्णन किया है। ये निम्नलिखित प्रकार से है–

1. अक्षपटलमध्यक्ष (मुख्य लेखांकन अधिकारी) –

यह वित्तीयअधिकारी केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत **समाहर्ता तीर्थ** के अमात्य के अधीन रहकर कार्य करता था। इसे सरल शब्दों में आय–व्यय का निरिक्षक (एकाउण्ट्स सुपरिन्टेण्डेण्ट) भी कह सकते है। इसका प्रमुख कार्य विभिन्न प्रकार के निबन्ध–पुस्तकों (रजिस्टरों) की सार संभाल करना था।

2. अक्षपटल (लेखांकन कार्यालय) –

कौटिल्य ने लिखा है कि अक्षपटलमध्यक्ष एक निबन्ध–पुस्तक स्थान (कार्यालय) का निर्माण कराये। इस कार्यालय का मुख्य द्वार पूरब या उत्तर दिशा की और होना चाहिए। इसमें विविध लेखकों (क्लर्कों) के बैठने के लिए पृथक–पृथक स्थान बने हों। इस कार्यालय में आय–व्यय की निबंध पुस्तकों (Accounts Books) को रखनें की भी नियमित व्यवस्था होनी चाहिए।

3. अक्षपटलमध्यक्ष के कार्य –

यह अमात्य अक्षपटल में निम्नलिखित तथ्यों को निबन्ध–पुस्तकस्थ (रजिस्टर्ड) करवाता था–

(1) राज्य के विविध विभागों (अधिकरणों) की संख्या, जनपद की पैदावार एवं उसकी आमदनी का विवरण ।

(2) राज्य द्वारा संचालित खान,कारखानों में क्या–क्या कार्य हो रहा है, और क्या–क्या व कितना–कितना उत्पादन हुआ है।

(3) राजकीय कारखानें से कितना लाभ–हानि हुई, कितना व्यय हुआ (अन्न व नकद का) कितना ब्याज प्राप्त हुआ, कितनी कमाई विलम्बित होकर हुई,कितने कार्यों में राजकीय धन फंसा है, कितने कर्मचारियों को वेतन दिया जा रहा है, कितने कार्मिकों की नियुक्ति की गई है, कितनोंसे बेगार ली जा रही है। इन सबका भी वह रजिस्टरों में अकंन करवाता था।

(4) रत्नसार, फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थों की वर्तमान कीमतें क्या हैं। वस्तु विनिमय या प्रतिवर्णक (Barter) द्वारा उनके बदले में क्या प्राप्त किया जा सकता है। उनकोतौलने के लिए किन मापकों का प्रयोग किया जाता है, और उनको मापने के लिए किन मानों का प्रयोग किया जाता है और उनकी संख्या,भारया माप क्या है, इसका भी उल्लेख करना।

(5) विभिन्न देशों (जनपदों) ग्रामों,जातियों,कुलों एवं उनके संघातों (सभा) के क्या–क्या धर्म,व्यवहार,चरित्र है उनका उल्लेख।

(6) राजा पर आश्रित व्यक्तियों (देवालय, मंत्री,पुरोहित) को राज्य की और दिया जाने वाला निवास स्थान,भेट,वेतन,परिहार(कर उन्मुक्ति) आदि का उल्लेख।

(7) राजा, महारानी तथा राजपुत्रों को नियमित रूप से दिये जाने वाले धन के अतिरिक्त दिया हुआ धन (रत्न,भूमि एवं अन्य लाभ) का अंकन।

(8) राज्य में उपद्रवों के प्रतिकार के लिए कितने व्यय की व्यवस्था की गई है।

(9) उत्सवों एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारों से प्राप्त धन।

(10) मित्र एवं शत्रु राज्यों के साथ सन्धि–विग्रह आदि के निमित्त प्राप्त धन अर्थात् किस राज्य से क्या प्राप्त हुआ तथा खर्च किये हुये धन (किस राज्य को क्या दिया) इत्यादि का विवरण।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि निसंदेह उसका कार्य अत्यन्त महत्व का था क्योंकि राजशासन के साथ सम्बध रखने वाली इतनी महत्वपूर्ण बातों को निबन्धपुस्तकस्थ कराना उसी का दायित्व था।

4. अक्षपटलमध्यक्ष के राज्य अधिकरणों सम्बन्धित कार्य –

कौटिल्य ने यह भी कहा है कि इसके अलावा राज्य के सभी अधिकरणों (तीर्थों) के विषय में निम्नलिखित बातों का विवरण भी अक्षपटलमध्यक्ष को तैयार करवाना होता था। ये तथ्य (बातें) इस प्रकार से हैं–

(1) क्या और कौनसे कार्य करणीय है ?

(2) कितने कार्य पूर्ण हो चुके है ?

(3) कितने कार्य करने अभी शेष है ?

(4) उन कार्यों पर कितना व्यय हुआ है, उसमें कितनी आय प्राप्त हुई है ?

(5) उनसे शुद्व प्राप्ति या आमदनी कितनी हुई है ?

(6) विविध अधिकरणों के क्या चरित्र व नियम इत्यादि हैं ?

उपरोक्त वर्णित इन सभी बातों के सम्बन्ध में अक्षपटलमध्यक्ष आवश्यक सूचनायें समय–समय पर राजा को दिया करता था।

5. अक्षपटलमध्यक्ष के विभागीय दायित्व –

कौटिल्य ने अक्षपटलमध्यक्ष के लेखांकन कार्य के अतिरिक्त अन्य विभागीय दायित्वों का भी वर्णन किया है। वह अपने विभाग के उत्तम,मध्यम एवंनिम्नस्तरीय जैसे भी कार्यों का प्रकार हो, उनके अनुसार अलग–अलग स्तर व योग्यता के अनुरूप अध्यक्षों की नियुक्ति करता था।एक ही कार्य को करने वाले अनेक व्यक्तियों में से उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाये जो निपुण, गुणी, यशस्वी हो तथा उन्हें दण्ड देने पर राजा को कोई पश्चाताप भी न हो। अक्षपटलमध्यक्ष के अधीन अध्यक्ष के अलावा कई सहायक कर्मचारी वर्ग भी कार्य करता था। इसमें गाणनिक्य, कारणिक (क्लर्क) संख्यायक, लेखक इत्यादि प्रमुख थे।

2.जिला स्तर पर लेखांकन कार्य –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में जिलास्तर पर लेखाकंन कार्य पद्धति का भी उल्लेख किया गया है। कौटिल्य ने लिखा है कि जिला स्तर पर लेखाकंन का कार्य जिले के सभी कार्यालयों के अध्यक्षों (एकाउण्टेण्टस्) के द्वारा किया जायेगा। सम्भवतः ये **जिला लेखा अध्यक्ष** नामक पदाधिकारी अक्षपक्षपटलमध्यक्ष के अधीन रहकर लेखा कार्य करते थे ये अध्यक्ष (एकाउण्टेण्टस्) जिला स्तर पर लेखाओं को निम्न प्रकार से तैयार करवाते थे –

1. जिला कार्यालय अध्यक्ष द्वारा लेखाओ की अंकन प्रकिया –

कौटिल्य के मतानुसार अध्यक्ष को चाहिए की वह प्रतिदिन प्रति पाँच दिन, प्रति पक्ष, प्रति मास और प्रतिवर्ष के क्रम से राजकीय आय–व्यय एवं नीवी (बचत) का लेखा–जोखा साफ सुथरे ढ़ंग से रखे। सरल शब्दों में कहे तो वर्षारम्भ से, पहिले एक दिन का हिसाब, फिर एक साथ पाँच दिन का हिसाब, फिर एक साथ पन्द्रह दिन का हिसाब, फिर एक साथ एक मास का औरअंत में एक साथ पूरे एक वर्षका हिसाब करके रखे। आय, व्यय और नीवी के लेखाओं को रखने का तरीका पृथक–पृथक निम्नलिखित प्रकार से है–

(i) आय का लेखा –

अध्यक्ष को चाहिए की आय का लेखा शुद्ध और साफ रहे एदतर्थरजिस्टर में राजवर्ष (मास–पक्ष–दिन) देश, काल, मुख (आयमुख आयशरीर), उत्पत्ति(आयवृद्धि) अनुवृत्ति (स्थानान्तर) प्रमाण, कर देने वाले का नाम,दिलाने वाले अधिकारी का नाम, लेखक का नाम और लेने वाले का नाम इस प्रकार के नौ स्तम्भ खाने बने होने चाहिए।

(ii) व्यय का लेखा–

व्यय का लेखा तैयार करने के लिए रजिस्टर में इस प्रकार के खाने होने चाहिए,व्युष्ट देश, काल,मुख लाभ (पक्ष–मास–वर्ष के क्रम में) व्यय का कारण, देय वस्तु का

नाम, मिलावटी द्रव्य में अच्छाई एवं बुराई का उल्लेख,तौल किसकी आज्ञा से व्यय किया गया है, किसको दिया गया, भाण्डागारिक और लेने वाले का पूरा विवरण हो।

(iii) नीवी (शेष धन) का लेखा –

नीवी का लेखा इस प्रकार रखा जाए व्युष्ठ,देश, काल,मुख, द्रव्य का स्वरूप, द्रव्य की विशेषता, तौल जिस पात्र में द्रव्य रखा जाय और द्रव्य का संरक्षण आदि विवरणों के आधार पर तैयार करना चाहिए।लेखाओं को नियमित रूप प्रेषित और अंकित करना चाहिए।इस प्रकार जिलास्तर पर अध्यक्ष लेखाकंन कार्य प्रकिया को पूर्ण करेंगें।

यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि अक्षपटलमध्यक्ष को चाहिए की यह जनपद के समस्त कार्यालयों की अध्यक्षों द्वारा की गई लेखाकंन कार्य पद्धति की गुप्त जानकारी गुप्तचरों द्वारा प्राप्त करे यदि वह ऐसा नहीं करता है तो अपनी अज्ञानता के कारण धनोत्पादन में हानिकारक सिद्ध होता है।

तालिका 4.2

आय का लेखा–विवरण पत्र[45]

1	2	3	4	5	6	7	8
राजवर्ष (मास–पक्ष–दिन)	**आयमुखआयशरीर** (देश–काल–मुख)	**उत्पति** (आयवृद्धि)	**अनुवृतिप्रमाण** (स्थानान्तर)	**कर देने वाले का नाम**	**दिलाने वालेअधिकारी का नाम**	**लेखक का नाम**	**लेने वाले का नाम**

तालिका 4.3

व्यय का लेखा– विवरण पत्र

1	2	3	4	5	6	7	8	9
व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ (पक्ष,मास,वर्ष क्रम से)	व्यय का कारण	देयवस्तु का नाम	मिलावटी द्रव में अच्छाई व बुराई	तौल	किसकी आज्ञा से व्यय किया गया	किसको दिया गया	भाण्डागारिक	लेने वाले का विवरण

तालिका 4.4

नीवी (शेष धन) का लेखा विवरण पत्र

1	2	3	4	5	6
व्युष्ट, देश, काल, मुख	द्रव का स्वरूप	द्रव की विशेषता	तौल	जिस पात्र में द्रव रखा जाय	द्रव का संरक्षण

(ब) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखा–परीक्षण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखा–परीक्षण पद्धति का अलग से विवरण नहीं मिलता है, बल्कि राजकीय लेखाओं को जमा करवाने एवं उनकी जाँच प्रक्रिया के अन्तर्गत ही लेखा परीक्षण को समझाया गया है। कौटिल्य ने राजकीय लेखाओं के अंकन में शुद्धता पर सर्वाधिक जोर दिया है।

(1) कोष रजिस्टर लाने वाले अध्यक्ष की परीक्षा –

कौटिल्य का मानना था कि लेखाकंन में होने वाली अशुद्धियों के लिए जिला कार्यालयों के अध्यक्ष (एकाउटेण्टस्) एवं उनके सहायक कर्मचारी जैसे क्लर्क, लेखक

इत्यादि उत्तरदायी है। इसलिए कौटिल्य का यह सुझाव था कि कोशधन एवं कोश रजिस्टर को लाने वाले अध्यक्ष की परीक्षा ली जाये। यह परीक्षा पहले धर्म के द्वारा ली जाये अर्थात् उसे देखा जाये किवह धर्मात्मा है या दम्भी है। फिर उसके व्यवहारको परखा जाये तदन्तर उसके आचार–विचार को उसकी पूर्वस्थिति को उसके कार्य एवंहिसाब–किताब को और फिर उसके कार्यों का पारस्परिक मिलान करके उसकी परीक्षा ली जाये। गुप्तचरों द्वारा भी उसके भेद जाने जाए।[46]

(2) लेखा परीक्षण की प्रक्रिया –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखा–परीक्षण की प्रकिया को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

सभी कार्यालयों के अध्यक्षों (विभिन्न जिलों के एकाउण्टेण्टस्) को आषाढ़ माह में वर्ष की समाप्ति पर प्रधान कार्यालय में आना है तथा हिसाब का मिलान करना है। ये सभी अधिकारी अक्षपटलमध्यक्ष के मुख्य कार्यालय में एक स्थान पर अपने–अपने मुहरबन्द बक्सों के साथ जिसमें की निबन्धपुस्तक (रजिस्टर) है तथा व्यय से बचा हुआ धन है, एकत्र हो जायें। यहाँकौटिल्य ने अक्षपटलमध्यक्ष से यह सावधानी बरतने का निर्देशन किया है कि जिस कक्ष में ये अध्यक्ष हैंवहाँ उनको आपस में बातचीत करने एवं आपस में मिलने की अनुमति नहीं दी जाये। इसके लिए अक्षपटलमध्यक्ष निगरानी की व्यवस्था करे।

इस लेखा परीक्षण में सर्वप्रथम उन सबसे मौखिक रुप से आय, व्यय और नीवी(बचत शेष) के बारे में जानकारी ली जाये फिर उनके पास जो बचत का शेष धन है वह ले लिया जाये।

अब उन्होंने लेखे की जो मौखिक जानकारी दी है, उसका मिलान रजिस्टर में लिखित जानकारी से किया जाये। अब यदि रजिस्टर का हिसाब अध्यक्ष द्वारा बताई गयी आय राशि से अधिक हो और उसी प्रकार बताये हुये व्यय की राशि रजिस्टर में कम हो तो अध्यक्ष पर उसके द्वारा बतायी गयी कम–अधिक राशि का आठ गुणा जुर्माना किया जाये। यदि आमदनी से अधिक या व्यय से कम रकम रजिस्टर में चढ़ी है, तो इस स्थिति में अधिकारी को दण्ड़ित न किया जाये और आय–व्यय की कमीबेशी हुयी है तो उसी को दे दिया जाये।

3. लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण कार्यों में अशुद्धता होने पर दण्ड़ात्मक कार्यवाही –

कौटिल्य लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण दोनों कार्यों में शुद्वता को सर्वाधिक महत्व देते थे, कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इन दोनों कार्यों में लापरवाही बरतने एवं लेखाओं के अंकन

एवं परीक्षण में अशुद्धियाँ बरतने वाले पदाधिकारियों को दण्डित करने के लिए निम्न दण्डात्मक कार्यवाही करने का उल्लेख किया है –

1. अध्यक्ष के लिए दण्ड प्रक्रिया –

अध्यक्ष की बताई हुई आय राशि से यदि रजिस्टर का हिसाब अधिक निकले और उसी प्रकार बताये हुये व्यय की अपेक्षा रजिस्टर में उससे कम निकले तो अध्यक्ष पर, उसके द्वारा बताई गयी कम या अधिक रकम का आठ गुना जुर्माना किया जाये।

2. जो अध्यक्ष निश्चित समय में अपने रजिस्टर तथा शेष धन आदि को लेकर प्रधान कार्यालय (अक्षपटल) में उपस्थित नहीं हों तो उसके हिसाब में जो बाकी निकले उसका दस गुना जुर्माना उस पर किया जाना चाहिए ।

3. यदि मुख्य अध्यक्ष (एकाउण्टस् सुपरिन्टेन्डेट) निर्धारित समय पर क्षेत्रीय कार्यालयों में पहुँच जाये एंव वहाँ के विभागीय अध्यक्ष कार्यालय को हिसाब–किताब दिखाने में असमर्थ हो, तो उन्हें प्रथम साथ दण्ड दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि प्रधान अध्यक्ष निर्धारित समय पर न पहुँचें तो उसे दुगुना प्रथम साहस दण्ड देना चाहिए।

4. यदि राजा के महामात्र आदि प्रधान कर्मचारी आय–व्यय तथा नीवी सम्बंधी सारी राजकीय व्यवस्थाऐं प्रजाजनों को समझाये–बुझाये। यदि उनमें से कोई झूठा प्रचार करे तो उसे उत्तम साहस दण्ड दिया जाना चाहिए।

5. जिस अध्यक्ष के पास थोड़ा भी राजदेय धन बाकी हो, निर्धारित समय से केवल पाँच दिन तक उसकी प्रतीक्षा की जाये। तदन्तर उसे भी दण्डनीय समझा जाये।

6. द्रव्य की वसूली करने वाला राजकर्मचारी यदि निर्धारित समय पर द्रव्य–वसूली न कर सकें तो उसे एक मास का समय दिया जाये। यदि फिर भी वह द्रव्य संग्रहण करके राजकोश में नही पहुँचा सके, तो उस पर प्रति मास के हिसाब से दो सौ रुपया पुरस्कार कर देना चाहिए।

2. राजकर्मचारियों के लिए दण्ड़ –

(i) यदि कारणिक (क्लर्क) अर्थलाभ को रजिस्टर में दर्ज नही करता है, राजकीय आज्ञा का उल्लघंन करता है, अथवा आय व्यय के सम्बन्ध में विपरीत कल्पनाएँ भी करता है तो उसको पहला साहस दण्ड़ दिया जाना चाहिए।

(ii) क्रम के विरुद्ध, उलट–पलट कर विपरीत लिख देना, किसी वस्तु को क्रम के विरुद्ध, उलट–पुलट कर विपरीत लिख देना, किसी वस्तु को बिना समझे बूझे ही लिख देना और एक वस्तु को दुबारा अंकित करना। ऐसी गलतियाँ करने वाले कर्मचारी को 12 पण का दण्ड दिया जाना चाहिए।

(iii) यदि नीवी (बचत धन) के सम्बन्ध में लेखक की ऐसी गड़बड़ी पाई जाये तो 24 पणदण्ड़, उसका गबन करे तो 96 पण दण्ड़ और उसका अपव्यय करें तो 60 पण दण्ड़ दिया जाये। झूठ बोलने वाले को चोर जितना दण्ड़ दिया जाना चाहिए।

(iv) हिसाब–किताब के सम्बन्ध में पीछे से किसी बात को स्वीकार करने पर चोरी से दुगुना दण्ड़ दिया जाये। किसी बात को पूछे जाने पर उत्तर न देकर बाद में उसका उत्तर देने पर भी यही दण्ड़ दिया जाना चाहिए।

उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि कौटिल्य लेखांकन एवं लेखा–परीक्षण के कार्यों में वित्तीय अशुद्धियों के कठोर–विरोधी थे तथा इन्हें दूर करने हेतु कठोर दण्ड़ात्मक कार्यवाही करने पर जोर देते थे।

5.II वर्तमान भारत में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण –

(अ) वर्तमान भारत में लेखांकन प्रणाली –

शासन की सम्पूर्ण आय और व्यय को व्यवस्थित रुप से रखने का काम लेखांकन है। साधारण शब्दों में कहें तो लेखांकन का अर्थ है, वितीय व्यापारों का क्रमबद्ध रिकार्ड रखना। सार्वजनिक धन की सुरक्षा के लिए लेखाकंन आवश्यक है। इसके द्वारा इस बात का पता चलता है कि सार्वजनिक धन का उपयोग संसद द्वारा स्वीकृत बजट के अनुसार हुआ है अथवा नहीं। लेखांकन के द्वारा प्रशासन तथा वित्त विभाग के सम्बन्ध में सरकार को अपनी नीति निश्चित करने के लिए सुविधा मिलती है और सरकार को अपनी वितीय स्थिति का पता चलता है। अच्छे एवं प्रभावी लेखांकन के लिए लेखों का केन्द्रीकरण, कोषों का वर्गीकरण, दोहरी प्रविष्टि पद्धति, राजस्व लेखांकन, वार्षिक लेखा प्रतिवेदन, नियमित लेखांकन इत्यादि तत्वों का होना आवश्यक है।

उपरोक्त वर्णित सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुऐ वर्तमान भारत में भी एक श्रेष्ठ एवं सुव्यवस्थित लेखांकन प्रणाली को अपनाया गया है।

1. वर्तमान भारत में लेखांकन पद्धति–

संविधान के **अनुच्छेद 150** के अनुसार संघ तथा राज्यों केलेखों को ऐसे रुप में रखा जाएगा जैसाकि भारत का **नियन्त्रक व महालेखापरीक्षक** राष्ट्रपति के अनुमोदन से निर्धारित करें। इसके अधीन हर राज्य में एक महालेखाकार होता है। रेल्वे तथा प्रतिरक्षा विभाग के लेखे अलग रखे जाते है। रेल्वे का वित्तीय आयुक्त रेल्वे लेखों को तथा प्रतिरक्षा लेखे वित्त मंत्रालय द्वारा, वित्तीय सलाहकार प्रतिरक्षा और सैनिक महालेखाकार के माध्यम से रखे जाते हैं। लेकिन 1976 के बाद लेखांकन और लेखा परीक्षण के कार्य अलग–अलग हो जाने के कारण लेखांकन का समुचित उत्तरदायित्व विभागों पर आ गया है।

2. वर्तमान भारत में लेखांकन प्रक्रिया –

वर्तमान भारत में लेखांकन की प्रक्रिया निम्न चार चरणों से गुजरती है–

(1) सर्वप्रथम प्रारम्भिक लेखों को कोषागार (Treasury) में सुरक्षित रखा जाता है। संघ एवं राज्यों की सरकारों के लेखे भुगतान के लिए पृथक–पृथक शीर्षकों तथा उपशीर्षकों के अन्तर्गत राजकोश में रखे जाते है।

(2) द्वितीय प्रक्रिया में अगले माह भी पहली तारीख तक अपने लेखे और उनकी सार्थकता को सिद्ध करने के लिए उनके समर्थन में रसीदें राजकोष अपने राज्य से सम्बन्धित **महालेखाकार** को भेज देते है। महालेखाकार इन लेखों का वर्गीकरण करता है और यह निश्चित किया जाता है कि मदें अपने शीर्षक के अनुसार सही हैं।

(3) इस चरण में वर्गीकरण करने के पश्चात् **लेखों का संकलन** किया जाता है। लेखा अधिकारी राजकोश से प्राप्त लेखा, प्राप्तियों एवं विभागीय अधिकारियों से प्राप्त लेखा प्राप्तियों का सकंलन करते है। विभागीय अधिकारी अपने अधीनस्थ उपकार्यालय से व्यय की गई धनराशियों की रसीदें प्राप्त करते है। तब उन रसीदों कोसंकलित करते है। संकलित रसीदों को महालेखाकार के कार्यालय भेज दिया जाता है। वहाँ पर इन रसीदों का राजकोष में स्थित रसीदों से मिलान किया जाता है। इस प्रकार विभाग तथा राजकोष की प्राप्तियों तथा अदायगी की रसीदों का मिलान करके उन्हें आगामी माह के अन्त तक सम्बन्धित सरकार की सेवा में प्रस्तुत कर देते है। महालेखाकारों द्वारा अपने–अपने राज्यों के लेखा विषयक कार्यों को पूर्ण होने पर उन समस्त लेखों को संकलित करने का कार्य महालेखापरीक्षक द्वारा दिया जाता है।

(4) इस चरण में महालेखापरीक्षक केन्द्र तथा राज्यों के वार्षिक लेखों को तैयार कराता है। वह सामान्य वित्तीय विवरण भी तैयार करता है, जिसे केन्द्रिय व राज्य सरकारों का सम्मिलित वित्त एवं **राजस्व लेखा** कहते है। इस लेखे में केन्द्र व राज्य सरकारों के गत वर्ष के लेखों का दिग्दर्शन उनके शेष धन तथा शेष दायित्व को सारांश में दर्शाता है। इस प्रकार महालेखापरीक्षक सम्पूर्ण देश की वित्तीय व्यवस्था को अपने लेखों द्वारा स्पष्ट कर देता है।

3. लेखाओं का विभागीकरण –

केन्द्र सरकार ने 1976 में भारत के नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक को लेखांकन उत्तरदायित्व से स्वतंत्र कर दिया। अब वह केवल केन्द्र एवं राज्य सरकारों के लेखाओं के लेखा परीक्षण के कार्य के लिए अधिकृत है। केन्द्र सरकार ने 1976 में लेखांकन हेतु लेखा के विभागीकरण की नयी योजना लागू की। इस योजना के तहत् मंत्रालयों/विभागों ने अब

भुगतान व प्राप्तियों की जिम्मेदारी स्वयं ले ली। अर्थात् केन्द्रीय शासन में लेखांकन विभागीय दायित्व हो गया है। इस नवीन प्रणाली के अन्तर्गत मंत्रालयों/विभागों में मंत्रालय सचिव को सम्बन्धित मंत्रालय तथा उसके संलग्न तथा अधीनस्थ कार्यालयों के तमाम लेन–देन के लिए प्रमुख लेखा प्राधिकारी बनाया गया है। वह अपने मंत्रालय के भुगतान, लेखाफलन व्यवस्था की कार्यपद्धति एवं मासिक लेखा के प्रमाणीकरण के लिए भी उत्तरदायी है। वह अपना ये उत्तरदायित्व मत्रांलय के **एकीकृत वित्त सलाहकार** के द्वारा और उसकी सहायता से पूरा करता है। एकीकृत वित्तीय सलाहकार मंत्रालय के लेखा संगठन और भुगतान का प्रधान होता है। ये मंत्रालय सचिव की और से निम्नलिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी है –

(i) मंत्रालय और उसके विभागों के बजट का निर्माण, व्यय पर नियन्त्रण, मंत्रालय द्वारा स्वीकृत भुगतानों का व्यवस्थापन, सम्पूर्ण मंत्रालय के लेखा का समेकन, मंत्रालय द्वारा नियन्त्रित अनुदानों के लिए विनियोग भुगतान एवं लेखा को तैयार करना, प्रबन्धन की कुशल सामग्री लागू करना, लेखा की आन्तरिक लेखा परीक्षा एवं लेखा की सटीकता और कार्य संचालन की कुशलता सुनिश्चित करना।

(ii) उपरोक्त कार्यभारों को निस्पादन करने के लिए एकीकृत वित्तीय सलाहकार को निम्न अधिकारी सहायता देते है–**प्रधान लेखाधिकारी, भुगतान एवं लेखा कार्यालयों के प्रमुख, मुख्य लेखा नियन्त्रक और लेखा नियंत्रक** इत्यादि।

4. महालेखा नियंत्रक –

यह अधिकारीवित्तमंत्रालय, व्यय विभाग में भारत सरकार के प्रधान लेखा सलाहकार है। ये तकनीकी रूप से समर्थ प्रबन्धन लेखाकंन प्रणाली की स्थापना और उसके अनुरक्षण के लिए उत्तरदायी है। सन् 1976 में इस पद की स्थापना की गई है।[47]

महालेखा नियंत्रक का कार्यालय, केन्द्र सरकार के लिये, व्यय, राजस्व, ऋणों और विभिन्न राजकोषीय संकेतकों को मासिक और वार्षिक विश्लेषण तैयार करता है। वार्षिक विनियोजन लेखें (सिविल) और केन्द्रीय वित्त लेखे, संविधान के **अनुच्छेद 150** के तहत संसद में पेश किये जाते है। इन दस्तावेजों के साथ–साथ **लेखें एक नजर में** 'नामक एक **एमआईएस** रिपोर्ट तैयार की जाती है और माननीय संसद सदस्यों को परिचालित की जाती है।

5. महालेखा नियंत्रक के कार्य –

महालेखा नियंत्रक के मुख्य कार्य निम्नलिखित प्रकार से है–

(1) केन्द्र एवं राज्य सरकारों के लिए लेखाकंन के सामान्य सिद्धान्तों, स्वरूप और प्रक्रिया से सम्बन्धित नीतियाँ बनाना।

(2) केन्द्रीय सिविल मंत्रालयों/विभागों के भुगतान, आय और लेखाकंन मामलों में प्रक्रिया का संचालन।

(3) सरकार की राजकोषीय नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन के उद्देश्य से सुदृढ़ वित्तीय रिपोर्टिंग प्रणाली के द्वारा केन्द्र सरकार के मासिक एवं वार्षिक लेखे तैयार करना, समेकित करना एवं प्रस्तुत करना।

(4) मंत्रालय/विभागों की प्रबन्धन लेखांकन प्रणालियाँ शुरू करने में समन्वय एवं सहायता करना ताकि कुशल नकदी प्रबन्धन एवं प्रभावी वित्तीय प्रबन्धन सूचना प्रणाली के द्वारा सरकारी संसाधनों का इष्टतम उपयोग किया जा सके।

(5) सरकारी व्यय के संवितरण एवं सरकारी आय के संग्रहण के लिये बैकिंग व्यवस्थाओं का संचालन तथा केन्द्र सरकार के नकद शेष के मिलान हेतु सेन्ट्रल बैंक के साथ पारस्परिक तालमेल बनाये रखना।

(6) भारतीय सिविल लेखा संगठन में पर्यवेक्षण एवं प्रचालन दोनों स्तरों पर अधिकारियों की और कर्मचारियों की भर्ती, तैनाती, और कैरियर विवरण प्रबन्धन में सुधार के लिये समर्थ मानव संसाधन प्रबन्धन की स्थापना करना।

यह आय भुगतान, राजस्व तथा राजकोषीय घाटें और इसके वित्तपोषण के स्त्रोंतो की मासिक प्रवृति का विस्तृत विश्लेषण केन्द्रीय वित्तमंत्री के समक्ष रखता है। पिछले कुछ समय में यह विश्लेषण, बजटीय अनुपालन की मॉनीटरिंग और निर्णय लेने के लिये एक उपयोगी साधन के रूप में उभरा है।

सुशासन हेतु–

वित्त प्रशासन में लेखाओं के सन्दर्भ में अधिकाधिक पारदर्शिता लाने की सरकार की नीति के अनुसार (सुशासन हेतु) संघ सरकार के लेखाओं का सारांश प्रति माह जारी किया जाता है और इसे सी.जी.ए. की वेबसाइट (http: //www.cga.nic.in) पर डाला जाता है।

6. लेखाओं की संरचना – (Structure of Accounts) –

संविधाान की अनुच्छेद 150 के अनुसार केन्द्र एवं राज्य सरकारों के लेखा के प्रपत्रों का निर्धारण नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की सलाह पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है। लोक सभा की नियम संख्या 204 में कहा गया है कि लोकसभा में बजट वित्त मंत्रालय द्वारा निर्धारित प्रपत्र (आंकलन समिति के सुझावों, यदि कोई हो पर विचार करके)

प्रस्तुत किया जाएगा। व्यवहार में बजट का कार्य लेखा के प्रपत्र से मेल खाने वाला ही होता है। लेखा की मौजूदा कार्य पद्धति निस्पादन बजटिंग की आवश्यकताओं का पूरा नहींकर सकी। अतः प्रबन्ध के उद्देश्यों एवं वित्तीय नियन्त्रण, जवाबदेही (जो सुशासन का एक कारक है) की जरूरतों को पूरा करने के लिए 1974 में केन्द्र सरकार ने लेखा निधि की एक संशोधित संरचना को लागू किया। इस संशोधित योजना के अनुसार अब लेखा में निम्न वर्गीकरण को अपनाया है–

(1) क्षेत्रीय –(Sectoral)

(2) प्रमुख शीर्ष –(Majar Head)

(3) गौण शीर्ष – (Minor Head)

(4) उपशीर्ष –(Subhead)

(5) विस्तृत शीर्ष –(Detailed Head)

(1) **क्षेत्रीय** वर्गीकरण ने सरकारी कार्यकलापों को तीन क्षेत्रों में बांट दिया है 1. सामान्य सेवाएं (छः उपक्षेत्रों सहित) 2. सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं 3. आर्थिक सेवाएं (सात उपक्षेत्रों के साथ)। इसके अतिरिक्त एक क्षेत्र और भी है – सहायता अनुदान और अंशदान।

(2) प्रमुख शीर्ष –लेखा का प्रमुख शीर्ष सरकार के कार्यकलाप (जैसे – कृषि) को इंगित करता है।

(3) गौण शीर्ष –ये किसी कार्यक्रम (जैसे की कृषि कार्य) का संकेतक है।

(4) उपशीर्ष –ये किसी कार्यक्रम के अन्तर्गत योजना को सूचित करता है।

(5) विस्तृत शीर्ष –ये उस खर्चे का प्रतिनिधित्व करता है। जो वेतनों, निवेशों आदि के रूप में उस योजना पर हुए है।

नये संशोधित वर्गीकरण में **वस्तुशीर्ष** (जैसे वर्गीकरण वस्तुनिष्ठ स्तर) बनाये रखा गया है और इसको सबसे बाद में रखदिया गया है। यह खर्च पर मदवार नियन्त्रण प्रदान करता है। प्रमुख शीर्ष में किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिए भारत के नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक की स्वीकृति आवश्यक है। इस प्रकार से वर्तमान भारत में लेखांकन कार्य को सम्पन्न किया जाता है।

(ब) भारत में लेखा–परीक्षण व्यवस्था (Auditing system in India)–

लेखा परीक्षण वह समीक्षा है जिसके द्वारा यह एक जानने का प्रयास किया जाता है कि सार्वजनिक धन का व्यय संविधान में उल्लेखित वित्तीय नियमों के अनुसार किया गया है अथवा नहीं किया गया है। लेखा परीक्षण व्यय करने के बाद ही सम्भव है। संसदीय

व्यवस्थाओं में लोक वित्त पर नियन्त्रण रखने के लिए लेखा–परीक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है। चूंकि भारत एक संसदीय शासन व्यवस्था वाला देश है अतः यहाँ भी सार्वजनिक धन पर नियन्त्रण हेतु एक सुदृढ़ एवं निष्पक्ष लेखा परीक्षण पद्धति को अपनाया गया है। भारत शासन अधिनियम, 1935 में प्रान्तों के लिए स्वतन्त्र महालेखा परीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी, परन्तु किसी भी प्रांत ने इस प्रावाधान का उपयोग नहीं किया था। वर्तमान भारतीय संविधान में भी राज्यों के लिए स्वतन्त्र महालेखापरीक्षकों की नियुक्ति का कोई प्रावाधान नहीं रखा है। भारत के संघात्मक संविधान के अन्तर्गत संघ एवं राज्यों के सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन के लेखा–परीक्षण को **नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक** (CAG) की अविभाज्य सत्ता के अधीन कर दिया गया है।

1. भारत के नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditior General of India) –

भारतीय संविधान निर्माताओं ने लेखाकंन एवं लेखा–परीक्षण के संदर्भ में एक स्वंतत्र एवं संवैधानिक सत्ता की व्यवस्था की है। जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेदों 148 से 150 तक में किया गया है। इसका प्रमुख दायित्व वर्तमान में भारत की संचित निधि में से व्यय किये जाने वाले सभी सार्वजनिक धनों (वित्त) का लेखा–परीक्षण करना है। इसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की भाँतिएक संवैधानिक एवं निष्पक्ष दर्जा दिया ंगया है।

नियन्त्रक व महालेखापरीक्षक अपने संवैधानिक कर्त्तव्य विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों द्वारा करता है, जैसे हर राज्य में **महालेखाध्यक्ष**, **केन्द्रीय राजस्व** व **डाकतार विभाग** के **महालेखाध्यक्ष**, **रेल मंत्रालय** के व्यय की जाँच करने वाले **प्रधान लेखापरीक्षाध्यक्ष**, **प्रतिरक्षा सेवाओं** के व्यय की जाँच करने वाला **मुख्य लेखापरीक्षाध्यक्ष**, **खाद्य, पुनर्वासतथा पूर्ति** के लेखों की जाँच करने वाला **प्रमुख परीक्षाध्यक्ष**, सरकार के **व्यापारिक संस्थाओं** व **कम्पनियों** की लेखों की जाँच करने वाला **व्यापारिक लेखापरीक्षक, निदेशक** आदि। इसके अतिरिक्त नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक के कार्यालय में कई हजार सहायक कर्मचारी वर्ग भी लेखा परीक्षण के कार्यों में उनकी सहायता करते है।

इस प्रकार इस संस्था का दायित्व है कि वह वित्तीय प्रशासन व संविधान की विधियों की मर्यादा बनाये रखे।

वर्तमान भारतीय संविधान, 1950 में इस पद की सेवा शर्तों, कर्त्तव्यों एवं अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई थी। इन्हें स्पष्ट करने का कार्य संसद को सौंपा गया है। संविधान के अनुच्छेद 148(3) में प्रावाधान है कि नियन्त्रण एवं महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तें संसद कानून द्वारा निश्चित करेगी और जब तक वे इस प्रकार निश्चित नहीं की जाती है तब तक अनुसूची में जैसा उनका उल्लेख किया गया हैं वैसे ही

रहेगी। **अनुच्छेद 149** में यह प्रावाधान किया गया है कि **"नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ तथा राज्यों के लेखाओं के सम्बन्ध में उन्हीं कर्तव्यों का पालन तथा अधिकारों का प्रयोग करेगा, जो संविधान लागू होने के ठीक पहले भारत के पृथक–पृथक प्रांतो के लेखाओं के सम्बन्ध में भारत के महालेखा परीक्षक के सौंपे गये थे या उसके द्वारा किये जाते थे।"**

सन् 1953, 1971 में भारतीय संसद ने अधिनियम पारित करके नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक की सेवा शर्तों अधिकारों एवं कर्तव्यों को परिभाषित किया है। सन् **1976** में पारित **एक संसदीय अधिनियम** द्वारा **नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक** को केन्द्रीय एवं राज्यों के **लेखांकन** सम्बन्धी दायित्व से स्वतंत्र कर दिया है। सन् 1984 में नियन्त्रक व महालेखापरीक्षक (सेवाशर्तों) अधिनियम सन् 1971 में संशोधन कर इस पद पर कार्यरत व्यक्ति को एक तो पेंशन की सुविधाओं में वृद्धि का लाभ दिया गया साथ ही उसकी शक्तियों में वृद्धि भी की गई है।

2.पदनियक्ति एंव सेवाशर्ते –

अनुच्छेद 148 के अनुसार नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति स्वयं अपने हस्ताक्षर एवं मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा करता है। पद की शपथ वह पूर्व निर्धारित प्रकिया अनुसार राष्ट्रपति के समक्ष लेता है। संसद उसके पद के वेतन तथा सेवा शर्तों को निर्धारित करती है। किन्तु एक बार इस पद पर नियुक्त हो जाने के बाद उसके वेतन, पेंशन निवृत्ति की आयु में उसके हित के विरूद्ध परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

3. वेतन –

वर्तमान में उसका वेतन 90,000 प्रतिमाह है, जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के वेतनमान के बराबर है। इसके कार्यालय का प्रशासनिक व्यय भारत की संचित निधि पर रखा गया है।

4. कार्यकाल –

सन् 1953 में पारित भारतीय संसद के एक अधिनियम के तहत उसका कार्यकाल 6 वर्ष का होता है, किन्तु इस पद के लिए अधिकतम आयु 65 वर्ष निर्धारित की गयी है।

5. पदविमुक्ति –

संविधान के अनुच्छेद 148 (1); 124 (4) के अनुसार इसे महाभियोग द्वारा पद से हटाया जा सकता है।

6. पद की स्वतंत्रता –

इस पद की स्वतं्त्रता के सम्बन्ध में **डॉ. पट्टाभि सीतारमैया** ने कहा था ''**नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान स्वतंत्र होना चाहिए। इसे भारतीय वित्तीय स्थितियों का सर्वोच्च निर्णायक होना चाहिए तभी हमारा स्वराज्य सही अर्थों में स्वराज्य हो सकता है।**''

इस पदाधिकारी की कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका से स्वतंत्र एवं कार्य में निष्पक्षता, तटस्थता सुनिश्चित करने के लिए संविधान में उसकी सेवा दशाओं के सम्बंध में निम्नप्रकार के उपबंध किये है –

(1) इसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, परन्तु राष्ट्रपति भी इस पदाधिकारी को तब तक अपने पद से नहीं हटा सकता है, जब तक की संसद के दोनो सदन उसके विरूद्ध महाभियोग प्रस्ताव पारित नहीं कर दे।

(2) सेवाकाल में इसके वेतन, भत्तों व अन्य किसी सेवाशर्तों में अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

(3) उसका वेतन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के समकक्ष रखा गया है।

(4) सेवा का कार्यकाल निश्चित है। 65 वर्ष की आयु या 6 वर्ष की अवधि जो पहले हो तक वह पद धारण कर सकता है।

(5) सेवा निवृत्ति के बाद वह भारत अथवा राज्यसरकार के अधीन कोई पद धारण करने की पात्रता नहीं रखता है।

(6) इसका वेतन और कार्यालय का प्रशासनिक व्यय भारत की संचित निधि पर धारित होते है। उन पर संसद द्वारा मतदान नहीं किया जाता है।

उपरोक्त वर्णित उपबंध इस पद की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता बनाये रखने के लिए आवश्यक है।

7. नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक के प्रमुखकार्य –

नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक के रूप उसके अधिकार एवं कर्तव्य व्यापक एवं महत्वपूर्ण है। उसका अर्थ केवल यहीं तक सीमित नहीं है कि वह गैर कानूनी व्यय पर नियन्त्रण करे बल्कि स्वयं को इस बात से संतुष्ट करता है कि इसमें बुद्धिमानी, सच्चाई तथा मितव्ययता से काम लिया गया है। उसके कार्यों को दो वर्गों में रखा गया है वे इस प्रकार से हैं –

I –प्रथम वर्ग के कार्य –

(1) नियन्त्रक के रूप में उसका कर्तव्य है कि वह इस बात को देखे की भारत की संचित निधि में से संसद द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुसार ही समस्त धन राशि निकाली जाये।

(2) सार्वजनिक लेखों के महालेखापरीक्षक के रूप में उसका कर्तव्य यह देखना है कि समस्त सार्वजनिक (सरकारी) धन का व्यय संसद द्वारा पारित कानून एवं नियमों के अनुसार किया जा रहा है।

II – द्वितीय वर्ग के कार्य –

सन् 1971 व 1976 में पारित संसदीय अधिनियमों द्वारा उसके कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) यह संघ तथा राज्यों की सरकारों के हिसाब–किताब का लेखा परीक्षण करता है। उसे यह भी देखना होता है कि अभिलेख में जिस धन का विवरणदिया है वह प्रस्तुत योजना के लिए वैध तरीके से प्राप्त किया गया अथवा नहीं । इसके साथ ही साथ जिस कारण में धन लगाया गया है वह आवश्यक था अथवा नहीं।

(2) वह केन्द्र तथा राज्यों के किसी विभाग द्वारा तैयार किये गये ऋण, जमा, भुगतान, अग्रिम निर्माण एवं लाभ–हानि से सम्बन्धित लेन–देन की जाँच करने का भी कार्य करता है।

(3) संघ व राज्यों को आवश्यकता पड़ने पर ऐसी सूचना भी देगा जो उन्हें वार्षिक वित्तीय विवरण तैयार करने के लिए अनिवार्य है।

(4) केन्द्र एवं राज्य सरकार के अनुरोध पर किसी भी सरकारी विभाग की आय–व्यय की जाँच करता है।

(5) केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार के अनुरोध पर वह किसी भी सरकारी विभाग के भण्डार के सामान तथा सामग्री के लेखों की जाँच करता है।

(6) वह केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों के द्वारा रखे जाने वाले व्यापारिक एवं निर्माण कार्यों सम्बन्धी कार्यों के लाभ–हानि के विवरणों एवं पक्के लेखाओं की लेखा परीक्षा करता है।

(7) वह सरकार के अनरोध पर स्थानीय संस्थाओं की लेखा परीक्षा करने जैसे कार्यों का निर्वाह करता है।

इस प्रकार से नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक अपने दायित्वों को निभाते हुये लेखापरीक्षण की वार्षिक रिपोर्ट को संसद के समक्ष रखता है।[48]

इससेस्पष्ट होता है कि भारत का ये पदाधिकारी अपने लेखा–परीक्षण सम्बन्धित कार्यों को पूर्ण ईमानदारी से निभाते हुए वित्तीय प्रशासन में सुशासन के मापदण्ड़ों को स्थापित करने में सरकार की सहायता करता है।

6.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय भ्रष्टाचार एवं रोकथाम–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में तत्कालीन मौर्य प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार विशेषतः वित्तीय भ्रष्टाचार का रोचक वर्णन मिलता है। कौटिल्य प्रशासन में सत्यनिष्टा, ईमानदारी, जवाबदेयता, पारदर्शिता की स्थापना करने तथा उसे भ्रष्टाचार से बचाये रखने की आवश्यक तकनीक भी बताते हैं। भ्रष्टाचार–निरोध सम्बन्धी कारकों की व्याख्या के पूर्व कौटिल्य यह भी स्पष्ट करते हैं कि प्रशासन में भ्रष्टाचार का होना एक सामान्य सी बात हैं। लेकिन इसे पूर्णतः मिटाना काफी कठिन है।कौटिल्य का मत था कियोग्यता आधारित भर्ती (जो कठिन परीक्षणों पर आधारित थी) द्वारा नियुक्ति के बावजूद भी राजकीय पदाधिकारियों में भ्रष्टाचार का पाया जाना का पाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कौटिल्य ने **सुशासन** (उत्तम शासन) के दस संकेतांक बताये है। उनमें से एक संकेतांक भ्रष्टाचार की रोकथाम से सम्बन्धित है। कौटिल्य प्रशासन में व्याप्त वित्तीय भ्रष्टाचार के प्रति सचेतनता प्रदर्शित करते हुए यह मत व्यक्त करते है कि सुशासन की स्थापना हेतु भ्रष्ट पदाधिकारी को दण्डित करने का स्पष्ट प्रावाधान होना चाहिए। साथ ही साथ सरकारी पदाधिकारियों में बढ़ती भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति को रोकने के लिये निरोधात्मक एवं कठोर दण्डात्मक उपाय विकसित करने का सुझाव भी देते हैं।

कौटिल्य का यह स्पष्ट मत था कि प्रशासनिक क्षेत्र में विशेषतः वित्तीय प्रशासन में सच्चरित्रता (ईमानदारी) का पूरी तरह अभाव है। उन्होंने अर्थशास्त्र में सरकारी कोष (राजकोष) के गलत तरीके से इस्तेमाल के चालीस प्रकारों का वर्णन किया है। जिसका उल्लेख आगे किया गया है। उन्होंने राजकोष की वित्तीय हानि (भ्रष्टाचार) को रोकने के लिए विभिन्न दण्डात्मक कदम उठाने का सुझाव भी दिया है।

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भ्रष्टाचार की परिभाषा –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के **दूसरे अधिकरणअध्यक्षप्रचार** में **प्रकरण 25 अध्याय 9** में भ्रष्टाचार शब्द को प्राचीन आचार्यो ने निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है–

अल्पायतिश्वेन्महाव्ययो भक्षयति। विपर्यये यथायतिव्ययश्व न भक्षयति इत्याचार्याः अपसर्पेणैवोपलभ्यते इति कौटिल्यः।।[49]

इस सूत्र का अर्थ है कि **''यदि किसी अध्यक्ष की आमदनी थोड़ी है और खर्च अधिक दिखाई देता है तो समझ लेना चाहिए कि वह राजकीय धन का अपहरण करता है।**

यदि जितनी आमदनी है उतना ही व्यय दिखाई दे तो समझना चाहिए कि वह न तो राजधन का गबन करता है और न रिश्वत लेता है।"

2. भ्रष्टाचार के सन्दर्भ में कौटिल्य का मत –

जबकि आचार्य कौटिल्य का कथन है कि धन का अपहरण (गबन) करने वाला भी थोड़ा धन खर्च कर सकता है। अतः गुप्तचरों के द्वारा ही इस कार्य (गबन) का ठीक से पता लगाया जा सकता है अर्थात् सामान्यतः वित्तीय अपहरण (गबन) का पता लगाना आसान नहीं है।कौटिल्य आगे लिखते है कि जो अधिकारी नियमित आय में कमी दिखाता है, वह निश्चय ही राजधन का अपहरण करता है। यदि यह कमी उसकी अज्ञानता, प्रमाद एवं आलस्य के कारण हुई है तो उसे अपराध के अनुसार दुगुना, तिगुना दण्ड दिया जाना चाहिए। जो अधिकारी नियमित आय से दुगुनी आय दिखाता है, वह निश्चय ही प्रजा को पीड़ित कर इतना धन वसूल करता है। यदि वह उस दुगुनी आमदनी को राजकोष के लिए भेज देता है तो उसे दण्डित करना चाहिए जिससे की वह निकट भविष्य में ऐसा अनुचित कार्य न कर सके। यदि वह उस अधिक धन को राजकोष के लिए न भेजकर स्वयं ही हजम कर लेता है तो उसे अपराध के अनुसार कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो अधिकारी व्यय निमित्त निर्धारित राशि को खर्च न करके बचा लेता है। वह मजदूरों का पेट काटता है। उस अपराधी अधिकारी को कार्य हानि के मूल्य का तथा मजदूरी के अपहरण का यथोचित दण्ड देना आवश्यक है।

इसलिए हर राजकीय अधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह अपने कार्य की यथार्थता और तत्सम्बन्धी आय–व्यय का विवरण संक्षेप में तथा विस्तार से राजा के सम्मुख रखे।

3. कौटिल्य द्वारा भ्रष्टाचार का विविध उपमाओं द्वारा विश्लेषण –

कौटिल्य ने लिखा है कि जैसे जीभ में रखे मधु या विष का स्वाद लिये बिना नहीं रहा जा सकता। उसी प्रकार अर्थाधिकार कार्यों (वित्तीय कार्यों) पर नियुक्त पुरूष (सरकारी कार्मिक) धन का थोड़ा भी स्वाद (अपहरण) न ले यह असम्भव है। यहाँ कहने का आशय है कि वित्तीय कार्यों में संलग्न व्यक्ति धन का गबन किये बिना नहीं रह सकते है।

कौटिल्य ने यह भी लिखा है कि हम उन्हें ऐसा करते नही देख सकते हैं। जिस प्रकार पानी में रहने वाली मछलियां पानी पीती नहीं दिखाई देती हैं उसी प्रकार वित्तीय कार्यों में नियुक्त कर्मचारी भी धन का अपहरण करते हुए नहीं जाने जा सकते है।

कौटिल्य का यहाँ तक मानना था कि वित्तीय क्षेत्र में भ्रष्टाचार हमेशा से विद्यमान रहा है। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गतिविधि का पता लगाया जा सकता है, परन्तु धन अपहरण करने वाले कर्मचारी की गतिविधि से पार पाना (पता लगाना) कठिन है।[50]

4. कौटिल्य अर्थशास्त्र में भ्रष्टाचार के प्रकार –

कौटिल्य ने बताया है कि अध्यक्ष द्वारा चालीस प्रकार के उपायों से राजद्रव्य (धन) का अपहरण किया जा सकता है।[51]ये तरीके निम्नलिखित हैं–

(1) पहली फसल में प्राप्त हुए द्रव्य को दूसरी फसल आने पर रजिस्टर में चढ़ाना।

(2) दूसरी फसल की आमदनी का कुछ हिस्सा पहली फसल के अन्तर्गत रजिस्टर में चढ़ा देना।

(3) राजकर की वसूली को रिश्वत लेकर छोड़ देना।

(4) राजकर से मुक्त, देवालय, ब्राहाण आदि से कर वसूलना।

(5) कर देने पर भी उसको रजिस्टर में अंकित न करना।

(6) कर न देने पर भी उसका रजिस्टर में उल्लेख करना।

(7) कम प्राप्त धन को रिश्वत लेकर पूरा दिखाना। पूरे प्राप्त धन को अधूरा कह कर लिख देना।

(8) जो द्रव्य प्राप्त हुआ है उसके स्थान पर दूसरा ही द्रव्य भर देना।

(9) एक पुरूष से प्राप्त धन को रिश्वत लेकर दूसरे के नाम पर दर्ज कर देना।

(10) देने योग्य वस्तु को न देना।

(11) जो वस्तु देने योग्य नहीं है उसको दे देना।

(12) समय पर किसी वस्तु को न देना।

(13) रिश्वत लेकर असमय पर उस वस्तु को दे देना।

(14) थोड़ा देकर भी बहुत लिख देना।

(15) बहुत देकर थोड़ा लिखना ।

(16) अभिष्ट वस्तु की जगह दूसरी वस्तु दे देना।

(17) जिस व्यक्ति को देने के लिए कहा है उसके बदले में किसी ओर व्यक्ति को दे देना।

(18) राजकर को वसूल करके उसे खजाने में जमा नहीं कराना।

(19) राजकर को वसूल न करके रिश्वत लेकर उसे जमा रजिस्टर में चढ़ा देना।

(20) राजा से वस्त्रादि क्रय करके तत्काल ही उनका मूल्य न चुकाना बाद में अकेले में कुछ कम रकम देना।

(21) अधिक मूल्य में क्रय की गई वस्तुओं की रकम को कम करके रजिस्टर में लिखना।

(22) सामूहिक कर वसूली को अलग–अलग व्यक्ति से लेना।

(23) अलग–अलग व्यक्तियों से लिए जाने वाले कर को सामूहिक रूप से वसूल करना ।

(24) मूल्यवान वस्तु को कम मूल्य की वस्तु में बदलना।

(25) कम मूल्य की वस्तु को मूल्यवान वस्तु से बदलना।

(26) रिश्वत लेकर बाजार में वस्तुओं की कीमत बढ़ाना, वस्तुओं का मूल्य घटा देना।

(27) दो दिन का वेतन देना और चार दिन का बताकर लिखना।

(28) चार दिन का वेतन दिया हो और दो दिन का घटाकर लिख देना।

(29) मलमास रहित संवत्सर को मलिमास युक्त बता देना।

(30) महिने के दिन घटाकर लिख देना।

(31) नौकरों की संख्या बढ़ा कर लिखना।

(32) एक जरिये से हुई आमदनी को दूसरे जरिये से दर्ज करना।

(33) ब्राह्मणादि को स्वीकृत धन में से स्वयं ले लेना।

(34) कुटिल उपाय से अतिरिक्त धन वसूल करना।

(35) सामूहिक वसूली में से न्यूनाधिक रूप में धन लेना।

(36) वर्ण विषमता दिखाकर धन का अपहरण करना।

(37) जहाँ मूल्य निर्धारित न हों, वहां दाम बढ़ाकर लाभ उठाना।

(38) तौल में कमी–बेशी कर उपार्जन करना।

(39) नाप में विषमता पैदा करके धन कमाना।

(40) घी से भरे हुए 100 बड़े बर्तनों के स्थान पर 100 छोटे बर्तन देना।

इस प्रकार राजकीय धन के गबन के ये उपर्युक्त वर्णित चालीस तरीके हैं।

5. कोष हानि के कारण –

इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने कोष में हानि (क्षय) होने के आठ अन्य कारण भी बताये हैं[52]। वे निम्न हैं–

(1)प्रतिबन्ध – इसके तीन प्रकार है–(1) राजकर को वसूल करना।(2) वसूल करके उसे अपने अधिकार में न रखना।(3) अधिकार में करके भी उसे खजाने में जमा नहीं कराना। जो अध्यक्ष इस तरह से कोष की हानि करे उस परक्षत राशि से दस गुना जुर्माना करना चाहिए।

(2) प्रयोग– कोष धन का स्वयं ही लेन–देन करके, वृद्धि का प्रयत्न करना प्रयोग कहा जाता है। ऐसे अधिकारी पर दुगुना जुर्माना करना चाहिए।

(3) व्यवहार– कोष के द्रव्य से स्वयं ही व्यापार करना व्यवहार कहलाता है, ऐसा करने पर भी दुगुना दण्ड देना चाहिए।

(4) अवस्तार – राजकर वसूल करने वाला अधिकारी, नियत समय से कर वसूली न करके रिश्वत लेने की इच्छा से, समय व्यतीत होने का भय दिखाकर प्रजा को तंग करके जो धन

एकत्र करता है, उसे अवस्तार कहते है। ऐसा करने पर अधिकारी को नुकसान की राशि का पांच गुना दण्ड देना चाहिए।

(5) परिहापण– जो अध्यक्ष अपने कुप्रबन्ध (Mismanagement) के कारण कर की आय को कम एवं व्यय की राशि को बढ़ा देता है। इस प्रकार की धन हानि को परिहापण कहते है। ऐसा करने पर उससे हानि की राशि की चार गुना दण्डवसूल किया जाये।

(6) उपभोग– राजकोष के धन का स्वयं भोग करना एवं दूसरों को भोग कराना उपभोग प्रकार का क्षय है। इसके अपराध में अध्यक्ष (अधिकारी) को यदि वह रत्नों का उपभोग करे तो प्राण दण्ड, सारद्रव्यों का उपभोग करता है तो मध्यम साहस दण्ड और फल्गु एवं कुप्य आदि पदार्थो का उपभोग करता हैं तो उससे द्रव्य वापिस लेकर उसकी लागत का दण्ड दिया जाना चाहिए।

(7) परिवर्तन – राजकोष के द्रव्यों को दूसरे द्रव्यों में बदल देना परिवर्तन कहलाता है। इस कार्य को करने वाले राजकीय कर्मचारी (अध्यक्ष) के लिए भी उपभोग क्षय के समान ही दण्ड देना चाहिए।

(8) अपहार – प्राप्त आय को रजिस्टर में न चढ़ाना, नियमित व्यय को रजिस्टर में चढ़ाकर भी खर्च न करना और प्राप्त नीवी (बचत) के सम्बन्ध में मुकर जाना ये तीन प्रकार का अपहार है। अपहार के द्वारा कोष को हानि पहुँचाने वाले अध्यक्ष को बारहगुना दण्डित करना चाहिए।

6. भ्रष्टाचार निरोधक कार्यवाही–

कौटिल्य अर्थशास्त्र में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए की जाने वाली राजकीय कार्य प्रक्रिया का भी उल्लेख दिया है। कौटिल्य ने इस कार्य प्रक्रिया को दो कारकों के द्वारा समझाया है। ये दो कारक है–

1. भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में विभागीय कार्य प्रक्रिया–

कौटिल्य ने लिखा है कि यदि किसी अध्यक्ष के सम्बन्ध में राजा (सरकार) को यह संदेह हो जाये कि उसने अनुचित उपायों के द्वारा राजकीय धन का अपहरण (चोरी) किया है तो राजा को चाहिए कि उस विभाग के प्रधान निरीक्षक, कोषाध्यक्ष लेखक, कर लेने वाले, कर दिलाने वाले सलाहकारों को अलग–अलग बुलाकर ये जानकारी प्राप्त करेकि उनके अध्यक्ष ने गबन किया है या नहीं। यदि उपरोक्त सभी व्यक्तियों में से कोई भी व्यक्ति झूठ बोले या गलत जानकारी दे तो उसे गबन करने वाले अपराधी की तरह ही दण्डित किया जाए।

2. भ्रष्टाचार (गबन) सम्बन्धित सूचना का सार्वजनिक प्रसारण –

राजा (सरकार) द्वारा अपने सम्पूर्ण राज्य में यह घोषणा करा दी जाये कि अपराधी अध्यक्ष ने जिस जिसकेधन का गबन किया है उसकी सूचना राजदरबार में भेज दी जाये। इस प्रकार की सूचना मिलने पर राजा द्वारा प्रजा की उस धन हानि को पूरा किया जाये।

7. भ्रष्टाचार की शिकायत प्राप्ति होने पर अध्यक्ष पर अभियोग की कार्य प्रक्रिया –

(1) यदि अध्यक्ष के विरुद्ध एक साथ ही अनेक शिकायतें हों उनमें से वह किसी को भी स्वीकार न करे तो उसका एक भी अपराध साबित होने पर सभी शिकायतों का उस पर अभियोग लगाया जाये।

(2) यदि अभियुक्त कुछ अपराधों को स्वीकार करता है और कुछ से मुकर जाता है तो उससे पूरे सबूत मागें जाए।

(3) गबन किये गये बहुत से धन के सम्बन्ध में पूरे सबूत नहीं मिलते, कुछ ही धन के सम्बन्ध में सबूत मिल जाते है, तो उस पर पूरे गबन का अभियोग लगाना चाहिए।

(4)यदि कोई अध्यक्ष राजकीय धन का गबन करके अदा करने में असमर्थ हो तो वह धन क्रमशः उसके हिस्सेदार, उसके जामिन, उसके अधीनस्थ कर्मचारी, उसके पुत्र एवं भाई, उसकी पत्नी एवं लड़की अथवा उसके नौकर अदा करें।

(5) राजा जब अपराधी अध्यक्षों का पता लगा ले तो वह उन धनसम्पन्न अधिकारियों की सारी सम्पत्ति को छीन ले और उन्हें उनके उच्चपदों से गिराकर निम्न पदों पर नियुक्त कर दे। जिससे वे भविष्य में गबन न कर सकें एवं गबन को स्वयं ही उगल दे।

8. ईमानदार अध्यक्षों का सम्मान –

राजा को चाहिए कि वह अपने अध्यक्ष (अधिकारी) के थोड़े अपराध को क्षमा कर दे और यदि वह पूर्वापेक्षया आमदनी में थोड़ी सी भी वृद्धि कर लेता है, तो उसके प्रति प्रसन्नता एवं संतोष प्रकट करे। इस प्रकार महान उपकार करने वाले अध्यक्ष का कृतज्ञ होकर राजा को सदैव उनका सम्मान करना चाहिए।

जो अध्यक्ष राजधन का अपहरण नहीं करते, वरन् न्यायपरायण होकर राजा की समृद्धि में यत्नशील रहते हैं और प्रिय समझ कर राजा का हित करते रहते हैं, ऐसे सच्चरित्र अध्यक्षों को सदा सम्मानपूर्वक उच्च पद पर बनायें रखना चाहिए।[53]

9. सूचनाकर्ता (Whistle Blowers) की भूमिका –

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सूचनाकर्त्ता (Whistle Blower) के बारे में भी वर्णन किया है। जो इस प्रकार से है –

1. यदि कोई निष्पक्ष, राजहितेच्छु व्यक्ति किसी अध्यक्ष के गबन की सूचना देता है तो अपराध सिद्ध हो जाने के बाद सरकार को उस अपहरण किये धन का छटा भाग सूचना देने वाले व्यक्ति को दिया जाना चाहिए।
2. यदि सूचना देने वाला व्यक्ति राजकर्मचारी हो तो उसे बारहवाँ भाग दिया जाना चाहिए।
3. यदि अभियोग बहुत से धन का सिद्ध हुआ है किन्तु मिला कुछ ही धन है तो सूचना देने वाले व्यक्ति को उस प्राप्त धन में से कुछ हिस्सा देना चाहिए।
4. यदि अपराध सिद्ध न हुआ हो तो सूचनाकर्ता व्यक्ति को उचित शारीरिक व आर्थिक दण्ड दिया जाना चाहिए इस प्रकार के किसी भी अपराधी को क्षमा नहीं किया जाना चाहिए।

5. अभियोग साबित हो जाने के बाद सूचना देने वाले व्यक्ति अदालत से अपने को बरी करा सकता है किन्तु रिश्वत लेकर यदि वह अपराधी के पक्ष में हो जाता है, और सच्चा बयान नहीं देता है तो उसे प्राण दण्ड दिया जाना चाहिए।[54]

10.सरकारी विभागों ओर छोटे–बड़े कर्मचारियों की निगरानी एवं दण्ड प्रकियाः–

1. समाहर्ता एवं प्रदेष्ठा अधिकारियों का यह कर्त्तव्य है किवे पहले विभागीय अध्यक्षों तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारियों पर उनके कार्यों व भ्रष्टाचार प्रवृत्तियों पर निगरानी रखें।
2. जो व्यक्ति खानों या कारखानों से हीरे–जवाहरात आदि बहूमूल्य वस्तुओं की चोरी करे उसे प्राणदण्ड दिया जाये।
3. जो व्यक्ति वस्त्र या लकड़ी के कारखानों से सारहीन वस्तुओं की चोरी करे तो उन्हे प्रथम साहस दण्ड दिया जाये।
4. जो व्यक्ति राजकीय खेतों से एक माष से चार माष कीमत का जीरा, अजवायन आदि वस्तुओं को चुराये उसे 12 पण दण्ड दिया जाये जो आठ माष कीमत तक की वस्तुओं को चुराये उस पर 24 पण दण्ड दिया जाये। इसी प्रकार बारह माष तक की वस्तु चुराने पर 36 पण एवं सौलह माष तक की वस्तु पर 48 पण दण्ड दिया जाये। यदि 2 पण मूल्य की वस्तु है तो प्रथम साहस, 4 पण मूल्य पर मध्यम साहस एवं8 पण मूल्य तक की वस्तु चुराने पर उत्तम साहस दण्ड एवं 10 पण मूल्य तक की चुराये तो प्राण दण्ड दिया जाये।
5. कौटिल्य ने कहा है कि जो व्यक्ति गोदाम से, दुकान से, कारखानों से, शास्त्रागार से आधा माष कीमत से लेकर दो माष कीमत तक की धातुओं की, ओर उनसे निर्मित वस्तुओं और छीजन की चोरी करे तो उस पर 12 पण दण्ड़ किया जावे।

6. जो व्यक्ति कोष, भाण्डागार व अक्षशाला के एक काकणी में लेकर एक माष मूल्य की वस्तु की चोरी करे तो उस पर 24 पण दण्ड किया जावे।
7. जो कर्मचारी स्वयं चोरी करे तथा चोरों का बहाना बताये उसे कष्टकर प्राणदण्ड दिया जाये।
8. यदि स्वर्णाध्यक्ष खाली दस्तावेज, जाली नोट या जाली मुद्रायेंबनाये तो उसे मध्यम साहस दण्ड, गांव का मुखिया करे तो उत्तम साहस दण्ड एवं समाहर्ता करे तो प्राणदण्ड दिया जाये या अपराध के अनुसार ही यथोचित दण्ड दिया जाये।
9. यदि न्यायाधीश (धर्मस्थ) अदालत में किसी अभियुक्त को डराये, धमकायें, घुड़के या बाहर निकाल दे या रिश्वत ले तो उसे प्रथम साहस दण्ड दिया जाये। न्यायाधीश गाली दे, तो उसे दुगुना दण्ड दिया जाये। यदि न्यायाधीश, साक्षी से पूछने योग्य बातों को न पूछकर न पूछी जाने योग्य बातों को पूछे या बिना ही उत्तर पाये बात को छोड़ दे या गवाह को सिखाये, याद दिलाये या उसकी अधूरी बात को स्वयं ही पूरी कर दे तो उसे मध्यम दण्ड दिया जाये। इसी प्रकार वह किसी विचारणीय वस्तु के सम्बन्ध में उपयोगी बातों को न पूछकर अनुपयोगी बातें पूछे, यदि बिना गवाह के किसी मामले का निर्णय दे दें, यदि सच्चे साक्षी को कपट की बातों में डालकर झूँठा बनादे, यदि व्यर्थ की बातों में साक्षी को उलझाये रखने के बाद छोड़ दें, साक्षी के कथन के क्रम को उलट–पुलट कर लिखें, यदि बीच–बीच में साक्षियों की सहायता करें, यदि निर्णित मामले को फिर से जिरह में रखें तो ऐसे न्यायाधीश को उत्तम साहस दण्ड दिया जाये। दुबारा यहीं अपराध करे तो उसे दुगुना दण्ड दिया जाये एवं पद्च्युत कर दिया जाये।
10. मुहर्रिर (लेखक) यदि बयानों को सही–सही न लिखे, न कही हुई बात को लिखे बुरी बात को अच्छी एवं अच्छी बात को बुरा लिखे या बात का अभिप्राय ही बदल कर लिखे तो उसे प्रथम साहस दण्ड या अपराध के अनुसार यथोचित दण्ड दिया जाये।
11. धर्मस्थ या अन्य न्यायाधीश किसी निरपराधी को स्वर्ण दण्ड दे तो उन पर उसका दुगुना दण्ड दिया जाए। इसी प्रकार यदि वे किसी निरपराधी को शारीरिक दण्ड दे तो उनको दुगुना शारीरिक दण्ड दिया जाये। यदि वे दण्ड में भी कमीबेशी करें, तो उनसे आठ गुना दण्ड वसूल किया जाये। यदि वे शारीरिक दण्ड की अपेक्षा अर्थदण्ड करे तो उनमें उसका दुगुना अर्थदण्ड वसूल किया जाये। जो धर्मस्थ या प्रदेष्ठा न्यायोचित धन को नष्ट करे तथा अन्यायपूर्ण धन का संग्रह करें उन्हें धनराशि का आठ गुना दण्ड दिया जाये।

12. न्यायाधीश द्वारा हवालात में बंद कैदी को यदि जेल का कर्मचारी घूस लेकर घूमने–फिरने पानी पीने, सोने–बैठने, खाने–पीने इत्यादि की स्वतंत्रता दे या दिलाये तो उतरोत्तर उस पर तीन पण से अधिक का दण्ड किया जाए। यदि कोई राजपुरूष किसी अपराधी को हवालात से छोड़ दे या उसके लिए कहे, उसे मध्यम साहस दण्ड किया जाए और साथ ही अपराधी को जितना देना था उसका भुगतान भी उसी राजपुरूष से लिया जाये। यदि कोई प्रदेष्ठा ऐसा करे तो उसकी सारी सम्पति जप्त कर ली जाये और उसको प्राण्दण्ड दिया जाए।
13. जेलर की आज्ञा के बगैर यदि कैदी बाहर निकले तो उस पर 24 पण दण्ड और ऐसा कराने वाले व्यक्ति पर 48 पण दण्ड की व्यवस्था थी। जेल कार्मिक द्वारा कैदी की जगह बदलने, उसके खाने–पीने में अव्यवस्था करने पर 96 पण दण्ड तथा जो कैदी को कोड़े मारे या रिश्वत दिलावे, उसको मध्यम साहस दण्ड और जो कैदी की हत्या करे उस पर 1000 पण दण्ड की व्यवस्था थी।
14. यदि कोई कार्मिक जेलखाने के तोड़े बगैर ही कैदी को बाहर निकाल दे तो उसे मध्यम साहस दण्ड एवं यदि जेल तोड़ कर निकालें तो प्राण दण्ड दिया जाये। यदि प्रदेष्ठा ऐसा करे तो उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर उसे प्राणदण्ड दिया जाये।

कौटिल्य का मानना था कि राजा को चाहिये कि वह पहले अपने राजकर्मचारियों को दण्ड से शुद्ध करे। फिर वे विशुद्ध हुए, राजकर्मचारी दण्ड व्यवस्था के द्वारा नगर तथा प्रदेश की जनता को सही राह पर लाये।[55]तभी प्रशासन में से भ्रष्टाचार को खत्म किया जा सकता है तथा राज्य में सुशासन की स्थापना की जा सकती है।

6.II वर्तमान भारत में वित्तीय भ्रष्टाचार एवं रोकथाम –

वर्तमान भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यरत केन्द्रीय (संघीय) सरकार एवं विभिन्न राज्यसरकारों का सर्वोच्च लक्ष्य भी भारतीय वित्तीय प्रशासन में सुशासन को स्थापित करना है। इसके लिए भारतीय प्रशासन में भी भ्रष्टाचार को परिभाषित किया गया है तथा उसके विभिन्न प्रकारों का उल्लेख किया है। साथ ही साथ देश में गत 72 वर्षों से व्याप्त भ्रष्टाचार के सन्दर्भ में रोकथाम हेतु एक संगठित, जवाबदेय प्रशासनिक तंत्र को स्थापित किया गया है। वित्तीय भ्रष्टाचार में लिप्त नौकरशाहों (लोक सेवकों) एवं अन्य प्रशासनिक कार्यकर्त्ताओं के लिए कठोर दण्डात्मक कार्यवाही की भी व्यवस्था की गई है। इस भ्रष्टाचार एवं उससे सम्बन्धित निवारक तन्त्र को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है–

1. वर्तमान भारत भ्रष्टाचार की परिभाषा –

भारतीय दण्ड संहिता (I.P.C.) की **धारा 161** में भ्रष्टाचार की परिभाषा कानूनी दृष्टिसे इस प्रकार से है –"**जो व्यक्ति शासकीय कर्मचारी होते हुए या होने की आशा में अपने या अन्य किसी व्यक्ति के लिए विविध पारिश्रमिक से अधिक कुछ घूस लेता है या स्वीकार करता है अथवा लेने के लिए तैयार हो जाता है या फिर लेने का प्रयत्न करता है या किसी कार्य को करने या न करने के लिए उपहारस्वरुप या अपने शासकीय कार्य को करने में किसी व्यक्ति के लिए पक्षपात या उपेक्षा या किसी व्यक्ति की कोई सेवा या कुसेवा का प्रयास, केन्द्रीय या अन्य राज्यसरकार या संसद या विधान मण्डल या किसी लोक सेवक के सन्दर्भ में करता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास का दण्ड या अर्थदण्ड या दोनों दिये जा सकेंगे।**"

2. वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार के विभिन्न प्रकार –

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के **केन्द्रीय सतर्कताआयोग** (Central Vigilance Commission) ने निम्नांकित 27 प्रकारों का उल्लेख किया है[56]–

1. निम्नस्तरीय वस्तुओं या कार्यों को स्वीकार करना;
2. सार्वजनिक धन और भण्डार का दुरुपयोग;
3. जो व्यक्तियों से अधिकारियों के कार्यालय स्तर के सम्बन्ध है उनके आर्थिक दायित्वों को वहन करना;
4. ऐसे ठेकेदारों एवं फर्मों से कर्ज लेना जिससे उनके कार्यालय स्तर के सम्बन्ध होते है;
5. ठेकेदारों एवं फर्मों को रियायतें देना;
6. झूठे दौरे, भत्ते एवं गृह किराया आदि का दावा करना;
7. अपनी आमदनी से अधिक वस्तुओं को रखना;
8. बिना पूर्व सूचना या पूर्व अनुमति के अचल सम्पत्ति अर्जित करना;
9. प्रमाद या अन्य कारण से शासन को हानि पहुंचाना;
10. शासकीय पद या सत्ता का दुरुपयोग;
11. भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के सम्बन्ध में गैर–कानूनी ढंग से धन लेना;
12. शासकीय कर्मचारियों को व्यक्तिगत कार्यों में प्रयोग करना;
13. रेल एवं वायुयान में स्थान आरक्षित करने में अनियमितता;
14. जन्मतिथि तथा समुदाय सम्बन्धी जाली प्रमाण–पत्र तैयार करना;

15. मनी–आर्डर, बीमा तथा मूल्यदेय पार्सलों आदि को न देना;
16. नयी डाक टिकटों को हटाकर उनके स्थान पर पुराने टिकिट लगाना;
17. आयात और निर्यात लाइसेंस देने में असहयोग एवं अनियमितता।
18. अनैतिक आचरण;
19. उपहार ग्रहण करना;
20. टेलीफोन कनेक्शन देने में अनियमितता;
21. शासकीय कर्मचारियों के आयातित एवं निर्धारित कोटे का दुरुपयोग करना;
22. आर्थिक लाभ के लिए आयकर, सम्पत्ति कर आदि का कम मूल्यांकन करना;
23. स्कूटर और कार खरीदने के लिए स्वीकृत अग्रिम धनराशियों का दुरुपयोग करना;
24. विस्थापितों के दावों को निपटाने में अनुचित विलम्ब करना;
25. विस्थापितों के दावों का गलत मूल्यांकन करना;
26. आवासीय जमीन के हिस्सों के क्रय–विक्रय के सम्बन्ध में धोखा देना तथा
27. शासकीय क्वाटरों का अनाधिकृत कब्जा एवं उन्हें अनाधिकृत रुप से किराये पर उठाना।

3. वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार के निवारण हेतु उपाय –

वर्तमान भारतीय प्रशासन में फैले हुए भ्रष्टाचार की जांच करने एवं रोकथाम हेतु विभिन्न सरकारों ने समय–समय पर विभिन्न समितियों एवं आयोगों का गठन किया है। इन समितियों एवं आयोगों द्वारा प्रस्तुत की गई सिफारिशों को लागू भी किया गया है। इन समितियों एवं आयोगों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित है–

1. रेलवे भ्रष्टाचार जांच समिति (जे.वी.कृपलानी समिति)– 1953–55
2. के.सन्थानम् समिति –1962
3. प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग – 1966
4. द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग – 2005

4. वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार नियन्त्रण हेतु प्रशासनिक संस्थाऐं–

वर्तमान भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार नियंत्रण हेतु एक सुसंगठित प्रशासनिक तंत्र की स्थापना की गई है। इन प्रशासनिक संस्थाओं का विवरण निम्नांकित है –

1. भारत के नियन्त्रक एंव महालेखापरीक्षक
2. लोक लेखा समिति
3. केन्द्रीय जांच ब्यूरो,
4. केन्द्रीय सतर्कता आयोग

5. मंत्रालय में सतर्कता संगठन
6. राज्य सर्तकता आयोग
7. लोकपाल (केन्द्रीय स्तर पर)
8. लोकायुक्त (राज्य स्तर पर)
9. प्रशासनिक ट्रिब्यूनल।
10. न्यायालय (जिला, राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर)

वर्तमान में भारत सरकार ने भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने एवं हर प्रशासकीय कार्य में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए कड़े कदम उठाये हैं। सरकार ने नोटबन्दी करके अब तक सबसे ज्यादा कालेधन का पर्दापाश किया है। मॉरीशस, सायप्रस, स्विट्जरलैण्ड और सिंगापुर से काले धन की रोकथाम हेतु संधियाँ की है। साथ ही साथवित्तीय भ्रष्टाचार में लिप्त अपराधियों को ''**आर्थिक भगोड़ा**'' घोषित करउनकी सम्पत्तियाँभी जप्त की जा रही है। इस हेतु संसद में **भगोड़ा आर्थिक अपराधीविधेयक** पेश किया गया है। **बेनामी सम्पत्ति एक्ट** से काले धन के कारोबार पर लगाम लगाई गई है। **पी.एम.एल.ए.(P.M.L.A.) एक्ट** में बदलाव द्वारा विदेशों में जमा काले धन के बराबर सम्पत्ति जप्त करना भी मुमकिन हुआ है।

5. वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार से सम्बन्धित विभिन्न वैधानिक नियम एवं कानून –

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यरत कार्मिक प्रशासन, वित्तीय प्रशासन में सुशासन के मापदण्ड़ों की स्थापना एवं प्रशासनिक कार्यों में पारदर्शिता, जवाबदेयता, सक्षमता, ईमानदारी, निष्पक्षता इत्यादि को बढ़ाने एवं भ्रष्टाचार को रोकने हेतु तथा वित्तीय भ्रष्टाचार में लिप्त पाये गये लोक सेवकोंको दण्डित करने हेतु निम्नलिखित कानूनों की व्यवस्था की गई है –

1. भारतीय दण्ड संहिता (1860) की धारा–161
2. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम,1947
3. अखिल भारतीय सेवा(आचरण) नियम,1954
4. केन्द्रीय लोक सेवा (आचरण) नियम,1955
5. रेल सेवा (आचरण) नियम,1956
6. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम,1986
7. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम,1988
8. अर्थ शोधन निवारण अधिनियम,2002
9. सूचना का अधिकार अधिनियम,2005
10. सूचना प्रदाता (Whistle Blowers) संरक्षण अधिनियम,2011

11. लोक उपापन अधिनियम,2012(को वर्तमान में पुनः स्थापित किया है)

12. लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम,2013

13. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम (संशोधित) विधेयक,2013

14. बेनामी सम्पत्ति अधिनियम,2016

15. आर.बी.आई.एक्ट, 134 धारा 26 के तहत नोटबंदी 8 नवम्बर 2016

16. भगोड़ा आर्थिक अपराधी अधिनियम,2018

17. लोकपाल अधिनियम,2019

18. सूचना का अधिकार, संशोधित अधिनियम,2019

यहां ये तथ्य उल्लेख करना भी आवश्यक है कि भारत सरकार भ्रष्टाचार की रोकथाम हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था के द्वारा निर्मित कन्वेशनों पर भी अपनी सहमति रखती है। इस सन्दर्भ में भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा आयोजित कन्वेंशन यू.एन.सी.ए.सी. (UNCAC) पर दिसम्बर 2015 में हस्ताक्षर किये हैं। इस कन्वेंशन के कुल 71 अनुच्छेद हैं। भारत सरकार ने अनुच्छेद 12 व 16 के अतिरिक्त अन्य सभी अनुच्छेदों में उल्लेखित नियमों पर अपनी सहमति दी है। साथ ही साथ भारत सरकार इन अनुच्छेदों में उल्लेखित आधारों को भारत में लागू करने हेतु संसदीय कार्यवाही करने के लिए भी कार्य कर रही है।

7. तुलनात्मक विश्लेषण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित वित्तीय प्रशासन का वर्तमान भारत के वित्तीय प्रशासन से तुलनात्मक विश्लेषण विभिन्न तथ्यों के अनुसार निम्नलिखित है–

तालिका 4.5

वित्त प्रशासन का तुलनात्मक विश्लेषण

क्र.सं.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र मे वित्त प्रशासन	वर्तमान भारत में वित्त प्रशासन
1.	**वित्त प्रशासन पर नियत्रंण–** कौटिल्य ने केन्द्रीकृतराजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य के सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन को राजा के नियत्रंण में रखा था।	वर्तमान भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र में राष्ट्रपति व राज्यों में राज्यपाल की स्वीकृति से व्यवस्थापिका को केन्द्र में संसद एवं राज्यों में विधानमण्डलों को वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण शक्ति दी गई

		है।
2.	**वित्त आयोग –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में केन्द्रीकृत राजतंत्रात्मक व्यवस्था का वर्णन किया है। इस व्यवस्था में राजकोष पर केन्द्र अर्थात् राजा का नियन्त्रण होता था तथा राजस्व से प्राप्त आय का बटवांरा राज्य के प्रान्तों की एवं स्थानीय सरकारों को नहीं किया जाता था। अतः वित्त आयोग जैसी किसी संस्था का उल्लेख नही मिलता है।	भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संविधान के **अनुच्छेद 280** के तहत् राष्ट्रपति द्वारा एक वित्त आयोग नियुक्त किया जायेगा। ये वित्त आयोग राष्ट्रपति को केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच प्राप्त करों से प्राप्त राजस्व के बँटवारे के सन्दर्भ में सिफारिश करेगा। साथ ही राज्यों को अनुदान के रूप में वित्तीय सहायता देने की सिफारिश भी करेगा।
3.	**राजस्व हेतु शक्ति –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र मेंकर लगाने की सर्वोच्च शक्ति राजा को दी गई थी।	भारत मे संघात्मक शासन व्यवस्था की संसदीय शासनप्रणाली के अन्तर्गत संविधान ने कर लगाने की शक्ति केन्द्र में संसद व राज्यों में विधानमण्डलों को दी है।
4.	**करों के निर्धारक सिद्धांत –** 1. कौटिल्य के अनुसार राजा को देश, जाति तथा आचार के अनुसार नये–पुराने हर पदार्थ पर कर लगाना चाहिए। 2. करों में जहाँ नुकसान की सम्भावना हो उसके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था भी करे। 3. कौटिल्य का मत है कि जनता की क्षमतानुसार ही कर लगाया जाये। अनैतिक तरीके से कर लगाने एवं वसूलने पर	वर्तमान भारत में **बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं** सिद्धांत को अपनाया गया है। सार्वजनिक निधिमें से कोई भी व्यय तबतक नहीं किया जा सकता है, जब तक कि वह संविधान के बताए तरीकोंके एवं विधि के अनुसार न हो। संसद द्वारा स्वीकृत नीति के अनुरूप कार्यपालिका धन व्यय पर कर लगा सकती है। संसद ये कार्य नियंत्रक एवं

	जनता विद्रोह कर सकती है एवं राज्य को नुकसान पहुँचा सकती है।	महालेखा परीक्षक द्वारा करती है।
5.	**कर एकत्रीकरण व्यवस्था –** अर्थशास्त्र में राजस्व की वसूली के लिये केन्द्रीकृत या एकीकृत व्यवस्था का वर्णन किया है तथा ये कर वसूली एक सरल प्रक्रिया थी।	भारत की संघात्मक व्यवस्था में राजस्व की वसूली त्रिस्तरीय है– केन्द्र,राज्य एवं स्थानीय स्तर पर। ये कर वसूली प्रक्रिया जटिल है।
6.	**राजस्व के विषय –** कौटिल्य ने राजस्व (करों) के विभिन्न विषयों का सामान्य तरीके से वर्णन किया है।	भारत में संविधान की सातवीं अनुसूची में उल्लेखित तीन सूचियाँ –संघ, राज्य एवं समवर्ती में क्रमशः केन्द्र, राज्य–सरकारों एवं केन्द्र व राज्य सरकारों दोनों के लिए विभिन्न प्रकार के राजस्व के विषयों का निर्धारण किया है।
7.	**वित्तमंत्रालय का स्वरूप –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अलग से एक स्वतत्रं अधिकरण (विभाग) के रूप में वित्तमत्रांलय का उल्लेख नहीं किया गया है। समाहर्ता (राजस्व वसूलने वाला अधिकारी) एवं सन्निधाता (कर संग्रह करने वाला) अमात्यों के अधिकरणों के मिले–जुले स्वरूप में वित्तमंत्रालय को दर्शाया गया है।	भारत में एक स्वतंत्र एवं अलग मत्रांलय के रूप में वित्त मंत्रालय की स्थापना की गई है। इसके कई उपविभाग है। इस मंत्रालय का राजनीतिक प्रमुख वित्तमंत्री एवं प्रशासकीय प्रमुख वित्त सचिव होता है।
8.	**वित्त प्रमुख की योग्यता –** कौटिल्य ने वित्त प्रशासन के प्रमुख अमात्यों–समाहर्ता एवं सन्निधाता के लिये एक विशिष्ट योग्यता भर्ती परीक्षा **अथोपधा परीक्षा** को उत्तीर्ण करना आवश्यक बताया है।	भारत में वित्तमंत्री के पद के लिये पद सम्बधी किसी भी विशिष्ट योग्यता परीक्षा को उत्तीर्ण करना आवश्यक नहीं बताया है।
9.	**आय–व्यय विभाग–**	

	यहाँ आय–व्यय विभाग (समाहर्ता का अधिकरण) एवं राजकोष (सन्निधाता का विभाग) अलग–अलग बताये हैं।	भारत में वित्तमंत्रालय के अन्तर्गत ही राजस्व एवं राजकोष विभाग को सम्मिलित किया गया है।
10.	**बजट निर्माण –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में बजट के निर्माण ,स्वीकृति एंव कियान्वयन प्रकिया को स्पष्टतःउल्लेखित नहीं किया गया है। समाहर्ता के अधिकरणमें प्रसंगानुसार ही बजट सम्बंधित कुछ तथ्यों का उल्लेख दिया गया है।	भारत में वित्तमंत्रालय बजट के निर्माण, स्वीकृति एवं क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है। यहाँ बजट निर्माण एक सुव्यवस्थित, विस्तृत एवं जटिल कार्य प्रक्रिया है।
11	**लेखाकंन एंव लेखा परीक्षण –** 1.कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र मे लेखाकंन एवं लेखा–परीक्षण दोनों कार्यों को अलग–अलग नहीं वरन एक साथ ही वर्णित किया गया है। 2. कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार लेखाकंन एंव लेखा परीक्षण दोनों कार्यों को **अक्षपटलमध्यक्ष** द्वारा किया जाता था। 3. अर्थशास्त्र में यह भी उल्लेख किया गया है कि ये अक्षपटलमध्यक्षसमाहर्ता एवं सन्निधाता की तुलना में कम शक्तिशाली था। सम्मवतः ये पदाधिकारी समाहर्ता के अधीनस्थ पदाधिकारी था । (4)कौटिल्य ने लेखाकंन एवं उसकी शुद्धता पर सर्वाधिक जोर दिया था। (5) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लेखाकंन एवं लेखा–परीक्षण सम्बन्धित कार्यों में वित्तीय	भारत में पहले लेखाकंन एवंलेखा परीक्षण दोनों कार्य साथ–साथ ही किये जाते थे। लेकिन 1976 में लेखांकन कार्य को लेखा परीक्षण कार्य से अलग कर दिया गया है। वर्तमान भारत में**लेखांकन** का कार्य **महालेखा नियंत्रक अधिकारी** एवं **लेखा परीक्षण** का कार्य भारत के **नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक** का द्वारा किया जाता है। जबकि भारत में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक वित्तमंत्री एवं उसके अधीनस्थ कार्मिक वर्ग से अधिक शक्तिशाली पदाधिकारी है। वर्तमान भारत में लेखाकंन के साथही लेखा परीक्षण की शुद्धता पर अधिक जोर दिया है। भारत में लेखाकंन एवं लेखा परीक्षण

	अशुद्धियों को रोकने के लिए कठोर दण्ड प्रक्रिया को अपनाये जाने की बात की है।	सम्बन्धित कार्यों में वित्तीय अनियमितताओं को दूर करने के कठोर दण्ड–प्रक्रिया का उल्लेख नहीं किया है।
12	**दण्डात्मक कार्यवाही –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में सार्वजनिक वित्त के दुरुपयोग,कर वसूली में की जाने वाली लापरवाही एवं वित्तीय अनियमितताओं, धन के गबन इत्यादि के लिये दोषी अधिकारियों एवंकर्मचारी वर्ग के लिए शीघ्र एवं कठोर दण्डात्मक कार्यवाहियों का विस्तार से उल्लेख किया है।	वर्तमान भारत में वित्त प्रशासन के सन्दर्भ में सार्वजनिक धन के दुरूपयोग,करवसूली मेंकी जाने वाली, लापरवाही एवं अन्य वित्तीय अनियमितताओं को रोकने के लिये धीमी एवं सामान्य दण्डात्मक कार्यवाहियाँ ही की जाती है ।
13	**अनैतिक उपाय –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कोष एवं उसकी वृद्धि को सर्वाधिक महत्व दिया है। इस कोश में कमी होने पर उसकी वृद्धि के लिये राजा को आपदाकाल में अनैतिक उपायों द्वारा भी धन एकत्र करने का समर्थन किया है।	भारत में सार्वजनिक वित्त की वृद्धि एवं सुरक्षा के लिए पर नवीन आर्थिक उपायों को अपनाने पर जोर दिया है। लेकिन कोष हानि के लिए किसी भी प्रकार के अनैतिक उपायों को सरकार द्वारा अपनाए जाने पर वैधानिक रोक है।
14	**आपातकाल में वित्तव्यवस्था –** कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आपदा की स्थिति में राजा को राज्य के हितों के संरक्षण एवं राजकोष की क्षति–पूर्ति के लिये जनता से अतिरिक्त कर के रूप में धन माँगने का अधिकार था। लेकिन कर के रूप में ये धन एक ही बार एकत्र किया जा सकताथा।	भारत में संविधान के अनुच्छेद 352,356 के अतिरिक्त अनुच्छेद 360 के तहत् राष्ट्रपति द्वारा वित्तीय आपातकाल की घोषणा करने की स्थिति में भारत की संचित निधि में से राजकीय पदाधिकारियों के वेतन पर व्यय किये जाने वाले धन में कटौती की जा सकती है।

		नवीन जीएसटी कर प्रणाली में आपदा की परिस्थिति में जीएसटी परिषद् को जीएसटी की दरों में वृद्धि एवं कमी करने का अधिकार है।
15	**भ्रष्टाचार** 1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वित्तीय भ्रष्टाचार के लगभग 40 प्रकारों का उल्लेख किया है। 2. कौटिल्य ने भ्रष्टाचार को रोकने हेतु संस्थात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राजा को कार्यवाही करने हेतु सर्वोच्च अधिकार दिये थे। 3. कौटिल्य भ्रष्टाचार को रोकने के लिए तीव्र निर्णय एवं कठोर दण्डात्मक कार्यवाही का समर्थन करते थे ताकि वित्त प्रशासन में सुशासन स्थापित किया जा सके।	जबकि वर्तमान भारत में **केन्द्रीय सतर्कता आयोग**ने भ्रष्टाचार के करीब 27 प्रकारों का उल्लेख किया है। भारत में भ्रष्टाचार की रोकथाम हेतु संस्थात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत कई संस्थाऐं, शासकीय अधिनियमों एवं न्यायालयों को अधिकृत किया है। वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार से सम्बन्धित अधिकांश मामलों में निर्णय लेने में विलम्ब किया जाता है तथा कठोर दण्डात्मक कार्यवाही का भी अभाव पाया जाता है।

सन्दर्भ (References) -

1. गैरोला, वाचस्पति, **''कौटिलीय अर्थशास्त्र,''** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पृष्ठ 54
2. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 15,(1)
3. उपर्युक्त, 2,(8)
4. उपर्युक्त, 6,(1)
5. उपर्युक्त, 1,(3)
6. उपर्युक्त, 1,(18)
7. गैरोला, वाचस्पति, **''कौटिलीय अर्थशास्त्र,''** चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पृष्ठ 54

8. अवस्थी एवं अवस्थी, ''**भारतीय प्रशासन,**'' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 366
9. भारतीय संविधान, **'अनुच्छेद 151'**
10. भारतीय संविधान, **'अनुच्छेद 281'**
11. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 2,(6)
12. उपर्युक्त, 2,(5)
13. उपर्युक्त, 2,(5)
14. उपर्युक्त, 2,(5)
15. ''**वार्षिक रिपोर्ट**'': 2015–16, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय
16. ''कौटिलीय अर्थशास्त्रम्'', 2,(6)
17. उपर्युक्त, 2,(7)
18. उपर्युक्त, 2,(6)
19. उपर्युक्त, 2,(6)
20. अवस्थी एवं अवस्थी, ''**भारतीय प्रशासन**'', लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 375
21. उपर्युक्त, पृष्ठ 376
22. उपर्युक्त, पृष्ठ 377
23. भारतीय संविधान, ''**अनुच्छेद 113(3)**''
24. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 2,(22)
25. उपर्युक्त, 5,(2)
26. उपर्युक्त, 2,(7)
27. उपर्युक्त, 9,(4)
28. उपर्युक्त, 2,(6)
29. उपर्युक्त, 2,(21)
30. उपर्युक्त, 2,(22)
31. उपर्युक्त, 2,(21)
32. उपर्युक्त, 2,(22)
33. उपर्युक्त, 2,(19)
34. उपर्युक्त, 2,(22)
35. उपर्युक्त, 5,(2)

36. उपर्युक्त, 2,(21)
37. भारतीय संविधान, **''अनुच्छेद 265''**
38. भारतीय संविधान, **''अनुच्छेद 114''**
39. भारतीय संविधान, **''अनुच्छेद 246'' सातवीं अनुसूची, सूची I (संघ की सूची)**
40. **वार्षिक रिपोर्ट** : 2015–16, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय
41. वेबसाइटः **www.gstcouncil.gov.in/gst-council**
42. **101 वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2016** कानून एवं न्याय मंत्रालय (भारत का राजपत्र असाधारण, भाग II खण्ड 1) भारत सरकार, सितम्बर, 2016
43. उपर्युक्त, से
44. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 2,(7)
45. उपर्युक्त, 2,(7)
46. मुखर्जी, राधाकुमुद, **''चन्द्रगुप्त मौर्या एण्ड इट्स टाईम्स,''** मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, देहली 1966, पृष्ठ 101
47. एम. लक्ष्मीकांत, **''लोक प्रशासन''** टाटा मेकग्रा हिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 8.16
48. भारतीय संविधान, **''अनुच्छेद 151''**
49. कौटिल्यम् अर्थशास्त्रम् 2,(25)
50. उपर्युक्त, 2,(9)
51. उपर्युक्त, 2,(8)
52. उपर्युक्त, 2,(8)
53. उपर्युक्त, 2,(7)
54. उपर्युक्त, 2,(8)
55. उपर्युक्त, 4,(9)
56. अवस्थी एवं अवस्थी, **''भारतीय प्रशासन,''** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 542

अध्याय–पंचम

प्रशासकीय नीतिशास्त्र एवं सुशासनःअर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य

1.नीतिशास्त्र एवं प्रशासकीय नीतिशास्त्र : एक संक्षिप्त विवेचन

2.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्य

2.II वर्तमान भारतीय प्रशासन में नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्य

3.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र : राजा/कार्मिकों हेतु निर्धारित आचरण नियम

3.II वर्तमान भारतीय प्रशासन में लोकसेवकों हेतु निर्धारित आचरण नियम

4.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्रीय मूल्यों के लिए संस्थात्मक व्यवस्था

4.II वर्तमान भारतीय प्रशासन में नीतिशास्त्रीय मूल्यों के लिए संस्थात्मक व्यवस्था

5. तुलनात्मक विश्लेषण

अध्याय–पंचम

प्रशासकीय नीतिशास्त्र एवं सुशासन अर्थशास्त्रीय एवं वर्तमान परिदृश्य

1. नीतिशास्त्र एवं प्रशासकीय नीतिशास्त्र : एक संक्षिप्त विवेचन–

"राज्यतन्त्रायत्तं नीतिशास्त्रम्"।। 42।।[1]

(अर्थात् राज्यतंत्र (राजस्थिति) का आधार नीतिशास्त्र है।)

भ्रष्टाचार के निरोध और उत्तरदायी प्रशासन की स्थापना के लिए प्रशासनिक नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों को लागू करना आवश्यक है, जो हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में उल्लेखित है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र इसका सर्वश्रेष्ट उदाहरण है। नीतिशास्त्र के ज्ञान को व्यक्ति के आचार एवं व्यवहार के कुछसुनिश्चित मानकों के सन्दर्भ में प्रयुक्त किया गया है। जिसे उसके विशिष्ट कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत समझा एवं स्वीकार किया जाता है। दूसरे शब्दों में नीतिशास्त्र **"नैतिक आदर्शों या मूल्यों का एक विराट समूह है जो यह प्रदर्शित करता है कि मानवीय आचार–व्यवहार(conduct)किस तरह का होना चाहिए।"** नीतिशास्त्र ही व्यक्ति को यह ज्ञान कराता है कि **क्या सही है,** या **क्या गलत है,क्या सत्य है,** या **क्या असत्य है**, **क्या न्याय** या **क्या अन्याय है**, **क्या समान है** या **क्या असमान है**, **क्या उचित है** या **अनुचित है** ?[2] ईमानदारी, आज्ञाकारिता, समानता, सदाचार, इत्यादि का सम्मान करना और सही कार्य करना भी इसी के अन्तर्गत सम्मिलित है।

नीतिशास्त्र को सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया जाये तो यह नैतिकता, नैतिक आदर्शों एवं सामाजिक आचार व्यवहार के नियमों का विज्ञान है। सामान्य भाषा में हम कह सकते है कि सद्व्यवहार (Good Behaviour) ही नीतिशास्त्र है। नीतिशास्त्र का सम्बन्ध उन नैतिक मूल्यों से है जो लोगों के व्यवहार को निर्देशित एवं संस्कारित करने में अहम् भूमिका निभाते हैं।

श्री सी.वी. वेकटेंशवरम् ने अपने लेख ***'द इथिक्स ऑफ पुराणास्'*** [3]में कहा है कि पुराणों में नीति के लिए धर्म या कर्त्तव्य(duty) को आधार बनाया है। इसके अन्तर्गत उन सभी तत्वों को इसमें शामिल किया किया है जो व्यक्ति, समाज ओर संसार की उन्नति एवं कल्याण में सहायक है इन तत्वों में गुणों के साथ–साथ व्यक्ति के कर्म (कर्त्तव्य के पालन) को भी शामिल किया हैं । इस प्रकार से पुराणों में दो प्रकार के धर्म (duty) बताये है। **'साधरणा'** (Generic) और **'विशेष'**। इस विशेष को ही **'स्वधर्म'** **(Swadharma)** कहा है।

व्यक्ति को स्वयं की उन्नति करने के लिए समाज की उन्नति करना आवश्यक है। अतः उसे **'स्वधर्म'** का पालन करना चाहिए जो वर्णाश्रम द्वारा उसके लिए निर्धारित किया गया है।

(1) नीतिशास्त्र का अर्थ –

प्रशासकीय नीतिशास्त्र की अवधारणा को समझने से पूर्व नीतिशास्त्र के अर्थ को समझना आवश्यक है। नीतिशास्त्र नैतिक सिद्धान्तों, नियमों एवं आचार–व्यवहार की व्यवस्था है नीतिशास्त्र के लिए लेटिन भाषा में ***इथिकस*** **(Ethicus)**और ग्रीक भाषा में***इथिकोस*** **(Ethicos)**शब्द का प्रयोग किया गया है। इन दोनों शब्दों की उत्पत्ति **इथोस (Ethos)** शब्द से हुई है। जिसका अर्थ **चरित्र(Character), या व्यवहार (Manners)है।**[4]नीतिशास्त्र की अवधारणा को व्यक्ति के समूह एवं समाज में प्रचलित चरित्र, नैतिक नियमों एवं नैतिक आदर्शों के रूप में समझा जा सकता है।

(2) नीतिशास्त्र के आवश्यक तत्व –

नीतिशास्त्र के आवश्यक तत्व अंग्रेजी भाषा के शब्द **वॉच** (Watch) के विश्लेषण से इस प्रकार प्रदर्शित होते हैं[5]–

W- watch your world (अपने शब्दों को देखो)

A- watch your actions- (अपने कार्यों को देखो)

T- watch your thoughts - (अपने विचारों को देखो)

C-watch your character - (अपने चरित्र को देखो)

H- watch your heart- (अपने ह्रदय को देखो)

(3) नीति शास्त्र की परिभाषाऐं –

विभिन्न प्रशासनवेत्ताओंद्वारा तथा पुस्तकों इत्यादि में नीतिशास्त्र से सम्बन्धित अनेक आयामों को परिभाषाओं के माध्यम से दर्शाया है :

1. **कॉनसाइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी** के अनुसार **"नीतिशास्त्र मानवीय व्यवहार में नैतिकता का विज्ञान है : नैतिक दर्शन : नैतिक सिद्वांत : आचार संहिता।**"(The Science of Morals in Human Conduct: Moral Philosophy: Moral Principles: Rules of Conduct.)[6]

2. **पीटर ड्रकर** के अनुसार'**यहां केवल एक नीतिशास्त्र है, एक ही क्रम है नैतिक नियमों का, एक संहिता है, व्यक्तिगत व्यवहार की, जो उसके जैसे सभी पर समान नियमों के रूप में लागू होती है। (There is only one ethics, one set of rules of morality, one code that of individual behaviour in that the same rules apply to everyone alike).**[7]

'नीतिशास्त्र नैतिकता और नैतिक विकल्पों का अध्ययन है। यह उन मानकों, नियमों एवं आचार नियमों पर केन्द्रित है जो एक व्यक्ति और समूह के व्यवहार को शासित करते

है।' इस प्रकार नीतिशास्त्र नैतिकता का विज्ञान है और दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जिसका सम्बन्ध मानवीय चरित्र और व्यवहार से है जो उसे सही व गलत का ज्ञान कराता है।[8]नीतिशास्त्र की उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि ये व्यक्ति को उसकी निर्णय प्रक्रिया के दौरान तर्क, विश्लेषण एवं खोज के सन्दर्भ में नैतिक रूप से सही सिद्ध कर सके।

(4) नीतिशास्त्र के विभिन्न पक्ष –

नीतिशास्त्र की धारणा मानव अस्तित्व के प्रत्येक पक्ष में विस्तृत है जैसे कि :

1. अधिकतम वैधता और तार्किकता
2. अधिकतम उत्तरदायित्व और जवाबदेयता
3. अधिकतम कार्य समर्पण
4. अधिकतम उत्तमता
5. अधिकतम सम्मिलन
6. अधिकतम जिम्मेंदार और लचीला होना
7. अधिकतम न्यायप्रिय
8. अधिकतम पारदर्शिता
9. अधिकतम निष्ठा एवं
10. अधिकतम उपयोगिता।

(5) नीतिशास्त्र की उत्पत्ति के स्रोत :

नीतिशास्त्र की उत्पत्ति के निम्न तीन स्रोत माने गये हैः

1. **व्यक्तिगत मूल्य व्यवस्थाः** ये व्यक्ति को माता–पिता, गुरू और उसके धर्म से प्राप्त होती है। धर्म व्यक्तिगत मूल्यों को ठोस आधार प्रदान करता है।
2. **सामाजिक मूल्य व्यवस्थाः** समाज में प्रचलित मूल्य इसके अन्तर्गत रखे गये है। समाज में सद्कर्मों की प्रशंसा होती है। गलत कार्यों द्वारा प्राप्त सफलता को प्रशंसनीय नहीं माना जाता है। कठिन श्रम को महत्व दिया जाता है।
3. **कार्य क्षेत्र में मूल्य व्यवस्थाः** नीतिशास्त्र की उत्पत्ति का ये तृतीय स्रोत है जो कार्मिकों को उनके व्यवसायिक या रोजगार क्षेत्र से प्राप्त होते है।

(6) नीतिशास्त्र की उत्पत्ति के कारण :

नीतिशास्त्र के तथ्यों की उत्पत्ति के कुछ प्राथमिक कारक इस प्रकार से है :

1. वंश परम्परा।
2. धार्मिक नैतिकता।
3. समाज के संगठनों एवं संस्थाओं के लिए बनाये आचार नियम।

4. देश की कानून–व्यवस्था।
5. सर्वोच्च सुख की अवधारणा के सन्दर्भ में दार्शनिक व्यवस्था।
6. सांस्कृतिक विरासत जो पीढ़ी दर पीढ़ी उचित आचार व्यवहार के लिए निर्देशन प्रदान करती है।[9]

(7) नीतिशास्त्र के प्रकार –

नीतिशास्त्र के दो प्रकार बताये गये है। (1) सकारात्मक नीतिशास्त्र (2) नकारात्मक नीतिशास्त्र।[10] इन दोनों प्रकारों में पाये जाने वाले अन्तरों को निम्नलिखित तालिका द्वारा समझाया गया है –

तालिका 5.1

नीतिशास्त्र के प्रकारों में अन्तर

क्र.सं.	**सकारात्मक नीतिशास्त्र** (Positive Ethics) **क्या करना है ?** (What to do)	**नकारात्मक नीतिशास्त्र** (Negative Ethics) **क्या नहीं करना है ?** (What not to do)
1	आंतरिक दृष्टि से स्वायत्तता	बाहय दृष्टि से निर्भरता
2	दबाव मुक्त होना	दबाव युक्त होना
3	लक्ष्य–सम्पूर्णता	लक्ष्य–सेवा काल में सफलता
4	नीतिशास्त्रीय दृष्टि से दृढ़	नीतिशास्त्रीय दृष्टि से कमजोर
5	व्यवहार एवं नीतियों में सामाजिक एवं आर्थिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता	व्यवहार एवं नीतियों में सामाजिक एवं आर्थिक सन्दर्भ में प्रश्नवाचक स्थिति
6	कानून की वैधता के साथ	कानून की वैधता की अवहेलना करना
7	बिना किसी उम्मीद के कार्य के प्रति समर्पण की भावना	सांसारिक प्राप्तियों एव सेवा पुरस्कारों के प्रति समर्पण की भावना
8	बौद्धिक कौशल	कार्य में कुशलता
9	मनौवैज्ञानिक शक्ति को संरक्षित रखना	मनौवैज्ञानिक शक्ति को नष्ट करना
10	लक्ष्य के प्रति मजबूत इरादा एवं व्यावसायिक ईमानदारी की प्रवृति	लक्ष्य एवं ईमानदारी के प्रति कोई निष्ठा नहीं।
11	सार्वजनिक धन के व्यय में न्यायपूर्ण होना	सार्वजनिक धन के व्यय में विवेकहीनता

12	राजनीतिक नेतृत्व को स्वतंत्र, ठोस, ईमानदार एवं लोकहित से सम्बद्ध सलाह देना	राजनीतिक प्रमुख को बेईमानीपूर्ण पक्षपातयुक्त, स्वयंकेन्द्रित एवं मात्रात्मक सलाह देना।
परिणाम	–आदर्शवादी, विवेकी, न्यायिक, समतावादी, स्वार्थरहित और जनता के प्रति सेवा भावी प्रशासक की प्राप्ति होना ।	अयोग्य, स्वयं केन्द्रित, अवसरवादी, समय नष्ट, करने वाला, चापलूस, आसानी से नमनीय प्रशासक की प्राप्ति ।

2. प्रशासकीयनीतिशास्त्र (Administrative Ethics) :

भारतीयों द्वारा प्रदर्शित वर्तमान नैतिक मूल्य व्यवस्था का अगर अध्ययन किया जाए तो यह तथ्य प्रकट होता है कि हमारे संस्कृति मूल्यों में निरन्तर ह्रास हो रहा हैं। इससे भी अधिक शोचनीय है कि हम इन निरन्तर गिरते नैतिक मूल्यों को तर्क पूर्ण तथा सही ठहराने के लिए प्रयत्न शील है। वर्तमान में भारतीय शासन एवं प्रशासनीय प्रक्रिया में पुनः प्राचीन गौरव शाली नैतिक मूल्यों की स्थापना करने की स्थापना करने की आवश्यकता है।

प्रशासनिक नीतिशास्त्र और पेशेवर मूल्यों की भारतीय प्रशासनिक संस्कृति में अति आवश्यकता है क्योंकि राष्ट्र जीवन के हर पहलू में विशेषतः राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में वित्तीय घोटालों और भ्रष्टाचार की बहुतायत है। भारतीय प्रशासन में अब नैतिकता, आदर्शवादिता एवं मूल्यों को स्थापित करना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। शासकों को अब शासितों के लिए सेवाभाव से युक्त होकर शासन सीखना आवश्यक हो गया है। भारत में राष्ट्र के विकास एवं उन्नति तथा नागरिकों के कल्याण व उन्हें सुशासन प्रदान करने के लिए प्रशासकीय नीतिशास्त्र को लागू करना प्राथमिक आवश्यकता बन गई है। कई देशों का इतिहास इसका उदाहरण है कि जब भी देशों में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ तब ही उपद्रव, दुःख एवं विघटनात्मक स्थितियां उत्पन्न हुई हैं। प्रशासन के अंतर्गत लोक सेवाओं में प्रशासनीय नैतिकता को विकसित करने के लिए आचार नियमों की आवश्यकता है, जिससे लोक सेवक अपने कर्त्तव्य का पालन करने में सदैव तत्पर रहें।

लोक सेवकों को चाहिए की वे सार्वजनिक कार्यों को करते हुए निष्पक्ष एवं पेशेवर कार्य कौशल का प्रदर्शन करें। उन्हें भ्रष्टाचार एवं चापलूसी से दूर रहना चाहिए तथा सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में आत्मसम्मान और विवेक पूर्ण सत्ता को बनाये रखना है। कानून एवं नियमानुसार नीतियां लागू करनी चाहिए। प्रशासन में उच्चस्तरीय कार्मिक वर्ग में निष्पक्षता एवं स्वतन्त्रता पूर्ण कार्य संस्कृति को बनाये रखना आवश्यक है, ताकि अधीनस्थ स्तर उसका पालन कर सके । सभी क्षेत्रों के धर्म एवं संस्कृति से आए लोक सेवकों को निष्पक्ष

रूप से अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिए। निष्पक्षता के लिए सकारात्मक स्रोत की आवश्यकता होती है तथा उन्हें अपने कर्त्तव्य का पालन व्यक्तिगत भावनाओं एवं द्वन्दों से परे रखते हुए पूर्ण करना चाहिए।

1. प्रशासकीय नीतिशास्त्र :

लोक सेवा के क्षेत्र में प्रयुक्त नीतिशास्त्र को ही प्रशासकीय नीतिशास्त्र कहा जाता है। प्रशासन में नीतिशास्त्र का प्रयोग होना राज्य के स्थायित्व, विकास एवं नागरिकों के कल्याण के लिए आवश्यक तत्व है। प्रशासकीय नैतिकता एवं प्रशासकीय नीतिशास्त्र की परिभाषा निम्नलिखित है –

(i)**प्रशासनिक नैतिकता** से तात्पर्य है कि प्रशासनिक निर्णयों एव कार्य प्रक्रियाओं में वस्तुनिष्ठता, निष्पक्षता, ईमानदारी, निष्ठा, तटस्थता सेवाभाव, आज्ञाकारिता और उत्तरदायित्वपूर्ण तरीकों को अपनाते हुए लोगों को सेवाएँ उपलब्ध करायी जाए। प्रशासकीय नैतिकता के मूल्य सभी धर्मों के ग्रन्थों में भी विस्तार से वर्णित किये गये हैं।

(ii)**प्रशासकीय नीतिशास्त्रकी परिभाषा** –प्रशासकीय नीतिशास्त्र को परिभाषित करते हुए **प्रो.एस.एल गोयल** लिखते है कि **''प्रशासनिक नीतिशास्त्र उन प्रशासनिक मानको का अध्ययन है जो किसी कृत्य को सही या गलत, नैतिक या अनैतिक तथा अच्छे या बुरे के आधार पर परीक्षित करते हैं।''**[11]

अर्थात् प्रशासनिक नीतिशास्त्र में उन प्रशासनिक मापदण्ड़ों या नियमों का अध्ययन होता है। जो किसी कार्य का सही या गलत, नैतिक या अनैतिक तथा अच्छे या बुरे आधार पर परीक्षण करते हैं।

3. प्रशासकीय नीतिशास्त्र का धार्मिक आधार –

विश्व में प्रचलित विभिन्न धर्मों के ग्रंथों में उन श्रेष्ठ नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है जो ये बताते हैं कि सार्वजनिक जीवन में व्यक्ति को किस प्रकार का आचार व्यवहार करना चाहिए या दूसरे शब्दों में कहे तो वे लोग जो प्रशासन करते हैं उनसे जनता किस आचार व्यवहार की उम्मीद करती है। जब ये धार्मिक ग्रन्थ लिखे गये थे तब संसार में राजाओं का शासन या राजतंत्र प्रचलित था। इसलिए राजा एवं उसके राजकीय सेवकों (कार्मिकों) के लिए उपर्युक्त नीतिशास्त्रीय आदर्शो के पालन की सलाह दी गई थी। भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म भी इससे अछूता नहीं था। विश्व के कुछ धर्मों में राजाज्ञा एवं नियम शासकों द्वारा निर्धारित नहींकिये गये थे।

वेदों तथा उन पर आधारित अन्य धर्मग्रंथ जैसे स्मृतियां पुराण और महाकाव्य (रामायण एवं महाभारत) इत्यादि ये सभी हमें निर्देश करते हैं कि व्यक्ति को **क्या करना**

चाहिए' और **क्या नहीं करना चाहिए**। इसलिए व्यक्ति चाहे वो प्रशासकवर्ग का हो या जन साधारण वर्ग का, ये मानना चाहिए की वह शास्त्रानुसार कार्य करे न की अपनी स्वेच्छानुसार कार्य करे। साथ–साथ इनमेंये भी कहा गया है कि हर व्यक्ति को शास्त्रों में जो कार्य (कर्त्तव्य) बताये गये हैं वे ही करने चाहिए तथा उसे उन कार्यों से बचना चाहिए जो कि ग्रन्थों द्वारा निषेध किये गये हैं। हिन्दू धार्मिक मान्यतानुसार व्यक्ति का **सच्चा धर्म** या **कर्त्तव्य (Duty) सदाचारकी राह (Rightieous Path)**पर चलना है। यहाँ **धर्म** का तात्पर्य कर्त्तव्य से है न कि धर्म विशेष (Religon)के पालन करने से है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में इस बारे में निर्देश किया गया है कि कोई भी व्यक्ति उसके लिए निर्धारित कर्त्तव्यों को सही तरीके से कैसे करे। **एस.के चक्रवर्ती** के अनुसार **''प्रशासकीय नीतिशास्त्र के विकास के लिए भगवत् गीता में वर्णित 'निष्काम कर्म' के सिद्वान्त को जानना आवश्यक है।''**ये धार्मिक निर्देशन हर ग्रंथ में उसके रचयिता ने अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं बुद्धिमता का प्रयोग करते हुऐ लिखे हैं। **कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र** में आचार्य कौटिल्य ने भी अपनी नीतिशास्त्रीय अवधारणाओं को श्रेष्ठतम तरीके से प्रस्तुत किया है।

4. वर्तमान भारत में प्रशासकीय नीतिशास्त्र की आवश्यकता –

प्रशासनिक संस्कृति के धर्मनिरपेक्ष परिवेश में आध्यात्मिक निर्देशन की आवश्यकता है क्योंकि प्रशासन में विशेषतः लोक सेवाओं के क्षेत्र में निरन्तर ही नीतिशास्त्रीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। भारतीय प्रशासन की नींव को खोखला करने वाली विघटनकारी शक्तियाँ जैसे भ्रष्टाचार, बेईमानी, अनैतिकता, पक्षपात, जनता व देश के प्रति जवाबदेयता का अभाव इत्यादि से निपटने के लिए लोकसेवा के कार्मिकों को व्यक्तिगत निष्ठा, सत्यता, न्याय और कर्त्तव्य को अपना धर्म मानने जैसे श्रेष्ठ मानकों का प्रदर्शन करना होगा। ये सभी नैतिक सरकार (Ethical Government) की स्थापना के लिए जरूरी है। हमें नकारात्मक नीति नियमों को विनिष्ठ करते हुए उनके स्थान पर सकारात्मक नीति मूल्यों को स्थापित करना होगा। इसके लिए नकारात्मक चिंतन को सकारात्मक चिंतन में बदलना होगा।

2.I कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्य –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रशासकीय नीतिशास्त्र की अवधारणा एवं मूल्यों का वर्णन निम्नलिखित है –

(1) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रशासकीय नीतिशास्त्र –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें राजनैतिक एवं प्रशासनिक व्यवहारों के सन्दर्भ में नैतिकता एवं धर्म की पूर्ण अवहेलना नहीं की गई है। कौटिल्य का यह मानना था कि प्रशासनिक सुदृढ़ता एवं सुशासन के विकास हेतु

नीतिशास्त्रीय मूल्यों का सैद्धान्तिक नहीं वरन् व्यवहारिक प्रयोग किया जाये । कौटिल्य का मत था कि नीतिमूल्य एक जोड़ने वाले पदार्थ (गोंद) की तरह कार्य करते हैं जो समाज को आपसी सम्बन्धों के रूप में बांधता है तथा राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश को उन्नत करता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के विभिन्न अधिकरणों के अन्तर्गत कई ऐसे अन्तर्दृष्टान्त दिये हैं जो यह सिद्ध करते है कि राजकीय नियमों, विनियमों, अंकेक्षण एवं लेखा परीक्षण के बाद भी लोक सेवकों के अनीतिपूर्ण कार्य व्यवहार को बदला नहीं जा सकता है। उनका माना था कि राष्ट्र की सुदृढ़ आधारशिला को बनाये रखने एवं प्रशासन में सुशासन की स्थापना करने के लिए लोक सेवकों के चरित्र निर्माण के साथ ही साथ उनमें नीतिपूर्ण कार्य–व्यवहार को विकसित करना भी अति आवश्यक है। प्रशासकीय नीतिशास्त्र के मूल्यों का राजकीय व्यवहार में प्रयोग करने से ही राष्ट्र में कानून व्यवस्था की स्थापना एवं पूंजी का निर्माण हो सकता है। यह मूल्य ही आर्थिक उन्नति को निर्मित करने के कारक हैं।

कौटिल्य के पूर्व एवं समकालीन ग्रीक दार्शनिकों क्रमशः प्लेटो एवं अरस्तु की भी यह धारणा रही है कि नीतिमूल्य गुणों की तरह हैं। ये व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं तथा इन गुणों के कारण व्यक्ति स्वतः ही उत्तम व्यवहार का पालन करता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि अरस्तु ने नीतिगत मूल्यों (गुणों) का सैद्धान्तिक वर्णन किया है । लेकिन उनके व्यवहारिक प्रयोग के बारे में विचार व्यक्त नहीं किये है। जबकि कौटिल्य ने इन नीतिशास्त्रीय मूल्यों के सिद्धान्तों के साथ ही नीतिशात्रीय कार्य प्रक्रिया सिद्धान्तों पर भी विचार किया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्रीय कार्य–प्रक्रिया सिद्धान्तों पर जोर दिया हैं वे हैं : **नियम, अधिकार, सदाचार, और सेवा–भावी नेतृत्व।**

कौटिल्य ने इन नीतिशास्त्रीय मूल्यों को विकसित करने के सन्दर्भ में भी दो मतों का प्रतिपादन किया है। इसमें प्रथम मत है कि नीतिमूल्यों का विकास व्यक्ति में बाल्यावस्था से ही करना चाहिए जिससे की व्यक्ति अपने आगे के जीवन में उनका पालन कर सकें। अब वह व्यक्ति चाहे तो सार्वजनिक क्षेत्र में कर्मचारी पद पर हो या निजी क्षेत्र में व्यापारी हो। द्वितीय मत के अनुसार व्यक्ति अपने विवेकाधिकार के प्रयोग के समय अपने स्वार्थों की पूर्ति की अपेक्षा दूसरे के लाभ के बारे में सोचे। ये व्यक्ति के लिए पेशेवर कौशल में निपुण होने जितना ही महत्वपूर्ण है। इस प्रकार आचार्य का मानना था कि नीतिमूल्यों का विकास व्यवहारिक जीवन में सफलता हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि चूंकि कौटिल्य एक व्यवहारिक प्रशासनिक चिंतक थे अतः उनके लिए राष्ट्रीय हित एवं राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति सर्वोपरि थी,

इसलिए वे राजनीतिक एवं कूटनीति व्यवहार के सन्दर्भ में अनैतिक मूल्यों के प्रयोग का भी समर्थन करते थे। या उन्हें वरीयता देते थे। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में **गुप्तचरों की नियुक्ति**, **चतुष्टय उपाय** (साम, दाम, दण्ड, भेद) एवं **षाडगुण्य नीति** इत्यादि प्रकरणों में उल्लेखित विषय सामग्री इसकी पुष्टि करती है।प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया एवं प्रशासकीय नीति को लागू करने तथा कार्मिक, वित्तीय एवं न्यायिक प्रशासन की व्यवस्था के सन्दर्भ में कठोर आचारशास्त्रीय नियमों को लागू करने एवं पालन करवाने के लिए कठोर दण्ड प्रक्रिया के समर्थक थे।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा, युवराज, अमात्यों, अध्यक्षों, गुप्तचरों, राजदूतों एवं अन्य राजकर्मचारियों की नियुक्ति हेतु जो योग्यताओं का निर्धारण किया है उन्हीं के आधार पर ये प्रमाणित होता है कि तत्कालीन राजव्यवस्था और प्रशासनिक तन्त्र में नीतिशास्त्र एवं प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय नियमों के पालन पर सर्वाधिक बल दिया जाता था।

कौटिल्य ने तत्कालीन भारतीय परिवेश में उल्लेखित विभिन्न प्रकार के आचारशास्त्रीय मूल्यों के व्यवहारिक पहलुओं के बारे में भी चर्चा की है। ये संक्षेप में इस प्रकार से है:[12]

(1) जब भी जनता एवं संगठन के समक्ष कोई समस्या आए तो उसके समाधान के लिये हमेंशा दीर्घगामी दृष्टिकोण एवं साधनों के बारे में सोचना।

(2) ऐसे विस्तृत संगठन बनाना जिसमें अनुशासन और समन्वय हो।

(3) किसी भी प्रकार के संकट के समय राजा को राज्य के कमजोर वर्गों को धन एवं सेना या पुलिस द्वारा सहयोग प्रदान करना।

(4) निर्णय करते समय अगर आदर्शों एवं धर्म के बीच द्वन्द की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो आदर्शों (सिद्धातों) को ही प्राथमिकता दी जाये।

(5) कौटिल्य एक सशक्त नौकरशाही व्यवस्था के समर्थक थे जो अच्छी तरह से प्रशिक्षित हो, उत्तम विचारों से युक्त और कठोर परिश्रमी हो राजा के प्रति निष्ठावान एवं जनता के प्रति सेवाभावी एवं उत्तरदायी हो।

(6) कौटिल्य ने उन अधिकारियों के लिये, जो उत्तरदायी पदों पर नियुक्त हो, वे यदि अनीतिपूर्ण कार्य और गैरकानूनी एवं अनैतिक व्यवहार करते हों तो उन्हें जुर्मानों एवं कठोर दण्ड द्वारा दण्डित करने का सुझाव दिया है।

(7) कौटिल्य का यह भी मत था कि समाज के सभी वर्गों को अपने–अपने **'स्वधर्म'** (वर्णाश्रम धर्म) का पालन करना चाहिये और राजसंस्था का प्रमुख कार्य यही है कि वह सबको अपने–अपने 'स्वधर्म' अर्थात् **''कर्त्तव्यों''** पर स्थिर रखे।

2.कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित नीति मूल्य –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में **प्रथम अधिकरण 'विनयाधिकारिक'** के **प्रकरण 1 अध्याय 2.** में **नीतिशास्त्रीय मूल्यों** का उल्लेख किया गया है। कौटिल्य के मतानुसार धार्मिक ग्रंथ जैसे –त्रयी (तीन वेद) एवं दर्शन ही नीति मूल्यों की उत्पत्ति के स्रोत हैं। इन मूल्यों का पालन करना सबके लिए आवश्यक था।

कौटिल्य राज्य की प्रशासकीय नीति निर्धारण एवं प्रशासकीय निर्णयों को सही ढंग से लागू करने का समर्थन करते थे। इसके लिए उनका मानना था कि राजकीय सेवा में कार्यरत लोक सेवकों से उनके लिये निर्धारित नीतिशास्त्रीय मूल्यों का कठोरता से पालन करवाया जाय अगर कोई भी राजकीय कार्मिक चाहे वह उच्चाधिकारी (अमात्य) हो या निम्न कार्मिक हो इन मूल्यों की अवहेलना करें तो उसके लिए कठोर दण्ड प्रक्रिया को अपनाया जाये। कौटिल्य के मतानुसार प्रशासन में सुशासन की अवधारणा के विकास के लिए उच्च नीतिशास्त्रीय मूल्यों का पालन करना अतिआवश्यक है क्योंकि सुशासन एवं नीतिशास्त्रीय मूल्य एक दूसरे के पूरक हैं।

1. कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लोक सेवकों हेतु निर्धारित नीतिशास्त्रीय मूल्य :

कौटिल्य ने लोक सेवकों के लिये निम्न दो प्रकार के मूल्यों का उल्लेख किया है :

(1) अनिवार्य (सामान्य) नीतिशास्त्रीय मूल्य :

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह कहा गया है कि समाज में वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले हर व्यक्ति को अहिंसा, सत्य, शुचिता (आचरण की पवित्रता) ईर्ष्या न करना, दया, क्षमाशीलता इत्यादि छः प्रकार के नैतिक मूल्यों का पालन करना आवश्यक है।[13] ये अनिवार्य नैतिक मूल्य राजा, लोक सेवकों एवं जनता सभी लोगों पर समान रूप से लागू किये गये थे।

(2) प्रशासकीय नीति मूल्य–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में उपरोक्त वर्णित सामान्य नीतिशास्त्रीय मूल्यों के अतिरिक्त राजकीय सेवा में नियुक्त लोक सेवकों जैसे अमात्य, अध्यक्ष, एवं अधीनस्थ कर्मचारियों के लिये भी निश्चित प्रशासकीय नीतिमूल्यों का निर्धारण किया गया था। यह प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय मूल्य राजा पर भी लागू होते थे क्योंकि वह भी **जनता का सेवक** ही था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के शोधपूर्ण विवेचन से निम्नलिखित प्रशासकीय नीति मूल्यों की जानकारी मिलती है :

(i) स्वधर्म–

कौटिल्य का ये मत था कि राजा चतुर्वर्ण्य के लिये जो कर्तव्य (धर्म) निर्धारित किये गये है उनकी पालना करवाये। इसे ही स्वधर्ममूल्य के रूप में परिभाषित किया गया है। अर्थशास्त्र के मतानुसार इस स्वधर्म की पालना न करने पर वर्ण तथा कर्म में संकरता उत्पन्न हो जाती है जिससे अव्यवस्था उत्पन्न होती है तथा समाज के सांस्कृतिक एवं नैतिक चरित्र का विनाश हो जाता है।[14] अतः स्वयं राजा, उसके समस्त प्रशासकीय पदाधिकारियों एवं सम्पूर्ण जनता को अपने–अपने स्वधर्म का पालन अनिवार्यतः करना चाहिए।

(ii) इन्द्रियजय– कौटिल्य ने सर्वोच्च पद पर नियुक्त पदाधिकारियों के सन्दर्भ में विशेषतः राजा के लिए इस विशेष गुण का होना आवश्यक बताया है। विद्या एवं विनय (ज्ञान) की प्राप्ति के लिये यह गुण आवश्यक है। काम, क्रोध, लोभ, मद और हर्ष के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती थी। अतः राजा को इन्द्रियजय होना चाहिए।[15]

(iii) कुलीनता : कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में मंत्री, पुरोहित, अमात्य व अध्यक्ष पदों पर नियुक्ति के प्रसंग में कुलीनता का उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में कुछ विशिष्ट राजकीय पदों पर नियुक्ति हेतु उम्मीदवार का उच्चकुल में उत्पन्न होने अर्थात् कुलीनता को भी एक आधार माना था।[16]

(iv) स्वामीभक्ति –कौटिल्य ने लोक सेवकों से राष्ट्रहित में स्वामी (राजा) के प्रति कठोर निष्ठावान होने पर जोर दिया था। कौटिल्य ने स्वामीभक्ति को लोक सेवकों में लिए आवश्यक गुण माना है। कौटिल्य लोकसेवा में प्रशासकीय प्रमुखों (राजा या अमात्यों) के प्रति राज कर्मचारियों के तटस्थता पूर्ण व्यवहार का समर्थन नहीं करते थे। जो वर्तमान भारतीय लोकसेवाओं के सन्दर्भ में एक अनिवार्य प्रशासकीय व्यवहार माना गया है।

(v) ईमानदारी– कौटिल्य ने प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय मूल्यों में सेवा के प्रति ईमानदारी को सर्वप्रमुख महत्व दिया है। कौटिल्य के मतानुसार वित्तीय एवं न्यायिक प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों द्वारा अपने कर्त्तव्य पालन में ईमानदारी को बनायें रखना अति आवश्यक है जिससे प्रशासन में फैली भ्रष्टाचार, वित्तीय गबन की समस्याओं से निपटा जा सके। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित **"अर्थोपधा परीक्षण"**[17] इस ईमानदारी मूल्य के निर्धारण के लिये किया जाता था। इस परीक्षण में उत्तीर्ण उम्मीदवार (अमात्य) को ही **समाहर्ता** एवं **सन्निधाता** जैसे सर्वोच्च वित्तीय पद दिये जाते थे।

(vi) सद्‌चरित्रता – कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लोक सेवकों के लियें सद्‌चरित्रता को भी एक आवश्यक गुण बताया है। कौटिल्य ने इस गुण की परीक्षा के लिये **'कामोपधा**

परीक्षण'[18] का उल्लेख किया है। इस परीक्षण में उत्तीर्ण लोक सेवकों की नियुक्ति राजमहल में की जाती थी विशेषतः राजमहल की स्त्रियों की सुरक्षा के लिये। कौटिल्य ने सभी राजकीय कर्मचारियों के लिए सच्चरित्र होना आवश्यक बताया था। इस मत की पुष्टि अर्थशास्त्र में उल्लेखित **'शील गुण सम्पन्न'** शब्द के प्रयोग से होती है।

(vii) सक्षमता –कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कहा गया है उच्चाधिकारियों को उनकी योग्यता एवं कार्य क्षमता के आधार पर ही भिन्न भिन्न पदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए इससे स्पष्ठ होता है कि कौटिल्य पदानुरूप सक्षमता को मान्यता देते थे। जिससे कि लोक सेवक अपने पद के अनुरूप उसे दिये गये कार्यों को करने में पूर्ण निपुण एवं सक्षम हों।

(viii) गोपनीयता : कौटिल्य ने राजतंत्रात्मक व्यवस्था का वर्णन किया है। उस तत्कालीन शासन व्यवस्था में राजा को हमेशा अपने आस–पास के पड़ौसी राज्यों से जान–माल एवं युद्व का खतरा रहता था, इसलिये कौटिल्य सम्पूर्ण प्रशासकीय मन्त्रणा एवं कार्यवाहियों में गोपनीयता बनाये रखने का समर्थन करते थे। कौटिल्य का मानना था कि राजकीय नीतियों को लागू करने से पूर्व बताने से वे विफल हो जाती है। उनके उचित परिणाम नहीं मिल पाते है, अन्य राष्ट्रों के गुप्तचर सक्रिय हो कर राष्ट्र प्रमुख (राजा) को नुकसान पहुंचा सकते हैं। अतः राजहित में लोक सेवकों को शासकीय मामलों में गोपनीयता बनाये रखनी चाहिये। इस गोपनीयता कि शर्त का उल्लघंन करने वाले लोकसेवक के लिये कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया था।[19]

(ix) विशिष्ठ कौशल –कौटिल्य ने सम्पूर्ण प्रशासन में जैसे **उच्चतम स्तर** (राजा),**मध्यम स्तर** (अमात्य) एवं **निम्नस्तर** (राजकर्मचारी वर्ग) तक हर स्तर पर कार्यरत व्यक्ति के लिये उसके कार्यो को करने के लिये विशिष्ठ कौशल को आवश्यक गुण बताया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण नौकरशाही संगठन में पदों की भर्ती हेतु यह विशिष्ठ कौशल महत्वपूर्ण आधार था।

(x) मितव्ययता –कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह उल्लेखित है कि अपने–अपने पदों पर नियुक्त लोक सेवकों को चाहिये कि वे खर्च को घटा कर शुद्ध आमदनी (उदय) को राजा को दिखाये अर्थात् मितव्ययता से राजकीय कार्यों को पूर्ण करे तथा देश का अर्थ (सम्पत्ति) में बढ़ोत्तरी करे।[20]

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य प्रशासन में सुशासन के आदर्शों की स्थापना करने हेतु प्रशासकीय नीति शास्त्र के सिद्धान्त एवं लोक सेवकों के कार्य व्यवहार में नीति मूल्यों के पालन करने को एक अनिवार्य आवश्यकता मानते थे।

2.II वर्तमान भारतीय प्रशासन में नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्य–

वर्तमान भारतीय प्रशासन में प्रशासकीय नीतिशास्त्र की अवधारणा एवं मूल्यों का संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है –

1. वर्तमान भारतीय प्रशासन में नीति शास्त्रीय अवधारणा –

वर्तमान भारतीय प्रशासन को भ्रष्टाचार, बेईमानी, अनुत्तरदायित्वता का सामना करना पड़ रहा है। अतः प्रशासनिक व्यवस्था में नीतिशास्त्रीय मूल्यों की परम आवश्यकता है साथ ही ये एक सामान्य विश्वास है कि इनके द्वारा जीवन सुखी हो सकेगा। नीतिशास्त्रीय मूल्य हर संगठन एवं संस्थान के लिए आवश्यक है चाहे वो राजनीति, प्रशासन, स्वास्थ्य, कानून, धर्म या समाज से सम्बन्धित हो। शासन में **नीतिशास्त्र** से तात्पर्य यह है कि लोकप्रशासन में परम्परागत मूल्यों एवं आचार–व्यवहार सम्बन्धी नियमों का प्रयोग होना चाहिए। आज के आधुनिक भारतीय समाज में लोकप्रशासन को तीन मुख्य लक्ष्य प्राप्त करने हैं –**जनता के हितों के लिए सेवा, कानून का शासन स्थापित करना** और **सरकार के कार्यों का जनताकी अपेक्षाओं पर खरा उतरना।** इसलिए देश में नीतिशास्त्रीय प्रशासन की आवश्यकता है। इस नीतिशास्त्रीय प्रशासन की सैद्धातिक व व्यवहारिक सफलता के लिए **पारदर्शिता, खुलापन, सूचना के प्रवाह, संचार के लिए सूचना प्रोधौगिकी** का प्रभावशाली प्रयोग भी आवश्यक है। राष्ट्र के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए सुशासन आवश्यक है। इस सुशासन की केन्द्रीय भावना **आचारशास्त्र** और **नैतिकता** में निहित है, लेकिन इन मूल्यों के ह्रास होने, नैतिकता में विचलन होने, भ्रष्टाचार युक्त व्यवहार और कार्यों से इस भावना का लोप हो जाता है। नागरिकों द्वारा सुशासन की मांग की जा रही है, अतः यह आवश्यक होता जा रहा है कि प्रशासन में **नीतिशास्त्रीय मूल्यों** की पुनःस्थापना की जाए। लोक सेवकों के लिए नये मानक निर्धारित किये जाए जैसे कि **गुणवत्तायुक्त सेवा, हर व्यक्ति से उचित व्यवहार, पारदर्शिता, जवाबदेयता, सहभागिता** और **भ्रष्टाचार** को रोकने के लिए कठोर कदम उठाना इत्यादि है, इसलिए वर्तमान प्रशासनिक परिदृश्य में नीतिशास्त्र लोक सेवाओं के क्षेत्र में एक नवीन आवश्यकता के रूप में विकसित हो रहा है।

अब लोक सेवकों को चाहिए कि वे स्वयं में प्राचीन **''राजर्षि''**[21] के सिद्धान्त –**शक्ति, व्यवहारिकता, कार्यकुशलता, व्यावसायिकता, बुद्धिमत्ता, लगन** इत्यादि गुणों को उत्पन्न कर सकें ताकि वे समाज में अपनी विशिष्ट भूमिका निभा सके, और निजी स्वार्थों और दलगत राजनीति से दूर रहे।

भारत सरकार द्वारा सन् 1996 में देश के राज्यों एवं केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के मुख्यमंत्रियों एवं मुख्यसचिवों के सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन में हुए

विचार विमर्श के दौरान यह अनुभव किया गया की भारतीय प्रशासन में काफी समस्याऐं पैदा हो गयी हैं। अतः अब यह आवश्यक हो गया है कि इनके निदान के लिए आवश्यक कदम जल्द से जल्द उठाए जाए ताकि देर न हो जाए। इसके अन्तर्गत एक कार्य योजना बनाई गई जिसका शीर्षक **''भारत में प्रभावी एवं उत्तरदायी प्रशासन''** रखा गया। इसमेंयह स्वीकार किया गया कि लोकप्रशासन और लोक सेवाओं के प्रत्येक स्तर पर कठिनाईयाँ उत्पन्न हो गई हैं तथा लोक सेवाओं की विश्वसनीयता एवं प्रभावशीलता में निरन्तर ह्रास हो रहा है।

बोहरा समिति[22]की रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि **''राजनीतिज्ञों, लोक सेवकों एवं अपराधिक तत्वों का आपस में एक मजबूत गठबंधन बना है तथा प्रशासन के नेतृत्वकारी तत्व चाहे वे राजनीतिज्ञ हो या नौकरशाह उनकी ईमानदारी, पारदर्शिता एवं विश्वसनीयता में निरन्तर गिरावट हो रही है।''**

अतः यह आवश्यक हो गया है कि सरकार सभी स्तरों पर स्वयं के कार्यों, उत्तरदायित्वों को पुनः परिभाषित कर सुधार करें ताकि लोगों का जीवन सुखी व प्रभावशाली हो सके। इस हेतुसन् 1998 में एक कार्य योजना का निर्माण किया गया, जिसका लक्ष्य था– 1. प्रशासन को जवाबदेय एवं नागरिकोन्मुख बनाना। 2. पारदर्शिता की गारंटी एवं सूचना का अधिकार 3. लोकसेवाओं में सदाचार एवं अभिप्रेरणाओं को बढ़ाने के लिए कदम उठाना।

2. वर्तमान भारत में लोकसेवकों के लिए निर्धारित नीति मूल्य–

वर्तमान भारतीय परिवेश में विभिन्न लोक सेवाओं के अन्तर्गत कार्यरत लोक सेवकों के लिए निर्धारित नीतिमूल्यों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है–

(1) निष्पक्षता (Selflessness) : इससे तात्पर्य है कि किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं करना। सार्वजनिक पद पर नियुक्त व्यक्ति को लोकहित में अपने निर्णय लेने चाहिए । उन्हें स्वयं अपने परिवार और मित्रों के लिए किसी भी प्रकार का वित्तीय और अन्य लाभों के द्वारा फायदा पहुँचाते हुये कार्य नहीं करना चाहिए।

(2) एकनिष्ठता (Integrity):लोक सेवकों को अपने प्रशासकीय कर्त्तव्यों को निभाते हुए। किसी व्यक्ति एवं संगठन द्वारा दिए वित्तीय प्रलोभनों एवं दबाव से दूर रहना चाहिए।

(3) वस्तुनिष्ठता (Objectivity) :लोक सेवकों को सार्वजनिक कार्य को करते हुए जिसमें सार्वजनिक भर्ती, संविदाएँ या व्यक्तियों को लाभ एवं पुरुस्कृत करना इत्यादि हो तो उसमें विकल्पों का चुनाव करते समय योग्यता को आधार बनााना चाहिए एवं निरपेक्षता बनाये रखनी चाहिए ।

(4) खुलापन (Openness)– लोक सेवकों को उनके द्वारा लिए गये सभी सार्वजनिक निर्णयों में यथासम्भव खुलापन रखना चाहिए। उन्हें अपने निर्णय एवं निरोधात्मक सूचनाओं के लिए सार्थक कारणों का उल्लेख भी करना चाहिए जिससे उनकी विश्वसनीयता बनी रहें। लोक सेवकों द्वारा अपने शासकीय निर्णयों एवं कार्यों को खुले एवं पारदर्शी तरीकों से करना चाहिए। जनता को जनसंचार साधनों के द्वारा सूचनाएँ दी जाए एवं उनके द्वारा दी जाने वाली सूचनाएँ जब तक नहीं छुपानी चाहिए जब तक की ऐसा करने का कोई सही एवं वैधानिक कारण नहीं हो। इसके लिए अब **सन् 2005** में लागू**'सूचना का अधिकार'** के कारण **शासकीय गुप्त बात अधिनियम 1923** (**The Official Secret Act 1923**) में वर्णित **प्रावाधान** एवं **भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872** भी रूकावट नहीं पैदा कर सकेंगें।

(5) ईमानदारी (Honesty)– सार्वजनिक पद पर आसीन व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह सार्वजनिक उत्तरदायित्वों को निभाते समय, चाहे वे प्रशासकीय मामले हों या वित्तीय मामले, अपने व्यक्तिगत हितों को बीच में न लाये। लोकहित की सुरक्षा बनाये रखने हेतु कोई विवाद भी उठता है तो उसे ईमानदारी से समाप्त करे। लोक सेवक में अपने लिए निर्धारित दायित्वों को पूर्ण करने के लिए सत्यनिष्ठा की भावना होनी आवश्यक है।

(6) समता (Equity): शासन व्यवस्था की संरचना एवं कार्यतन्त्र का उद्देश्य होता है कि शासकीय कार्यों में जनता की सहभागिता हो। इसके लिए शासक वर्ग एवं प्रशासकों को चाहिये की वे समाज में सभी वर्गों के बीच समता की भावना को विकसित करें। समाज की भलाई एवं विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उसका हर सदस्य यह महसूस करे की, वह समाज का एक ही भाग है तथा उसकी समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। उन्हें (वर्ग विशेष) शासकीय कार्यकलापों की मुख्य धारा से अलग नही किया गया है। अतः लोक सेवकों को चाहिए की वे प्रशासकीय कार्य व दायित्वों को निभाते हुए सभी सामाजिक वर्गो से समतापूर्ण व्यवहार करें। भारतीय संविधान में उल्लेखित अनुछेद 14,15,(1),16,16, (1), 16(2), 23(2), 29(1)38(1), 38(2) इसकी पुष्टि करते हैं। अब भारत में अनुच्छेद 17 के अतंर्गत अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है, तथा उससे उत्पन्न किसी भी अयोग्यता को लागू करने को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। इससे भारतीय प्रशासन में समता की स्थापना हुई है।

(7) संवेदनशीलता (Responsiveness)–परम्परागत शासन व्यवस्था (राजतंत्रात्मक शासन) में शासन तंत्र समाज के सभी वर्गों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने में असफल रहे थे। वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में विशेषतः जनतन्त्रीय शासन व्यवस्था में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि संस्थान एवं उनमें कार्यरतसभी कार्मिक (अधिकारी एवं कर्मचारी) वर्ग

उन सभी लोगों के प्रति, जो उनके निर्णयों एवं दी जाने वाली सेवाओं से प्रभावित होते है, संवेदनशील व्यवहार करें और अपने दायित्वों को भी जिम्मेंदार तरीके से पूर्ण करें।

(8) पारदर्शिता (Transparency): इस तत्व का मुख्य आधार सूचनाओं का स्वतंत्र प्रवाह करना एवं उन लोगो में शासन के प्रति विश्वासनीयता बढ़ाना, जो शासकीय निर्णयों से प्रभावित होते हैं। पारदर्शिता के लिए यह आवश्यक हैं कि प्रशासन द्वारा जो भी सूचना दी जाए वो लोगों द्वारा समझी जा सके। और जो लोग सूचना चाहते हैं उस सूचना उनके लिए प्रासंगिकता भी हो। सूचना देने की प्रक्रिया समयबद्ध हो ताकि लोग निजी, सरकारी एवं स्वयंसेवी क्षेत्रों में उचित निगरानी रख सके।[23] इसके लिए भारत सरकार ने सन् 2005 में सूचना का अधिकार पारित कर दिया है। प्रशासन में पारदर्शिता के विकास के लिए केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के सभी मंत्रालयों एवं विभागों ने नागरिक अधिकार पत्रों की घोषणा की है।

(9) प्रभावशाली एवं सक्षमता (Effectiveness & Efficiency)– लोकसेवकों को चाहिए की वह प्रशासनिक कार्यों को प्रभावशाली तरीके से करें जिससे वे उनके संगठनों के लिए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें। इसके अतिरिक्त लोक सेवकों को चाहिए की वह समाज की आवश्यकताओं एवं जरूरतों के अनुरूप उपलब्ध संसाधनों को कुशलतापूर्वक मितव्ययता से उपयोग करें। इससे श्रेष्ठ परिणाम एवं प्राप्तियाँ होंगी तथा संसाधनों का दुरूपयोग रोका जा सकेगा। वर्तमान समय में प्रशासन तन्त्र में प्रभावशीलता के साथ–साथ कार्यकुशलता पर भी बल दिया जा रहा है। विभिन्न विभागों द्वारा अपनायी गई शून्य आधारित बजट प्रणाली इसका उदाहरण है।

(10) जवाबदेयता (Accountability)– जवाबदेयता की परम्परागत अवधारणा के अनुसार, ये **प्रक्रिया आधारित** एवं **कानून** एवं **पदानुक्रम नियन्त्रण** से सम्बन्धित है जिससे प्रशासन को सार्वजनिक कानून के प्रति सक्षम और जवाबदेय बनाया जाए । ये प्रशासन को उन लोगों के प्रति जवाबदेय बनाती है जो जनता द्वारा निर्वाचित होकर आते है तथा उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। जबकि इसके विपरित वर्तमान में **संविदा आधारित** जवाबदेयता विकसित हो रही है। इसके अन्तर्गत लोग अब सीधे राजनेताओं और नौकरशाहों से उचित सेवाओं की मांग करते हैं। अब जवाबदेयता का अर्थ मुख्यतः परिणामों और प्राप्तियों से लिया जाता है। आज लोक सेवकों को प्रशासकीय कार्यों एवं निर्णयों के लिए देश के संविधान, देश के कानून, विभागीय नियमों एवं देश की जनता या नागरिकों के प्रति जवाबदेय होना चाहिए न कि शासकीय दल के प्रति साथ ही उनके प्रशासकीय विभागों द्वारा उन्हें जो दायित्व सौंपे गये हैं, उनकी उनके प्रति जवाबदेयता भी सुनिश्चित की जाए।

वर्तमान में भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा प्रकाशित **"नागरिक अधिकार पत्र"** जवाबदेयता के विकास हेतु एक कदम मात्र है।

(11) सद्चरित्रता (Ethicness)– लोक सेवकों का अपने व्यावसायिक क्षेत्रों (लोक सेवाओं) में सद्चारित्रता होना आवश्यक है। प्रशासन में नीतिशास्त्रीय मूल्यों को लागू करवाने एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सद्चरित्रता को बढ़ाना आवश्यक हो गया है। इस हेतु विभिन्न प्रशासनिक मंत्रालयों एवं विभागों में विभागीय अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की प्रक्रिया को अपनाया गया है। प्रशासन में कर्मचारियों के भ्रष्टाचार पूर्ण कृत्यों को रोकने के लिए भारत सरकार ने विभिन्न आयोग समितियाँ एवं संस्थान बनाये हैं। इनमें प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (1966) द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2005), केन्द्रीय सतर्कता आयोग, केन्द्रीय एवं राज्य सूचना आयोग, केन्द्रीय स्तर पर लोकपाल एवं राज्य स्तर पर लोकायुक्त, तथा संघीय एवं राज्य स्तरीय न्यायपालिका एवं अन्यन्यायिक संस्थायें सम्मिलित हैं।

(12) तटस्थता (Neutrality)– तटस्थता का अर्थ है– राजनीतिक निष्पक्षता या लोक सेवक की गैर राजनीतिक प्रकृति; अर्थात् लोक सेवकों को गैर राजनीतिक भावना से युक्त होना चाहिए। और विभिन्न सत्ताधारी सरकारों का कार्य निष्पक्ष भाव से करना चाहिए। राजनीतिक कार्यपालकों को किसी भी राजनीतिक सरोकार के बिना स्वतत्रं और स्पष्ट सलाह देनी चाहिए। उनको वस्तुनिष्ठ, अराजनीतिक और निष्पक्ष व्यावसायिक प्रशासक होना चाहिए, जो अपना काम कुशलता, ईमानदारी, निष्ठा, निपुणता एवं समर्पण के साथ करता हो।

(13) अनामता (Anonymity)–इसका अर्थ है कि लोक सेवकों को दोष या प्रशंसा की परवाह किए बिना पर्दे के पीछे से काम करते रहना चाहिए। अनामता का मानदण्ड ये अपेक्षा करता है कि मंत्री के अधीन कार्यरत लोकसेवक के कार्यो का जवाब संसद में मंत्री को देना हैं और इस प्रकार सांसदों कि आलोचना से उसका बचाव करना है। इससे तात्पर्य है कि मंत्री के अधीन काम कर रहे लोक सेवकों के सभी सही–गलत कार्यों कि जिम्मेदारी मंत्री लेता है। इसको इस तरह से समझा जा सकता है कि मंत्री का सम्बन्ध नीति से है नीति सम्बन्ध निर्णयों पर वह अपने सचिव (लोक सेवक) से सलाह लेता है। कार्यपद्धति का निर्धारण मंत्री करता है, अतः नीति के अच्छे व बुरे परिणामों के लिए संसद में जवाबदेय केवल मंत्री होगा न कि सचिव। अर्थात् अनामता का सिद्वान्त मंत्री के उत्तरदायित्व के साथ–साथ चलता है। चूंकि भारत में संसदीय शासन प्रणाली है अतः मंत्री ही संसद के प्रति सीधे जवाबदेय है लोक सेवक नहीं।

यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि ये सिद्वान्त लोक सेवकों के कानूनी एवं उचित कार्यो के लिए लागू होता है, गैर कानूनी एव अनुचित कार्यों के सम्बन्ध में नहीं। दूसरे शब्दों में, मंत्री को उस लोकसेवक का बचाव करना पड़ता है जिसने उसके द्वारा निर्धारित आदेशों को लागू किया है या मंत्री द्वारा अपनाई गई नीति के अनुसार कार्य किया है। लेकिन मंत्री के लिए ऐसे लोक सेवक के कार्यों का उतर देने की जरूरत नही है जो अपने निजी स्वार्थो के लिए सत्ता का दुरूपयोग या अन्य अपराधिक कार्यों या अनुचित तथा गैरकानूनी कार्यों का दोषी है। इन तमाम मामलों लोक सेवक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। कानून के अन्तर्गत उसे दोषी घोषित किया जा सकता है।

लेकिन आज के प्रोधौगिकी युग ने **''तटस्थता के सिद्वान्त''** के साथ **''अनामता सिद्वान्त''** को खण्डित कर दिया है जिसकी पुनः स्थापना अनिवार्य है।

14. नेतृत्व (Leadership)-सार्वजनिक पद पर आसीन व्यक्ति (लोक सेवक) को श्रेष्ठ नेतृत्व प्रदान करने की दृष्टि से उपरोक्त वर्णित नीतिशास्त्रीय मूल्यों एव सिद्वान्तों का सार्वजनिक कार्य व्यवहार में प्रदर्शन करना चाहिए। लोक सेवकों को जनता के प्रति **सेवाभावी नेतृत्व भावना** से कार्य करना चाहिए तथा जहाँ कहीं भी सरकारी कार्यों द्वारा जनता को सेवा प्रदान करने के सन्दर्भ में जनता से दुर्व्यवहार हो रहा हो तो उन्हें लोक सेवकों द्वारा चुनौती दी जाए तथा रोका जाना चाहिए।

उपरोक्त वर्णित प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्य वर्तमान भारतीय प्रशासन में सुशासन की स्थापना हेतु आवश्यक हैं।

3.Iकौटिल्यकृत अर्थशास्त्रः राजा/कार्मिकों हेतु निर्धारित आचरण नियम –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के शोध परक अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट होते है कि आचार्य ने तत्कालीन शासन व्यवस्था में प्रचलित नीतिशास्त्रीय व प्रशासकीय नीति मूल्यों एवं आचार नियमों का भी विस्तार से वर्णन किया हैं। यहाँ ये उल्लेख करना आवश्यक है कि कौटिल्य ने प्रशासकीय अधिकारियों एवं राजकर्मचारियों के लिए ही नहीं वरन् राजा के लिए भी आचार नियमों के निर्धारण एवं उनके पालन करने की अनिवार्यता पर जोर दिया था।

कौटिल्य का यह मत था कि राज्य में प्रजा के कल्याण एव प्रशासन में सुशासन की स्थापना हेतु राजा को भी अनिवार्यतः आचार नियमों का पालन करना चाहिए क्योंकि **जैसी राजा की प्रवृति होती है वैसी ही प्रवृति उसकी प्रजा की होती है। यदि राजा उन्नतिशील होगा तो उसके सेवक (कार्मिक) व प्रजा उन्नतिशील होगी और यदि वह (राजा) प्रमादी होगा तो उसके सेवक व प्रजा भी प्रमादी हो जाएगी। इस कारण से**

राजकार्यों में प्रगति नहीं होगी तथा राष्ट्र पर बाहरी शत्रुओं के आक्रमण का खतरा भी बढ़ जाएगा।[24]

1. राजा के लिए निर्धारित आचरण नियम –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के **प्रथम अधिकरणविनयाधिकारिक** के विभिन्न **प्रकरणों** एवं **अध्यायों** में राजा कें कर्तव्यों के रूप में आचरण नियमों का वर्णन किया गया है। ये आचरण नियम निम्नलिखित हैं :

1. राजा को **इन्द्रियजय** (चरित्रवान) होना चाहिए अर्थात् उसे काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष जैसे अवगुणों का त्याग कर अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करते हुए जितेन्द्रिय बनना चाहिए। अन्य शब्दों में कह सकते है कि राजा को शास्त्रों में प्रतिपादित कर्तव्यों का सम्यक अनुष्ठान (पालन) करना चाहिए।

2. राजा को चाहिए की वह काम का सेवन करे, लेकिन इस बात का ध्यान भी रखे कि इससे धर्म व अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। इससे तात्पर्य है कि राजा को सुख रहित जीवन यापन नहीं करना चाहिए ।

3. राजा का परस्पर अनुबद्ध, **त्रिवर्ग** (धर्म, अर्थ व काम) का संतुलित उपयोग करना चाहिए क्योंकि इस त्रिवर्ग का असंतुलित उपयोग दुखदायी सिद्ध हो सकता है।

4. राजा को पराई स्त्री, पराया धन एवं हिंसा की प्रवृति को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

5. राजा को इन आचरणों जैसे – कुसमय शयन, चंचलता, झूठ बोलना व अविनित वृतिबनाये रखना इत्यादि को छोड़ देना चाहिए। राजा को इस प्रकार का आचरण करने वाले व्यक्तियों की संगति भी नहीं करनी चाहिए।[25]

6. राजा को अधर्माचरण एवं अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग करना चाहिए।

7. राजा को अपने स्वयं के बौद्धिक एवं नैतिक विकास हेतु विद्वानजनों की संगति करनी चाहिए।

8. राजा को प्रजा में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करना चाहिए ताकि जनता शिक्षित व विनीत बन सके और जीवन में नीतिशास्त्रीय मूल्यों के अनुरूप आचार व्यवहार कर सके।

9. राजा को चाहिए की वह राजकीय नियमों द्वारा जनता को स्वधर्म पर बने रहने के लिए नियंत्रित करे।

10. राजा को उद्योग के द्वारा राज्य के **योग क्षेम** का सम्पादन करना चाहिए।[26]

11. राजा को प्रजा में अपनी लोकप्रियता बनाये रखने के लिए उन्हें धन व सम्मान प्रदान करना चाहिए।

12. राजा को दूसरों के हित के लिए उत्साही रहना चाहिए।

13. राजा को चाहिए कि वह राजकार्यों में सहयोग के लिए सुयोग्य आमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्श को हृदयांगम करे।

14. राजा धर्म–प्रवर्तक माना गया है अतः उसे चतुर्वर्ण्य, वर्णाश्रम, सम्पूर्ण लोकाचार और नष्ट होते हुए धर्मों की रक्षा करनी चाहिए।

15. राजा को धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजाज्ञा पर आधारित न्यायपूर्ण शासन करना चाहिए ताकि सम्पूर्ण राष्ट्र पर उसका प्रभाव स्थापित हो सके।

16. राजा को अपनी प्रसिद्धि हेतु धर्मयुक्त (नीति शास्त्रीय मूल्यों) पर आधारित प्रशासन करना चाहिए। लेकिन इसकी विपरित यदि वह प्रजा की रक्षा नहीं करके मूल्यरहित प्रशासन द्वारा जनता को पीड़ित करे तो उनकी उन्नति नहीं होगी।

17. राजा को अपने नीतिशात्रीय मूल्यों की रक्षा हेतु अपने पुत्र एवं शत्रु को उनके अपराधानुसार समान रूप से दण्डित करना चाहिए। दण्ड प्रक्रियामें कानून की समानता का आदर्श अपनाना चाहिए।[27]

18. राजा को अपने राज्य में रहने वाले संन्यासियों के बीच में होने वाले मिथ्या आचार –विचारों को उचित दण्ड़ द्वारा दूर करना चाहिए, क्योंकि अन्याय से दबाया गया और उपेक्षित किया हुआ धर्म शासक को नष्ट कर देता हैं।[28]

19. कौटिल्य का मानना हैं कि शासक को निष्ठुर (कठोर दण्ड देने वाला) नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे जनता उद्विग्न हो जाती हैं; किंतु राजा को दण्ड़ में ढ़िलाई भी नहीं देनी चाहिए क्योंकि इसमें लोक (जनता) राजा की अवहेलना करने लगती है अतः शासक को समुचित दण्डात्मक प्रणाली अपनानी चाहिए।

20. राजा की न्यायपूर्ण दण्ड़ व्यवस्था से ही चारों वर्ण, चारों आश्रम, सारा लोक (जनता) अपने–अपने स्वधर्म में प्रवृत होकर निरन्तर अपनी–अपनी मर्यादा में बने रहते है।

21. कौटिल्य का मानना था कि जो विद्वान राजा प्राणीमात्र के हित कामना में लगा रहता है, प्रजा के शासन, शिक्षण में तत्पर रहता है वही अपने राज्य का चिरकाल तक शासन करता है।[29].

22. विजयी विजिगीषु राजा को चाहिए की वह सफल होने पर अपने सहायक मित्र राजाओं को सम्मान पूर्वक विदा करे।

23. अगर राजा अदण्डनीय व्यक्ति को दण्डित करे तो प्रजा को चाहिए की वह उस दण्ड का तीस गुना दण्ड उस राजा से वसूल करे फिर इस राशि को पहले वरूण देवता के निमित्त जल में छोड़ दे तथा बचा हुआ धन ब्राह्मणों को प्रदान करे।[30]

24 . राजा को पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उपस्थित होकर वहाँ उपस्थित विद्वानों एवं तपस्वियों के कार्यों को खड़े–खड़े ही अभिवादन पूर्वक देखना चाहिए ।

25. राजा को कार्य का आरम्भ करने के लिए नक्षत्र,तिथि, लग्न, मुहूर्त आदि की अनुकूलता को पूछना अर्थात् अन्धविश्वासी नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर उसे अभीष्ट लाभ की प्राप्ति नहीं होगी। कौटिल्य का मत था कि कार्य की सिद्धि के लिए पर्याप्त धन व आवश्यक साधनों को ही नक्षत्र समझना चाहिए। इस प्रकार से नक्षत्र गणना करने से कुछ भी बनता या बिगड़ता नहीं है।

26 . राजा को बहुसमर्थित तथा शीघ्र कार्य सिद्धि करने वाली रायके अनुसार कार्य करना चाहिए।

27 . राजा को अपने अध्यक्ष (विभागीय प्रमुख) को थोड़े अपराध के लिए क्षमा कर देना चाहिए। यदि वह पूर्वापेक्षया आमदनी में थोड़ी भी वृद्धि कर लेता हैं तो उसके प्रति प्रसन्नता व संतोष प्रकट करना चाहिए।

28. राजा को महान उपकार करने वाले अध्यक्ष के प्रति कृतज्ञ होकर उसे सम्मानित करना चाहिए।

29. राजा को अपने सम्पूर्ण प्रशासकीय कार्य इतनी गोपनीयता से करने चाहिए की कोई उसका रहस्य नहीं पा सके, परन्तु साथ ही साथ राजा में दूसरे के दोषों को जान लेने की क्षमता हो।

30. राजा को अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार मन में छिपा कर रखना चाहिए जिस प्रकार की एक कछुआ अपने अंगो को छिपा कर रखता है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजा के लिए निर्धारित किये गये कर्त्तव्य ही उसके लिए आचार नियमों के समान थे तथा राजा को इन कर्त्तव्यों या आचारण नियमों का पालन करना अनिवार्य था। कौटिल्य के मतानुसार इनके पालन द्वारा ही राजा राज्य में सुशासन को स्थापित कर सकता है।

2. लोक सेवकों के लिए निर्धारित आचरण नियम–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के **पाँचवें अधिकरण 'योगवृत'** के **अध्याय 4,प्रकरण 92** में **अनुजीविवृतम् (राजकर्मचारियों का राजा के प्रति व्यवहार)** शीर्षक के अन्तर्गत हमें सरकारी कार्मिकों के लिए निर्धारित आचरण नियमों का उल्लेख मिलता है।[31] इसमें कौटिल्य ने कार्मिकों के द्वारा राजा के प्रति किए जाने वाले आचार व्यवहार का वर्णन इस प्रकार से किया है :

(1) आत्मसम्पन्न राजा के अमात्य पद पर नियुक्त पुरुष को चाहिये की जिस पद पर राजा उसे नियुक्त करे उसी पद के लिए वह कार्य करे।

(2) राजा के समीप, अगल या बगल में, न तो अधिक दूर और न ही अधिक नजदीक ही वरन यथोचित आसन पर बैठकर वह कार्य करे।

(3) वह असभ्य, आक्षेप लगाकर, परोक्ष विषयक, अविश्वसनीय और झूठी बातें नहीं बोले।

(4) राजा के समक्ष बेमौके व ऊँची आवाज में बात न करे। बोलते वक्त खकार या डकार इत्यादि आवाजें कभी न करें।

(5) राजा की उपस्थिति में किसी दूसरे व्यक्ति से बातचीत न करे।

(6) किसी अफवाह के बारे में निश्चित रूप से हाँ या ना कहना। इस प्रवृति का परित्याग करे।

(7) राजा का या पाखण्डियों का वेष धारण नहीं करे।

(8) राजा के धारण करने योग्य रत्नों के लिए खुले तौर पर प्रार्थना नहीं करना चाहिये।

(9) राजा की बात को शांति से सुने बीच में बात को नहीं काटना चाहिये।

(10) बलवान व्यक्ति के सम्बन्धी से झगड़ा नहीं करना चाहिये।

(11) स्त्रियों के साथ और स्त्रियों को चाहने वालों के साथ सम्पर्क नहीं रखना चाहिये।

(12) विदेशी दूतों के साथ और राजा (राज्य) के दुश्मनों या अनर्थकारी व्यक्तियों से सम्बध नहीं रखना चाहिए।

(13) एक ही बात को करते रहना, इस मनोवृत्ति का परित्याग कर देना चाहिये।

(14) गुट या समूह बनाकर नहीं रहना चाहिये।

(15) राजा के मतलब की बात तत्काल ही राजा से कह देनी चाहिये।

(16) अपने मतलब कि बात राज्य के प्रिय तथा हितकारी व्यक्तियों से कहनी चाहिये।

(17) दूसरे के मतलब की बात उचित समय एवं स्थान देखकर करनी चाहिये।

(18) जो कुछ भी कहे वह धर्म–अर्थ से समन्वित होना चाहिये।

(19) राजा के पूछने पर उसकी अनुमति से प्रिय एवं हितकारी बात को कह देना चाहिए। प्रिय लगने वाली अहितकारी बात को नहीं कहना चाहिये। किन्तु यदि हितकारी बात अप्रिय हो तब भी कह देनी चाहिये।

(20) उत्तर देते समय यदि अप्रिय बात सुनाने में डर महसूस हो तो चुप हो जाना चाहिए।

(21) राजा के द्वेष्य पुरुषों से इन राजकर्मचारियों को सम्बध नहीं रखना चाहिये क्योंकि राजा कि इच्छा पर न चलने वाले निपुण लोग राजा के अप्रिय बन जाते हैं। इसके विपरीत राजा की इच्छानुसार चलने वाले अनर्थकारी भी उसके प्रिय हो जाते हैं।

(22) राजा के हँसने पर कर्मचारी को भी हँसना चाहिये, चुप नहीं रहना चाहिये लेकिन अट्टाहास पर सदैव नियन्त्रण रखे।

(23) किसी गम्भीर या भयावह संदेश को स्वयं न कहकर किसी अन्य के द्वारा से राजा को कहा जाना चाहिए। यदि उस पर स्वयं ही पर यह दायित्व आ जाये तो पृथ्वी के समान क्षमाशील बनकर उसके परिणाम को सहन करे।

(24) इसलिये समझदार राजकर्मचारी को चाहिये कि सर्वप्रथम अपनी रक्षा की सोचे। राज्याश्रित व्यक्तियों की स्थिति अग्नि के खेल की तरह है उससे या तो एक अगं या शरीर को ही नुकसान होता है परन्तु राजा का क्रोध समस्त परिवार को भस्म कर सकता है और राजा कर्मचारी के प्रति अनुकूल हो जाये तो सर्वसम्पन्न कर सकता है।

(25) राजकर्मचारियों का यह भी दायित्व है कि वे जिस–जिस कार्य पर नियुक्त हैं उससे सम्बन्धित खर्चे को घटाकर शुद्व आमदनी (उदय) राजा को दिखायें।

(26) कर्मचारियों का यह भी दायित्व है कि दुर्ग में होने वाले, बाहर होने वाले, खुले रूप में तथा छिपकर होने वाले, विघ्नयुक्त एवं उपेक्षायुक्त इन सभी कार्यों का विवरण स्पष्ट रूप में राजा के सामने पेश करें। इन सभी बातों को लेखा रजिस्टर में भी दर्ज करें।

(27) राजकीय अधिकारियों का कर्त्तव्य है कि यदि राजा शिकार, जुँआ या स्त्रियों में आसक्त हो जाए तो उसका अनुगामी बन कर, उसकी खुशामद या प्रशंसा करके उसको इन बुरे व्यसनों से विमुख करने का यत्न करना चाहिये।

(28) कार्मिकों को राजा की चेष्ठाओं और चेहरे के हाव–भाव को बड़ी कुशलता से हृदयागंम करना चाहिये क्योंकि बुद्विमान व्यक्ति अपने रहस्य को छुपाये रखने के लिये काम, द्वेष, भय और सुख–दुख को चेष्टाओं द्वारा तथा विशेष आकृतियों से ही प्रकट किया करते हैं।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों से प्रमाणित होता है कि कौटिल्य काल में भी राजकीय सेवाओं में कार्यरत लोकसेवकों के लिए एक **आचरण संहिता** बनाई गई थी। कौटिल्य ने लिया है कि **प्रशासकीय लक्ष्यों** की प्राप्ति हेतु तथा **सुशासन** के विकास के लिए लोक सेवकों से इस आचरण संहिता का अनिवार्यतः पालन करवाना चाहिए।

3.IIवर्तमान भारतीय प्रशासन में लोक सेवकों हेतु निर्धारित आचरण नियम –

भारत की संघात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यरत प्रशासकीय अधिकारियों एवं कार्मचारी वर्ग के लिए कोई निश्चित **आचार संहिता (Code of Conduct)**अभी तक नहीं बनायी गई है। भारत सरकार ने लोक सेवकों के लिए केवल **आचरण नियम(Conduct Rules)** ही निर्धारित किए हैं जो अपनी प्रकृति में केवल **किसी कार्य** को **'करना'** और **'न करना'** ही बताते हैं। ये आचार नियम बनाने इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इनके द्वारा ही

सरकारी कार्मिकों को विशेषतः जो विश्वसनीय एवं उत्तरदायी पदों पर आसीन हैं उन्हें अपने प्रशासकीय कार्यों एवं दायित्वों के प्रति ईमानदार एवं निरपेक्ष बनाया जा सकता है। साथ ही उनकी पहचान या प्रस्थिति को भी ठीक से दर्शाया जा सकता है। भारतीय प्रशासन में इस हेतु सर्वप्रथम **योजना आयोग** ने प्रयास किया था। उसने इनका (आचरण नियमों)उल्लेख **प्रथम पंचवर्षीय योजना** के **छँठा (VI) अध्याय** में प्रस्तुत किया था।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2005) ने लोक सेवकों के लिए एक नीतिशास्त्रीय संहिता (Code of Ethics) बनाने का सुझाव दिया है। इस आयोग का ये मानना है कि **लोकसेवा मूल्य (Civil Service Value)** वे हैं **''जो परिभाषित हों, सभी लोक सेवकों एवं सरकार के प्रत्येक स्तर एवं समकक्ष संस्थाओं पर लागू हों। इन मूल्यों में किसी भी प्रकार की अवहेलना को दुर्व्यवहार मानते हुए दण्डनीय बनाया जाए।''**

1. आचरण नियम : आवश्यकता का आधार –

हमारे देश में विभिन्न प्रकार के कानून अलग–अलग कार्यों हेतु बने हुए हैं जो कि देश के सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होते हैं। राजकर्मचारियों के व्यक्तित्व के दो पहलू हैंः एक सामान्य नागरिक के रुप में और दूसराराज्य कर्मचारी की तरह। राजकर्मचारियों को उनके पद की विशेषता के कारण सामान्य नागरिकों की अपेक्षा अधिक अधिकार एवं सुविधाएं प्राप्त है। इन अधिकारों एवं सुविधाओं का दुरूपयोग होने की सम्भावना ना रहे, इस उद्देश्य से आचरण नियम बनाना आवश्यक समझा गया हैं।

इन आचरण नियमों में राज कर्मचारियों के अपेक्षित व्यवहार का विवरण दिया गया है अर्थात् कर्मचारी एक संयमित एवं मर्यादित जीवन व्यतीत करे, इससे सम्बन्धित व्यवस्थायें इन आचरण नियमों में की गई है। कोई भी कर्मचारी यदि आचरण नियमों का पालन न करे तो उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करके उसे दण्डित किया जा सकता है।

यह आचरण नियम इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए बनाये गये है कि राज कर्मचारी, पूर्ण सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता, लगन एवं पद की गरिमा बनाये रखते हुए न्यायपूर्ण ढंग से अपना कार्य कर सके।

2. वर्तमान भारत में राजकीय कर्मचारियों की आचार–संहिता –

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 में,**''राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह सरकारी सेवकों के लिए आवश्यक आचार–संहिता के नियमों का निर्माण करें।''**आचार संहिता के कुछ नियम भारतीयदण्ड विधान (I.P.C.) में भी दर्ज किये गये है। सरकार ने विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों के लिए अलग–अलग आचार–संहिताओं का निर्माण किया है। अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों के लिए अखिल भारतीय सेवा आचरण नियम,

1954(All India Services Conduct Rules, 1954) का निर्माण किया गयाहै। केन्द्रीय सेवाओं के लिए केन्द्रीय सिविल सेवा आचरण नियम, 1955(CentralCivil Servants Conduct Rules, 1955)का निर्माण किया गया है।रेलवे सेवा आचरण नियम(Railway Servants Condect Rules, 1964)का निर्माण भी किया गया है।[32]

इन स्थायी नियमों के अतिरिक्त सम्बन्धित विभागों द्वारा समय–समय पर कार्यकारी आदेश, प्रस्ताव तथा निर्देश जारी किये जाते है जिनका पालन सम्बन्धित विभागों के कर्मचारियों के लिए अनिवार्य होता है। आमतौर पर भारत में सभी आचार संहिताओं के आचार सम्बन्धित नियम प्रायः एक से ही हैं।

3.लोक सेवकों हेतु आचरण नियमों के प्रकार –वर्तमान भारतीय प्रशासन में लोक सेवकों हेतु निर्धारित विभिन्न आचरण नियमों के प्रकार निम्नलिखित हैं[33]–

1. अनुचित एवं अवांछनीय व्यवहार–

निम्न प्रकार के व्यवहार को कर्मचारी के लिए अनुचित एवं अवांछनीय माना गया है :

(1) यदि किसी अनैतिक आचरण के कारण दोषी मानकर सजा हो जाये।

(2) यदि वह सार्वजनिक रूप से गलत तरह का व्यवहार करता है।

(3) यदि यह सिद्व हो जाए कि उसने गुमनाम या गलत नाम से किसी को कोई प्रार्थना पत्र भेजा है।

(4) यदि वह अनैतिक जीवन यापन करे।

(5) यदि वह अनाधिकृत रूप से किसी राजकीय आवास या सुविधा का बिना सक्षम अधिकारी की अनुमति के उपयोग करे।

(6) उच्च अधिकारी के विधि सम्मत आदेश व निर्देश की अवहेलना करे।

(7) 14 वर्ष से कम के बालक को नियोजित करे।

(8) निःशक्त या नाबालिग संतान, पत्नि, और माता–पिता का पालन–पोषण न करे।

(9) सरकारी भूमि का अतिक्रमण करे।

(10) सार्वजनिक सेवा प्रदान करने वाले विभाग या कम्पनी को वित्तीय हानि पहुंचानें का कार्य करे।

2. नियोजन का प्रतिबध –

सरकारी कर्मचारी अपने पर आश्रित किसी भी व्यक्ति को ऐसे संगठन में काम नहीं करने देगा जिससे उसका सरकारी कार्य के लिए व्यवहार है। ऐसा करने से पूर्व सरकार की अनुमति लेना आवश्यक हैं। यदि अनुमति लेने हेतु सम्भव नहीं है, तो नियोजन स्वीकार

कर राज्य सरकार को सूचित कर दिया जाऐ। कर्मचारी अवकाश के दौरान किसी अन्य नियोजन को स्वीकार नहीं कर सकता है।

3. राजनीतिक गतिविधियों पर प्रतिबन्धः

कोई भी राजकर्मचारी किसी भी प्रकार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से किसी राजनीतिक दल की गतिविधियों में भाग नहीं लेगा, अर्थात् वह किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं बन सकता वह किसी दल विशेष का चिह्न धारण नहीं कर सकता है एवं किसी प्रकार से इस हेतु प्रभाव नहीं डाल सकता लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह वोट देने के लिए स्वतंत्र नही है।

यदि किसी संगठन के बारे में संदेह हो की वह राजनीतिक है अथवा नहीं, तब इस सम्बन्ध में कार्मिक विभाग, भारत सरकार का निर्णय अतिम होगा।

4. संगठनों में सम्मिलित होने पर प्रतिबन्ध :

कोई भी कार्मिक ऐसी किसी भी संस्था अथवा संगठन से स्वंय सम्बध नही रखेगा, जिसकी गतिविधियाँ देश की एकता, सार्वभौमिकता, शांति व्यवस्था इत्यादि के लिए हानिकारक हो।

5. प्रदर्शन एवं हड़ताल पर प्रतिबन्ध –

कोई भी कर्मचारी ऐसे प्रदर्शन एवं हड़ताल में भाग नही लेगा जो देश की एकता, सुरक्षा या दूसरे देश के साथ सम्बधों के लिए घातक हो।

6. अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध –

कोई भी कर्मचारी बिना सरकार की अनुमति के समाचार पत्रों, रेडियों, टीवी या इन्टरनेट पर अथवा अन्य किसी पत्र–पत्रिकाओं में अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकेगा। लेकिन यह प्रतिबन्ध ऐसे कार्यों पर लागू नहीं होगा जो कि विशुद्ध रूप से वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक प्रकृति के हो एवं अन्य कानून से प्रतिबन्धित न हों।

7. सरकार की आलोचना पर प्रतिबन्ध –

कोई भी राजकर्मचारी, राज्य या केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित नीति की आलोचना नहीं करेगा। कोई ऐसी बात नहीं करेगा, जिससे केन्द्र तक राज्यों के आपसी सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। अपने पद पर रहते हुए राजकीय बैठकों आदि में उसे विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी।

8. साक्ष्य देने सम्बधी प्रतिबन्ध –

संसदीय समिति के समक्ष या अन्यत्र विभागीय जाँच के अतिरिक्त राज्यकर्मचारी बिना सरकार की अनुमति के किसी प्रकार की साक्ष्य नहीं देगा।

9. अनाधिकृत सूचना देने पर प्रतिबन्ध –

सरकार की सामान्य या विशेष आज्ञा के अनुरुप या अपने दायित्व के सद्‌भावी निर्वाह (संचालन) के लिए कोई सूचना किसी सरकारी कर्मचारी या अन्य व्यक्ति को दी जा सकती है। अन्य किसी स्थिति में सूचना नहीं दी जा सकती है। किसी कर्मचारी द्वारा अपने अभ्यावेदन में किसी ऐसी जानकारी का उद्धरण देना जिसे प्राप्त करने का उसे अधिकार नहीं है नियमानुसार प्रतिबंध में आता है।

10. चंदावसूली पर प्रतिबंध –

राज कर्मचारी किसी भी प्रकार के कार्यों हेतु न तो चंदा एकत्र करेगा और न ही चंदा एकत्र करने में किसी भी प्रकार की सहायता तब तक करेगा जब तब की सरकार से उसकी अनुमति प्राप्त नहीं कर ली हो।

11. भेंट सम्बन्धी नियम –

कोई भी सरकारी कार्मिक उसके परिवार के सदस्य अथवा उसका कोई प्रतिनिधि किसी व्यक्ति से विशेष अवसरों जैसे विवाह, धार्मिक कार्यों व अन्य किसी प्रकार के कार्यो पर आचार नियमों में निर्देशित मूल्य राशि तक की भेंट स्वीकार कर सकता है। यदि किसी भेंट की राशि (कीमत) निर्देशित राशि से अधिक हो तो उसे सरकार को सूचित करना चाहिए।

12. राज कर्मचारी के सम्मान में आयोजित कार्यो पर प्रतिबन्ध–

केवल स्थानान्तरण अथवा सेवा निवृति पर सादे ढंग से विदाई आयोजनों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के सार्वजनिक सम्मान अथवा किसी प्रकार का कोई कार्य करवाना नियम विरुद्ध माने जायेंगे।

13. शैक्षणिक संस्थाओ में प्रवेश लेने पर प्रतिबंध –

सेवा में रहते हुए कोई कर्मचारी बिना विभागाध्यक्ष की अनुमति के किसी प्रकार की परीक्षा में नहीं बैठगा। हिन्दी परीक्षाओं जैसे साहित्यरत्न परीक्षा में बैठने पर ये नियम लागू नहीं होगा। यदि किसी कर्मचारी को जारी पाठ्यक्रम की अवधि हेतु अवकाश स्वीकृत कर दिया है, तो उसे इस प्रकार की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं रहेगी।

14. निजी व्यापार अथवा नियोजन पर प्रतिबन्ध –

कोई भी कार्मिक बिना सरकार की अनुमति के प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से साहित्यिक, कलात्मक या वैज्ञानिक प्रकृति के कार्यो में बिना वेतन योगदान दे सकता है। बशर्ते कि ऐसा करने से उसकी राजकीय कर्त्तव्यपरायणता में किसी प्रकार की कठिनाई न उत्पन्न हो। कर्मचारी की पत्नी अथवा परिवार के सदस्य का बीमा की ऐजेन्सी के लिऐ कार्य करना इस

नियम का उल्लघंन माना जाएगा। यदि कार्मिक के परिवार का सदस्य किसी भी प्रकार के व्यापार अथवा बीमा सम्बन्धी कार्य में लगा हो तो उसे सरकार को सूचित करना चाहिए।

15. पूंजी निवेश सम्बन्धी प्रतिबन्ध–

कोई भी कार्मिक सट्टा बाजार व्यापार में भाग नहीं ले सकता। कभी–कभी शेयर में पूंजी लगाना अनुचित नहीं है। लेकिन इस पर चल सम्पत्ति आवप्त करने सम्बन्धी प्रावाधान लागू होंगे। ऐसे व्यक्ति से वह वित्तीय सम्बन्ध नहीं रखेगा जिससे उसका राजकीय व्यवहार हो। रु. 5000/– से अधिक के ऋण लेना व देना वर्जित है एवं इसकी रिपोर्ट सरकार को भेजी जानी चाहिए। किन्तु ऋण किसी व्यक्तिगत मित्र से लेना सम्भव है।

16. आदतन कर्जदारी सम्बन्धी नियम –

राज्यकर्मचारी से यह अपेक्षा की गई है कि वह अपनी साख बाजार में बनाये रखेगा एवं आदतन कर्जदार होने की स्थिति से बचेगा।

यदि किसी कर्मचारी को दिवालिया घोषित कर दिया जाए एवं उसके वेतन से कटौती द्वारा उसका भुगतान दो वर्ष में सम्भव नहीं है तो ऐसे कर्मचारी को निष्कासित किया जा सकता है।

17. सम्पत्ति सम्बन्धी प्रतिबन्ध –

दैनिक उपयोग की आवश्यक वस्तुओं जैसे बर्तन, कपड़े, पुस्तकें आदि को छोडकर शेष चल सम्पत्ति की ऐसी खरीद/बिक्री के लिए राजकीय सेवा के अधिकारी को सरकार को सूचित करना पड़ेगा जिसकी कीमत रु.10000/– से अधिक हो। अधीनस्थ या मंत्रालयिक सेवा के लिए ये रु 5000/– हैं। चतुर्थ श्रेणी सेवा के लिए ये राशि रु 2500/– है। इस प्रकार अचल सम्पत्ति के सम्बध में किसी प्रकार की कार्यवाही जैसे क्रय–विक्रय भेंट आदि जो सरकारी कार्मिक अथवा उसके परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा किया जावे तो उसके लिए सरकार से पूर्व अनुमति लेना आवश्यक है।

यदि चल सम्पत्ति का क्रय–विक्रय किसी अधिकृत संस्था जैसे नगर परिषद्, पंचायत अथवा अन्य संस्था आदि द्वारा किया जाए तो सरकार को सूचना पर्याप्त होगी। चल सम्पत्ति में जवाहरात, गहने, बीमा–पॉलिसी जिसका प्रीमियम रु 1000/– से अधिक हो, शेयर/डिबेन्चर, बाइक, रेफ्रिजरेटर आदि शामिल हैं। सरकार किसी भी समय, किसी भी कार्मिक से उसकी एवं उसके परिवार की चल अथवा अचल सम्पत्ति का ब्यौरा प्राप्त कर सकती है।

18. ज्ञापन प्राप्ति पर प्रतिबन्ध –

कोई भी कार्मिक अथवा अधीनस्थ अधिकारी सरकार के नियमों के प्रावाधान के अतिरिक्त किसी प्रकार का ज्ञापन प्राप्त नहीं करेगा।

19 वैवाहिक प्रतिबन्ध –

(i) कोई भी सरकारी कार्मिक एक जीवित पत्नी के होते हुए बिना सरकार की अनुमति के दूसरा विवाह नहीं कर सकता हैं। इसी प्रकार महिला कार्मिक भी किसी ऐसे पुरुष से विवाह नही कर सकती है जिसकी पूर्व में पत्नी है। विदेशी नागरिक से विवाह करने पर इस तथ्य की सूचना तत्काल सरकार को दी जाएगी।

(ii) 1/6/2002 के पश्चात् किसी सरकारी कर्मचारी के दो से अधिक संतान होना दुराचरण माना जाएगा।

(iii) कोई भी कार्मिक, किसी महिला कार्मिकों के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न में लिप्त नहीं होगा। कार्यस्थल का प्रभारी हर महिला की उत्पीड़न से रक्षा करेगा।

(iv) दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के अर्न्तगत परिभाषित 'दहेज' यदि किसी कार्मिक द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मांग जाए तो इसे गलत माना जाएगा। इसी प्रकार उन सभी विवाहित व्यक्तियों का भी सेवा में प्रवेश पर प्रतिबन्ध होगा जो विवाह के समय दहेज को स्वीकार कर चुके हैं।

(v) बाल विवाह में किसी भी प्रकार का भाग लेना दुराचरण है।

20. विविध प्रतिबन्ध –

(i) किसी भी राजकीय कार्य हेतु कार्मिक बिना सरकार की अनुमति के न्यायालय अथवा प्रेस का सहारा नहीं लेगा। वह व्यक्तिगत कार्यों हेतु ऐसा कर सकता है।

(ii) किसी भी कर्मचारी के द्वारा गैर सरकारी व्यक्तियों के द्वारा उच्च अधिकारी पर किसी भी प्रकार का दबाव डलवाया जाए तो ऐसे कृत्य सरकारी कार्मिक के लिए अवांछनीय आचरण माना जाएगा एवं ऐसा कर्मचारी अनुशासनिक प्रक्रिया के अन्तर्गत दण्ड का भागी हो सकता है।

(iii) राजकीय कर्मचारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह नशीली दवा अथवा मद्य का सेवन सार्वजनिक स्थलों पर नहीं करेगा जिससे की उसका व्यवहार संयमित विवेकशील या मर्यादित रह सके।

(iv) कोई भी कार्मिक किसी विदेश फर्म अथवा कंपनी से यात्रा अथवा आवास सुविधा स्वीकार नहीं करेगा। विदेशों में प्रशिक्षण इसका अपवाद है।

(v) किसी भी राजकीय कर्मचारी द्वारा दौरे पर अपने अधीनस्थ कर्मचारी से विलासपूर्ण आवभगत एवं अत्यधिक खर्च की न तो अपेक्षा की जाएगी नहीं स्वीकार किया जाएगा।

(vi) निर्धारित राजकीय प्रणाली में उपलब्ध तरीका अपनानें के पश्चात् कर्मचारी न्यायालय की शरण ले सकता है।

21. अन्य प्रावाधान –

इन आचरण नियमों में प्रयुक्त किसी भी नियम के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार का सन्देह होने की स्थिति में प्रकरण कार्मिक विभाग को भेजा जावें एवं इस निर्णय ही मान्य होगा।

इन नियमों के अन्तर्गत जो शक्तियाँ सरकार अथवा अन्य अधिकारियों में निहित हैं वे सरकार द्वारा किन्ही अन्य अधिकारियों को प्रदत्त की जा सकती हैं।

इस प्रकार से वर्तमान भारतीय परिवेश में उपरोक्त वर्णित आचरण नियमों का पालन करना सुशासन के विकास हेतु लोक सेवकों के लिए आवश्यक है।

4.Iकौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्रीय मूल्यों के लिए संस्थात्मक व्यवस्था :

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में आचार्य ने विशाल मौर्य साम्रज्य में सुशासन को स्थापित करने एवं लोककल्याणकारी राज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए सम्राट, मन्त्रियों, अमात्यों, राजकर्मचारियों, जानपद, पौर जनपदों, ग्राम प्रमुखों एवं जनता सभी के लिए नीतिशास्त्रीय मूल्यों को पालन करना आवश्यक बताया था। इसके लिए कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में एक सुदृढ़, सुशासित संस्थात्मक व्यवस्था का वर्णन किया है, जो राज्य में नीतिशास्त्रीय मूल्यों को कठोरता से लागू कर सके। कौटिल्य ने प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय मूल्यों की अवहेलना करने पर राजा से लेकर निम्नस्तरीय कार्मिक तक के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था का भी उल्लेख किया हैं। अर्थशास्त्र में वर्णित ये संस्थात्मक व्यवस्था इस प्रकार से है :

1.धर्मग्रंथ एवं शास्त्रीय परम्पराएँ –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में तत्कालीन राजतंत्रात्मक व्यवस्था का वर्णन किया गया है जो वर्तमान की संघीय एवं प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्थाओं से सर्वथा भिन्न है। कौटिल्यकाल में वर्तमान शासन व्यवस्था की तरह लिखित संविधान जैसी कोई सैद्धान्तिक व्यवस्था तो नही थी फिर भी उस समय के शासक एवं प्रशासकीय वर्ग को प्राचीन धर्म ग्रंथों एवं समाज में प्रचलित शास्त्रीय परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों द्वारा निर्धारित नीतिशास्त्रीय मूल्यों के निर्देशानुसार अपने शासकीय दायित्वों को निभाना होता था। वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए

तो उस व्यवस्था की तुलना आज के ब्रिटेन की शासन व्यवस्था से की जा सकती है, जिसका कोई लिखित संविधान नहीं है तथा वहाँ शासन परम्पराओं पर आधारित हैं।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा वे चार साधन है जिस पर राज्य का प्रशासन आधारित है। इनमें धर्म (सच्चाई) व्यवहार (साक्षियों) चरित्र (समाज में प्रचलित आचार व्यवहार) राजाज्ञा (राजकीय शासन) में निहित है। इसमें भी धर्म से व्यवहार, व्यवहार से चरित्र और चरित्र से राजाज्ञा को श्रेष्ठ माना है। अतः राजा को इन चारों साधनों के अनुरुप शासकीय निर्णय करने चाहिए। कौटिल्य ने प्राचीन धर्मग्रथों में उल्लेखित इस मत के बारे में भी लिखा है कि सभी (राजा एवं प्रजा) को त्रयी (तीनों वेदों) में निरुपित धर्म, चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों को अपने–अपने धर्म (स्वधर्म) का शास्त्रानुसार पालन करना अनिवार्य है।इस प्रकार से पवित्र आर्य मर्यादा में अवस्थित वर्णात्मक धर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुःखी नहीं वरन् सदा सुखी रहती है।[34]अतः राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वंय एवं उसके प्रशासकीय अधिकारी व कार्मिक धर्म ग्रंथों में उल्लेखित मूल्यों व परम्पराओं का पालन करें।

उपरोक्त वर्णित सभी दृष्टान्तों से यह स्पष्ट होता है, कि कौटिल्यकाल में शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने एवं प्रशासन में नीतिशास्त्र मूल्यों को स्थापित करने में धर्म ग्रन्थ एवं परम्परायें एक संस्थात्मक सरंचना के रूप में विशिष्ठ भूमिका निभाते थे।

2. राजा –

कौटिल्य के मतानुसार राज्य के सर्वोच्च प्रशासनिक प्रमुख के रूप में राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह स्वयं श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का पालन करे। साथ ही साथ राज्य के लोक सेवकों से भी प्रशासकीय नीतिमूल्यों का पालन करवाये। राजा ही धर्म अर्थात् नीति शास्त्रीयमूल्यों का प्रवर्तक माना गया है इसलिए वह चारों वर्णो, चारों आश्रमों, सम्पूर्ण लोकाचार और नष्ट होते सभी धर्मों का रक्षक बनें। इसलिए उसको चाहिए की वह राजकीय नियमों द्वारा जनता को अपने–अपने स्वधर्म पर दृढ़ रखने के लिए नियन्त्रण भी रखे। राजा को वर्ण तथा कर्म की संकरता को रोकना चाहिए क्योंकि इससे समाज के सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास होता है।

कौटिल्य का यह भी मत था कि एक विजिगीषु सम्राट द्वारा अपने विस्तृत साम्राज्य में सुशासन की स्थापना करना तभी सम्भव है जब वह गुप्तचरों द्वारा अमात्यों, मन्त्रियों, राज कर्मचारियों, जनपद, ग्रामीण जनता एवं ग्रामप्रमुखों की शुचिता एवं अशुचिता तथा अपने प्रति अनुराग एवं द्वेष का पता करे। राजा को चाहिए की वह सदैव राष्ट्रीय चरित्र (जनता के

नैतिक मूल्यों) पर ध्यान दे। राजकीय कर्मचारियों को रिश्वत लेने से रोके। सच्चरित्र अध्यक्षों को सदा सम्मान पूर्वक उच्च पद पर बनाये रखे।

कौटिल्य ने यह भी सुझाव दिया कि राजा नगर में ऐसे लोगों को न बसने दे जिसके कारण राज्य तथा नगर का नैतिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों का स्तर गिरता हो। यदि इन्हें बसाना हो तो राज्य के छोर पर बसाया जाए एवं उनसे राजकर वसूला जाए।

इसी प्रकार से अन्य अनेक विध राजकर्मचारियों से जनता की रक्षा की व्यवस्था पर कौटिल्य ने लिखा है कि **''राजा (शासक) को चाहिए की समुचित दण्ड की व्यवस्था कर पहले वेतन भोगी (राजकर्मचारी) की शुचिता (शुद्धता या सद्चरित्रता) को स्थापित करे, और फिर ये शुचि (शुद्ध) राजकर्मचारी पौर जनपदों के व्यवहारों को शुद्ध करें।''**[35]

3. न्यायालय –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में जनता को न्याय प्रदान करने एवं राजकर्मचारियों के द्वारा किये जाने वाले अविवेकपूर्ण व्यवहार से संरक्षण हेतु न्यायालयों का संगठनात्मक विवरण भी दिया गया है। इस संगठनात्मक विवरण के अन्तर्गत सबसे छोटे न्यायालय **ग्रामों** के थे। इनसे ऊपर क्रमशः द्रोणमुख न्यायालय, जनपद न्यायालय और राज्य की राजधानी (पाटलिपुत्र) में केन्द्रीय न्यायालय होते थे। सर्वोच्च न्यायालय के रूप में राजा का न्यायालय था। इसमें राजा अन्य न्यायाधीशों की सहायता से विवादों का अन्तिम निर्णय करता था। ग्राम न्यायालय एवं राजा के न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सब न्यायालय दो प्रकार के थे –धर्मस्थीयन्यायालय एवं कण्ठकशोधन न्यायालय। आधुनिक सन्दर्भ में हम धर्मस्थीयन्यायालय को दीवानी न्यायालय एवं कण्टकशोधन न्यायालय को फौजदारी न्यायालय के रूप में परिभाषित कर सकते है।कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कण्टकशोधन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत ही प्रशासकीय मामलों से सम्बन्धित शिकायतों को रखा गया था। इसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार से है –

1.कण्टकशोधन न्यायालय का जन शिकायत निवारण अधिकार क्षेत्र –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार इन न्यायालयों में ऐसे विषय भी न्याय हेतु प्रस्तुत किये जाते थे जिसका सम्बन्ध प्रशासन के साथ होता था। आचार्य कौटिल्य नेअर्थशास्त्र में **'सर्वाधिकरणरक्षणम्'(शासन के सब अधिकरणों या विभागों की रक्षा और उनसे जनता की रक्षा)** शीर्षक[36] के अन्तर्गत राजकीय कर्मचारियों के राजकीय शक्ति के प्रयोग के दौरान शक्ति के दुरूपयोग पर नियन्त्रण रखने के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था की बात की है। ये दण्ड व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार से है –

(1) खानों और कारखानों (कर्मान्तों) से रत्न सदृश बहुमूल्य पदार्थों का अपहरण (चोरी) करने वालों के लिए मृत्युदण्ड तक का विधान था।

(2) साधारण पदार्थ तैयार करने वाले कारखानों से साधारण वस्तुओं की चोरी करने पर पूर्वस्साहस दण्ड दिया जाता था।

(3) पण्य स्थानों से राजकीय पण्य की चोरी करने पर चोरी की गई वस्तु के मूल्य के अनुसार दण्ड व्यवस्था इस तालिका द्वारा निम्न प्रकार से प्रदर्शित की गई है –

तालिका 5.2

वस्तु के मूल्य अनुसार दण्ड

वस्तु का मूल्य	दण्ड व्यवस्था
1. 1/16 पण से 1/4 पण मूल्य	12 पण का जुर्माना देय है।
2. 1/4 पण से 1/2 पण मूल्य	24 पण का जुर्माना देय है।
3. 1/2 पण से 3/4 पण मूल्य	36 पण का जुर्माना देय है।
4. 3/4 पण से 1 पण मूल्य	48 पण का जुर्माना देय है।
5. 8 पण से अधिक मूल्य	मृत्यु दण्ड तक दिया जाना।

कोष्ठागार, पण्यागार, कुप्यागार, आयुधागार आदि से चोरी करने पर भी इसी प्रकार के कठोर दण्डों की व्यवस्था थी।

निस्सन्देह, राजकीय कर्मचारियों के लिये जो दण्ड–विधान कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रतिपादित था, वह अत्यन्त कठोर था। जो लोग राजकीय सेवा में न हो यदि वे चोरी करें तो उनके दण्ड की मात्रा कम होती थी। राजपुरुष यदि एक पण मूल्य की वस्तु को चुराता था तो इस अपराध के लिए उस पर 48 पण जुरमाना किया जाता था। पर अन्य व्यक्ति यदि इतने मूल्य की वस्तु चुराता तो केवल 12 पण जुरमाना वसूल किया जाता था। इससे यह पता चलता है कि कौटिल्य के मतानुसार राज्य में सुशासन की व्यवस्था हेतु कार्मिक प्रशासन का सद्चरित,जवाबदेय व नियन्त्रित होना आवश्यक हैं।

(4) अन्य अपराध –

अन्य अनेक ऐसे अपराध में जिसकें लिए राजपुरूषों के दण्ड देने का विधान था। ये अपराध इस प्रकार से हैं–

1. यदि कोई अध्यक्ष या अन्य राजपुरूष ऐसा आदेश दे जिसे देने का उसे अधिकार ना हो,
2. या ऐसी राजकीय मुद्रा का प्रयोग करे जो जाली हो,
3. या जिसे प्रयुक्त करने का उसे अधिकार न हो तो इस अपराध के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। कतिपय स्थितियों में उसें मृत्युदण्ड भी दिया जा सकता था।

(5) न्यायिक अधिकारियों के लिए दण्ड की व्यवस्था–कौटिल्य ने **धर्मस्थीय** एवं **कण्टकशोधन** न्यायालयों के न्यायाधीशों के लिए निम्नलिखित दण्ड की व्यवस्था की थी –

(1) धर्मस्थ (धर्मस्थीय न्यायालय के न्यायाधीश) –

ये भी दण्ड (कानून) से ऊपर नहीं थे। यदि धर्मस्थ वादी या प्रतिवादी को डाँटे, उसकी भर्त्सना करे, उसे न्यायालय से बाहर निकाल दे या बोलने ना दे तो उसे इसके लिए पूर्वस्साहस दण्ड का विधान था। यदि कोई धर्मस्थ जो पच्छय (पूछने योग्य) हो उसे ना पूछे, जो अपच्छय हो उसे पूछे, पूछ कर उपेक्षा कर दे, साक्षी को सिखाए, याद दिलाये या पहले दिए हुए वक्तव्य का निर्देश करे तो उसे मध्यम साहस दण्ड दिया जाये।

(2) इसी प्रकार न्यायालय के लेखकों व अन्य कर्मचारियों के लिए भी दण्ड की व्यवस्था थी।

(2) प्रदेष्ठा (कण्टकशोधन न्यायालय के न्यायाधीश) –

ये न्यायाधीश भी कानून से ऊपर नहीं थे। यदि वे किसी को विहित दण्ड से अधिक दण्ड दें तो उनके लिए भी दण्ड का विधान किया गया था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में यह भी उल्लेख किया गया हैं कि कण्टकशोधन न्यायालय द्वारा इस संदर्भ में भी निर्णय किया जाता है कि यदि कोई **अर्थचर** (वेतन ग्रहण कर राजकीय सेवा करने वाला राजपुरूष) **तीर्थघात** (राजकीय अधिकरण के नियमों का उल्लंघन) या **ग्रन्थिभेद** (राजकीय धन) के अपहरण का अपराधी हो तो प्रथम अपराध की दशा में उसकी तर्जनी उंगली काट दी जाती थी पर इस दण्ड को 54 पण जुर्माने के रूप में परिवर्तित किया जा सकता था। दूसरी बार यही अपराध करने पर अंग छेदन या 100 पण जुर्माने का विधान था। यदि तीसरी बार यही अपराध किया जाए तो दाँया हाथ काट दिया जाता था या 400 पण जुर्माना वसूला जाता था। यदि राजपुरूष चौथी बार इसी प्रकार का अपराध करे तो उसके लिए प्राणदण्ड का विधान था।

(4) अन्य नियन्त्रणकारी संस्थाएँ –कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मौर्यकालीन प्रशासन में राजा के बाद प्रधानमंत्री एवं पुरोहित सबसे महत्वपूर्ण संस्थाऐं थी यद्यपि ये दोनों पद पृथक थे पर सम्भवत सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समय उनके गुरू आचार्य कौटिल्य मंत्री व पुरोहित दोनों पदों का कार्यभार देखते थे। कौटिल्य का मानना था कि लोक सेवकों पर तो राजा का नियन्त्रण रहता है। लेकिन स्वयं राजा द्वारा प्रशासकीय नीति मूल्यों, आचरण नियमों का पालन करने एवं उसकी स्वेच्छाकारिता को नियन्त्रित करने के लिए एक सशक्त संस्थात्मक व्यवस्था की आवश्यकता है। इसलिए कौटिल्य ने राजा के प्रशासनिक आचरण पर नियन्त्रण हेतु प्रधानमंत्री एवं नैतिक आचार व्यवहार पर नियन्त्रण

हेतु पुरोहित की नियुक्ति करने का प्रावाधान किया। ये पद एवं उनसे सम्बन्धित कार्य निम्नलिखित है –

(i) प्रधानमंत्री –

अर्थशास्त्र के अनुसार राजा इसके भी परामर्श से विविध अधिकरणों के अमात्यों की नियुक्ति करता था। इसलिए ये अधिकारी राजा को इन अमात्यों के सदच्चरित्रता के परिक्षण में भी सलाह मशविरा देता था। इससे स्पष्ट होता है कि प्रधानमंत्री राजा के लिए प्रशासन में नीति मूल्यों की स्थापना एवं नियन्त्रण में एक सहायक की भूमिका निभाता था।[37]

(ii) पुरोहित – कौटिल्य काल में राजा नीतिशास्त्रीय मूल्यों के संरक्षक के रूप में पुरोहित नामक एक अमात्य की नियुक्ति करता था। ये पद **बौद्धिक शक्ति** का प्रतिनिधित्व करता था। जो राजा की **क्षात्र शक्ति** को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक था। इस पद पर ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति की ही नियुक्ति की जाती थी। जो तत्कालीन सामाजिक परिवेश में पद स्तर की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान रखते थे। कौटिल्य लिखते है कि राजा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सदैव शासकीय मर्यादा एवं नैतिक मूल्यों का पालन करेगा। उसकी स्वेच्छाकारिता को नियन्त्रित करने का सबसे बड़ा साधन ये पुरोहित वर्ग ही था।[38]

राज्य के सभी अधिकरणों पर इन दोनों का नियन्त्रंण था। राजा सम्पूर्ण कार्य इनके परामर्श से ही करता था। इन पदों पर प्रायः ब्राह्मण को ही नियुक्त किया जाता था। अर्थशास्त्र के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः **मंत्री** प्रशासकीय प्रमुख के रूप में तथा **पुरोहित** नीतिशास्त्रीय मूल्यों के संरक्षक के रूप में कार्य करते थे। कौटिल्य ने यह भी कहा है कि राजा से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सदा शासकीय मर्यादा का पालन करे। राजा को चाहिए कि वह देश के धर्म, चरित्र और व्यवहार का अतिक्रमण नहीं करे। लेकिन **धर्म** क्या है ? इसका व्याख्या शास्त्र ही करते थे और इन शास्त्रों के अभिप्राय को अभिव्यक्त करना ब्राह्मण पुरोहितों का कार्य था। इससे इस मत की पुष्ठि होती है कि तत्कालीन शासन व्यवस्था में पुरोहित प्रशासकीय एवं सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत नीतिशास्त्र एवं प्रशासकीय नीति मूल्यों को स्थापित करने हेतु एवं राजा सहित राज्य के कार्मिकों के नैतिक व्यवहार को नियन्त्रितकरने के अधिकृत पदाधिकारी थे।

(5) गुरूजन, अमात्य वर्ग–

कौटिल्य ने यह मत भी प्रकट किया हैं कि गुरूजन एवं अमात्य वर्ग राजा की मर्यादा को निर्धारित करें। वे ही राजा को अनर्थकारी कार्यों (अनीतिपूर्ण व्यवहार) से रोकते

रहें। यदि वह एकान्त में भी प्रमाद करता हुआ बेसुध हो तो समय सूचक यंत्र या घंटा आदि बजाकर उसे उद्‌बुद्ध करें।[39]

(6) गुप्तचर विभाग –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य प्रशासन में गूढ पुरुषों–स्त्रियों (गुप्तचरों) का महत्वपूर्ण स्थान था। विशाल मौर्य साम्राज्य में सुशासन की स्थापना हेतु यह आवश्यक था की शासक (राजा) द्वारा उसके अमात्यों, मन्त्रियों, राजकर्मचारियों, पौर जानपदों, एवं राज्य की जनता पर निगरानी रखी जाए। जिससे उनकी गतिविधियों एवं मनोभावों का परिज्ञान प्राप्त हो तथा पड़ोसी राज्यों के सम्बन्ध में भी सब जानकारी हासिल होती रहे इसलिए मौर्य प्रशासन के अन्तर्गत सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था की स्थापना की गई थी।[40] उन गुप्तचरों एवं उनके वर्गों के बारे में विस्तृत विवरण किया गया है। गुप्तचरों के मुख्य कार्य निम्नलिखित है –

(i) अमात्यों पर दृष्टि रखना –

अमात्यों की नियुक्ति करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि उनकी शुचिता एवं अशुचिता की परख करना एक महत्वपूर्ण कार्य है जिसे राजा गुप्तचरों द्वारा ही करवा सकता है। ये गुप्तचर विविध **उपधाओं** (परखों) द्वारा इनका पता लगा लिया करते थे। इन परखों के अनुसार ही लोक सेवकों के पदों पर नियुक्ति होती थी। जब मंत्री, अमात्य आदि पदों पर नियुक्तियाँ कर ली जाती थी तब भी गुप्तचर उनकी प्रशासनिक गतिविधियों एवं आचार व्यवहार पर भी दृष्टि रखते थे एवं उनकी गतिविधियों के बारे में राजा को सूचित करते रहते थे। कौटिल्य का मत था कि यह आशंका सदा बनी रहती है कि कोई अमात्य क्रोध, लोभ, भय और मान इत्यादि से प्रभावित होकर शत्रु से न मिल जाए। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इस विषय का विस्तार से निरुपण किया गया है जैसे – कोई अमात्य इस कारण क्रोधित हो सकता है कि राजकीय सेवा करते हुए उसकी समुचित पदोन्नति न की हो, उसे पदच्युत कर दिया हो, या किसी अन्य को उसके स्थान पर उच्च पद दे दिया हो। कोई अमात्य इस कारण डर सकता था कि उसने अनुचित रूप से धन राशि प्राप्त कर ली या राजकीय कर्त्तव्यों को करते हुए उससे कोई गम्भीर गलती हो गई। कोई अमात्य लोभ का वशंवर्ती इस कारण से हो सकता है कि उसे कोई व्यसन (आदत) हो। कुछ अमात्य ऐसे होते थे जो मान–मर्यादा का जरूरत से ज्यादा ध्यान रखते है, इस कारण अपनी दशा से सदा असन्तोष अनुभव करते है ऐसे अमात्य मान के कारण कर्त्तव्यपालन से विमुख हो जाते थे।

अतः गुप्तचरों को सदा ये ध्यान रखना होता था कि कोई अमात्य उपरोक्त कारणों से शत्रु राज्य के नियन्त्रण में तो नहींजा रहे हैं। गुप्तचर इनके साथ ज्योतिषी इत्यादि के वेष में सम्पर्क स्थापित करते थे तथा उनके परस्पर सम्बध कैसे है ? तथा शत्रु राज्य के साथ सम्बन्धों का क्या रूप है ? इन सब की जानकारी रखते थे तथा राजा को सूचित करते थे।

(ii)राजकर्मचारियों की गतिविधि पर निगाह रखना :

गुप्तचरों द्वारा न केवल उच्च पदाधिकारियों वरन् साधारण राजकर्मचारी वर्ग पर भी दृष्टि रखी जाती थी। इनसे यह भय नहीं था कि वे शत्रुराज्य से मिलकर कोई विशेष क्षति पहुँचा सकते हैं लेकिन वे अपने राजकीय कर्त्तव्यों की उपेक्षा कर सकते थे, राजकीय धन का अपहरण कर सकते थे, रिश्वत ले सकते थे और अन्य प्रकार से जालसाजी करके राज्य और जनता को नुकसान पहुँचा सकते थे, अतः इन पर निगाहें रखना शासन की सुव्यवस्था के लिए बहुत आवश्यक था।

कौटिल्य का मत था कि राजकर्मचारियों का चित्त कभी स्थिर नहीं रहता। वे घोड़ों के समान होते है जिनका मिजाज सदा बदलता रहता है।[41] यह आवश्यक है कि उनके कार्यों की निरन्तर परीक्षा की जाती रहे।राजकर्मचारी अनेक प्रकार से राजकोष को क्षति पहुँचाते है। कौटिल्य ने ऐसे कुल चालीस (40) प्रकार लिखे है जिसके द्वारा राज कर्मचारी राजकोष का अपहरण (गबन) करते है। अतः उन पर निगरानी रखना करना बहुत आवश्यक है और ये कार्य गुप्तचर विभाग ही कर सकता था।

(7)समाहर्ता –

समाहर्ता जनपद का प्रशासक भी था इसलिए वह तापस (तपस्वी वेष वाले) गुप्तचर की सहायता से अपने क्षेत्र के रहने वाले किसान, ग्वाले, व्यापारी व अध्यक्षों की ईमानदारी व बेइमानी से युक्त कार्य व्यवहार की जानकारी रखता था।[42]समाहर्ता के अधीन अनेक अध्यक्ष थे जो अपने विभागों के राजकीय करों को एकत्र करते थे, व्यापार, व्यवसाय एवं उद्योगों का भी संचालन करते थे। समाहर्ता इनके प्रशासकीय कार्यों एवं आचार व्यवहार पर नियन्त्रण रखता था।

उपरोक्त वर्णित तथ्यात्मक जानकारी से यह सिद्ध होता है कि कौटिल्यकाल में नीतिशास्त्रीय मूल्यों की स्थापना एवं संरक्षण के लिए एक सुदृढ़, सुशासित संस्थात्मक व्यवस्था को स्थापित किया गया था। ये संस्थाऐं अपने लिए निर्धारित किये गये उत्तरदायित्वों को सही ढ़ंग से निर्वाह करने में सक्षम भी थी।

तालिका 5.3

गुप्तचरों का वर्गीकरण

क्र. सं.	वर्ग का नाम	उपवर्ग का नाम	गुण	वेषभूषा	कार्य
1.	**संस्था गुप्तचर** (स्थायी वर्ग) ये एक ही स्थान पर रहकर गुप्तचरी का कार्य करते थे।	1. कापटिक	दूसरों का रहस्य जानने वाला दबंग	विद्यार्थी का वेश	1.जिस किसी की भी हानि होते देखकर राजा व मंत्री को सूचित करना।
		2.उदास्थित	बुद्धिमान, सदाचारी	संन्यासी कावेश	2.कृषि, पशुपालन एवं व्यापार हेतु नियत भूमि में अपने शिष्यों के साथ कार्य करके सूचना एकत्र करना।
		3.गृहपतिक	बुद्धिमान, पवित्र ह्रदय	गरीब किसान का वेश	3.कृषि के लिए नियत भूमि पर रहकर कार्य करना।
		4. वैदेहक	बुद्धिमान, पवित्र ह्रदय	गरीब व्यापारी कावेश	4. व्यापारियों के लिए नियत भूमि पर रहकर गुप्तचरी करना।
		5. तापस	धीर, बुद्धिमान, चतुर	तपस्वी का वेश	5. जनता के लिए भविष्यवक्ता व लौकिक समाधान बता कर गुप्तचरी करना।
2.	**संचार गुप्तचर** (भ्रमणशील वर्ग) ये गुप्तचर राज्य में भ्रमण करते हुए गुप्तचरी का कार्य करते थे।	1.सत्री	राजा का सम्बन्धी न हो नाचने गाने एवं सम्पूर्ण विधाओ का ज्ञाता।	वेश, बोली, कौशल कुलीनता के अनुसार वेशोंमें ।	1 ये युवराज, पुरोहित, मंत्री,कोषध्यक्ष इत्यादि प्रशासकीय प्रमुखों के आस–पास उनकी गति विधियों को जानने के लिए कार्य करते थे।
		2.तीक्ष्ण	अत्यंत साहसी	छत्र, चामर, बाहरी उपकरणों की देख–रेख करने वाले के वेश में।	2. अमात्यों की सेवा में रहकर व्यवहार की जानकारी करना।
		3. रसद	क्रूर, निर्मोही आलसी	रसोइया,प्रसाधक आरालिक (मॉंस बनाना वाले) के वेश में	3 मंत्री एवं उच्च अधिकारियों के भेदों को जानना ।

		4. परिव्राजिका (स्त्री गुप्तचर) 5. मुण्डा (स्त्री गुप्तचर) 6. वृषली (स्त्री गुप्तचर)	प्रौढ, दरिद्र, ब्राह्मणी बौद्ध भिक्षुणी शुद्रा	सन्यासिनी के वेश में। बौद्ध भिक्षुणी के वेश में सेविका के रूप में।	4 ये राजमहल में प्रविष्ट होकर वहाँ के लिए गुप्तचरी करे । 5. ये रसद आदि पुरूष गुप्तचरों के समाचार कापटिक तक पहुँचाए । 6. यह सेविका बनकर सन्देश का आदान प्रदान करे एवं सूचनायें दे।
3.	**उभयवेतन प्राप्त गुप्तचर** (ये गुप्तचर वर्ग विदेशों में जाकर वहां की सरकार के वेतन भोगी नौकर बनकर रहते थे।)	–	–	–	1. ये गुप्तचर मित्र एवं शत्रु पक्ष दोनों से वेतन लेते थे तथा विदेशी शासन में रहकर वहाँ से गुप्त रहस्यों का पता लगाते थे।

4.IIवर्तमान भारतीय प्रशासन में नीतिशास्त्रीय मूल्यों के लिए संस्थात्मक व्यवस्था–

वर्तमान भारतीय प्रशासन में नीतिशास्त्रीय मूल्यों की संस्थात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत एक त्रिस्त्रीय जनशिकायत निवारण तन्त्र बनाया गया है। इनके माध्यम से प्रशासनिक शिकायतों एवं आचार नियमों के उल्लंघन सम्बन्धित प्रशासनिक मामलों का निस्तारण किया जाता है। इन व्यवस्थाओं का मुख्य उद्देश्य कुशासन पर नियन्त्रण रखना और उससे पीड़ित पक्ष को निरन्तर राहत देना होता है। सुशासन के विकास एवं नीतिशास्त्रीय मूल्यों को प्रशासन में सुस्थापित करने हेतु इन व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं को विकसित करना एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई है।

इस दिशा में भारतीय प्रशासन में प्रचलित **त्रिस्तरीय व्यवस्था** इस प्रकार से है –

1. **केन्द्रीय स्तर पर जन शिकायत निवारण तंत्र**
2. **राज्य स्तर पर जन शिकायत निवारण तंत्र**
2. **जिला स्तर पर जन शिकायत निवारण तंत्र**

यहाँये उल्लेख करना आवश्यक है कि प्रस्तुत शोध विषय केन्द्रीय स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित है अतः यहाँ केवल केन्द्रीय स्तर पर कार्यरत **जनशिकायत निवारण तन्त्र** से सम्बन्धित संस्थाओं/संगठनों का ही विस्तार से उल्लेख किया गया है।

1. केन्द्रीय स्तर पर जन शिकायत निवारण तंत्र –

भारत में केन्द्रीय स्तर पर गठित जन शिकायत निवारण तन्त्र से सम्बन्धित संस्थाओं/संगठनों में से प्रमुख इस प्रकार से हैं:

(i)लोकपाल एवं लोकायुक्त–(ओम्बुडसमैन का भारतीय प्रतिमान)

भारतीय प्रशासन में नागरिक शिकायतों (प्रशासनिक शिकायतों) के निराकरण के लिए स्वीडन के ओम्बुडसमैन (1809) के सदृश्य भारतीय प्रतिमान की स्थापना के लिए प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही होने लगे थे। इस दिशा में सर्वप्रथम मांगसन् 1960 में तत्कालीन संसद सदस्य के.एम.मुंशी ने की। तत्पश्चात् सन् 1962 में भारत के तत्कालीन संसद सदस्य एल.एम.सिंघवी ने इस मांग का समर्थन किया। एल.एम. सिंघवी ने इस विषय को सर्वप्रथम संसद में उठाया और इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला ।

इन प्रयासों में निर्णायक भूमिका सन् 1966 में मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में गठित प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की रही। प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने जन शिकायत निवारण तंत्र के नाम से अपनी रिपोर्ट में केन्द्र में 'लोकपाल' तथा राज्यों में 'लोकायुक्त' नामक संस्था को स्थापित करने की प्रबल सिफारिश की। इस आयोग के

मतानुसार "**केन्द्र एवं राज्यों के मंत्रियों एवं सचिवों (वरिष्ठ लोक सेवक) के विरूद्ध प्राप्त शिकायतों के लिए लोकपाल तथा सचिव स्तर से नीचे के अधिकारी वर्ग के विरूद्ध प्राप्त शिकायतों की जाँच हेतु लोकायुक्त संस्था का गठन किया जाना आवश्यक है।**" आयोग के अनुसार "**ओम्बुड्समेन संस्था कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से पूर्णतः स्वतन्त्र होनी चाहिए।**"[43]

इस आयोग की सिफारिश पर भारतीय प्रशासन में 'लोकपाल' (केन्द्रीय स्तर पर) एवं 'लोकायुक्त' (राज्य स्तर) पर स्थापित करने हेतु कई विधेयक लाए गये जैसे –लोकपाल विधेयक वर्ष 1968, 1971, 1977, 1985, 1989–90, 1996, 1998 एवं 2001, 2011 इत्यादि। ये सभी विधेयक अपरिहार्य कारणों से पारित नहीं हो सके।

लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 –

(1) लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम, 2013 –

लेकिन 10 दिसम्बर 2013 को प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता **अन्ना हजारे** के द्वारा **महाराष्ट्र** के **रालेगणसिद्धि**सेलोकपाल कानून पारित करने के लिए पुनः (2011 के **दिल्ली** में किये गये) अनशन शुरू किया गया इसके परिणाम स्वरूप दबाव में आई **यू.पी.ए.**सरकार ने 17 दिसम्बर 2013 को लोकपाल विधेयक को राज्य सभा में पारित करा दिया। इस विधेयक में **प्रवर समिति**के संशोधनों के साथ पारित होने के कारण लोक सभा की पुनः मंजूरी आवश्यक हो गई थी। अतः 18 दिसम्बर, 2013 को लोकसभा ने भी इसे पारित कर दिया। अन्त में राष्ट्रपति ने 1 जनवरी, 2014 को इसे स्वीकृति देते हुए अधिनियमित कर दिया। इस प्रकार यह लोकपाल तथा लोकायुक्त अधिनियम, 2013 (The Lokpal and Lokayuktas Act, 2013)[44] के नाम से जाना जाता है।

(2) लोकपाल तथा लोकायुक्त कानून, 2013 : मुख्य विशेषताएँ –

(The Lokpal And Lokayuktas ACT,2013 : Main Features)

(i)**संगठन (Establishment) –**

नवीन कानून में लोकपाल बहुसदस्यीय होगा, जिसमें एक अध्यक्ष तथा अधिकतम आठ अन्य सदस्य होंगे। अध्यक्ष सर्वोच्च न्यायालय का पीठासीन न्यायाधीश या सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश अथवा फिर कोई अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति होगा।[45] इसके कम–से–कम आधे सदस्य (50प्रतिशत) न्यायिक पृष्ठभूमि के होने चाहिए। साथ ही साथ कुल सदस्यों में से कम–से–कम आधे सदस्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यक और महिलाओं में से होने चाहिए।[46]

इसका अध्यक्ष अथवा कोई सदस्य, संसद के किसी सदन का सदस्य अथवा किसी राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश के विधानमण्डल का सदस्य नहीं हो सकता है। साथ ही कोई ऐसा व्यक्ति जिसे किसी किस्म के नैतिक भ्रष्टाचार का दोषी पाया गया हो या कोई ऐसा व्यक्ति जिसकी उम्र अध्यक्ष या सदस्य का पद ग्रहण करने तक 45 वर्ष न हुई है या किसी पंचायत या निगम का सदस्य अथवा ऐसा व्यक्ति जिसे केन्द्र या राज्य सरकार की नौकरी से बर्खास्त या हटाया गया हो, इसमें कोई पद धारण नहीं कर सकता।[47]

(ii)**नियुक्ति (Appointment)**–

लोकपाल तथा राज्यों में लोकायुक्तों तथा इसके सदस्यों की नियुक्ति एक साल के भीतर होनी चाहिए। लोकपाल के अध्यक्ष एवं सदस्यों का चयन राष्ट्रपति द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर किया जायेगा। जिसके प्रधानमन्त्री अध्यक्ष होंगे तथा लोकसभा अध्यक्ष, लोकसभा में सबसे बड़े दल का नेता,[48] सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायालय या उनकी अनुशंसा पर नामित सुप्रीम कोर्ट के एक न्यायाधीश तथा राष्ट्रपति द्वारा नामित कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति सदस्य होंगे।

(iii)**प्रतिबन्ध (Restrictions)** –

लोकपाल कार्यालय में नियुक्ति समाप्त होने के बाद अध्यक्ष और सदस्यों के लिए कुछ काम करने के लिए प्रतिबन्ध होगा। इनकी अध्यक्ष या सदस्य के रूप में पुनर्नियुक्ति नहीं हो सकती और न ही इन्हें कोई कूटनीतिक जिम्मेदारी दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त ऐसी कोई भी जिम्मेदारी या नियुक्ति इन्हें नहीं मिल सकती जिसके लिए राष्ट्रपति को अपने हस्ताक्षर और मुहर से वारण्ट जारी करना पड़े। पद छोड़ने के पाँच वर्ष बाद तक ये राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद के किसी सदन, किसी राज्य विधान सभा या निगम या पंचायत के रूप में चुनाव नहीं लड़ सकते।[49]

इसी प्रकार राज्यों में गठित किए जाने वाले **लोकायुक्त** का भी एक अध्यक्ष होगा, जो राज्य के उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश या फिर सेवानिवृत्त न्यायाधीश या फिर कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति हो सकता है। लोकायुक्त में भी अधिकतम आठ सदस्य हो सकते हैं। जिनमें से आधे न्यायिक पृष्ठभूमि से होने चाहिए। इसके अलावा कम से कम आधे सदस्य अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति, अल्पसंख्यकों और महिलाओं में से होने चाहिए।

(iv)**लोकपाल का कार्यक्षेत्र –**

लोकपाल के अधिकार क्षेत्र का विवरण संक्षेप में निम्नलिखित है –

1. लोकपाल की जाँच के दायरे में प्रधानमंत्री, समस्त मंत्री, केन्द्र सरकार के ग्रुप (समूह) ए. बी. सी. डी के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग आते हैं।

2. प्रधानमंत्री के खिलाफ मामलों से निपटने की विशिष्ट प्रक्रिया निर्धारित की गई है। जिसमें कुछ विषयों के सम्बन्ध में छोड़कर अन्य सभी मामलों में प्रधानमंत्री को भी इसके अधिकार क्षेत्र में लाया गया है।

3. विदेशी अनुदान (विनियम) अधिनियम, 2010 (Foreign Contribution (Regulation) Act, 2010) के संदर्भ में विदेशी स्त्रोत से 10 लाख रूपये वार्षिक से अधिक का अनुदान प्राप्त करने वाले सभी संगठन इसके अधिकार क्षेत्र में होते हैं।

4 केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (सी. बी. आई) सहित किसी भी जाँच ऐजेन्सी को लोकपाल द्वारा भेजे गये मामलों की निगरानी करने एवं निर्देश देने का अधिकार होगा।

5 किसी प्रारम्भिक जाँच के उद्देश्य से लोकसभा को सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के तहत एक दीवानी न्यायालय की शक्तियाँ प्राप्त होगी।

6 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के तहत आने वाले अथवा निर्णित होने प्रकरणों के लिए केन्द्र सरकार लोकपाल की अनुशंसा पर विशिष्ट न्यायालयों (Special Court) की स्थापना करेगी।

7. लोकपाल विशिष्ट न्यायालयों के समक्ष अपनी अभियोजन शाखा के द्वारा अभियोजन की कार्यवाही प्रारम्भ कर सकता है। अधिनियम में प्रारम्भिक जाँच एवं अन्वेषण तथा मुकदमें के लिए एक स्पष्ट समय रेखा निर्धारित की गई है।

8. लोकपाल अधिनियम के तहत मामलो के अभियोजन के लिए एक अभियोजन निदेशालय होगा। जिसका निदेशक भारत सरकार के संयुक्त सचिव स्तर से निम्नस्तर का अधिकारी नही होगा। इस अभियोजन निदेशक की नियुक्ति केन्द्रीय सतर्कता आयोग (CVC) की अनुशंसा के आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा की जाएगी।

9. इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष भीतर राज्य विधानसभाओं द्वारा स्वीकृत कानून के अन्तर्गत राज्यों में 'लोकायुक्त' संस्था की नियुक्ति अनिवार्य की गई है।

(v)**लोकपाल का महत्व (Importance of Lokpal)–**

1. अब जनता सरकारी विभागों में हो रहे भ्रष्टाचार की शिकायत लोकपाल से कर सकेगी।
2. लोकपाल स्वयं भ्रष्टाचार के खिलाफ संज्ञान लेकर मामला दर्ज कर सकेंगे।

3. किसी भी अधिकारी के भ्रष्टाचार मामलों पर लोकपाल छापे मार सकते है।
4. झूठी शिकायतें करने वाले के खिलाफ कार्यवाही कर सकता है।
5. प्रशासकों व राजनेताओं के भ्रष्ट कृत्यों पर रोक लगाने व सजग रखने में मदद मिलेगी।
6. भ्रष्टाचार में कमी आएगी।

प्रसिद्ध स्वयंसेवी अन्ना हजारे ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है ''देश में पहली बार भ्रष्टाचार पर रोक लगाने वाला विधेयक पास हुआ है।''सन् 2019 में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की भारतीय जनता पार्टी सरकार ने उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश पिनाकी चन्द्र घोष को केन्द्र सरकार के अन्तर्गत भारत का प्रथमलोकपाल नियुक्त किया है।

2. लोक शिकायत निदेशालय –

केन्द्रीय स्तर पर लोकशिकायत निदेशालय के रूप में एक स्वतंत्र शिकायत निवारण तंत्र की व्यवस्था मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय में 1–04–1988 से आरम्भ की गई। प्रारम्भ में यह निदेशालय रेल, डाक, दूर संचार, बैंकिग तथा बीमा प्रभाग से सम्बन्धित शिकायतों के निवारण का कार्य करता था। किंतु 1989 से तीन अन्य मंत्रालय यथा नागर विमानन, परिवहन तथा शहरी विकास मंत्रालय को भी इसके कार्यक्षेत्र में सम्मिलित किया गया हैं।

3. कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय –

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए 4 मार्च 1985 को एक पृथक मंत्रालय की स्थापना की गई। इसे कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय का नाम दिया गया। यह मंत्रीमण्डल सचिवालय के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में स्थापित 'लोक शिकायत निदेशालय' को यह प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराता है। इसी प्रकार केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो तथा केन्द्रीय सर्तकता आयोग को भी नीतिगत मामलों में प्रशासनिक सहायता प्रदान करता है। यह मंत्रालय सामान्य रूप में प्रशासन से सम्बन्धित जन शिकायतों को दूर करने और केन्द्रीय सरकार के अभिकरणों से सम्बन्धित जनशिकायतों को दूर करने और केन्द्रीय सरकार के अधिकरणों से सम्बन्धित शिकायतों के निवारण से सम्बन्धित नीति निर्धारण और उपायों में समन्वय स्थापित करने के लिए उत्तरदायी है।

4. मंत्रालय/विभागीय सर्तकता समितियाँ –

भारत में केन्द्रीय स्तर पर जनशिकायतों के निराकरण के लिए प्रत्येक **मंत्रालय/विभाग** में **विभागीय सतर्कता समितियों** का गठन किया गया है। मंत्रालय अपने सभी विभागो से सम्बन्धित जनशिकायतों की सुनवाई करता है। इसके लिए प्रत्येक

मंत्रालय/विभाग में सप्ताह के एक दिन(बुधवार) को बैठक विहित दिवस में तीन घण्टे(10 से 1 बजे तक) जनसुनवाई के लिए निर्धारित किए गये हैं। इस अवसर पर मंत्रालय के उपसचिव एवं उससे ऊपर के अधिकारियों का व्यक्तिगत तौर पर अपने विभाग में उपस्थित रहना अपेक्षित है।

5. केन्द्रीय सतर्कता आयोग –

भारतीय संघीय सरकार को सलाह तथा मार्गदर्शन देने हेतु श्री के.संथानम् की अध्यक्षता में बनी 'भ्रष्टाचार निवारण समिति' की सिफारिशों पर सरकार ने फरवरी 1964 में केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की।[50]

केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना एक शीर्षस्थ सतर्कता संस्था के रूप में की गई है जो केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत सभी सतर्कता गतिविधियों की निगरानी करता है एवं केन्द्रीय सरकारी संगठनों में विभिन्न प्राधिकारियों को उनके सतर्कता कार्यों की योजना बनाने, निष्पादन करने तथा सुधार करने सलाह देता है।

राष्ट्रपति द्वारा एक अध्यादेश जारी किए जाने के फलस्वरूप वर्तमान में केन्द्रीय सतर्कता आयोग को 25 अगस्त 1998 से ''सांविधिक दर्जा'' देकर एक बहुसदस्यीय आयोग बनाया गया है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग विधेयक को संसद के दोनों सदनों द्वारा वर्ष 2003 में स्वीकृत किया गया तथा राष्ट्रपति ने 11 सितम्बर 2003 को इस विधेयक को अपनी स्वीकृति प्रदान की। इस प्रकार केन्द्रीय सतर्कता अधिनियम 2003 उसी तिथि से प्रभावी हो गया। अप्रेल 2004 के 'जनहित प्रकटीकरण तथा मुखबिर की सुरक्षा' पर भारत सरकार के संकल्प द्वारा भारत सरकार ने इसको भ्रष्टाचार के किसी भी दुरुपयोग करने सम्बन्धित लिखित शिकायतें प्राप्त करने अथवा कार्यालय की सिफारिश करने वाली एक नामित ऐजेन्सी के रूप में भी प्राधिकृत किया है।

1. आयोग की संरचना – आयोग की संरचना निम्न प्रकार से है :

(i)एक केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त (अध्यक्ष)

(ii) सतर्कता आयुक्त, जिसकी संख्या दो से अधिक नहीं होगी (सदस्य)

2. आयोग का संगठन –केन्द्रीय सतर्कता आयोग का अपना स्वयं का सचिवालय, मुख्य तकनीकी परीक्षक खण्ड तथा एक विभागीय जाँच आयुक्त खण्ड है।

3. केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम के अन्तर्गत आयोग का अधिकार क्षेत्र –

1. अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य जो संघ के कार्यों के संबंध में सेवा कर रहे है तथा केन्द्रीय सरकार के समूह 'क' अधिकारी।

2. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में श्रेणी V के स्तर के तथा उससे उपर के स्तर के अधिकारी।

3. भारतीय रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा सिडबी में श्रेणी 'घ' तथा इससे उपर के स्तर के अधिकारी।

4. अनुसूची 'क' तथा 'ख' सार्वजनिक उपक्रमो में मुख्य कार्यपालक तथा कार्यपालक मण्ड़ल एवं ई–8 तथा इससे उपर के अन्य अधिकारी।

5. अनुसूची 'ग' तथा 'घ' सार्वजनिक उपक्रमों में मुख्य कार्यपालक तथा कार्यपालक मण्डल एवं ई –7 तथा इससे उपर के अन्य अधिकारी ।

6. सामान्य बीमा कंपनियों में प्रबंधक एवं इससे उपर के अधिकारी ।

7. जीवन बीमा निगमों में वरिष्ट मण्डलीय प्रबन्धक एवं इससे उपर के अधिकारी ।

8. समितियों तथा अन्य स्थानीय प्रधिकरणों में अधिसूचना की तिथि को तथा समय–समय पर यथासंशोधित अनुसार केन्द्र सरकार डी.ए प्रतिमान पर 8700/– रू0 प्रतिमाह तथा इससे ऊपर वेतन पाने वाले अधिकारी।

4. केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम 2003 के अंतर्गत केन्द्रीय सतर्कता आयोग के अधिकार एवं कार्य –

1. दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) के कार्यकरण का अधीक्षण करना जहाँ तक वह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन अपराधों अथवा लोक सेवकों की कतिपय श्रेणियों के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत किसी अपराध के अन्वेषण से सम्बन्धित है –अनुभाग 8(1) (क);
2. दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) को अधीक्षण के लिए निदेश देना जहाँ तक इनका संबंध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अर्न्तगत अपराधो के अन्वेषण से है –अनुभाग 8(1) (ख);
3. केन्द्रीय सरकार द्वारा भेजे गए किसी संदर्भ पर जाँच करना अथवा जाँच या अन्वेषण करवाना –अनुभाग 8(1) (ग);
4. केन्द्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 की धारा 8 की उपधारा 2 में विनिर्दिष्ट पदाधिकारियो के ऐसे प्रवर्ग से संबंधित किसी पदाधिकारी के विरूद्ध प्राप्त किसी शिकायत में जांच करना या जांच अथवा अन्वेषण करवाना –अनुभाग 8 (1) (घ);
5. **भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988** के अधीन अभिकथित रूप से किए गए अपराधों में अथवा दण्ड प्रकिया संहिता के अर्न्तगत किसी अपराध में दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किए गए अन्वेषणों की प्रगति का पुनर्विलोकन करना –अनुभाग 8 (1) (ड.);

6. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम,1988 के अभियोजन की मंजूरी के लिए सक्षम प्राधिकारियों के पास लंबित आवेदनों की प्रगति का पुनर्विलोकन करना –अनुभाग 8 (1) (च);
7. केन्द्रीय सरकार तथा इसके संगठनों को ऐसे मामलों पर सलाह देना जो इनके द्वारा आयोग को भेजे जाएंगें –अनुभाग 8 (1) (छ);
8. विभिन्न केन्द्रीय सरकारी मंत्रालयों, विभागों तथा केन्द्रीय सरकार के संगठनों के सतर्कता प्रशासन पर अधीक्षण रखना –अनुभाग 8 (1) (ज);
9. किसी भी जाँच का संचालन करते समय आयोग को सिविल न्यायालय के सभी अधिकार प्राप्त होंगे –अनुभाग 11;
10. संघ के कार्यों से संबंधित लोक सेवाओं तथा पदों पर नियुक्त व्यक्तियों से संबंधित अथवा अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों से संबंधित सतर्कता अथवा अनुशासनिक मामलों का नियंत्रण करने वाले कोई भी नियम अथवा विनियम बनाने से पहले आयोग से किए जाने वाले अनिवार्य परामर्श पर केन्द्र सरकार को उत्तर देना –अनुभाग 19;
11. केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त उस समिति के अध्यक्ष है तथा दोनों सतर्कता आयुक्त सदस्य हैं जिसकी सिफारिशों पर केन्द्रीय सरकार, प्रवर्तन निदेशक कि नियुक्ति करती है–अनुभाग 25;
12. प्रवर्तन निदेशक की नियुक्ति से संबंधित समिति को यह अधिकार भी है कि वह प्रवर्तन निदेशालय में उप निदेशक तथा इससे उपर के स्तर के पदों पर अधिकारियों की नियुक्ति के लिए, प्रवर्तन निदेशक से परामर्श करने के पश्चात अपनी सिफारिशे दें –अनुभाग 25;
13. केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त उस समिति के अध्यक्ष है तथा दोनो सतर्कता आयुक्त सदस्य है जिसे दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) में पुलिस अधीक्षक तथा इन अधिकारियों के कार्यकाल का विस्तारण अथवा लघुकरण करने के लिए, निदेशक (केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो) से परामर्श करने के पश्चात् अपनी सिफारिशें देने का अधिकार प्राप्त है–अनुभाग 26 तथा दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 का अनुभाग 4 (ग);

6.केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो[51]–

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की स्थापना वर्ष 1941 में भारत सरकार **ब्रिटिश सरकार** द्वारा **विशेष पुलिस स्थापना** (एसपीई) के तहत की गई थी । ये एसपीई तब युद्ध विभाग के

अन्तर्गत रखा गया था इसको द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत के युद्ध तथा आपूर्ति विभाग में लेने–देने में रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच पड़ताल का कार्य सौपा गया। युद्ध समाप्ति के बाद तत्कालीन केन्द्रीय सरकार को कर्मचारियों से सम्बन्धित रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच करने के लिए एक केन्द्रीय सरकार अधीन जाँच ऐजेन्सी को स्थापित करने की जरूरत महसूस हुई। इसलिए 1946 में दिल्ली विशेषपुलिस स्थापन अधिनियम को लागू किया गया। जिसने एसपीई के अधीक्षक को सभी विभागों तथा सभी संघ शासित किया गया। राज्य सरकार की सहमती से राज्य में भी इसका कार्य क्षेत्र लागू किया जा सकता था।

डी.ए.पी.ई. ने गृहमंत्रालय के दिनांक 01.04.1963 के संकल्प के द्वारा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों के नाम से अपना कार्य शुरू किया। आरम्भ में इसे केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार सम्बन्धी मामलों के लिए अधिसूचित किया लेकिन बाद में सरकारी उपक्रमों के कर्मचारियों को तथा सन् 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण हो जाने के बाद सरकारी बैंको और उनके कर्मचारियों को भी इसके जाँच के दायरे में लाया गया।

वर्ष 1965 में इसे आर्थिक अपराधों और परम्परागत स्वरूप के अपराधो (हत्या, अपहरण, आतंकवादी अपराध) के चुनिन्दा मामलो की जाँच का कार्य सौपा गया ।

केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरों का संगठन इस प्रकार से है –

(i)संगठन –एस.पी.ई. के आरम्भ में दो विंग थे –

1. सामान्य अपराध विंग (जी.ओ.डब्ल्यू.) – सामान्य अपराध विंग केन्द्रीय सरकार और सरकारी क्षेत्र के उपकमो के कर्मचारियों को जो रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार में लिप्त थे उनकी जाँच करता था।

2. आर्थिक अपराध विंग – आर्थिक अपराध विंग आर्थिक/राजकोषीय नियमों के उल्लंघन के विभिन्न मामलों की जाँच करता था। वर्ष 1987 में यह निर्णय लिया गया था कि के.अ. ब्यूरो में दो जाँच प्रभागों अर्थात् (i)भ्रष्टाचार निरोधक प्रभाग और (ii) विशेष अपराध प्रभाग का गठन भी किया जाए और इस प्रकार बाद में आर्थिक अपराधों के साथ ही साथ परम्परागत अपराधों की जाँच की जाने लगी।

वर्तमान में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो भारत सरकार के कार्मिक, पेंशन तथालोक शिकायतमंत्रालय के अधीन कार्यरत है। यह भारत में प्रधान अन्वेषण पुलिस ऐजेन्सी है। लोक जीवन में मूल्यों के रक्षण एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुचारू बनाये रखने में यह अपनी उत्कृष्ट भूमिका निभा रहा है। भारत में यह नोडल पुलिस एजेंसी भी है। जो

इन्टरपॉल के सदस्य राष्ट्रों के अन्वेषण का समन्वयन करता है। वर्षों से के.अ.ब्यूरो ने व्यवसायिकता तथा सत्यनिष्ठा की धारणा को निर्मित किया है। देश के सभी प्रमुख अन्वेषणों में इसके अन्वेषण अधिकारियों की सेवायें ली जाती है। सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों, संसद तथा जन सामान्य के द्वारा एक संस्था के रूप में केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। अन्तर्राज्यीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय निहितार्थों से (प्रशासन) युक्त सभी अपराधों का अन्वेषण इसको करना होता है। आपराधिक आसूचना के एकत्रण से सम्बन्धित तीन प्रमुख क्षेत्रों यथा भ्रष्टाचार निरोधक, आर्थिक अपराध तथा विशिष्ठ अपराध में भी ये शामिल है।

(ii)केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की भूमिका –

के.अ.ब्यूरों की अपराध निरोधक प्रभाग मुख्य मंत्रियों, शासन सचिवों, अखिल भरतीय सेवा के अधिकारियो, बैकों, वित्तिय संस्थानों तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के सी.एम.डी. के विरूद्ध मामलों को संभालता है। के.अ.ब्यूरो के अन्वेषणों का राष्ट्र के राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव है। के.अ.ब्यूरो द्वारा आपराधिक मामलों की निम्नलिखित विस्तृत वर्गीकरण को सम्भाला जाता है–

1. सभी केन्द्र सरकार के विभागों, केन्द्रीय लोक उद्यम क्षेत्रों तथा केन्द्रीय वित्तीय संस्थानों के लोक सेवकों द्वारा किए गए भ्रष्टाचार तथा धोखाधड़ी के मामले।
2. आर्थिक अपराध, जिसमें बैकिंग, वित्तीय धोखाधड़ी, आयात निर्यात एवं विदेशी विनिमय उल्लंघन, मादक प्रदार्थों, पुरातनिक, सांस्कृतिक सम्पत्तियों की बड़े पैमाने पर तस्करी तथा अन्य निषिद्ध वस्तुओं की तस्करी इत्यादि।
3. विशिष्ट अपराध, जैसे आतंकवाद, बम विस्फोट, सनसनीखेज नरहत्या, फिरौती के लिए अपहरण तथा माफिया/अंडरवर्ड द्वारा किए गए अपराध।

के.अ.ब्यूरो का मुखिया एक निदेशक है। के.अ.ब्यूरो में पुलिस रैंक के अधिकारी विशेष निदेशक/अतिरिक्त निदेशक, संयुक्त निदेशक, पुलिस उपमहानिरीक्षक, निरीक्षक, उप–निरीक्षक, सहायक उप–निरीक्षक, प्रधान सिपाही तथा सिपाही है। सभी रैंकों की कुल स्वीकृत पुलिस संख्या 4078 है। प्रशासनिक स्टॉफ की कुल स्वीकृत संख्या 1284 है।

(iii)के.अ.ब्यूरो का अधीक्षण –

सी.वी.सी. अधिनियम दिनांक 12.09.2003 की अधिसूचना के अनुसार, के.अ.ब्यूरो का अधीक्षण, जहाँ तक भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत किए गए अपराध के अन्वेषण से सम्बन्धित है, केन्द्रीय सतर्कता आयोग में निहित है।

(iv)शक्तियाँ विशेषाधिकार तथा दायित्व –

के.अ.ब्यूरो की अन्वेषण सम्बन्धी शक्तियाँ दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना, 1946 से प्राप्त है। यह अधिनियम दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना (के.अ.ब्यूरो) के सदस्यों के साथ केन्द्र शासित प्रदेशों के पुलिस अधिकारियों को समाधिकारी तथा सहवर्ती शक्तियाँ, कर्त्तव्य विशेषाधिकार तथा दायित्व प्रदान करती है। केन्द्र सरकार केन्द्र शासित क्षेत्रों के अलावा सम्बन्धित राज्य सरकार की स्वीकृति से के.अ.ब्यूरो के अन्वेषण के सदस्यों की शक्तियों तथा क्षेत्राधिकार को बढ़ा सकती है। इन शक्तियों का प्रयोग करते समय के.अ.ब्यूरो के सदस्य, उप–निरीक्षक या उसके ऊपर के रैंक के अधिकारी सम्बन्धित क्षेत्राधिकार के पुलिस स्टेशनों के प्रभारी अधिकारी होंगे। के.अ.ब्यूरो केवल उन्हीं अपराधों का अन्वेषण कर सकती है जोकि केन्द्रीय सरकार द्वारा दि.वि.पु.स्था. अधिनियम द्वारा अधिसूचित किया गया।

(v)के.अ.ब्यूरो की राज्य पुलिस की तुलना में क्षेत्राधिकार –

कानून और व्यवस्था राज्य का विषय है तथा अपराध के अन्वेषण करने की मौलिक क्षेत्राधिकार राज्य पुलिस में निहित है। इसके अलावा, सीमित संसाधनों के कारण के.अ.ब्यूरो सभी तरह के अपराधों का अन्वेषण नहीं कर सकती। के.अ.ब्यूरो निम्नलिखित मामलों में अन्वेषण कर सकती है–

1. मामले जो पूर्णतः केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के विरूद्धहो या केन्द्र सरकार के मामलो से सम्बन्धित हो।
2. मामले जिसमें केन्द्र सरकार के वित्तीय हित निहित हो।
3. मामले जो केन्द्रीय विधि के भंग होने से सम्बन्धित हो जिसके प्रवर्तित होने से भारत सम्बद्ध हो।
4. कम्पनियों के धोखाधड़ी, जालसाजी, गबन और ऐसे मामले जिसमें बड़ी पूंजी शामिल हो तथा ऐसे दूसरे मामले जो संगठित गिरोह तथा पेशेवर अपराधियों द्वारा किए गये हो जिनका सम्बन्ध कई राज्यों से हो।
5. मामले जो अन्तर्राज्यीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रशाखन (International Ramification) युक्त हो तथा जिसमें विभिन्न शासकीय एजेंसिया शामिल हो, जहाँ सभी दृष्टिकोण से यह अनिवार्य समझा जाए कि एक अकेली अन्वेषण एजेन्सी को उक्त अन्वेषण का प्रभारी होना चाहिए।

इस प्रकार वर्तमान भारत में एक सुदृढ़ जन शिकायत निवारण तन्त्र के अन्तर्गत उपरोक्त संस्थाओं की स्थापना की गई है जो प्रशासन में सुशासन लाने के लिए कटिबद्ध हैं।

5. तुलनात्मक विश्लेषण–

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक नीतिशास्त्रीय मूल्यों का वर्तमान भारतीय प्रशासन में प्रचलित प्रशासनिक नीतिशास्त्रीय मूल्यों से एक तुलनात्मक विश्लेषण निम्नलिखित है –

तालिका 5.4

प्रशासकीय नीति शास्त्रीय मूल्यों का तुलनात्मक विश्लेषण

क्र. सं.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक नीतिशास्त्रीय मूल्य	वर्तमान भारतीय प्रशासन में प्रचलित प्रशासनिक नीतिशास्त्रीय मूल्य
1.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशानिक नीतिशास्त्रीय मूल्य धार्मिक ग्रंथों (त्रयी तीन वेद) एवं प्राचीन दर्शन पर आधारित थे।	वर्तमान भारतीय संघीय प्रशासनिक व्यवस्था में प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय मूल्य संविधान द्वारा लोक सेवकों के लिये निर्धारित किये गये आचरण नियमों पर आधारित है।
2.	कौटिल्य ने दो प्रकार के नीतिशास्त्रीय मूल्यों का वर्णन किया है। (1) अनिवार्य नीतिशास्त्रीय मूल्य एवं (2) प्रशासनिक नीतिशास्त्रीय मूल्य ।	वर्तमान भारतीय प्रशासन में एक ही प्रकार के प्रशासनिक नीतिशास्त्रीय मूल्यों को वर्णित किया है। जो केवल लोक सेवकों के लिये निर्धारित किये गये हैं।
3.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इन मूल्यों के अन्तर्गत स्वधर्म, इन्द्रिजय, कुलीनता, ईमानदारी, स्वामिभक्ति, सद्चरित्रता, सक्षमता, गोपनीयता, मितव्यता इत्यादि को सम्मिलित किया था।	वर्तमान भारतीय प्रशासन में इन मूल्यों के अन्तर्गत निष्पक्षता, जवाबदेयता, खुलापन, एकनिष्ठता, समता, ईमानदारी, संवेदनशीलता, पारदर्शिता, सक्षमता अनामता व सद्चरित्रता को शामिल किया है।
4.	कौटिल्य अर्थशास्त्र में राजतन्त्रात्मक प्रशासन का वर्णन है तथा कौटिल्य एक व्यावहारिक	वर्तमान भारतीय प्रशासन लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यरत है।

	चितंक थे अतः राजनीतिक हित एवं लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अनैतिक मूल्यों (साम, दाम, दण्ड, भेद) के प्रयोग का समर्थन करते थे।	अतः राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति हेतु अनैतिक मूल्यों का निषेध करता है।
5.	कौटिल्य अर्थशास्त्र में इन मूल्यों के अन्तर्गत सद्चरित्रता के सम्बन्धित मूल्य को सर्वाधिक महत्व दिया गया था। इसकी जाँच के लिए विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं का उल्लेख भी किया है।	वर्तमान भारतीय प्रशासन में लोकसेवा में कार्यरत लोक सेवकों के लिए सद्चरित्र होने पर बल तो दिया है परन्तु उसकी जाँच के लिए किसी प्रकार के परीक्षण की व्यवस्था नहीं की गई है।
6.	कौटिल्य ने राजा एवं राजकर्मचारियों दोनों के लिए ही अलग–अलग आचरण नियमों के पालन का वर्णन किया है।	वर्तमान भारतीय प्रशासन में केवल लोक सेवकों के लिए ही आचरण नियमों के पालन का उल्लेख किया है।
7.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में लिखित रूप में आचरण नियमों का वर्णन तो किया है परन्तु वे सीमित है।	वर्तमान भारत में लोक सेवकों के लिए निर्धारित आचरण नियमों की लिखित व्यवस्था है एवं उनका विस्तार से विवरण भी मिलता है ये हैं– 1. अखिल भारतीय सेवा नियम 2. केन्द्रीय सेवा नियम 3. रेलवे सेवा नियम।
8.	कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इन मूल्यों के उल्लघंन करने पर दण्ड हेतु संस्थात्मक व्यवस्था की गई थी।इसमें राजा, पुरोहित, समाहर्ता, विभागीय अध्यक्ष, गुप्तचर विभाग एवं न्यायालय इत्यादि सम्मिलित थे।	वर्तमान भारतीय प्रशासन में भी इन मूल्यों के संरक्षण हेतु त्रिस्तरीय जनशिकायत निराकरण तंत्र की व्यवस्था है। जो केन्द्रीय, राज्य एवं जिला स्तर पर कार्यरत है। इसमें मुख्यतः संघीय स्तर पर लोकपाल, कार्मिक, लोक शिकायत पेंशन मंत्रालय, केन्द्रीय सतर्कता आयोग, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो एवं उच्चतम न्यायालय शामिल है।
9	कौटिल्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था में इन मूल्यों की अवेहलना पर कठोर एवं तात्कालिक दण्ड की व्यवस्था थी। इसमें जुरमाना एवं मृत्युदण्ड तक शामिल था।	वर्तमान भारतीय प्रशासन के सन्दर्भ में इन मूल्यों की अवहेलना पर लम्बी, धीमी गति से होने वाली, जटिल विभागीय जाँच प्रक्रिया को अपनाया गया है। संविधान के

		अनुच्छेद 311 में वर्णित प्रावधान लोक सेवकों को संरक्षण देता है। प्रशासन में सुशासन एवं प्रशासकीय नैतिकता का विकास करने हेतु इस अनुच्छेद में संशोधन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ –

(References)–

1. चाणक्य सूत्र, (42)

2.गोयल, अरूणा, ''**गुड गवर्नेस एण्ड एनशियन्ट संस्कृत लिटरेचर**'' दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 2003 पृष्ठ 138

3. वैकेंटश्वरम्, सी.वी., ''**द इथिक्स ऑफ पुराणाज**'' इन कल्चरल हैरिटेज ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम.II, रामकृष्ण मिशन, कल्चरल सेन्टर, कलकत्ता, 2001, पृष्ठ 287

4. मूर्ति, सी.एस.बी., ''**बिजनेस इथिक्स**'' हिमालया पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, 2004, 1.3

5. गोयल, अरूणा, ''**गुड गवर्नेस एण्ड एनशियन्ट संस्कृत लिटरेचर**'' दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 2003 पृष्ठ 137

6. मेहता,डॉ. अनिल, दयाल, डॉ.पी.,शर्मा, प्रीति,''**बिजनेस इथिक्स एण्ड इथोस,**'' आर.बी.डी. प्रोफेशनलस पब्लिकेशनस्, जयपुर, 2013,14.2

7. उपर्युक्त से

8. मूर्ति, सी.एस.बी. ''**बिजनेस इथिक्स**'' हिमालय पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, 2004

9. मेहता, डॉ. अनिल, दयाल, डॉ.पी., शर्मा, प्रीति,''**बिजनेस इथिक्स एण्ड इथोस,**'' आर.बी. डी.प्रोफेशनलस पब्लिकेशनस्, जयपुर, 2013,14.21

10. मुखोपाध्याय, अशोक कुमार, ''**इथिक्स इन गवर्नेंस : आइडेन्टीफाईग द क्यूसियल इश्यूज**'' पब्लिशड इन द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेश्न, वाल्यूम. एलआईएक्स (LIX), जुलाई–सितम्बर 2013, पृष्ठ 473

11. एम.लक्ष्मीकान्त, ''**लोक प्रशासन**'' टाटा मेकग्रा हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 2012, पृष्ठ 7.26

12. मेहता, डॉ. अनिल, दयाल, डॉ.पी., शर्मा, प्रीति,''**बिजनेस इथिक्स एण्ड इथोस,**'' आर.बी. डी.प्रोफेशनलस पब्लिकेशनस्, जयपुर, 2013,14.11, 14.12

13. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 1,(2)

14. उपर्युक्त, 1,(2)

15. उपर्युक्त, 1,(5)

16. उपर्युक्त, 1,(8)

17. उपर्युक्त, 1,(9)

18. उपर्युक्त, 1,(9)

19. उपर्युक्त, 1,(14)

20. उपर्युक्त, 4,(8)

21. उपर्युक्त, 1,(6)

22. गोयल, एस.एल., ''**इथिकल गवर्नेंस एण्ड सोसायटी, पॉलिटिक्स, एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन**'' पब्लिशड इन द जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वॉल्यूम.एलआईएक्स (LIX), जुलाई–सितम्बर, 2013, पृष्ठ 480–481

23. मैदुरी, उमा, ''**पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन द ग्लोबलाइजेशन इरा,**'' पब्लिशड बाय ऑरियण्ट ब्लेक स्वान्, प्रायवेट लिमिटेड, न्यूदेहली, 2010, पृष्ट 190

24. कौटिलीय अर्थशास्त्रम् 1,(18)

25. उपर्युक्त, 1,(6)

26. उपर्युक्त, 1,(6)

27. उपर्युक्त, 3,(1)

28. उपर्युक्त, 3,(16)

29. उपर्युक्त, 1,(4)

30. उपर्युक्त, 4,(13)

31. उपर्युक्त, 5,(4)

32. अवस्थी एवं अवस्थी, **''भारतीय लोक प्रशासन'',** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 332

33. धारीवाल, सु नील, ''**राजस्थान सिविल सेवा आचरण नियम एवं राजस्थान सिविल सेवा वर्गीकरण, नियन्त्रण व अपील नियम,**'' ह.च.मा.राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान, जयपुर, 2011, पृष्ठ 4—11

34. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1, (2)

35. उपर्युक्त, 4,(9)

36. उपर्युक्त, 4,(9)

37. उपर्युक्त, 1,(8)

38. उपर्युक्त, 1,(8)

39. उपर्युक्त, 1,(6)

40. उपर्युक्त, 1,(11)

41. उपर्युक्त, 2,(9)

42. उपर्युक्त, 2,(35)

43. अवस्थी एवं अवस्थी, **''भारतीय लोक प्रशासन'',** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 551

44. नं. 1 ऑफ 2014, ''**द गजट ऑफ इण्डिया,**'' मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस

45. **लोकपाल एवं लोकायुक्त एक्ट, 2013,** प्रावाधान 3(1),(2)(a),(3)

46. उपर्युक्त, प्रावाधान 3,(2),(b)

47. उपर्युक्त, प्रावाधान 3,(4)

48. उपर्युक्त, प्रावाधान 4,(1),(c)

49. उपर्युक्त, प्रावाधान 8,(1),(2)

50. अवस्थी एवं अवस्थी, **''भारतीय लोक प्रशासन'',** लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2016, पृष्ठ 545

51. **http://cbi.nic.in/hn/abowtus/cbiroles.php,2/27/2017.**

अध्याय–षष्ठ

सारांश एवं निष्कर्ष

1. कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय प्रशासन में कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी विमर्श
2. कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय प्रशासन में वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी विमर्श
3. प्रशासकीय नीतिशास्त्र अवधारणा एवं मूल्यात्मक विमर्श

अध्याय–षष्ठ

सारांश एवं निष्कर्ष

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र उस प्राचीन भारतीय प्रशासनिक चिन्तन एवं प्रणाली का सार संक्षेप उपलब्ध कराता है जो वाल्मीकि रामायण, महाभारत के शान्ति पर्व, मनुस्मृति के आख्यानों तथा वैदिक साहित्य के यत्र–तत्र विरचित की गई है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय प्रशासन में सुशासन की तत्कालीन प्रचलित परम्पराओं, धारणाओं, मान्यताओं इत्यादि का व्यवहारिक एवं सारगर्भित रुप कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में दिखाई देता है जो मौर्य काल में व्यवहारगत रुप से प्रभावी रही तथा प्राचीन भारतीय प्रणाली की परम्पराओं के स्वर्णकाल रुप में मानी गई।

जबकि वर्तमान भारतीय प्रशासन तंत्र विगत 1000 वर्षों के इतिहास का समेकित प्रतिफल है, जो सल्तनतकाल एवं मुगलकाल की राजस्व एवं कानून व्यवस्थाओं प्रणालियों तथा ब्रिटिश काल के प्रशासनिक दर्शन, संगठन एवं प्रक्रियाओं से प्रभावित रहा है एवं उनका प्रतिफल रहा है। उक्त दोनों (कौटिल्य कालीन एवं वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था) का तुलनात्मक विवेचन विशेषतः सुशासन के सन्दर्भ में उनके पर्यावरण एवं नीति मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है।

जहाँ एक ओर कौटिल्यकालीन शासन प्रणाली धर्म (कर्त्तव्य)[1] को सम्प्रभु शक्ति के रुप में मानती थी तथा सत्यनिष्ठा एवं कर्त्तव्य के मूल आधारों पर स्थापित थी। वहीं वर्तमान व्यवस्था संवैधानिक सर्वोच्चता पर आधारित है, जो विधि के शासन, विधि की सर्वोच्चता तथा विधि के समान संरक्षण पर टिकी हुई है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रणाली एक राजतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। जिससे निरंकुशता के साथ–साथ लोकतांत्रिकता के गुणों का समावेश था। जबकि वर्तमान भारतीय प्रशासन लोकतांत्रिक मूल्यों के निर्वहन का पेरोकार है। वस्तुत कौटिल्यकृतकालीन शासन प्रणाली एक एकात्मक एवं केन्द्रीयकृत सत्ता नियंत्रण वाली धर्म आधारित राजतंत्रात्मक प्रणाली रही है, जबकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली एक संघात्मक, केन्द्रानीत, (केन्द्र की ओर झुकाव) शक्ति पृथक्करण, नियंत्रण एवं सन्तुलन के आधारों पर स्थापित मंत्रालयी एवं विभागीय प्रणाली पर आधारित कार्य विभाजन पर अवलम्बित है।

उक्त दोनों प्रणालियों का तुलनात्मक विवेचन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। उक्त दोनों प्रणालियों/व्यवस्थाओं में ही राज्य में सुशासन स्थापित करने का प्रयास किया गया था। वर्तमान अध्याय मूलतः इन दोनों व्यवस्थाओं के उन तत्वों को एकजायी करने के

उद्देश्य से लिखा गया है जो वर्तमान शासन व्यवस्था में सुशासन को बढ़ावा देने में सहायक हो सके।

1. कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय प्रशासन में कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी विमर्श –

कार्मिक प्रशासन के विभिन्न आयामों यथा अधिकारियों/कार्मिकों का चयन, नियुक्ति, पदस्थापन, स्थानान्तरण, पदोन्नति, सेवा शर्तें एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही के सम्बन्ध में वर्तमान समकालीन व्यवस्था एवं कौटिल्यकालीन तंत्र की अध्याय तृतीय में की गई तुलना के विवरण से यह स्पष्ट है कि कौटिल्यकालीन कार्मिक प्रशासन में अनेक तत्व ऐसे रहे है। जो सुशासन को बढ़ावा देने वाले थे तथा आज की संस्थानिक व्यवस्था में भी उन्हें अन्तरःसमायोजित कर इसे अधिक समुन्नत किया जा सकता है।

वर्तमान व्यवस्था में सुशासन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से जिन प्रणालियों/व्यवस्थाओं तथा प्रक्रियाओं को परिवर्तित रुपों में या अन्यथा समावेशित किया जा सकता है। वे निम्न हो सकती है –

(अ) कौटिल्यकालीन कार्मिक प्रशासन में कार्मिकों की चयन प्रणाली में ली जाने वाली परीक्षाओं में **धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा** तथा **भयोपधा** सम्मलित रही हैं[2] अर्थात् व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक योग्यताओं के अतिरिक्त उसकी हृदय की पवित्रता, आर्थिक शुचिता, चारित्रिक नैतिकता, साहस आधारित आचरण पर अत्यन्त बल रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण चयन प्रक्रिया केवल उम्मीदवारों के बौद्धिक एवं मानसिक स्तर के परीक्षणों पर ही आधारित है। चारित्रिक उन्नयन, सत्य निष्ठा एवं अन्य मूल्यों के पर्याप्त परीक्षण के अभाव में चयनित कार्मिकों से सुशासन अर्थात् धर्म/नियम आधारित शासन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। चारित्रिक दोष व्यक्ति एवं संस्थाओं तथा परिणामस्वरुप सम्पूर्ण तन्त्र को समाप्त कर देते है। अतः सुशासन के उद्देश्य से यह अनिवार्य है कि वर्तमान चयन प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन कर बौद्धिक एवं मानसिक परीक्षणों के साथ–साथ चारित्रिक परीक्षणों को भी बढ़ावा दिया जाए तथा नवीनतम मनोविज्ञान आधारित परीक्षणों को अनिवार्य रुप से परीक्षा का भाग बनाया जाए।

(आ) जहाँ तक चयनकर्त्ताओं के स्वयं के चयन का प्रश्न है इस सम्बन्ध में भी कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र अमात्यों की चयन प्रक्रिया से राजा एवं रानी को पृथक रखने का नियम प्रतिपादित करता है।[3] इसे वर्तमान सन्दर्भों में राजनीतिक हस्तक्षेप से स्वतन्त्र चयन प्रक्रिया के रुप में समझा जा सकता है। वर्तमान व्यवस्था चयन संस्थाओं में नियुक्त होने वाले चयनकर्त्ता की योग्यता के सम्बन्ध में कोई विस्तृत प्रावधान नहीं करती है। संविधान का

अनुच्छेद 316[4] इस सम्बन्ध में केवल सीमित अर्हताओं का ही विवरण देता है। जो चयन प्रक्रिया में राजनीतिक हस्तक्षेप का बढ़ावा देती है। अतः सुशासन की दृष्टि से अनुच्छेद 316 में संशोधन कर स्वयं चयनकर्त्ताओं के चयन की व्यवस्थाओं को अधिक स्वतन्त्र, पारदर्शी एवं विश्वसनीय बनाया जा सकता है।

(इ) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र भर्ती प्रणाली के **चतुवर्ण्य स्वधर्म सिद्धान्त**[5] पर आधारित आरक्षण का समर्थन करता है जो सीमित मात्रा में एवं समकालीन मूल्यों से प्रेरित था तथा व्यवस्था की गुणवत्ता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रेरित था। उक्त व्यवस्था को वर्तमान परिदृश्य में देखने पर वर्तमान प्रणाली में अपनायी गई आरक्षण व्यवस्था केवल समाज के विभिन्न वर्गों को शासन/प्रशासन में समुचित प्रतिनिधित्व देने का उद्देश्य रखती है। इसमें व्यवस्था की गुणवत्ता के मूल्य को नकारा गया है।

इस सम्बन्ध में आवश्यकता है कि सुशासन की दृष्टि से विभिन्न समुदायों एवं जाति वर्गों के प्रशासन में समुचित प्रतिनिधित्व के साथ–साथ व्यवस्था के गुणवत्ता के प्रश्न को भी पर्याप्त बल दिया जाये तथा वैकल्पिक समाधानों पर विचार किया जाये।

(ई) कौटिल्यकृत शासन प्रणाली के अन्तर्गत भर्ती प्रक्रिया में आवेदक की शैक्षणिक योग्यताओं की अपेक्षा उसकी वास्तविक क्षमताओं पर अत्यधिक बल दिया गया है। किसी भी कार्मिक की प्रभावशीलता (Effectiveness) इस तथ्य से निर्धारित होती है कि वह क्या करता है, न कि इस तथ्य से कि वह क्या जानता है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र प्रभावशाली नेतृत्व (Effective Leadership) के चयन पर अत्यधिक बल देता है।

वर्तमान समय में प्रशासन की अनेक संस्थाऐं इसी कारण से प्रभावोत्पादक नहीं हो पा रही हैं कि उसमें प्रभावकारी एवं लक्ष्योन्मुख नेतृत्वकर्त्ताओं का अभाव है। सुशासन की दृष्टि से व्यक्ति के नेतृत्वकारी गुणों को चयन के आधारों में सम्मलित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान चयन प्रणाली में उक्त तत्वों को समायोजित कर सुशासन की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

(उ) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र स्थानान्तरण जैसे कार्मिक मामलों में विस्तृत टिप्पणी नहीं करता है। किन्तु जहाँ भी इसका सीमित उल्लेख उपलब्ध है वहाँ यही तथ्य उजागर होता है कि उनके मतानुसार इस प्रक्रिया को कम अपनाया जाना चाहिए।

वर्तमान कार्मिक प्रशासन के उन्नयन में इस तथ्य का परिवर्तित स्वरुप अपनाया जा सकता है। जहाँ संघ सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में कार्मिकों के लिए एक स्पष्ट स्थानान्तरण नीति अपनाई गई है। राज्यों में यह स्थिति अत्यन्त खराब है तथा सरकारों के परिवर्तन के साथ ही बड़ी संख्या में कार्मिकों के भी राजनीतिक निष्ठागत आधारों पर

स्थानान्तरण होते रहते है। जिससे कार्मिकों के मनोबल का ह्रास होता है। उनकी राजनीतिक तटस्थता समाप्त होती है एवं राजनीतिक सरोकारों को बढ़ावा मिलता है, विभागीय कार्यकुशलता प्रभावित होती है एवं राज्य के संसाधनों का अपव्यय होता है। स्पष्टतः वर्तमान व्यवस्था में स्थानान्तरण की स्पष्ट नीतियों का निर्माण एवं उनका पारदर्शी क्रियान्वयन सुशासन को बढ़ावा देने में अत्यन्त सहायक होगा।

(ऊ) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में पदोन्नति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि ***"जो पदाधिकारी आदिष्ट कार्य को पूरा करके, स्वेच्छया किसी दूसरे हितकर कार्य को भी करता है, उसे तरक्की एवं सम्मान दिया जाना चाहिए।"***[6] स्पष्टतः कौटिल्यकालीन प्रशासन में पदोन्नति कार्मिक द्वारा अपने निर्धारित कार्य को पूर्ण करने तथा पहल करने से जुड़ी हुई थी। यह पूर्णतः योग्यता आधारित प्रणाली की तरह थी। जिसमें कार्मिक की राजकीय सेवा में सेवावधि के स्थान पर उसकी आवंटित कार्य के सम्बन्ध में प्रभावशीलता एवं कर्त्तव्यपरायणता को महत्त्व दिया गया था।

इस सम्बन्ध में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सुशासन की दृष्टि से व्यवस्था के उन्नयन की काफी सम्भावना है जहाँ कि अधिकांश पदोन्नतियाँ वरिष्ठता अथवा वरिष्ठता/योग्यता के सिद्धान्त पर आधारित है।[7] जिसके कारण प्रशासनिक अधिकारियों/कार्मिकों में अर्कमण्यता, सकारात्मक प्रतिस्पर्धा एवं प्रशासनिक पहल का अभाव बना रहता है। जो सुशासन के व्यापक लक्ष्य को प्रभावित करता है। इस सम्बन्ध में **कौटिल्यकृत प्रणाली जो वर्तमान निजी क्षेत्र के समान कार्मिक के आउटपुट एवं पहल पर आधारित थी, उसे वर्तमान शासकीय क्षेत्र में लागू किया जाना चाहिए।**

(ऋ) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन की वर्गीकरण प्रणाली के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु उनकी प्रणाली में विशेषज्ञता पर बल प्रतीत होता है। उन्हीं व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था जो उस पद के दायित्वों को पूर्ण करने के लिए पूर्व से ही सक्षम एवं निपुण होते थे। अधिकारियों के पूर्व निपुण एवं योग्य होने के कारण इस व्यवस्था में प्रशिक्षण की अत्यन्त सीमित आवश्यकताऐं थी। इन सन्दर्भों में यह प्रणाली पद वर्गीकरण के नजदीक प्रतीत होती है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में इसी कारण कार्मिकों के प्रशिक्षण विषयक वर्णन भी अत्यन्त सीमित मात्रा में उल्लेखित होते है। केवल उच्चतम स्तर (राजपुत्र) के लिए ही प्रशिक्षण पर बल दिया गया है।[8]

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था जो सामान्यज्ञ उन्मुख रही है उसमें उक्त तथ्य सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ तथा श्रेणी वर्गीकरण बनाम पद वर्गीकरण की पूर्व बहस के रुप में निरन्तर बना रहा है। **वर्तमान परिस्थितियों में बढ़ते विशिष्टीकरण एवं तकनीकी ज्ञान के**

कारण कौटिल्यकृत विशेषज्ञोन्मुखता को अपनाया जाना सुशासन की दृष्टि से एक श्रेष्ठ विकल्प हो सकता है।

(ए) कार्मिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष अनुशासनात्मक कार्यवाही है। कौटिल्यकृत शासन की एक सशक्त व्यवस्था त्वरित अनुशासनात्मक कार्यवाही थी। जिसके कारण राजकार्य में लापरवाही/देरी कारित करने वालों तथा भ्रष्ट आचारण करने वालों भय बना रहता था एवं त्वरित कार्यवाही से प्रशासन निरन्तर स्वच्छ जल की तरह बना रहता था।

वर्तमान समकालीन व्यवस्था में सुशासन को बढ़ावा देने की दृष्टि से इस क्षेत्र में बहुत कुछ सीखा जा सकता है। वर्तमान कार्मिकों को प्राप्त संविधान के अनुच्छेद 311[9] का संरक्षण, वर्गीकरण नियन्त्रण एवं अपील नियमों द्वारा निर्धारित लम्बी प्रक्रिया तथा तत्पश्चात् लोक सेवा आयोग एवं राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के स्तर की स्वीकृति एवं न्यायालयों के उपलब्ध बचाव, भ्रष्ट, लापरवाह एवं स्वेच्छा से अनुपस्थित कार्मिकों के विरुद्ध भी कार्यवाही को लम्बी और जटिल बनाते है। भ्रष्टाचार के मामलों में कार्यवाही हेतु विभागीय अभियोजन स्वीकृति की अनिवार्यता, अभियोजन स्वीकृति के दिये जाने में देरी अथवा उसका न दिया जाना भी कार्यवाही को असम्भव बना देते है। अतः इस सम्बन्ध में अनिवार्य है कि **कार्मिकों को संविधान के अनुच्छेद 311 के तहत उपलब्ध संरक्षण को सीमित एवं स्पष्ट किया जाए। विभागीय अभियोजन स्वीकृतियों में निर्धारित समयावधि व अन्य प्रक्रियाओं में भी स्पष्टता लायी जाये एवं समयबद्ध कार्यवाही सुनिश्चित की जाये।**

2. कौटिल्यकालीन एवं वर्तमान भारतीय प्रशासन में वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी विमर्श –

कौटिल्यकालीन प्रशासन व्यवस्था का एक सशक्त पक्ष उसका वित्तीय प्रबन्धन है। अर्थ की महत्त्ता को समझाते हुए अर्थशास्त्र में लिखा गया है कि

'मनुष्याणां वृत्तिरर्थ, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः,

तस्या पृथिव्या लाभ पालनोपायः शास्त्रमर्थ शास्त्रमिति।[10]

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का उक्त दर्शन समस्त साम्राज्य एवं राजनीतिक व्यवस्था को आर्थिक ढ़ाँचे पर स्थापित करता है। अर्थशास्त्र में प्रतिपादित **सप्तांग सिद्धान्त**[11] में भी राजा के पश्चात् **कोष** को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कौटिल्यकालीन वित्तीय प्रशासन के सभी पक्षों यथा कोष एवं कोष नीति, करारोपण, लेखांकन, लेखा परीक्षण इत्यादि का अर्थशास्त्र विस्तृत विवरण देता है। उक्त सभी पक्ष अत्यन्त वैज्ञानिक एवं सुस्थापित सिद्धान्तों पर आधारित रहे हैं। शोध के अध्याय चतुर्थ में कौटिल्यकालीन वित्तीय प्रशासन तथा वर्तमान भारतीय प्रशासन की समकक्ष व्यवस्थाओं का तुलनात्मक विवेचन

दर्शाया जा चुका है। कौटिल्यकालीन वित्तीय प्रशासन के अनेक सिद्धान्तों/प्रणालियों को आज भी अपनाया जा सकता है। जिससे वित्तीय प्रशासन में सुशासन के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित विभिन्न वित्तीय सिद्धान्त –

कोष –

अर्थशास्त्र के अनुसार ''सारे कार्य कोष पर निर्भर है, इसलिए राजा को चाहिए कि सबसे पहले कोष पर ध्यान दें।''[12] कौटिल्य ने **''कोष सम्पन्नता''** पर बल दिया है।[13] अर्थात् (अ) राजकोष ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्वजों की एवं अपनी धर्म की कमाई संचित हो। (ब) राजकोष भरा पूरा हो। जो दुर्भिक्ष एवं आपत्ति के समय सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा कर सके अर्थात् राजकोष घाटे में नहीं होना चाहिए। (स) इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में कोष को राजा के स्वयं के हित के लिए न होकर प्रजा के हित के लिए होना बताया गया है अर्थात् जनोन्मुखी एवं वृद्धि उन्मुखी लोक व्यय की अनुशंसा की गई है।

1. राजकोष के सम्बन्ध में उक्त तीनों नियम आज वर्तमान सन्दर्भ में अत्यधिक प्रासंगिक है। **''कोष सम्पन्नता''** राज्य की आन्तरिक सुदृढ़ता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आकंलन है। वर्तमान में राजकोषीय घाटे का अत्यधिक होना तथा घाट की अर्थव्यवस्था को अपनाया जाना सुशासन की दृष्टि से सही नहीं माना जा सकता है। अतः शासन को राजकोषीय घाटे को समाप्त कर लाभ की अर्थव्यवस्था की और जाने का प्रयास करना चाहिए। कोष सम्पन्नता के इस उपक्रम के लिए जरुरी है कि राजकीय धन को किन कार्यों में व्यय किया जाए। उसकी आवश्यकता एवं प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार किया जाये तथा अलाभकारी, राजनीति उन्मुख तथा दीर्घ एवं स्थाई वृद्धि से असम्बन्धित व्ययों को समाप्त कर कोष का रक्षण किया जाए।

2. इस सम्बन्ध में कौटिल्य का यह विचार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि कोष पूर्वजों की तथा धर्म की कमाई से संचित हो। वर्तमान शासन व्यवस्था में तम्बाकू, शराब, मादक पदार्थों के ठेके से कोष संचयन सुशासन की दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता है। इसके समाज, संस्कृति एवं राजकोष पर दूरगामी प्रभाव अत्यन्त नकारात्मक है। अतः शासन को कोष संग्रहण के वैकल्पिक एवं धर्म एवं समाज पर इसके दूरगामी संरक्षण आधारित उपाय खोजने चाहिए।

करारोपण –

प्राचीन भारतीय प्रणाली में मूलतः राजकर को निर्धारित करने वाले सारे नीति नियम यद्यपि धर्म ग्रन्थों द्वारा निर्धारित किये जाते थे तथापि उनको लागू करने से पूर्व उस पर

समाज की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य होता था। इस प्रकार धर्मशास्त्र द्वारा निर्धारित और समाज द्वारा स्वीकृत जो राजकर होता था वहीं लागू किया जाता था। शासन व्यवस्था चाहे जैसी भी रहे किन्तु राजकर के नियमों में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं आने पाता था। जिससे राजकर के सम्बन्ध में राजा व प्रजा के बीच कोई विवाद नहीं होता था। कौटिल्य भी अर्थशास्त्र में इसी व्यवस्था का समर्थन करता है।

करारोपण के सम्बन्ध में कौटिल्य ने निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है–

(1) अर्थशास्त्र में राज्य की करारोपण शक्ति को सीमित रखने पर बल दिया गया है।

(2) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र जनता पर अत्यधिक करारोपण का विरोध करता है। करारोपण के सम्बन्ध में कहा गया है कि "**राजा को अपना आचरण उस मधुमक्खी के समान रखना चाहिए। जो फूलों को बिना कष्ट पहुँचाए उनसे मधु एकत्रित करती है।**"[14]

(3) उन्होंने करारोपण को सीमित मात्रा में लगाये जाने पर बल देते हुए उसमें धीरे–धीरे वृद्धि (Gradual Increase) पर बल दिया है।

(4) कौटिल्य ने करों की दर (Tax Rate) बढ़ाने की बजाय कर आधार (Tax Base) को बढ़ाने पर बल दिया है। अर्थशास्त्र के योगवृत्त नामक पंचम अधिकरण में द्वितीय अध्याय कोषाभिसंहरण में कोष के अधिकाधिक संग्रह हेतु विभिन्न कार्य व्यापार करने वाले सभी नागरिकों से उनके कार्य/सेवा के अनुसार कर लेने हेतु प्रावधान किये गये है।[15]

(5) कौटिल्य ने एक सुदृढ़ कर संरचना (Tax Structure) की स्थापना पर बल दिया है। जिससे की करों के अनिवार्य एकत्रीकरण को सुनिश्चित किया जा सके एवं कर अपवंचना को रोका जा सके। उन्होंने कर एकत्रीकरण, राजस्व एवं लोक व्यय की एक स्पष्ट व्यवस्था की अनुशंसा की जिससे अर्थव्यवस्था में स्थायी राजस्व एकत्रीकरण की क्षमता विकसित हो सके।

(6) कर अपवंचना के मामलों में अर्थशास्त्र में कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार "**सरकार को पैदावार की कमी दिखाने के लिए किसान अपने ही खेत में चोरी करे तो उससे चोरी किये हुए अन्न का आठ गुना दण्ड वसूला जाये। यदि कोई व्यक्ति अपने ही गाँव में खड़ी फसल की चोरी करे तो उसे चोरी के माल का पचास गुणा दण्ड दिया जाये। यदि वह दूसरे गाँव का हो तो उसे प्राण दण्ड दिया जाये।**[16]

अ– करारोपण के उक्त समस्त सिद्धान्त सुशासन की एक पूर्व अनिवार्यता है। जिन्हें आज भी अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान शासन प्रणाली में करारोपण की मात्रा को नियंत्रित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय भी इस तथ्य को उल्लेखित

कर चुका है। अधिक कर जन आक्रोश, विद्रोह तथा कर अपवंचना को जन्म देता है तथा व्यक्तियों की कर्मशीलता की अभिप्रेरणा को कम करता है।

ब– वर्तमान शासन व्यवस्था द्वारा यद्यपि **जी.एस.टी.**[17] के द्वारा **कर आधार** (Tax Base) को बढ़ाने का प्रयास किया गया है तथा विभिन्न सेवाओं को इसके दायरे में जोड़ा गया है किन्तु अभी भी बहुत सी गतिविधियों/सेवाओं को परिभाषित कर आधार को बढ़ाया जाना आवश्यक है।

स– राजकोष की अभिवृद्धि तथा नियमानुसार संग्रहण के लिए जरुरी है कि कर अपवंचना को रोका जाए। वर्तमान में व्यक्तिगत आयकर के दायरे में आने वाले व्यक्तियों की संख्या मात्र 2–3 प्रतिशत है तथा आयकर के मामलों में अत्यधिक कर अपवंचना हो रही है। कर अपवंचना पाए जाने पर कठोर दण्ड के प्रावधान एवं उनका तात्कालिक क्रियान्वयन तथा इस हेतु संरचनात्मक व्यवस्था के सुधार वित्तीय प्रशासन में सुशासन लाने में अत्यधिक सहायक होंगे।

द– वर्तमान भारतीय संविधान की प्रस्तावना, समाजवादी व्यवस्था का समर्थन करते हुए संविधान के भाग चार (4) के नीति निर्देशक तत्वों में राज्य द्वारा धन के अहितकारी संकेन्द्रण को रोके जाने का निर्देश प्रदान करती है। उक्त दोनों बातों से वर्तमान शासन एवं वित्तीय व्यवस्था पलायन कर रही है। मिश्रित अर्थव्यवस्था का झुकाव पूंजीवादी व्यवस्था की तरफ हो रहा है। लाभकारी सार्वजनिक उपक्रमों का भी विनिवेशीकरण तार्किक नहीं है। सम्पूर्ण सार्वजनिक सम्पत्ति का असमान वितरण बढ़ रहा है तथा धन का संकेन्द्रण समाज के कुछ प्रतिशत नागरिकों के पास हो रहा है। सुशासन की दृष्टि से उक्त कौटिल्यकालीन प्राचीन बुद्धिमत्ता (Ancient wisdom) को इस सम्बन्ध में लागू करना अनिवार्य है। धन का अत्यधिक संकेन्द्रण व्यवस्था के लिए भविष्य में विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का कारण होता है तथा समाज में गरीब असंतुष्ठ तबके की वृद्धि एवं परिणामतः अपराध की वृद्धि के रुप में भी प्रकट होता है।

4. मिश्रित अर्थव्यस्था–

कौटिल्य ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का समर्थन करते हुए राज्य के स्वामित्व (State Ownership) के साथ–साथ निजी स्वामित्व की बात की है। उन्होंने समाज में ऐसी सुव्यवस्था बनाने पर बल दिया है। जिसमें समस्त उत्पादन (Production) वितरण (Distribution) एवं उपभोग (Consumption) पर शासन सत्ता का नियन्त्रण हो। इसका उद्देश्य राज्य के अर्थ बल को सशक्त बनाना तथा समाज के सभी वर्गों को क्रियाशील बनाना था।[18]

5. लेखांकन एवं लेखा परीक्षण –

कौटिल्य द्वारा लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के क्षेत्र में किये गये योगदान को निम्न रुप से सारांशित किया जा सकता है।

(1) लेखांकन के सिद्धान्तों का विकास।

(2) प्राचीन भारतीय लेखांकन प्रणाली में प्रचलित लेखांकन पद्धति, संगठनात्मक संरचना एवं नीतिशास्त्रीय मूल्यों के क्षेत्र (Scope) एवं प्रविधि (Methodology) के सम्बन्ध में विस्तृत निर्देश उपलब्ध कराना।

(3) वित्तीय नियमों एवं उपनियमों का संहिताबद्धिकरण (Codefication) तथा संगठनात्मक संरचना की स्थापना जिससे पारस्परिक हितों के टकराव को रोका जा सके।

(4) फर्जी लेखांकन को रोकने (जो अत्यधिक लालच के कारण उत्पन्न होता है) कानून व्यवस्था के अनुरक्षण, संसाधनों के प्रभावी आवंटन एवं आनन्द की अभिवृद्धि में नीतिशास्त्र की भूमिका।

(5) लेखा परीक्षण पूर्व निर्धारित अन्तरालों (Periodically) पर पूर्व निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन करते हुए किया जाता था।

(6) गबन/भ्रष्टाचार पाये जाने पर कठोर शारीरिक एवं आर्थिक दण्ड का प्रावधान।

(7) कौटिल्य लेखांकन में नियमों की अनुपालना (Compliance) एवं स्थापना के लिए पुरूस्कार एवं सजा की व्यवस्था के समर्थक थे। लेखाकारों द्वारा निर्धारित समय पर लेखांकन कार्य पूरा न करने एंव लेखा जमा न कराने पर जुर्माने का प्रावधान था।

(8) कौटिल्य ने लेखांकन में निरन्तर निगरानी (Monitering), उसके सत्यापन तथा दस्तावेजीकरण (Vouching) का समर्थन किया।

(9) कौटिल्य द्वारा लेखाकारों एव लेखा परीक्षकों हेतु उच्च वेतनमान का प्रावधान किया गया था जिससे उनका व्यवहार नीतिगत बना रहे।[19]

कौटिल्य ने लेखांकन एवं लेखा परीक्षण से सम्बन्धित अधिकारियों के मध्य हितों के टकराव को पहचाना और वित्त प्रमुख (समाहर्ता) तथा लेखा परीक्षण प्रमुख (अक्षपटलमध्यक्ष) को राजा को पृथक–पृथक रिर्पोट देने के निर्देश दिये है।

लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के उक्त समस्त नियमों का पालन आज भी सुशासन की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि उक्त नियमों में से अधिकांश अपने परिवर्तित स्वरुपों में आज लागू किये जा रहे है किन्तु उनका प्रभावी क्रियान्वयन (Effecive Implemention) एक ऐसी अनिवार्यता है जो कौटिल्यकृत प्रणाली से सीखी जा सकती है और सुशासन को बढ़ावा दिया जा सकता है। वर्तमान में वित्तीय गबनों की स्थिति को

देखते हुए आवश्यक है कि चार्टेड अकाउण्टेन्ट अधिनियम (C.A.Act) में संशोधन किया जाये तथा चार्टेड अकाउण्टेन्टस् का मॉनिटर करने हेतु एक नई ऐजेन्सी की गठन किया जाए।

इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि नवीन कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिवेदक प्राधिकरण (National Financial Reporting Authority) का गठन किया जाए।

वर्तमान में औपचारिक रुप से निर्धारित मानकों एवं वास्तविक रुप से व्यवहारगत सिद्धान्तों में अत्यधिक अन्तर है। जिसे समाप्त करने की भी नितान्त आवश्यकता है।

3. प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्यात्मक विमर्श –

कौटिल्कृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक व्यवस्था में जिन नीतिशास्त्रीय मूल्यों को अपनाया गया था वे मूलतः नैतिकता एवं धर्म आधारित विशेषतः **स्वधर्म** आधारित मूल्य थे। धर्म की हिन्दू अवधारणा अर्थात् **''जो धारण करने योग्य हो''** में व्यक्ति के कर्त्तव्य को उसके केन्द्र में रखा गया था। इसी आधार पर उन्होंने प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों से जिन मूल्यों की उनके व्यवहार में अपेक्षा की उनमें इन्द्रिजयता, कुलीनता, स्वामीभक्ति, ईमानदारी, सच्चरित्रता, सक्षमता, गोपनीयता, विशिष्ट कौशल, मितव्ययता प्रमुख थे। वस्तुतः उक्त मूल्य कार्मिक के नैतिक व धार्मिक पक्ष पर एवं उसकी कार्य सम्बन्धी सक्षमता पर अत्याधिक केन्द्रित थे।

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में निष्पक्षता, एकनिष्ठता (Integrity) वस्तुनिष्ठता (Objectivity), कार्यों में खुलापन, ईमानदारी, तटस्थता, समानता संवेदनशीलता पारदर्शिता (Transparency), जवाबदेयता (Accountability) अनामता, सद्चरित्रता (Ethicness) के मूल्यों को वरीयता दी गई थी।[20] जो प्रशासनिक व्यवस्था की स्थायित्व एवं निरन्तरता को बनाए रखने, विभिन्न प्रतिद्वन्दी राजनीतिक दलों के साथ काम करने की क्षमता बनी रहे तथा राजनीतिक नेतृत्व के अधीन रहते हुए प्रशासनिक विशेषज्ञता/अनुभव को राष्ट्रहित में प्रयोग किये जा सकने पर केन्द्रित थी।

यद्यपि दोनों ही मूल्य प्रणालियाँ समकालीन समाज एवं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पर्यावरण से प्रभावित रही है तथा उनकी अपनी सक्षमताऐं हैं किन्तु कौटिल्यकाल में अपनाये गये प्रशासनिक मूल्यों में से अनेक आज भी अत्यन्त प्रासंगिक एवं लाभदायक है।

वर्तमान व्यवस्था के प्रशासनिक नीति मूल्य यद्यपि सिद्धान्त के स्तर पर पूर्ण हैं किन्तु व्यवहार के स्तर पर उनकी अनुपालना में अनेक विसंगतियाँ है। तटस्थता के स्थान

पर राजनैतिक सहभागिता, अनामता के स्थान पर प्रचार की आकांक्षा, ईमानदारी एवं सद्चरित्रता के स्थान पर भ्रष्ट आचरण, संवेदनशीलता के स्थान पर संवेदनहीनता, कर्त्तव्यनिष्ठा के स्थान पर कार्य लापरवाही इत्यादि सामान्य दोष के रुप में प्रकट होते है। जो सुशासन की मूल संकल्पना के क्रियान्वयन में विरोध उत्पन्न करते हैं। उक्त समस्त अवमूल्यन का कारण उन मूलभूत मूल्यों को न अपनाना है जो कौटिल्यकालीन एवं प्राचीन भारत के प्रचलित रहे है। वस्तुतः नैतिकता, स्वधर्म, इन्द्रियजयता एवं सच्चरित्रता के मूल्यों को न अपनाने अथवा केवल सैद्धान्तिक अनुपालना के कारण अन्य मूल्य प्रभावी नहीं हो पाते है इसलिए आवश्यक है कि सर्वोच्च मूल्य के रुप में स्वधर्मिता आचरण (कर्त्तव्य आधारित आचरण) एवं सच्चरित्रता पर बल दिया जाए।

उक्त कौटिल्यकृत नीतिमूल्यों का समावेश कर वर्तमान प्रशासनिक मूल्य व्यवस्था को अधिक सशक्त बनाया जा सकता है।

आचरण नियम –

प्रशासकीय मूल्य प्रणाली वह नींव है जिस पर प्रशासकीय आचरण नियमों की आधारशिला रखी जाती है। आचरण नियमों द्वारा प्रशासनिक व्यवहार को मापनीय स्तर तक लाया जाता है तथा उससे कार्मिक द्वारा पालित प्रशासकीय मूल्यों की अनुपालना का मूल्यांकन किया जा सकता है।

कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र में प्रशासनिक अधिकारियों/कार्मिकों के साथ–साथ राजा के लिए भी विस्तृत आचरण नियमों का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः राजा के लिए उक्त उल्लेख अधिक विस्तृत है जो इस अवधारणा पर आधारित है कि राजनीतिक शुचिता ही समस्त प्रशासनिक प्रेरणा का मूल है तथा राजा की प्रवृत्ति सेवक (कार्मिक) एवं प्रजा की प्रवृत्ति तय करती है।[21] सुशासन की दृष्टि से उक्त तथ्य महत्वपूर्ण है।

वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक नेतृत्व के लिए कोई ठोस वैधानिक आचरण संहिता निर्धारित नहीं की गई है। कतिपय उपबन्धों का प्रावधान **चुनाव आचरण संहिता** एवं **संसदीय कार्य नियमों** तथा **जन प्रतिनिधित्व अधिनियम** में किया गया है किन्तु उनकी अनुपालना भी व्यवहारतः सीमित रुप में की जा रही है।

प्रशासनिक स्तर पर समग्र नैतिक मूल्यों का अभाव है तथा केवल आचरण नियमों के तहत कार्मिकों से आदर्शात्मक अपेक्षाऐं की गई है। जिसका क्रियान्वयन भी विभागीय जाँच में देरी, लम्बी प्रक्रिया, प्रक्रिया की बहुस्तरता इत्यादि के कारण अप्रभावी रहता है तथा कठोर दण्ड का अभाव इन आचरण नियमों के उल्लंघन को प्रोत्साहित करता है।

इस सम्बन्ध में सुशासन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रणाली के समान वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिक एक प्रभावी क्रियान्वयन निकाय की स्थापना की जाए तथा कौटिल्यकालीन त्वरित निर्णय एवं दण्ड प्रणाली को अपनाया जाए।

भ्रष्ट आचरण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र वित्तिय गबन एवं भ्रष्टाचार के मामले की विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराता है। अर्थशास्त्र में इसके 40 प्रकारों का उल्लेख है।[22] कौटिल्य इस सम्बन्ध में व्यावहारिक सोच रखते थे तथा इस बात से सहमत थे कि भ्रष्टाचार कुछ मात्रा में हमेशा विद्यमान रहेगा तथा इसे पूर्णतः Scrutinized नहीं किया जा सकता है। उन्होंने इसकी नकारात्मक क्षमता को देखते हुए रोकने के लिए कठोर शारीरिक एवं मौद्रिक दण्ड का प्रावधान किया तथा त्वरित कार्यवाही का समर्थन किया।

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में इस हेतु गंभीर **धोखाधड़ी जाँच कार्यालय** (Serious fraud Investigation office of India) की स्थापना की गई थी किन्तु इसके पास पर्याप्त शक्तियों का अभाव है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सर्तकता आयोग, सी.बी.आई., लोकपाल, राज्यों में लोकायुक्त, एन्टी करेप्शन ब्यूरो, विभागों में सर्तकता सैल, पोर्टल, विजिलेंस सैल, विभिन्न शिकायत पोर्टल स्थापित किए गए हैं किन्तु इसके बावजूद जाँच की लम्बी प्रक्रिया एवं अभियोजन स्वीकृति की अनिवार्यता के कारण न्यायिक प्रक्रिया, जाँच, अभियोजन एवं सजा में देरी होती है। इस सम्बन्ध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र. में उल्लेखित आवश्यक व्यवस्था के समान त्वरित कार्यवाही, कठोर दण्ड देने वाली केन्द्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रणालियाँ स्थापित की जाए।

सन्दर्भ (Referencs) -

1. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(2)
2. उपर्युक्त, 1,(9)
3. उपर्युक्त, 1,(9)
4. भारतीय संविधान, "**अनुच्छेद 316**"
5. कौटिलीय अर्थशास्त्र, 1,(3)
6. उपर्युक्त, 2,(9)
7. कटारिया, डॉ. सुरेन्द "**भारतीय लोक प्रशासन**", नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृष्ठ 551
8. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(16)
9. भारतीय संविधान, "**अनुच्छेद 311**"
10. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 15,(1)

11. उपर्युक्त, 6,(1)
12. उपर्युक्त, 2,(8)
13. उपर्युक्त, 6,(1)
14. गोयल, अरूणा, ''**गुड गवर्नेंस एण्ड एनशिंयट संस्कृत लिटरेचर**'', दीप एण्ड दीप पब्लिकेशनस प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देहली, 2003, पृष्ठ 125
15. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 5,(2)
16. उपर्युक्त, 5,(2)
17. वेबसाइटः www.gstcouncil.gov.in/gst-council
18. गैरोला, वाचस्पति, ''**कौटिलीय अर्थशास्त्रम्**'', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पृष्ठ 54
19. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 2,(7)
20. मेदुरई उमा, ''**पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन द ग्लोबलाइजेशन इरा**'', ऑरियन्ट ब्लेक स्वान प्राइवेट लिमिटेड'', न्यू देहली, 2010, पृष्ठ 190
21. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, 1,(18)
22. उपर्युक्त, 2,(8)

सारांश

(Summary)

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र उस प्राचीन भारतीय प्रशासनिक चिन्तन एवं प्रणाली का सार संक्षेप उपलब्ध कराता है जो वाल्मीकि रामायण, महाभारत के शान्ति पर्व, मनुस्मृति के आख्यानों तथा वैदिक साहित्य के यत्र–तत्र विरचित की गई है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय प्रशासन में सुशासन की तत्कालीन प्रचलित परम्पराओं, धारणाओं, मान्यताओं इत्यादि का व्यवहारिक एवं सारगर्भित रुप कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में दिखाई देता है जो मौर्य काल में व्यवहारगत रुप से प्रभावी रही तथा प्राचीन भारतीय प्रणाली की परम्पराओं के स्वर्णकाल रुप में मानी गई।

जबकि वर्तमान भारतीय प्रशासन तंत्र विगत 1000 वर्षों के इतिहास का समेकित प्रतिफल है, जो सल्तनतकाल एवं मुगलकाल की राजस्व एवं कानून व्यवस्थाओं प्रणालियों तथा ब्रिटिश काल के प्रशासनिक दर्शन, संगठन एवं प्रक्रियाओं से प्रभावित रहा है एवं उनका प्रतिफल रहा है। उक्त दोनों (कौटिल्य कालीन एवं वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था) का तुलनात्मक विवेचन विशेषतः सुशासन के सन्दर्भ में उनके पर्यावरण एवं नीति मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है।

जहाँ एक और कौटिल्यकालीन शासन प्रणाली धर्म (कर्त्तव्य) को सम्प्रभु शक्ति के रुप में मानती थी तथा सत्यनिष्ठा एवं कर्त्तव्य के मूल आधारों पर स्थापित थी। वहीं वर्तमान व्यवस्था संवैधानिक सर्वोच्चता पर आधारित है, जो विधि के शासन, विधि की सर्वोच्चता तथा विधि के समान संरक्षण पर टिकी हुई है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रणाली एक राजतंत्रीय शासन व्यवस्था थी। जिससे निरंकुशता के साथ–साथ लोकतांत्रिकता के गुणों का समावेश था। जबकि वर्तमान भारतीय प्रशासन लोकतांत्रिक मूल्यों के निर्वहन का पेरोकार है। वस्तुत कौटिल्यकृतकालीन शासन प्रणाली एक एकात्मक एवं केन्द्रीयकृत सत्ता नियंत्रण वाली धर्म आधारित राजतंत्रात्मक प्रणाली रही है, जबकि वर्तमान भारतीय शासन प्रणाली एक संघात्मक, केन्द्रानीत, (केन्द्र की ओर झुकाव) शक्ति पृथक्करण, नियंत्रण एवं सन्तुलन के आधारों पर स्थापित मंत्रालयी एवं विभागीय प्रणाली पर आधारित कार्य विभाजन पर अवलम्बित है।

उक्त दोनों प्रणालियों/व्यवस्थाओं में ही राज्य में सुशासन स्थापित करने का प्रयास किया गया था। उक्त शोध में इन दोनों व्यवस्थाओं के उन तत्वों को एकजायी करने के

उद्देश्य से लिखा गया है जो वर्तमान शासन व्यवस्था में सुशासन को बढ़ावा देने में सहायक हो सके।

1.कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी विमर्श –

कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी बिन्दुओं के विषय में सुशासन के उद्देश्य से यह अनिवार्य है कि वर्तमान चयन प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन कर बौद्धिक एवं मानसिक परीक्षणों के साथ–साथ चारित्रिक परीक्षणों को भी बढ़ावा दिया जाए तथा नवीनतम मनोविज्ञान आधारित परीक्षणों को अनिवार्य रुप से परीक्षा का भाग बनाया जाए।

सुशासन की दृष्टि से अनुच्छेद 316 में संशोधन कर स्वयं चयनकर्त्ताओं के चयन की व्यवस्थाओं को अधिक स्वतन्त्र, पारदर्शी एवं विश्वसनीय बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न समुदायों एवं जाति वर्गों के प्रशासन में समुचित प्रतिनिधित्व के साथ–साथ व्यवस्था के गुणवत्ता के प्रश्न को भी पर्याप्त बल दिया जाये तथा वैकल्पिक समाधानों पर विचार किया जाये।

सुशासन की दृष्टि से व्यक्ति के नेतृत्वकारी गुणों को चयन के आधारों में सम्मलित किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान चयन प्रणाली में उक्त तत्वों को समायोजित कर सुशासन की दिशा में बढ़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान व्यवस्था में स्थानान्तरण की स्पष्ट नीतियों का निर्माण एवं उनका पारदर्शी क्रियान्वयन सुशासन को बढ़ावा देने में अत्यन्त सहायक होगा।

2. वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी विमर्श –

कौटिल्यकालीन प्रशासन व्यवस्था का एक सशक्त पक्ष उसका वित्तीय प्रबन्धन है। अर्थ की महत्त्ता को समझाते हुए अर्थशास्त्र में लिखा गया है कि

'मनुष्याणां वृत्तिरर्थ, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः,
तस्या पृथिव्या लाभ पालनोपायः शास्त्रमर्थ शास्त्रमिति।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र का उक्त दर्शन समस्त साम्राज्य एवं राजनीतिक व्यवस्था को आर्थिक ढ़ाँचे पर स्थापित करता है। अर्थशास्त्र में प्रतिपादित **सप्तांग सिद्धान्त** में भी राजा के पश्चात् **कोष** को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कौटिल्यकालीन वित्तीय प्रशासन के सभी पक्षों यथा कोष एवं कोष नीति, करारोपण, लेखांकन, लेखा परीक्षण इत्यादि का अर्थशास्त्र विस्तृत विवरण देता है।

वर्तमान में राजकोषीय घाटे का अत्यधिक होना तथा घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाया जाना सुशासन की दृष्टि से सही नहीं माना जा सकता है। अतः शासन को राजकोषीय घाटे को समाप्त कर लाभ की अर्थव्यवस्था की और जाने का प्रयास करना

चाहिए। कोष सम्पन्नता के इस उपक्रम के लिए जरुरी है कि राजकीय धन को किन कार्यों में व्यय किया जाए। उसकी आवश्यकता एवं प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार किया जाये।

कौटिल्य के अनुसार कोष पूर्वजों की तथा धर्म की कमाई से संचित हो। वर्तमान शासन व्यवस्था में तम्बाकू, शराब, मादक पदार्थों के ठेके से कोष संचयन सुशासन की दृष्टि से उचित नहीं माना जा सकता है। साथ ही करारोपण के विषय में निम्न सिद्धान्त अर्थशास्त्र में बताये गये है –

(1) अर्थशास्त्र में राज्य की करारोपण शक्ति को सीमित रखने पर बल दिया गया है।

(2) कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र जनता पर अत्यधिक करारोपण का विरोध करता है। करारोपण के सम्बन्ध में कहा गया है कि ''राजा को अपना आचरण उस मधुमक्खी के समान रखना चाहिए। जो फूलों को बिना कष्ट पहुँचाए उनसे मधु एकत्रित करती है।''

(3) कौटिल्य ने करारोपण को सीमित मात्रा में लगाये जाने पर बल देते हुए उसमें धीरे–धीरे वृद्धि (Gradual Increase) पर बल दिया है।

(4) कौटिल्य ने करों की दर (Tax Rate) बढ़ाने की बजाय कर आधार (Tax Base) को बढ़ाने पर बल दिया है। अर्थशास्त्र के योगवृत्त नामक पंचम अधिकरण में द्वितीय अध्याय कोषाभिसंहरण में कोष के अधिकाधिक संग्रह हेतु विभिन्न कार्य व्यापार करने वाले सभी नागरिकों से उनके कार्य/सेवा के अनुसार कर लेने हेतु प्रावधान किये गये है।

(5) कौटिल्य ने एक सुदृढ़ कर संरचना (Tax Structure) की स्थापना पर बल दिया है। जिससे की करों के अनिवार्य एकत्रीकरण को सुनिश्चित किया जा सके एवं कर अपवंचना को रोका जा सके। उन्होंने कर एकत्रीकरण, राजस्व एवं लोक व्यय की एक स्पष्ट व्यवस्था की अनुशंसा की जिससे अर्थव्यवस्था में स्थायी राजस्व एकत्रीकरण की क्षमता विकसित हो सके।

(6) कर अपवंचना के मामलों में अर्थशास्त्र में कठोर दण्ड का प्रावधान किया गया है। अर्थशास्त्र के अनुसार ''सरकार को पैदावार की कमी दिखाने के लिए किसान अपने ही खेत में चोरी करे तो उससे चोरी किये हुए अन्न का आठ गुना दण्ड वसूला जाये। यदि कोई व्यक्ति अपने ही गाँव में खड़ी फसल की चोरी करे तो उसे चोरी के माल का पचास गुणा दण्ड दिया जाये। यदि वह दूसरे गाँव का हो तो उसे प्राण दण्ड दिया जाये।

वर्तमान में व्यक्तिगत आयकर के दायरे में आने वाले व्यक्तियों की संख्या मात्र 2–3 प्रतिशत है तथा आयकर के मामलों में अत्यधिक कर अपवंचना हो रही है। कर अपवंचना पाए जाने पर कठोर दण्ड के प्रावधान एवं उनका तात्कालिक क्रियान्वयन तथा इस हेतु

संरचनात्मक व्यवस्था के सुधार वित्तीय प्रशासन में सुशासन लाने में अत्यधिक सहायक होंगे।

इसके अतिरिक्त चार्टेड अकाउण्टेन्ट अधिनियम (C.A.Act) में संशोधन किया जाये तथा चार्टेड अकाउण्टेन्टस् का मॉनिटर करने हेतु एक नई ऐजेन्सी की गठन किया जाए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि नवीन कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत एक राष्ट्रीय वित्तीय प्रतिवेदक प्राधिकरण (National Financial Reporting Authority) का गठन किया जाए।

3. प्रशासकीय नीतिशास्त्रीय अवधारणा एवं मूल्यात्मक विमर्श –

कौटिल्य ने प्रशासन में कार्यरत लोक सेवकों से जिन मूल्यों की उनके व्यवहार में अपेक्षा की उनमें इन्द्रिजयता, कुलीनता, स्वामीभक्ति, ईमानदारी, सच्चरित्रता, सक्षमता, गोपनीयता, विशिष्ट कौशल, मितव्ययता प्रमुख थे। वस्तुतः उक्त मूल्य कार्मिक के नैतिक व धार्मिक पक्ष पर एवं उसकी कार्य सम्बन्धी सक्षमता पर अत्याधिक केन्द्रित थे।

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में निष्पक्षता, एकनिष्ठता (Integrity) वस्तुनिष्ठता (Objectivity), कार्यों में खुलापन, ईमानदारी, तटस्थता, समानता संवेदनशीलता पारदर्शिता (Transparency), जवाबदेयता (Accountability) अनामता, सद्चरित्रता (Ethicness) के मूल्यों को वरीयता दी गई थी।

तटस्थता के स्थान पर राजनैतिक सहभागिता, अनामता के स्थान पर प्रचार की आकांक्षा, ईमानदारी एवं सद्चरित्रता के स्थान पर भ्रष्ट आचरण, संवेदनशीलता के स्थान पर संवेदनहीनता, कर्त्तव्यनिष्ठा के स्थान पर कार्य लापरवाही इत्यादि सामान्य दोष के रुप में प्रकट होते है। जो सुशासन की मूल संकल्पना के क्रियान्वयन में विरोध उत्पन्न करते हैं। उक्त समस्त अवमूल्यन का कारण उन मूलभूत मूल्यों को न अपनाना है जो कौटिल्यकालीन एवं प्राचीन भारत के प्रचलित रहे है। वस्तुतः नैतिकता, स्वधर्म, इन्द्रियजयता एवं सच्चरित्रता के मूल्यों को न अपनाने अथवा केवल सैद्धान्तिक अनुपालना के कारण अन्य मूल्य प्रभावी नहीं हो पाते है इसलिए आवश्यक है कि सर्वोच्च मूल्य के रुप में स्वधर्मिता आचरण (कर्त्तव्य आधारित आचरण) एवं सच्चरित्रता पर बल दिया जाए।

आचरण नियमों द्वारा प्रशासनिक व्यवहार को मापनीय स्तर तक लाया जाता है तथा उससे कार्मिक द्वारा पालित प्रशासकीय मूल्यों की अनुपालना का मूल्यांकन किया जा सकता है।

वर्तमान भारतीय शासन व्यवस्था में राजनीतिक नेतृत्व के लिए कोई ठोस वैधानिक आचरण संहिता निर्धारित नहीं की गई है। कतिपय उपबन्धों का प्रावधान **चुनाव आचरण**

संहिता एवं **संसदीय कार्य नियमों** तथा **जन प्रतिनिधित्व अधिनियम** में किया गया है किन्तु उनकी अनुपालना भी व्यवहारतः सीमित रुप में की जा रही है।

प्रशासनिक स्तर पर समग्र नैतिक मूल्यों का अभाव है तथा केवल आचरण नियमों के तहत कार्मिकों से आदर्शात्मक अपेक्षाऐं की गई है। जिसका क्रियान्वयन भी विभागीय जाँच में देरी, लम्बी प्रक्रिया, प्रक्रिया की बहुस्तरता इत्यादि के कारण अप्रभावी रहता है तथा कठोर दण्ड का अभाव इन आचरण नियमों के उल्लंघन को प्रोत्साहित करता है।

इस सम्बन्ध में सुशासन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित प्रणाली के समान वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिक एक प्रभावी क्रियान्वयन निकाय की स्थापना की जाए तथा कौटिल्यकालीन त्वरित निर्णय एवं दण्ड प्रणाली को अपनाया जाए।

भ्रष्ट आचरण –

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र वित्तिय गबन एवं भ्रष्टाचार के मामले की विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराता है। अर्थशास्त्र में इसके 40 प्रकारों का उल्लेख है। कौटिल्य इस सम्बन्ध में व्यावहारिक सोच रखते थे तथा इस बात से सहमत थे कि भ्रष्टाचार कुछ मात्रा में हमेशा विद्यमान रहेगा तथा इसे पूर्णतः ज्ञात एवं समाप्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने इसकी नकारात्मक क्षमता को देखते हुए रोकने के लिए कठोर शारीरिक एवं मौद्रिक दण्ड का प्रावधान किया तथा त्वरित कार्यवाही का समर्थन किया।

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में इस हेतु गंभीर **धोखाधड़ी जाँच कार्यालय** (Serious fraud Investigation office of India) की स्थापना की गई थी किन्तु इसके पास पर्याप्त शक्तियों का अभाव है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सर्तकता आयोग, सी.बी.आई., लोकपाल, राज्यों में लोकायुक्त, एन्टी करेप्शन ब्यूरो, विभागों में सर्तकता सैल, पोर्टल, विजिलेंस सैल, विभिन्न शिकायत पोर्टल स्थापित किए गए हैं किन्तु इसके बावजूद जाँच की लम्बी प्रक्रिया एवं अभियोजन स्वीकृति की अनिवार्यता के कारण न्यायिक प्रक्रिया, जाँच, अभियोजन एवं सजा में देरी होती है। इस सम्बन्ध में कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र. में उल्लेखित आवश्यक व्यवस्था के समान त्वरित कार्यवाही, कठोर दण्ड देने वाली केन्द्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय प्रणालियाँ स्थापित की जाए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची
(Bibliography)

● पुस्तकें (Books) –

1. अय्यर, वी. आर. कृष्णा, **''ऑफ लॉ एण्ड लाइफ''**, विकास, न्यू देहली, 1979
2. अय्यर, वी.आर. कृष्णा (जस्टिस), **''इथिकल एनट्रोपी इन पब्लिक लाईफ''**, 1995
3. अग्रवाल, कृष्ण मोहन, **''कौटिल्या ऑन क्राइम एण्ड पनीशमेन्ट''**, श्री अल्मोरा बुक डिपोट, अल्मोरा, 1990
4. इन्टरनेशनल बैंक फॉर रिकन्स्ट्रक्शन एण्ड डवलपमेण्ट, **''जेण्डर एण्ड पावर्टी इन इण्डिया''**, द वर्ल्ड बैंक वाशिंगटन, डी.सी., 1991
5. इण्डिया, **''नेशनल ट्रेनिंग पॉलिसी''**, डीओपीटी मिनिस्ट्री ऑफ पर्सोनल, पब्लिक ग्रीवनेंस एण्ड पैंशन्स, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, न्यू देहली, 1996
6. इनामदार, एन.आर., **''डवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन''**, रावत जयपुर, 1989
7. एपलबी. पी. एच., **''पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया : रिपोर्ट ऑफ ए सर्वे''**, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन, देहली, 1953
8. एपलबी, पी.एच., **''मोरलिटी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन डेमोक्रेटिक गवर्नमेण्ट''**, लूसीयाना यूनिवर्सिटी प्रेस, 1956
9. ऑल्डनबर्ग, **''दीपवंश''**, लंदन, 1879
10. कॉवेल, नील, **''दिव्यादान''**, केम्ब्रिज, 1886
11. कोशाम्बी, डी. डी., **''द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एनशियण्ट इण्डिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइन''**, रूथलेस एण्ड कंगनपाल, लन्दन, 1965
12. कांगले, आर.पी., **''द कौटिल्य अर्थशास्त्र थ्री वाल्यूम''**, नारियर बुक्स मोतीलाल, न्यू देहली, 1997
13. कोहली, सुरेश, **''करप्शन इन इण्डिया''**, चेतना पब्लिकेशन, देहली, 1975
14. कृष्णाराव, एम.वी., **''स्टडीज इन कौटिल्या''**, (सैकण्ड रिवाइज्ड एडिशन) मुंशीराम मनोहर लाल, देहली, 1958
15. किदवई, ए. आर., **''फॉरवर्ड इन रिपोर्ट ऑन द कमेटी ऑन रिक्रयूटमेंट पॉलिसी एण्ड सलेक्शन मेथड्स''**, यू.पी.एस.सी., न्यू देहली, 1976
16. कश्यप, सुभाष, **''टूवार्ड्स गुड गवर्नेंस : नीड फॉर पॉलिटिकल रिर्फोम्स''**, आइ.पी.पी.ए.

17. कुमार, उमेश, ''**कौटिल्यास थॉट ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन**'', नेशनल बुक ऑर्गेनाइजेशन, देहली

18. कोहली रितु, ''**कौटिल्याज पॉलिटिकल थ्योरी–योगक्षेमाः द कन्सेप्ट ऑफ वेलफेयर स्टेट**'', दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, न्यू देहली, ISBN 81-7100-802.

19. गेगर, ''**महावंश**'', लंदन, 1908

20. ग्रिफीथ, बी. सैम्युल., ''**सुनत्जु द आर्ट ऑफ वार**'', न्यूयॉर्क, 1963

21. गोयल, एस.एल., ''**पब्लिक पर्सोनल एडमिनिस्ट्रेशन**'', दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, न्यू देहली, 2002

22. गौरोला, वाचस्पति, ''**कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्**'', चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2000

23. गोरवाला, ए.डी., ''**द रॉल ऑफ एडमिनिस्ट्रेटर : पास्ट, प्रजेन्ट एण्ड फ्यूचर**'', गोखले इन्स्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एण्ड इकोनॉमिक्स, पूना, 1952

24. घोषाल, यू.एन., ''**स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर**'', ऑरियन्ट लॉगमैन्स, बॉम्बे, 1957

25. घोषाल, यू.एन., ''**ए जनरल सर्वे ऑफ लिटरेचर ऑफ अर्थशास्त्रा एण्ड नीतिशास्त्रा**'', इन कल्चरल हैरिटेज ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम II 2001

26. चतुर्वेदी, टी.एन., (इडी) ''**एडमिनिस्ट्रेटिव अकाउण्टबिलिटी**'', इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू देहली, 1996

27. चंदा, अशोक, ''**इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन**'', एलन एण्ड अनविन, लंदन, 1958

28. चतुर्वेदी, टी.एन., (इडी), ''**इथिक्स इन पब्लिक लाइफ**'', इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू देहली, 1996

29. चोपड़ा, एस.के., ''**टूवार्डस गुड गवर्नेंस**'', कोनार्क, देहली, 1997

30. जेकोबी, एच, ''**जैनसूत्रास**'' (के नाम से आचार्य हेमचन्द्र रचित ''**परिशिष्ट पर्व**'', ''**कल्पसूत्र**'', ''**आचरंग सूत्र**'', के प्रासंगिक भागों का अनुवाद किया है) ऑक्सफोर्ड, 1884–95

31. जालान, विमल, ''**इण्डियाज इकोनॉमिक्स पॉलिसी**'', वाइकिंग, न्यू देहली, 1996

32. जायसवाल, के.पी., ''**हिन्दू पॉलिटी**'', बैंगलोर प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, बैंगलोर, 1968

33. टूमन, आर. थामस, ''**कौटिल्य एण्ड अर्थशास्त्रा : ए स्टेस्टिकल इनवेशटिगेशन ऑफ द ऑथरशिप एण्ड इवोल्यूशन ऑफ द टेक्स्ट**'', इ. जेब्रिल, लंदन, 1972

34. टीड, आर्डवे, ''**द आर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन**'', मेकग्रा हिल, न्यूयॉर्क, 1951

35. ठाकुर, उपेन्द्र, **''करप्शन इन एनशियंट इण्डिया''**, अभिनव, देहली, 1979

36. डिपार्टमेन्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्मस एण्ड पब्लिक ग्रिवन्सेज, **''एक्शन प्लान फॉर इफेक्टिव एण्ड रिसपोन्सिव गवर्नमेन्ट''**, मार्च, 1997

37. थापर, रोमिला, **''अशोक एण्ड द डिक्लाइन ऑफ मौर्यस''**, ऑक्सफोर्ड, 1961

38. थापर, रोमिला, **''द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया वॉल्यूम 1''**, पैंग्विन, इंग्लैण्ड, 1966

39. थेवराज, एम.जे.के., **''फाइनेंसियल मैनेजमेंट ऑफ गवर्नमेन्ट''**, सुल्तान चांद एण्ड कम्पनी, न्यू देहली, 1978

40. दुबे, ए.के. **''डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया''**, उप्पल, न्यू देहली, 1995

41. दत्त, आर सी., **''ए हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन इन एनशियंट इण्डिया''**, बेस्ड ऑन संस्कृत लिटरेचर (3 वाल्यूमस), ठक्कर स्पिंकस एण्ड कम्पनी, कलकत्ता, 1889–90

42. **''द कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया''**, वॉल्यूम II 2001 (सैकण्ड एडीशन), द रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कल्कत्ता, 1962

43. **''द एज ऑफ इम्पीरियल युनिटी''**, भारतीय विद्याभवन, बॉम्बे, 1980

44. द वर्ल्ड बैंक, **''गवर्नेन्स एण्ड डवलपमेण्ट''**, डी.सी., वाशिंगटन, 1992

45. दास, एस.के., **''सिविल सर्विस रिफॉर्म एण्ड स्ट्रक्चरल एडजस्टमेन्ट''**, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, ऑक्सफोर्ड, 1998

46. धर, सोमनाथ, **''चाणक्य एण्ड द अर्थशास्त्र''**, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ वर्ल्ड कल्चर, बैंगलोर, 1957

47. **''नोट्स ऑन सी.सी.एस.''**, (कंडक्ट रूल्स, 1964) पब्लिशड बाय एमएचए., डीपी एण्ड ए.आर., थर्ड एडिशन, 1980

48. पाण्डेय, रामतेज, **''कौटिल्य अर्थशास्त्र''**, (हिन्दी टीका सहित), काशी, 1959

49. पॉल, देविका, **''पब्लिक पॉलिसी फॉरम्यूलेशन एण्ड इम्प्लीमेंटेशन इन इण्डिया''**, देविका, देहली, 1995

50. पन्नीकर, के.एम., **''द डिटरमाइनिंग पीरियड्स ऑफ इण्डियन हिस्ट्री''**, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1952

51. परमार, आराधना, **''टेक्निक्स ऑफ स्टेटक्राफ्ट : ए स्टडी ऑफ कौटिल्या अर्थशास्त्रा''**, आत्माराम एण्ड सन्स, देहली, 1987

52. प्लेटो, **''द रिपब्लिक''**, पैंगुइन, 1974

53. प्रेमचन्द, **''कन्ट्रोल ऑफ पब्लिक एक्सपेंडिचर इन इण्डिया''**, बॉम्बे, 1966

54. बाणभट्ट, **''हर्ष चरित्र''**, लंदन, 1898

55. ब्राउन, डी. मेकेन्जी, "**इण्डियन पॉलिटिकल थॉट फ्रॉम मनु टू गाँधी**", कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1958

56. बसाक, रोजर, "**द फर्स्ट ग्रेट पॉलिटिकल रियलिस्ट : कौटिल्य एण्ड हिज अर्थशास्त्र**", लेक्सिंगटन बुक्स, लेनहम, 2002

57. भाम्भरी, सी.पी., "**ब्यूरोक्रेसी एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया**", विकास, देहली, 1971

58. भाम्भरी, सी.पी., "**एडमिनिस्ट्रेटर इन ए चेन्जिंग सोसायटी**", नेशनल, देहली, 1972

59. मैकक्रिण्डल, जे.डब्ल्यू. "**एनशिएण्ट इण्डिया डिस्क्राइब्ड बाय मैंगस्थनीज एण्ड एरियन**", कलकत्ता, 1877

60. मैकक्रिण्डल, जे.डब्ल्यू., "**द इनवेजन ऑफ इण्डिया बाय अलैक्जेण्डर द ग्रेट**", बेस्टमिनिस्टर, 1896। (ये ग्रीक यात्रियों व दूसरे लोगों द्वारा प्रस्तुत विवरण थे जिनको मैकक्रिण्डल ने कई पुस्तकों में एकत्र और अनुदित किया है)

61. महामहोपाध्याय, टी. गणपतिशास्त्री, "**द अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य**", भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1990

62. माहेश्वरी, एस.आर., "**एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स**", मैकमिलन, 1998

63. माहेश्वरी, श्री राम, "**एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म इन इण्डिया**", जवाहर, न्यू देहली, 1993

64. माहेश्वरी, श्री राम, "**इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम**", जवाहर, न्यू देहली, 1994

65. माथुर, कुलदीप, "**ब्यूरोक्रेटिक रिस्पोन्स टू डवलपमेण्ट**", देहली, 1972

66. मित्रा, सुशील कुमार, "**द इथिक्स ऑफ हिन्दूस**", कलकत्ता यूनिवर्सिटी

67. मैनन, के. पी. ए., "**कौटिल्या ऑन राजनीति**", राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, न्यू देहली, 1998

68. मुखास्वामी, पी., "**कॉम्पलीशन ऑफ सी.सी.एस. कंडक्ट रूल्स**", स्वामी पब्लिशर्स, (23 एडिशन), मद्रास

69. माहेश्वरी, श्री राम, "**भारतीय प्रशासन**", ऑरियन्ट लॉगमैन, न्यू देहली, 2001

70. मुखर्जी, आर.के., "**चन्द्रगुप्त मौर्य एण्ड हिज टाइम्स**", (फॉर्थ एडिशन) मोतीलाल बनारसीदास, देहली, 1988

71. मिनोचा, ओ.पी., "**गुड गवर्नेंसःकन्सेप्ट एण्ड ऑपरेश्नल इश्युज**", मैनेजमेन्ट एण्ड गवर्नमेन्ट, 1997

72. माहेश्वरी, एस.आर., "**द एडमिनिस्ट्रेटिव रिफोर्मस कमीशन**", लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 1972

73. मनसुखवानी, एच.सी., "**करप्शन एण्ड पब्लिक सर्वेन्ट्स**", विकास, न्यू देहली, 1979

74. मेला, वी.एन., "**एफिशियन्सी इन गवर्नमेंट**", आई.आई.पी.ए., न्यू देहली, 1995

75. मैनन, के.पी.ए., ''**कौटिल्याज ऑन राजनीति**'', नाग पब्लिसर्स, 1998,

76. रंगराजन, एल.एन., ''**कौटिल्य अर्थशास्त्र**'', पैंग्विन बुक्स इण्डिया लि., नई दिल्ली, 1992

77. रामायार, एम.एस., ''**हिस्ट्री ऑफ इण्डियन ऑडिट एण्ड अकाउण्ट्स डिपार्टमेन्ट**'', इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू देहली, 1967

78. राजगोपालचारी, सी., ''**रामायणा**'', भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1957

79. वासु, डी.डी., ''**इन्ट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया**'', पेरेन्टिस हॉल, न्यू देहली, 1989

80. शामशास्त्री, आर., ''**कौटिल्याज अर्थशास्त्रा**'', वेसलेवन मिशन प्रेस, मैसूर, 1929

81. शास्त्री, के. ए. नीलकांत, ''**एज ऑफ नंद एण्ड मौर्यस**'', बनारस, 1952

82. शास्त्री, देवदत्त, ''**कौटिल्य अर्थशास्त्र**'', इलाहाबाद, 1957

83. शरण, पी., ''**पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया**'', मीनाक्षी, मेरठ, 1978

84. शुक्ला, के.एस. और सिंह, एस.एस., ''**इन्स्टीट्यूट ऑफ लोकायुक्त इन इण्डिया**'', आइ. आइ.पी.ए., न्यू देहली, 1987

85. शुक्ला, जे.डी., ''**स्टेट एण्ड डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया**'', नेशनल, न्यू देहली, 1976

86. शाह, के.टी., ''**एनशियंट फाउण्डेशन ऑफ इकोनॉमिक्स इन इण्डिया**'', वोरा एण्ड कम्पनी, बॉम्बे, 1954

87. शुक्ला, विमला, ''**रोल ऑफ प्राइमिनिस्टर इन इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन**'', राजपॉल एण्ड सन्स

88. शास्त्री, महामहोपाध्याय टी. गणपति, ''**द अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्या**'', भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1990

89. शर्मा, देवकान्ता, ''**कौटिल्य के प्रशासनिक विचार**'', जयपुर, 1998

90. शेनाय, पी.वी., ''**अवर गोल्स फॉर द टवेन्टी फर्स्ट सेन्चुरी : इकोनॉमिक, सोश्यल एण्ड एडमिनिस्ट्रेटिव**'', इन्स्टीट्यूट ऑफ सोश्यल एण्ड इकोनॉमिक चेन्ज, बैंगलोर

91. सालेटोर, बी.ए., ''**एनशियण्ट इण्डियन थॉट्स एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स**'', एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1963

92. सिंह, आर. एन., ''**मैनेजमेण्ट : थॉट एण्ड थिंकर्स**'', सुल्तानचन्द्र, 1984

93. सेन. आर. के., और बसु, आर. एल., ''**इकोनोमिक्स इन अर्थशास्त्र**'', दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, न्यू देहली, 2006

94. सिंह, होशियार, **''एस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन''**, आरबीएसए पब्लिशिंग, जयपुर, 1994

95. सिंह, होशियार, **''हायर सिविल सर्विसेज इन इण्डिया''**, निर्मल बुक, कुरूक्षेत्र, 1995

96. सफ्रू, आर. के., **''सिविल सर्विस एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया''**, दीप एण्ड दीप, देहली, 1985

97. सिंह, एस.एन., **''एडमिनिस्ट्रेटिव कल्चर एण्ड डवलपमेन्ट''**, मित्तल, न्यू देहली, 1997

98. साठे, वी. **''नेशनल गवर्नमेन्ट : एजेण्डा फॉर ए न्यू इण्डिया''**, यूबीएस, देहली, 1991

99. सक्सैना, ए.पी., (इडी.), **''ट्रैनिंग इन गवर्नमेन्ट : ऑबजेक्टिव एण्ड ऑपरच्यूनिटीज''**, आई.आई.पी.ए., न्यू देहली, 1985

100. सिंह और भण्डाकर ए, **''आइ. ए. एस. प्रोफाइल : माइथस् एण्ड रियलिटीस''**, विली इस्टर्न न्यू देहली, 1994

101. सुबरामन्नयम, वी., **''कलचरल इन्टीग्रेशन इन इण्डिया''**, आशीष, न्यू देहली, 1979

102. संथानम्, के., **''यूनियन स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया''**, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1960

103. हेरोडोट्स, **''हिस्ट्री''**, ऑक्सफोर्ड, 1913–14

104. होता, एन.आर., **''डाइमेंशन ऑफ इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन''**, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, 1994

• जर्नलस (Journals)–

1. अग्रवाल, यू.सी., **''गुड गवर्नेन्स : कटिंग एड्ज ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन''**, *द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, जुलाई–सितम्बर, 1998

2. जैस्क, कैनेथ जी., **''कौटिल्याज अर्थशास्त्राः अ कम्पेरेटिव स्टेडी''**, *जर्नल ऑफ अमेरिकन ऑरियण्टल सोसायटी*, वॉल्यूम, 107, नं. 4 (अक्टूबर–दिसम्बर, 1987)

3. टण्डन, बी.बी., **''क्वालिटी इन गवर्नमेंट, इन मैनेजमेंट''**, *द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, जनवरी–मार्च, 2002

4. द्विवेदी, ओ.पी., **''कॉमन गुड एण्ड गुड गवर्नेस''**, *द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, जुलाई–सितम्बर, 1998

5. बसाक, रोजर, **''कौटिल्य अर्थशास्त्र ऑन वॉर एण्ड डिप्लोमेसी इन एनशिएण्ट इण्डिया''**, *द जर्नल ऑफ मिलेट्री हिस्ट्री, जनवरी, 2003*

6. बाटा, के.डे., **''डीफाइनिंग गुड गवर्नेन्स''**, *द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, जुलाई–सितम्बर, 1998

7. मैबेट, आई. डब्ल्यू., **''द देट ऑफ द अर्थशास्त्र''**, *जर्नल्स ऑफ अमेरिकन ओरियेण्टल सोसायटी,* अप्रैल, 1964

8. शंकधर, **''ऑफिस ऑफ द प्रेसीडेन्ट''**, *जर्नल ऑफ कॉन्स्टीट्यूशनल एण्ड पार्लियामेण्ट्री स्टडीज,* जुलाई सितम्बर, 1964

9. सियाग, एस. बलवीर, **''कौटिल्य ऑन द स्कोप एण्ड मेथेडोलॉजी ऑफ एकाउण्टिंग ऑरगेनाइजेशन डिजाइन एण्ड द रोल ऑफ इथिक्स इन एनशिएण्ट इण्डिया''**, *एकाउन्टिंग हिस्टोरियन जर्नल, दिसम्बर, 2004*

10. सुबरामन्नयम, वी., **''एडमिनिस्ट्रेटिव लिगेसी ऑफ एनशियण्ट इण्डिया इन रिलेशन टू मॉर्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन''**, *द इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* वॉल्यूम नं. 1, जनवरी–मार्च, 1996

• प्रतिवेदन (Reports) –

1. ए. आर. सी., सैकण्ड, **''फॉर्थ रिपोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव इथिक्स''**, 2005

2. गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, एडमिनिस्ट्रेटिव रिफॉर्म कमीशन, **''रिपोर्ट ऑन पर्सोनल एडमिनिस्ट्रेशन''**, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन, न्यू देहली, 1969

3. गोरवाला, ए.डी., **''रिपोर्ट ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन''**, प्लानिंग कमीशन, देहली, 1951

समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ (News Papers and Magazines)

4. जी. ओ. आई., मिनिस्ट्री ऑफ पर्सोनल, पब्लिक ग्रीवनेंसस एण्ड पेंशनस, **''एन्युल रिपोर्ट''**, न्यू देहली, 2016

5. जी. ओ. आई., मिनिस्ट्री ऑफ फाइनेंस, **''एन्युल रिपोर्ट''**, न्यू देहली, 2015

6. जी. ओ. आई., **''द सेवन्थ पे कमीशन रिपोर्ट''**, न्यू देहली, 2015

7. द एडमिनिस्ट्रेटिव रिफोर्मस कमीशन, **''रिपोर्ट ऑन द मशीनरी ऑफ द गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एण्ड इट्स प्रोसीजर्स ऑफ वर्क''**, मैनेजर पब्लिकेशन्स, न्यू देहली, 1968

8. वोहरा, एन. एन., **''इण्डिया : रिपोर्ट ऑन करप्शन''**, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, होम मिनिस्ट्री, न्यू देहली, 1995

9. रिपोर्ट ऑन रिऑरगेनाइजेशन ऑफ द मशीनरी ऑफ गवर्नमेण्ट, 1949

• समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ (Newspapers and Magazines) -

1. खरे, हरीश, **''रोल ऑफ ब्यूरोक्रेसी : सॉफ्ट स्टेट सॉफ्ट एडमिनिस्ट्रेटरस''**, टाइम्स ऑफ इण्डिया, फेब्ररी, 2, 1993

2. ड्रकर, पीटर, ''**रियली रीइनवेंटिंग गवर्नमेण्ट**'', स्पान, दिसम्बर, 1995

3. पंचाभोई, ''**कौटिल्य और कूटनीति**'', रोजगार समाचार, नई दिल्ली 16, 22 अक्टूबर, 1999

4. मोहनचन्द्र, ''**आज चाणक्य नीति भी मुद्दा है**'' नवभारत टाइम्स जयपुर, दिनांक 17 अप्रैल, 1991

प्रकाशित शोध पत्र

ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

कौटिल्यकालीन कार्मिक प्रशासन में भर्ती व्यवस्था का विश्लेषणात्मक अध्ययन

मीना अग्रवाल,
व्याख्याता लोक प्रशासन
एस.आर.डी. मोदी कॉलेज फॉर वुमन्स, दादाबाड़ी
Email ID : meena.ag19@gmail.com

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च श्रृणुयान्मतम् ।।
(कौटिलीय अर्थशास्त्रम्–वाचस्पति गैरोला)

ABSTRACT

कार्मिक प्रशासन प्राचीनकाल से ही विभिन्न राज व्यवस्थाओं के लिए चाहे वो राजतंत्रीय व्यवस्था हो या लोकतंत्रीय व्यवस्था हो एक महत्वपूर्ण आधार स्तंभ रहा है। कौटिल्य ने आज से चौथी शती ईसा पूर्व अर्थशास्त्र में कार्मिक प्रशासन के महत्व के उल्लेखित करते हुए कहा है कि एक विशाल राष्ट्र को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने हेतु राष्ट्र प्रमुख को एक सुसंगठित प्रशासनिकतंत्र या लोकसेवा संगठन की अनिवार्य आवश्यकता होती है। कौटिल्य का मानना था कि जैसे एक रथ को एक पहिए से गतिमान नहीं कराया जा सकता है उसी भांति एक राज्य के शासन कार्यो को भी बिना सहायता–सहयोग के संचालित नहीं किया जा सकता है इसलिए एक राजा को चाहिए की वह सुयोग्य अमात्यों (अधिकारी वर्ग) की नियुक्ति कर उनके परामर्श को हृदयंगम करे और उनके सहयोग से शासन कार्यो को संचालित करे। [1]कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में प्रथम, द्वितीय एवं पंचम अधिकरण के प्रकरणो के अन्तर्गत कार्मिक प्रशासन से संबंधित विभिन्न प्रक्रियाओं यथा–भर्ती, वर्गीकरण, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन संरचना, सेवा शर्ते, आचरण नियमों एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि के बारे में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक विवेचन प्रस्तुत किया है।

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में कार्मिकों के लिए भर्ती की व्यवस्था

कौटिल्य ने राज्य के सफल संचालन हेतु राजकीय कर्मचारियों की भर्ती व्यवस्था का वैज्ञानिक व तार्किक विवरण प्रस्तुत किया है। कौटिल्य का विचार था कि राज्य प्रशासन के सफल संचालन व जनता को **सुशासन** प्रदान करने के लिये सच्चरित्र, सक्षम, सुयोग्य और निष्ठावान कर्मचारी वर्ग की आवश्यकता है। इस हेतु आचार्य निष्पक्ष भर्ती प्रक्रिया का समर्थन करते थे। संम्भवतः उस समय राजकीय पदों पर नियुक्ति के लिये सभी वर्गो को समान अवसर व समान स्वतंत्रता प्रदान की गयी थी। अर्थशास्त्र में कहीं भी किसी सामाजिक वर्ग या वर्ण विशेष के लिये राजकीय पदों पर आरक्षण का उल्लेख नहीं मिलता है। इसमे एक अपवाद कहा जा सकता है कि **पुरोहित** के पद पर 'योग्यतम ब्राह्मण' को नियुक्त किया जाए। इसका कारण यह हो सकता है कि उस काल में ब्राह्मण वर्ण शिक्षा व धर्म (Religion) कार्यो को ही करा करते थे। अर्थशास्त्र में अन्यत्र भी अगंरक्षक के पद पर नियुक्ति हेतु वंश–परम्परा सिद्धान्त का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने सरकारी कर्मचारियों की

 ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

नियुक्तियों में सर्वाधिक बल सद्चरित्रता और योग्यताओं पर दिया था। अर्थशास्त्र में योग्यता के अतिरिक्त कुछ निश्चित परीक्षाओं का भी उल्लेख किया गया था जो उम्मीदवारों की भर्ती में आवश्यक शर्तो के रूप में शामिल की गयी थी।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने भर्ती के सिद्धान्तों, संस्थात्मक व्यवस्थाओं, भर्ती के प्रकारों, परीक्षा पद्धतियों इत्यादि का विस्तार से उल्लेख किया है। जो निम्नलिखित प्रकार से हैः–

भर्ती के सिद्धान्त– कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में भर्ती के नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनो ही प्रकार के सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है। नकारात्मक सिद्धान्तानुसार अयोग्य व्यक्तियों को भर्ती मे आने से रोका जा सके और सकारात्मक सिद्धान्तानुसार योग्य एवं सक्षम, प्रत्याशियों को पदो पर भर्ती किया जा सके। इसके लिए आचार्य ने प्रत्याशियों की शारीरिक व मानसिक योग्यताओं एवं सद्चरित्रता पर सर्वाधिक जोर दिया था।

संस्थात्मक व्यवस्था– कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय पदों पर भर्ती हेतु संस्थात्मक व्यवस्था के रुप में **आन्तरिक परिषद**[2] जैसी शासकीय संस्था का भी उल्लेख मिलता है। यह वर्तमान भारत की संस्था– लोकसेवा आयोग के समकक्ष थी। कौटिल्य के मतानुसार यह भर्ती के लिए निर्धारित की गई सर्वोच्च संस्था थी। जिसमें सदस्यों के रूप में राजा, प्रधानमंत्री और पुरोहित शामिल थे। इस प्रकार ये आंतरिक परिषद् त्रिसदस्यीय भर्ती संस्था के रुप कार्य करती थी। यह आन्तरिक परिषद राज्य के सभी उच्चस्तरीय असैनिक एवं सैनिक पदो के साथ–साथ विभागीय प्रमुखों (अध्यक्षों) की भर्ती (नियुक्ति) करती थी। ये आंतरिक परिषद ही राजकीय नियुक्तियों के लिये प्रमुख उत्तरदायी संस्था के रूप में कार्यरत थी। यहां ये उल्लेखनीय तथ्य है कि **मैगस्थनीज** ने भी इस आंतरिक परिषद् को राज्य के सभी उच्चस्तरीय अधिकारियों जिसमें प्रांतीय राज्यपाल (Provincial Governors) भी शामिल है कि नियुक्ति के हेतु वैधानिक दृष्टि से अधिकृत माना है।

भर्ती के प्रकार

कौटिल्य ने राजकीय पदों पर भर्ती हेतु दो प्रकारो का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार से है–

प्रत्यक्ष भर्ती – कौटिल्य के मतानुसार कुछ राजकीय पद ऐसे थे जिस पर राजा स्वयं प्रत्यक्ष रूप से नियुक्ति करता था। अर्थशास्त्र में यह भी उल्लेखित दिया गया है कि राजा स्वयं उन अमात्यों की नियुक्ति करता था जो की उसके प्रशासन में उसके मन्त्री (मन्त्रिन्) के रूप में सेवा प्रदान करते थे जैसे कि (अ) प्रधानमंत्री और मुख्य पुरोहित (ब) तीन या चार मन्त्रियों का वह समूह जो राज्य का परामर्श देने के लिए हमेशा तत्पर रहें ये राज्य के सलाहकार या परामर्शदाता के रूप में होते थे (स) मन्त्रिगण जो राजा की मन्त्रिपरिषद् के सदस्य होते थे। इन उपरोक्त वर्णित तीन मंत्री वर्गो के अतिरिक्त जितनी भी प्रशासनिक–भर्ती व नियुक्तियाँ की जाती थी उनकों राज्य अपने मंत्री (प्रधानमंत्री) और पुरोहित के सहयोग एवं परामर्श से करता था।[2]

अप्रत्यक्ष भर्ती –इन उपरोक्त वर्णित तीन मंत्री वर्गो के अतिरिक्त जितनी भी प्रशासनिक भर्ती व नियुक्तियाँ की जाती थी उनकों राजा अपने मंत्री (प्रधानमंत्री) और पुरोहित के सहयोग एवं परामर्श से करता था। यह भर्ती अप्रत्यक्ष प्रकार की भर्ती कहलाती थी। **भर्ती के आधार** –कौटिल्य के अनुसार राजकीय पदों पर नियुक्ति का आधार उम्मीदवारों की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताऐं होती थी। अमात्य पदों पर नियुक्ति हेतु शारीरिक और मानसिक योग्यताओं के अतिरिक्त चार प्रकार की परीक्षाऐं जो धर्म, अर्थ, काम, व भय से संबधित थी को उत्तीर्ण करना भी उम्मीदवारों के लिये अनिवार्य था।

उच्चाधिकारियों एवं कर्मचारी वर्ग की भर्ती के सन्दर्भ में कौटिल्य की अवधारणा

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र के अन्तर्गत कार्मिक प्रशासन के सन्दर्भ में अध्ययन करते हुये यह तथ्य भी ज्ञात होता है कि उस काल में प्रशाकीय तंत्र में निम्न स्तर के कर्मचारी की अपेक्षा उच्च श्रेणी के अधिकारियों को अधिक महत्व दिया जाता था। इसका प्रमुख कारण यह है कि उच्च श्रेणी के अधिकारियों को निम्न श्रेणी के कर्मचारियों की तुलना में ज्यादा अधिकार एवं उतरदायित्व प्रदान किये गये थे। हर स्तर का उच्चाधिकारी जिसमें की राजा, मंत्री, (प्रधानमंत्री), मंत्रीगण, पुरोहित, और गुप्तचर व विभिन्न विभागों के अध्यक्ष भी शामिल थे उनमें उच्चस्तरीय शारीरिक व मानसिक गुणों की अपेक्षा की जाती थी। ये उच्च गुण उनके लिए पदचयन की आवश्यक योग्यताएं थी। उनकी इस गुणवत्ता को समय–समय पर विभिन्न कसौटियों के जरिये जाँचते रहने की व्यवस्था थी। उच्च पदों पर नियुक्त अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे बौद्धिक होने के साथ–साथ शारीरिक रूप से सक्षम, सद्चरित्र और ईमानदारी जैसे नैतिक गुणो से युक्त होगें। ठीक इसके विपरित निचले दर्जे के राजकीय कर्मचारियों से उनके दायित्वों के प्रति ईमानदारी और कर्त्तव्य परायण होने के अलावा किसी भी गुण की अपेक्षा नहीं की जाती थी।

कौटिल्य का मत था कि छोटे कर्मचारियों की कमी को तो दूसरी नियुक्तियों द्वारा पूरा किया जा सकता है परन्तु प्रमुख कार्यकर्त्ताओं (प्रमुख अधिकारी) तो हजारों में से एक ही मिलता हैं क्योंकि हर व्यक्ति में उतनी योग्यताएं (निर्धारित योग्यताएं) मिलना आसान नहीं है, या कभी–कभी प्रमुख कार्यकर्त्ता मिलता ही नहीं है। अपनी बुद्धि व बल की अधिकता के कारण ही वह छोटे कर्मचारियों का स्वामी या आश्रय होता है। इससे स्पष्ट होता है कि गुणों के महत्व के कारण ही कौटिल्य ने उच्चाधिकारियों को अधिक महत्व प्रदान किया है परन्तु प्रशासनिक प्रक्रिया के सफल संचालन में अन्य कर्मचारियों के योगदान को भी कम नहीं आंका है।

भर्ती प्रणालियाँ

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार की भर्ती प्रणालियों का भी वैज्ञानिक वर्णन किया है जो इस प्रकार से है–

योग्यता आधारित भर्ती –_कौटिल्य ने प्रत्येक पद पर भर्ती हेतु योग्यता को अनिवार्य व सर्वप्रमुख माना है अतः राजकीय सेवा में आचार्य ने प्रत्येक पद के लिये निश्चित योग्यताओं का निर्धारण भी किया है। इस प्रकार से योग्यता के आधार पर की गई भर्ती योग्यता आधारित भर्ती सिद्धान्त के अन्तर्गत रखी जा सकती है। इस भर्ती–पद्धति को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

प्रधानमंत्री पद हेतु योग्यता –राजा के बाद यह प्रशासनिक स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण पद माना गया है। कौटिल्य ने इस पद के लिए निश्चित योग्यताएं बतायी है। इस पद हेतु उम्मीदवार राज्य का निवासी हो, कुलीन वंश का हो, अवगुणों से रहित हो, निपुण सवार एवं ललितकलाओं का ज्ञाता हो, अर्थशास्त्र का विद्वान हो, बुद्धिमान, चतुर, स्मरणशक्ति सम्पन्न, दबंग, वाक्पटु, उत्साही, प्रतिवाद और प्रतिकार करने में समर्थ हो। वह प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, दृढ, स्वामीभक्त, सज्जन, स्वस्थ, धैर्यवान्, निराभिमानी, प्रियदर्शी, स्थिरप्रकृति द्वेषवृति रहित पुरूष ही प्रधानमंत्री पद के योग्य है। किसी उम्मीदवार में यदि इनमें से एक चौथाई या आधी योग्यताएं हो तो उन्हें मध्यम एवं निकृष्ट मन्त्री समझना चाहिए। मन्त्री की नियुक्ति से पूर्व राजा हारा निम्न तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है–

- राजा को चाहिए की वह मंत्री की नियुक्ति से पूर्व प्रामाणिक, सत्यवादी और आप्त पुरूषों से

उनके निवास स्थान एवं आर्थिक स्थिति का पता लगाये।

- सहपाठियों के द्वारा उनकी योग्यता व शास्त्र प्रवेश का ज्ञान प्राप्त करे।
- नये–नये कार्यो में नियुक्त करके उसकी बुद्धि,स्मृति व चतुराई को परखे।
- व्याख्यानों, व सभाओं द्वारा उसकी वाक्पटुता, दबंगता व प्रतिभा को जाने।
- आपत्तियों में उनके उत्साह, प्रभाव, सहिष्णुता को परखें।
- व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता, दृढता व स्वामिभक्ति को जाँचे।
- सहवासियों व पड़ोसियों के द्वारा उनके शील, स्वास्थ्य, बल, गौरव अप्रमाद और स्थिर प्रकृति गुणों का पता लगाये।
- राजा स्वंय उनके मधुर स्वभाव व द्वेषरहित प्रकृति की परीक्षा करे।[3]

(2) उपरोक्त सभी प्रकार की जांच पड़त करने के बाद ही राजा संतुष्ट होकर मंत्री नियुक्ति करें।

पुरोहित पद हेतु योग्यता –कौटिल्य ने इस पद के लिये उम्मीदवार में निम्न योग्यताएं आवश्यक बतायी है – वह पुरूष उच्चकुलोत्पन्न, शीलगुणसम्पन्न, वेद एवं छः वेदांगो का ज्ञाता, ज्योतिष, शकुन शास्त्रों व दण्डनीति में पारंगत हो। साथ ही साथ वह अथर्ववेद में वर्णित आपदाओं के निराकारण का भी ज्ञाता हो। इस पद की महता को बताते हुये कौटिल्य ने लिखा है कि जैसे गुरू के पीछे शिष्य को, पिता के पीछे पुत्र को, स्वामी के पीछे सेवक को चलना चाहिए वैसे ही राजा को पुरोहित का अनुगामी होना चाहिए।

अमात्य पद पर नियुक्ति हेतु योग्यताएं –कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में राजकीय प्रशासन के महत्वपूर्ण उच्चाधिकारी (अमात्य) की नियुक्ति के लिए भर्ती किये जाने वाले उम्मीदवारों के लिए निर्धारित योग्यताओं का भी उल्लेख किया गया है। कौटिल्य के मतानुसार किसी भी पुरूष की सामर्थ्य की स्थिति उसके कार्यो की सफलता पर निर्भर है और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या बुद्धि के बल पर ही आंकी जा सकती है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करें। परन्तु राजा के लिए यह परम आवश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण दोष, देश काल पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करें किंतु उन्हें अपना मंत्री कदापि न बनाये।

राजा के अंगरक्षक पद हेतु योग्यताएं –कौटिल्य ने राजा के अंगरक्षक पद को बहुत ही महत्वपूर्ण माना था। अर्थशास्त्र में उन्होंने इस पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवार की जो योग्यताऐं निर्धारित की थी वे हैं – वह पुरूष वंशपरम्परा से अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त, और प्रत्येक कार्य को भलीभाँति समझने इत्यादि गुणों से युक्त होना चाहिए। कौटिल्य ने यहां ये निषेध भी किया है कि धन–सम्मान रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार पृथक होकर पुनः नियुक्त स्वदेशी व्यक्ति को भी इस अंगरक्षक (राजा के) पदों पर नियुक्त नहीं किये जाए।[8]

गुप्तचर पद हेतु योग्यताएँ– अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने यह मत भी प्रकट किया है कि विभिन्न परीक्षण उपायों के द्वारा अमात्य वर्ग को परीक्षित कर लेने के बाद राजा गुप्तचर पदों पर नियुक्ति करें। गुप्तचर पद पर नियुक्ति के प्रसंग में ही कौटिल्य ने विभिन्न गुप्तचर पदो के लिये आवश्यक योग्यताओं का भी उल्लेख किया है।[4]

राजदूत पद हेतु योग्यताऐं :–कौटिल्य ने तीन प्रकार के राजदूतों के पदों पर नियुक्ति हेतु योग्यताओं का भी निर्धारण किया है। जैसे निसृष्टार्थ राजदूत पद में अमात्य पद के लिये निर्धारित जो योग्यताऐं थी वो होनी आवश्यक बतायी गयी है। उनमें से एक चौथाई गुण हीन

परिमितार्थ और आधा गुणहीन शासनहर राजदूत कहलाता था।[5]

लेखक पद हेतु योग्यताऐं :–कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजकीय शासन (आदेशों) को लिखनेवाले लेखक पद की योग्यताओं का भी उल्लेख किया है कौटिल्य का यह मानना था कि इस पद पर नियुक्त किये जाने वाले उम्मीदवार में अमात्य की योग्यता हो, आचार–विचार का ज्ञान हो, शीघ्र ही सुन्दर वाक्य योजना करने में निपुणता हो, सुलेखक और विभिन्न लिपियों को पढ़ने–लिखने वाला हो। इसके अतिरिक्त वह लेखक प्रकृतिस्थ होकर राजा के संदेशों को सुने और पूर्वपर प्रसंगो को दृष्टि में रखकर स्पष्ट अभिप्राय प्रकट करने वाले लेख को लिखने में सक्षम हो।[7]

परीक्षा प्रणाली पर आधारित भर्ती

कौटिल्य ने विशेषतः अमात्य पद की भर्ती के लिए विभिन्न प्रकार की परीक्षाओं का उल्लेख किया है। अमात्य पद के लिए योग्य उम्मीदवार के चयन हेतु आचार्य ने एक सुव्यवस्थित और निष्पक्ष परीक्षा प्रणाली का उल्लेख किया है। इन परीक्षाओं के द्वारा अमात्य पद के लिए सुयोग्य व्यक्ति की योग्यताओं का परीक्षण किया जा सकता था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य के इस मत का उल्लेख है कि सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करने के लिए राजा मंत्री (प्रधानमंत्री) व पुरोहित के सहयोग से गुप्त उपायों के द्वारा उनके (अमात्य पद उम्मीदवारों) आचरण व्यवहार की परीक्षा करे। यहां कौटिल्य ने एक महत्वपूर्ण संशोधन प्रस्तुत किया है कि अमात्यों की परीक्षा अवश्य ली जाए पर उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने को तथा रानी को न बनायें। किन्तु अर्थशास्त्र में परीक्षा लिखित या मौखिक ली जाती थी इसके बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। परीक्षा पर आधारित इस भर्ती पद्धति के अन्तर्गत परीक्षण के चार प्रकार बताये गये है। ये चार प्रकार की परीक्षाएं निम्नलिखित है

धर्मोपधा परीक्षा –इस परीक्षा के अन्तर्गत गुप्त धार्मिक उपायो द्वारा अमात्य पद के उम्मीदवार की हृदय की पवित्रता की जाँच की जाती थी। इस परीक्षा विधि में राजा पुरोहित भी परीक्षक के रूप प्रयुक्त करता था। राजा द्वारा पुरोहित ने किसी नीच जाति के यहां यज्ञ करने ओर पढ़ाने के लिए नियुक्त किया जाता था। जब पुरोहित इस कार्य के लिए निषेध करता था तो राजा उसे पद्च्युत कर देता था। वह पद्च्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराता था। वह अमात्य कहता था कि राजा अधार्मिक है अतः उस स्थान पर उसके वंशज, किसी श्रेष्ट पुरूष, सामन्त या धार्मिक व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए। सबने उसके (पुरोहित) के मत को स्वीकार कर लिया है इस बारे में अमात्य की क्या राय है। यदि अमात्य इसे अस्वीकार कर दे तो सिद्ध हो जाता है कि वह पवित्र हृदय है।

अर्थोपधा परीक्षा–इस परीक्षा के लिए राजा सेनापति को नियुक्त करता था। राज्य सेनापति को किसी निन्दनीय व्यक्ति का सत्कार करने का आदेश दे। जब राजा की इस बात से सेनापति रुष्ट हो जाये तो राजा उसको पद्च्युत कर दे। यह पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्त भेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। सेनापति की बातों से यदि अमात्य अप्रभावित रहे और विरोध करे तो समझ लेना चाहिये की वह पवित्र हृदय है। इस प्रकार गुप्त आर्थिक उपायो द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा ही अर्थोपधा–परीक्षा कहलाती थी।

कामोपधा परीक्षा– गुप्त काम सम्बन्धी–उपायो द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा के कामोपधा परीक्षा कहते है। इसमें राजा किसी सन्यासिनी, वेषधारी गुप्तचर स्त्री को प्रयुक्त करता है। वह उसे अन्तःपुर में ले जाकर उसका सादर सत्कार करे और फिर वह स्त्री एक–एक अमात्य

के निकट जाकर यह प्रस्ताव रखे कि महारानी उन्हें पसन्द करती है तथा उनसे सम्बन्ध रखना चाहती है। इसकी पूरी व्यवस्था कर दी गई है और उन्हें इस हेतु यथेष्ट धन भी दिया जायेगा। यदि उपरोक्त प्रस्ताव का अमात्य विरोध करे तो वह इस परीक्षा में सफल घोषित है।

भयोपधा परीक्षा – इस परीक्षा के अन्तर्गत कौटिल्य ने वर्णित किया है कि नौका–विहार के लिए एक अमात्य दूसरे अमात्यों को बुलाये। इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सबको दण्डित कर दे। तदनन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ छात्र वेषधारी गुप्तचर तिरस्कृत अमात्य के निकट जाकर यह प्रस्ताव रखे कि यह राजा बुरा है इसका वध करके दूसरे राजा को नियुक्त करना चाहिए। इस प्रस्ताव पर सभी अमात्यों की स्वीकृति है आप की क्या राय है। यदि अमात्य उसका विरोध करे तो उसे शुचिचित समझना चाहिए। गुप्त भय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही भयोपधा कहते है।[8]

सर्वोपधाशुद्ध – इसके अन्तर्गत जो अमात्य उपरोक्त चारों प्रकार की परीक्षाओं की कसौटी पर खरा उतरता था अर्थात जिसे धन का लालच न हो, जो दूसरे के डर से कोई कार्य न करे,, काम के वश में होकर अपने कर्त्तव्य से विचलित न हो, धार्मिक भावनाओं के प्रभाव में आकर असत ्के मार्ग पर प्रवृत न हो वह सर्वोपधाशुद्ध कहलाता था। यह व्यक्ति ही मन्त्री या मन्त्रीपरिषद के सदस्य बनाये जाते थे।

<u>सर्वत्राशुचीन्</u>– इसके अतिरिक्त सभी परीक्षाओं में असफल अमात्य उम्मीदवारों को सर्वत्राशुचीन् विशेषण से संबोधित किया गया है।

<u>कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित लोकसेवकों की परीक्षण व्यवस्था एवं सम्बद्ध पदानुक्रम</u>

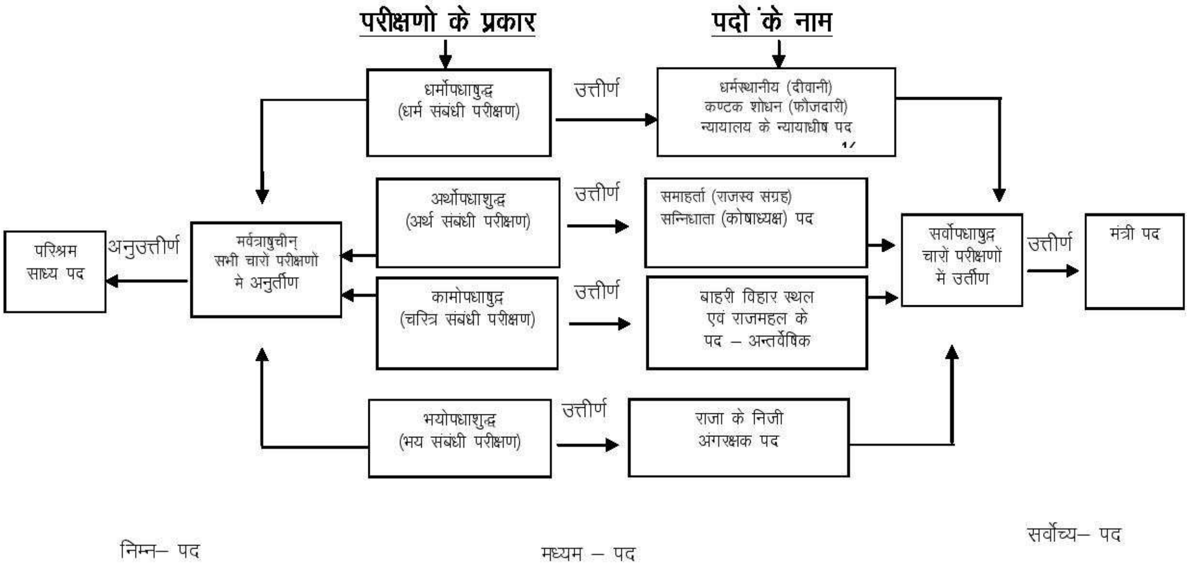

अमात्यों (राजकीय अधिकारियों) की नियुक्ति एवं पद स्थिति

कौटिल्य ने अमात्यों के लिए निर्धारित चार प्रकार की परीक्षाओं में सफल उम्मीदवारों के लिए उपयुक्त पदों पर नियुक्ति प्रक्रिया का भी विस्तार से वर्णन किया है। जो इस प्रकार से है

न्यायिक पदों पर नियुक्ति

जो अमात्य धर्मोपधा परीक्षा में उतीर्ण हो जाते थे उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी कचहरी) तथा कंटकशोधन (फौजदारी कचहरी) न्यायालयों में न्यायिक कार्यो हेतु नियुक्त किया जाता था।

राजस्व–व कोष (वित्त) पदों पर नियुक्ति

जो अमात्य अर्थोपधा परीक्षा में सफल रहते थे उन्हें समाहर्ता (राजस्व सग्रंहकर्ता) तथा सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के पदों पर नियुक्त किया जाता था।

अन्तःपुर (राजकीय आवास) पदों पर नियुक्ति

वे अमात्य जो कामोपधा परीक्षण में उत्तीर्ण हुये हो उन्हें राजकीय आवास में राजकीय महिलाओं से सम्बन्धित विभागो में नियुक्त किया जाता था। ये राज्य के अन्तपुर एवं बाहरी विलास स्थानों (विहारों) दोनों के लिए पदो पर नियुक्त होते थे।

अंगरक्षक (राजा के) पदों पर नियुक्ति

भयोपधा परीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यो को उनकी स्वामिभक्ति एवं साहस के कारण राजा के अंगरक्षक पदों पर नियुक्त किया जाता था। उन्हें **आसन्नाकार्येषु** कहा गया है।

मन्त्री पदों पर नियुक्ति

कौटिल्य के मतानुसार जो अमात्य चारों प्रकार के परीक्षणों में सफल होते थे अर्थात् सर्वोपधाशुद्ध होते (जो धर्म, अर्थ, काम व भय की परीक्षाओं में खरे उतरे) ऐसे व्यक्तियों को मन्त्रीपरिषद् का सदस्य बनाया जाता था। ये अमात्य ही मंत्री पद पर नियुक्त किये जाते थे। मन्त्रियों की नियुक्ति करते हुए राजा मंत्री (प्रधानमंत्री) और पुरोहित संज्ञा के दो प्रधान अमात्यों से परामर्श लेता था और उनकी सम्मति के अनुसार राज्य के सब प्रधान अमत्यों की नियुक्ति की जाती थी।

सामान्य पदों पर नियुक्ति

इसके अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति आते थे जो अमात्य पद के लिए योग्य है परन्तु जो परीक्षित नहीं है या जिसने परीक्षा को नहीं दिया है वह सभी सामान्य विभागों में रखे जा सकते थे।

अन्य पदों पर नियुक्ति

वे अमात्य जो उपरोक्त वर्णित चारों प्रकार की परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हो जाते थे उन्हें राज्य के दूर के स्थानों पर जैसे खानों, लकड़ी या हाथियों के वनों या कारखानों में अधीक्षक के पदों पर परिश्रम साध्य कार्यो पर नियुक्त किया जाता था।[9]

परीक्षा पद्धति एवं नियुक्ति प्रक्रिया में निष्पक्षता बनाये रखने हेतु

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अमात्य पदों के लिए ली जाने वाली परीक्षा प्रणाली और नियुक्ति प्रक्रिया में कुछ सावधानियों को प्रयुक्त करने का भी उल्लेख किया है।जिससे भर्ती व्यवस्था में निष्पक्षता बनी रहे। कार्मिक प्रशासन की दृढता बनाये रखने के लिये इन्हें ध्यान में रखना आवश्यक प्रतीत होता है। ये इस प्रकार से है–सभी पुरातन अर्थशास्त्रविद् आचार्यो का यह

अभिमत था कि धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित हृदय से पवित्र अमात्यों को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्यभार या पद नियुक्ति दी जानी चाहिए। कौटिल्य ने यहां एक संशोधन प्रस्तुत किया है कि अमात्यों की नियुक्ति हेतु परीक्षा आवश्यक ली जाये परन्तु उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने स्वयं को तथा रानी को न बनाये। इसका कारण कौटिल्य ने यह बताया कि कभी–कभी किसी निर्दोष अमात्य को छलप्रपन्चयुक्त इन गुप्त रीतियों से ठगा जाना वैसा ही है जैसे की शुद्ध पानी में विष घोल देना है। इस बात की सम्भावना है कि उक्त रीतियों से नाराज हुआ अमात्य कभी सुधर न सके क्योंकि कपट उपायों से ठगे हुये चरित्रवान् व्यक्ति की बुद्धि जब तक चैन नहीं लेती है जब तक की वह अपना अभिष्ट प्रदान करता (अर्थात् अपने अपमान का बदला न लेले)। इसलिए राजा और प्रशासन की सुरक्षा की दृष्टि के उक्त चारों उपायों से परीक्षण करने के लिए राजा किसी बाहय वस्तु को परीक्षण का माध्यम बनाये। और गुप्ताचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा लें।[10]

निष्कर्ष

कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित कार्मिक प्रशासन के अर्न्तगत भर्ती व्यवस्था के गहन अध्ययन से इन तथ्यों का पता चलता है कि आज से चौथी शती ईसापूर्व में भी राजकीय पदो पर भर्ती करने के लिये योग्यता आधारित सिद्धांत पर सर्वाधिक जोर दिया जाता था। कौटिल्य ने प्रत्येक राजकीय पद पर उम्मीदवारों को योग्यतानुसार समान अवसर देने का भी समर्थन किया है कौटिल्य ने पुरोहित पद के अतिरिक्त किसी भी राजकीय पद पर भर्ती के लिये किसी भी प्रकार का आरक्षण प्रदान करने को अनुमति नही दी। साथ ही साथ उच्च राजकीय पदो पर भर्ती के लिये उम्मीदवारों की शारीरिक एवम् मानसिक योग्यताओं पर सर्वाधिक जोर दिया इस के विपरीत निम्नस्तरीय कर्मचारियो के लिये साधारण योग्यताओं के होने पर ही जोर दिया है। कौटिल्य का यह भी मानना था की भर्ती परीक्षाओं में किसी भी प्रकार का पक्षपात न हो क्योकि राज्य द्वारा एक ईमानदार और योग्य उम्मीदवार के सम्मान को क्षति पहुंचाई गई तो वह रूष्ट होकर राष्ट्र को हानि भी पहुंचा सकता है अतः भर्ती व्यवस्था को न्यायपूर्ण एवं वस्तुनिष्ठ बनाना अवश्यक है।

वर्तमान भारतीय परिदृश्य में सुदृढ राष्ट्रीय परम्पराओं की स्थापना करने एवं राष्ट्रीय सरकार के चरित्र एंव गुणवत्ता को बनाये रखने के लिये कौटिल्य द्वारा वर्णित योग्यता आधारित भर्ती सिद्धांत एवं प्रणाली को अपनाया जाना प्रासंगिक है। इससे सुशासन के राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिये लोकसेवकों को कार्यकुशल, ईमानदा (5) उत्तरदायी, जवाबदेय एंव सक्षम बनाया जा सकेगा।

संदर्भ सूची – (References)

1. वाचस्पति गैरोला, (2011) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् और चाणक्य सूत्र, वाराणासी, चौखम्बा, विद्याभवन, पृष्ठ संख्या 19 ।
2. Radha Kumud Mookerji . (1996) *Chandragupta Maurya and his Times.* Delhi . Motilal Banarsidas Publishers Private Ltd. Page No. 81
3. वाचस्पति गैरोला, (2011) कौटिलीय अर्थशास्त्रम् और चाणक्य सूत्र, वाराणासी, चौखम्बा, विद्याभवन, पृष्ठ संख्या 23, 24।
4. पृष्ठ संख्या –32।
5. पृष्ठ संख्या –49।
6. पृष्ठ संख्या –69।
7. पृष्ठ संख्या –119।
8. पृष्ठ संख्या –25, 26।

9. पृष्ठ संख्या –26, 27।

10. पृष्ठ संख्या –27, 28।

Copyright © 2017 *Meena Agrawal*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

Effective Financial Administration as a key to Good Governance: Kautiliya's view

Dr. Raj Kumar Garg
(Research Guide)
Department of Public Administration
Government Arts College, Kota (Rajasthan)

Meena Agrawal
(Research Scholar)
Gmail: meena.ag199@gmail.com

Abstract -

Good Governance is dependent on the availability of adequate finances and their efficient utilization. Kautiliya's Arthashastra the great ancient Sanskrit scripture is of a great relevance to financial administration which depends all activities of government. Kautiliya is India's most illustrious ***political economist*** of all time. It was discovered in Kautiliya's Arthashastra that the financial aspects existed in ancient India in 3^{rd} century B.C. The financial principles and standards used in the present century are similar to those that excised in the 3^{rd} century B.C. This nugget of information is surprising. Broadly, Kautiliya's Arthashastra covers treasury, taxation, accounting, audit, corruption and types of embezzlements, strict vigilance discipline, method of calculation of rate of interest and the role of enthics in managing financial activities.

So the basic objective of this study is to explore the kautiliya's financial views and to investigate the relevance of kautiliya's financial ideas in modern time periods. This paper can help us to learn a great deal from kautiliya's Arthashastra to keep our financial system in order .

Keywords: Kautiliya Arthashastra, Budget, Accounting, Audit, Treasury, Samaharta, Sannidhata.

Introduction-

Good governance in the developing countries like India is dependent on the responsive and accountable ministry of finance and its sound administration. Financial development and socio-economic development are inter-linked. Finance accelerates the process of economic growth and that is why the Ministry of Finance in ancient and modern times must attend to finance of the country in a prudent manner. Kautiliya has rightly stated that "**just as elephants are needed to catch elephants, so does one need wealth to acquire more wealth.**"[1]

Financial Administration in Kautiliya's Arthasastra has a wider meaning. The source of the livelihood of men is 'artha' (wealth). He than draws the

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

corollary that the wealth of a notion is both the territory of a state and its inhabitants who may follow a variety of occupation.[2] "Finance is the fuel of administration".[3] Finance moves the machinery of Government. Sound financial administration is the crux of the efficient administration of government operations. Kautiliya states that the entire administration of the country can be controlled through financial administration and that is why the administrators in a country must give utmost priority to financial administration. Arthasastra is defined as a science, which is the means of acquisition and protection of the Artha. Artha is usully "understood to stand for material well being as well as the means of securing such well being, particularly wealth."

The Arthasastra views the pursuits of *artha,* as the primary goals of human existence. Kautiliya considers artha as the most important.

He indicates that *Arjana* (creation) *Vardhana* (increase) and *Raksana* (protection) are three important aspects of artha or the "wealth of the nation".

It means in other way budgeting (a*rjana*) revenue (*vardhana*) and audit-accounting (*raksana*) are three important aspects of Finance.

He believes that **"Wealth will slip away from childish man who constantly consults the stars. The only (guiding) star of wealth is itself, what can the stars of the sky do?"** This indicates his practical through materialistic approach. All the developmental efforts of a government to establish Good Governance are directly linked with the availability and utilization of financial resources.

Kautiliya also mentions that obstruction, loan, trading, fabrication of accounts, causing the loss of revenue, self enjoyment, barter and defalcation are the causes that tend to deplete the treasury.

- **Methodology –**

This is an analytical study. It is based on secondary data .The study has been divided under following section's:

1. Introduction which includes the methodology, data collection and objectives of the study.
2. Financial ideas of kautilya on various topics.
3. Relevance of kautiliya's view on finance administration in modern time.
4. Suggestion and conclusion.

- **Data collection -**

There are many books available on kautiliya's Arthashastra. Originally the book was in Sanskrit .Later it was translated in English and Hindi by many scholars. Source of data collection include the following.

1. Books written on Arthashastra by authors and translation of books itself.
2. Article published in various journals.
3. Reports of researchers on Arthashastra.
4. Papers published by various organizations on the subject.

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

5. Internet websites.

- **Objective of the study:**

There are many books available on Arthashastra but unfortunately for the development of economic thought, kautiliya's writing were not discovered until early in the twentieth century. So the basic objective of this study is following:

1. To study and explore the Kautiliya's economic view.
2. To study the ancient financial environment through kautiliya's Arthashastra.
3. To investigate the relevance of kautiliya's financial ideas in modern time period.
4. The study of Arthashastra is one of the significant ways in which we can become more self conscious about strategy or economic culture that we have, and in which we can contribute to its evolution.

Machinery for Administration of Finance:

Kautiliya in his Arthasastra mention a brief account on machinery for administration of Finance. Kautilya says that the king has responsibility to save the *Kosa* (wealth) of the state ***'because all (State) activities depend on the treasury' we have to understand it as 'without wealth' 'there is no protection or acquisition.'*** The other officers who help the king in Financial Administration are following with their ranks-

(1) *Samaharta* (Chancellor), *Sannidhata* (Revenue collector)
(2) *Akshapataladhyaksha* (Accountant general)
(3) *Gananikyain* (The chief Accounts of different departments)

All those officials associated with a number of appropriate subordinate staff to assist them on their work. These are mentioned as Accountant (*Sankhyayaka*), Scribe (*Lekhaka*), examiner of coins (*Rupadarsaka*), treasurer (*Nivigrahaka*).

Budget- In present time the Budget is a statement of Income and Expenditure for a particular period of government in this time. In Arthasastra Kautiliya mentions the meaning of budget as:

The Chancellor (*Samaharta*) shall first estimate the revenue (for the year) by determining the likely revenue from each place and each sphere of activity under the different Heads of Accounts, total them up by place or activity and then arrive at a grand total.

Actual revenue shall then be estimated by adding receipts into the treasury for the current year and receipts an account of (delayed) payments due from the previous year and deducting from this the following expenditure on the king, standard rations for others, exemptions granted (by the king) by decree or orally, and authorized postponement of payments into the treasury.

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

Outstanding revenue shall be estimated by taking into account the following: work under construction from this revenue will accrue only on completion, unpaid fines and penalties, dues not yet recovered, dues defiantly with held and advances to be repaid by officials; outstanding of little or no value shall be ignored.[4]

The net resources available to the state was thus calculated be estimating revenue during the year, adding outstanding dues of the previous year collected during the current year and subtracting from this total committed crown expenditure, remissions, uncollectable and loan and advances.

- **Income, Expenditure and Balance-**

Actual income is to be calculated under the heading (i) current income, (ii) transferred income and (iii) miscellaneous revenue.

{i} Current income

It consists of receipts due and paid in the same year.

{ii} Transferred income

This income in from outstanding of earlier year as well as income earned (by one department) transferred to another.

{iii} Miscellaneous incomes :

It is of three kinds:

(1) Recovery of debts and dues that were earlier written of fines paid by government servants, additional income (from surcharges and unanticipated revenue),and compensation collected for loss or damage, gifts, confiscated property, intestate property and treasure trove.

(2) The following deductions from (anticipated) expenditure (are to be treated as income) : saving due to demobilization of (a part of) the army, work abandoned before completion and economics made in (actual) investment as against original (planned) budget.

(3) Income due to profit on sales: increase in this price of a commodity at the time of sale, profit from the use of differential weights and measures and increased income due to competition from buyers.

- **Actual expenditure :**

Shall be shown under the headings:

(1) budgeted day to day expenditure.
(2) unbudgeted day to day expenditure.
(3) foreseen periodic (fortnightly, monthly or annual) expenditure.

The (net) revenue is calculated after deducting expenditure from income, taking into deducting expenditure from income, taking into accounts the actual as well as deferred amounts.[5]

Sources of revenue:

The Collector General was responsible for the realization of the provincial revenue. The revenue was derived from a variety of source each of

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

which required a special administrative department for its utilization and expansion. Thus an account of source of revenue will supply the key to administrative organization and machinery brought into being.

The duty of ***Samaharta*** was to see *(aveksheta)* the collection of Revenue due from the following source, viz., (1) Towns (*Durga*) (2) the country side or rural parts (*Rashtra*) (3) Mines (*Khani*) (4) Plantation (S*etu*) (5) Forest (*Vana*) (6) Cattle (*Vraja*) and (7) Communication (*Vanikpatha, 'roads of traffic'*).[6]

Taxes-

Kautiliya believes taxes are the important source of sustaining development plans and socio-economic growth and essential source of mobilizing the resources in a state. Kautiliya has compared taxation to a bee gathering honey from the flowers. At the same time, a king who impoverishes his own people or angers them by unjust taxation will also lose their loyalty.[7] A balance has to be maintained between the welfare of the people and augmenting the resources of the state. We should learn from Kautiliya that taxes should be levied according to the capacity of the people to pay.[8]

In Arthasastra, Kautiliya mention for the levying and collection of taxes, a state need tax machinery designed on administratively sound, ethical and balanced considerations. This machinery need constant supervision and control by the help of spies as it deals with money, Kautiliya in his Arthasastra has rightly warned that there are chances of pilferage and hence tight control must be exercised at all levels. Kautiliya said, **"Just as it is impossible not to taste the honey or the poison that find itself at the tip of the tongue, so it is impossible for the government servant not to eat up, at least a bit of the king's revenue. Just as fish moving under water cannot possible be found out either as drinking or not drinking water, so government servants employed in government work cannot be found out while taking money for themselves. It is impossible to mark the movements of birds flying up high in the sky, so it is not possible to ascertain the movement of government servants of hidden purpose.** [9]

Exemption from taxes -

The tax policy distinguished between those who had to pay a tax and those exempt from it. Exemption from tax could be granted in perpetuity to Brahmins with the right to sell or mortgage or as a perquisite of office to specified officials so long as they held that office and without the right to sell or mortgage. [10]

Another kind of exemption, for limited periods ranging between two to five years was used as an inactive to increase production by granting it to those who brought dry land under cultivation and those who renovated or build irrigation works. The king was however advised to treat leniently, like a father would treat son those whose exemption had ceased to be effective. [11]

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

Taxpaying cultivators could mortgage or sell their lands only among themselves. Persons who enjoyed revenue free (brahadeyika) lands could mortgage or sell such lands only those who deserved or were already granted such lands. Otherwise the seller was liable to a fine of first amercement.

Similarly, a tax payer had to live in a village of tax-payers. A tax-payer living in a non tax payer village was punished with fines. A tax payer acquiring property in a village of tax-payers had the same rights and privileges as the tax-payer replaced.

Accounting -

Accounting involves the collection, recording, classification and presentation of financial data in such a way as can be useful for administration. Accounting is central to financial administration. Financial reforms can be successful only through a scientific accounting system.It is also essential for performance budgeting, performance audit and financial control. Kautiliya mention the Detailed Procedures of Accounting in a very scientific manner. In the accounts books, every entry shall have the date of the transaction. [12]

On the receipt side, the revenue shall be classified according to the major Heads of Account: cost price, share (*Bhage*) transaction tax (*Vyaji*) monopoly taxes, fixed taxes, manufacturing charges, fines and penalties. [13]

On the debit side,expenditure shall be classified according to the major Heads, as given below:

(1) Worship (of Gods and ancestors) and charitable expenses.
(2) The Palace (expenditure of the king, Queens Princes etc.)
(3) Administration.
(4) Foreign Affairs.
(5) Maintenance of granary, ordinance depots, buildings for commodities and forest produce (under separate subheads).
(6) Manufacturing expenses.
(7) Labor charges.
(8) Defence (with separate sub heads for each of the four wings).
(9) Cattle (and pasture).
(10) Forests and game sanctuaries.
(11) (Consumables like) fire wood and fodder. [14]

Proper Maintenance of Account Books -

All accounts shall be maintained by Departmental or Regional AccountsOfficers in the proper form and legibly written without corrections. Failure to do so shall be a punishable offence. [15]

Timely submission of Accounts -

Monthly Accounts:Day to day accounts (to be submitted once a month) shall be presented before the end of the following month and late submission shall be penalized. [16]

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

Accounts of specific transactions -

If the net balance to be remitted to the treasury is small, a grace of five days shall be allowed for making the remittance. If the accounts are delayed (beyond five days), the net balance shall first be remitted to the treasury and then a thorough audit done taking into account the rules of business (relevant) precedents, the circumstances and the calculations; a physical verification of the work shall be carried out.Whether the smallness of the remittance was justified or not shall then be judged by inference (supplemented) by information from secret agents.

All these activities are supervised and controlled by the 'Akshapataladhyaksha' (Accountant general). He was in charge of the two offices of currency (Akshapatala) and Accounts (Ganana).

FORM OF ACCOUNTS

Income Side [17]

Place	Period of accounting	Date and time of receipt	Head of account	Classification current year or outstanding dues	Quantity received	Name of payer	By whose order	Received by	Recorded by
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10

Expenditure Side [18]

Place	Period of accounting	Date and time of payment	Head of Expenditure	Counter Value received	Occasion	What was paid	Amount paid	For what use	Authority ordering payment	Withdrawn from store	Delivered by	Received by
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13

Balance Columns [19]

Place	Date and time	Head of account	Dues left outstanding	Form in which balance received into the treasury	Quality	Amount received	Details of container	Delivered to (Name of treasury official)
1	2	3	4	5	6	7	8	9

Audit:

Audit is an indispensible tool for ensuring sound Financial Administration in the time of Kautiliya especially for the king to exercise financial control. The king is directed by Kautiliya to examine constantly the character of all departmental heads (*Adhyaksas*) and their subordinates such as accountant (*Samkhyayaka*) writers or clerk (*Rupa-darsaka*). It is further laid down that no chief officer should be allowed to hold his office permanently

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

stating that it is hardly possible for officer directly dealing with government finance and revenue not to enjoy even slightly the taste of State money, Kautiliya prescribes measures against corruption.

Responsibility of Account officers -

Accounts officers shall:

- present themselves for audit at the appointed time bringing with them their account books and the income to be remitted to the Treasury;
- be ready for audit when the audit officer calls him;
- not lie about the account (when questioned during audit) and
- Not try to interpolate on wrong (omitted) entry as if it was forgotten (inadvertently).

Failure to conform to any of the above regulation is a punishable offence.[20] In case a discrepancy is discovered during audit:

- The official concerned shall pay a penalty if the discrepancy has the effect of either showing a higher actual income of a lower actual expenditure. (In both the state being the loser).
- The official shall keep the difference for himself in the converse case (where a lesser amount than the one shown by the official is actually due to the state).[21]

Responsibility of Auditors -

An auditor shall be ready when an accounts officer presents himself for audit; otherwise, he shall be punished. [22]

Responsibility of High Officials -

High officials shall be responsible for rendering the accounts in full for their sphere of activity without any contradiction in them. Those who tell lies or make contradictory statements shall pay the highest level standard penalty. [23]

PUNISHMENTS

<u>**Departmental or regional accounts officers**</u>:

Writing in disorderly manner, not following the prescribed from, writing illegibly or rewriting		**24**
<u>**over a previous entry**</u>**:**		
Any column of the account book	**12 panas**	
In the column for net revenue	**24 panas**	
If the account books are destroyed (accidently)	**Restitution of loss to state + one-fifth of the amount as find**	**25**
Losing account books (deliberately)	**96 panas**	**26**
Failure to submit day-to-day accounts for a given month by the end of the following month	**200 panas for each month's delay**	**27**

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

Not coming on time for audit; coming without account books or without the net balance	**One-tenth of amount due**	**28**
Not having accounts ready for audit; not maintaining account in accordance with written orders; disobeying accounting instructions	**Lowest SP**	**29**
Discrepancy involving loss to state	**Eight times the amount of discrepancy**	**30**
Lying about account	**As for theft**	**31**
Lie discovered after audit is completed	**Twice the penalty for theft**	**32**
Interpolating entries	**Twice the penalty for theft**	**33**
Not being ready for audit	**Twice lowest SP**	**34**
Audit Officer:		
Not being ready for audit	**Twice Lowest SP**	**35**
High Officials :		
Pre telling lies or making contradictory statement	**Highest SP**	**36**

Suggestions -

We can learn a great deal from the Kautiliya's Arthasastra to keep our financial system in order. He has given many suggestions to ensure surplus budget and methods to check embezzlement and misuse of public money in the governments both at thecentre, state and local level. The most important lesson that can be drawn from the Kautiliya on good governance in financial administration is to keep control and supervision over personnel dealing with finance. In India we have one scandal after another but no solution over the time, it subsides and the matter is dropped. We should implement Kautiliya's suggestions or lessons to optimize financial resources. It has also helped us for ensuring transparent, responsive accountable financial administration for establish good governance.

We can learn the following lesson from Kautiliya Arthasastra to improve ourpresent financial system:

(1) Kautiliya's strict discipline should be enforced to ensure financial discipline.
(2) All the money embezzled should be recovered first and depositedin treasury and other action may be taken afterwards.
(3) Tax structure should be rational and taxation should be according to the payment capacity of the taxpayer.
(4) Kautiliya emphasized a regular system of auditing and considers it as an essential requirement of Good Governance. In his opinion auditing is essential to identify financial irregularities.
(5) He was in favour of strict and regular vigilance of higher bureaucracy especially for those were in associated with financial activities. In his

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

opinion continuous check was essential to curb corruption and embezzlement.

(6) During the selection of top personnel including financial officers, besides their qualification and commitment their character also must be examined. Presently there is no system to check the character of a bureaucrate.

(7) An immediate and exemplary punishment was essential to reduced the financial malpractices i.e. embezzlement, financial fraud etc.

(8) People should be helped financially if there is a need for it.

(9) Accounting should be done meticulously. It can be useful for administration both for a short term and in the long run. In the short term, accounting can help the administration in keeping within the financial limits, while in the long term; it can serve as a tool of planning, policy making, decision-making co-ordinate and appraisal.

(10) Treasury should not be in deficit because the army, defense affairs and prosperity of a state is depends on it. Kautiliya also mention the means of increasing the wealth of the state. These means are prosperousness of activities, cherishing of customs, suppression of thieves, control over employees, luxuriance of crops, abundance of commodities, deliverance from the troubles, and reduction in expenditure (and) present in cash. [37]

(11) Kautiliya said in his Arthasastra hindrance, lending, trading, concealment causing loss, use interchange and misappropriation are the causes of depletion of the treasury.[38] So government take action against on those caused to save the public money.

If we should be follow all these suggestion given in Kautiliya's Arthasastra are make financial administration of present India sound and good governance.

Relevence of kautiliya's view on Financial Administration-

Kautiliya, a great political economist of 3rd century B.C. certain principles from his theory of economics and finances are still relevant in today's frame work .Having discussed the some financial ideas of Kautiliya it can be said that even the terminology employed in Arthashastra may have changed but the nature and role of state in economic and finance system seen persisted in all settings. This financial ideas remain popular to this day in India. His Arthashastra provided valuable basis for financial administration.

We can learn a great deal from kautiliya's Arthashastra to keep our financial administration in order. He has given many suggestions to ensure surplus budget and methods to check embezzlement and misuse of public money. The most important lesson that can drawn from Kautiliya's is to keep control and supervision over personnel dealing with finances. We should implement Kautiliya's suggestion to optimize financial resources.

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

As per Kautiliya's Arthashastra the interest to the public was protected by compensating the victims of malpractices. Thus the financial discipline was very harsh for crooked while it was rewarding for honest officials.

Good governance and finance stability are inextricably linked. If rulers are responsive, accountable, removable, recallable there is stability if not there is instability. This even more relevant in the present democratic scenario of India. So Arthashastra provides much basic knowledge about finance and several of his ideas on it are still relevent.

Conclusion -

People are the ultimate source of strength of government. They should follow the ethical way and never indulge in corrupting the government machinery by offering bribes and other inducements. Until and unless the ethical values of the society improve there are little chance of an ethical government.

Thus, the Financial Administration in developing countries, like India, has great potential and can be optimized through the control of its internal and ecological factors. The need is to enforce its reputation and prestige as also its credibility,integrityand viability. The ultimate purpose of financial administration is to promote the welfare of the people. The welfare of the people must be kept in mind while raising, allocating and using financial resources. Kautiliya in his Arthasastra, rightly mentions that **in the happiness of his subject lies the kings happiness; in their welfare his welfare. He shall not consider as good only that which pleases him but treat as beneficial to him whatever pleases his subjects.** [39.]

References:

1. Kautiliya Arthasastra {9.4.27}
2. *Ibid.*, {15.1.1}
3. *Ibid.*, {2.8.2}
4. *Ibid.*, {2.6.13-16}
5. *Ibid.*, {2.6, 17-27}
6. Mookerji. Radha kumud, {1999}; "**Chandragupta Maurya and his times,"** Delhi: Motilal Banarsidas Publishers Private Limited, p-93.
7. Kautiliya Arthasastra {7.5.27}
8. *Ibid.,* {5.2.70}
9. *Ibid.,* {2.1.7}
9. Shamshastry, R., **Kautiliya Arthasastra** Mysore, Sixth Edition, P.70 {2.9.26.36-38}
10. Kautiliya Arthasastra {2.1.17}

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2394-3114
Vol-40-Issue-40-March-2020

11. *Ibid.*, {2.1.18}
12. *Ibid.*, {2.6.12}
13 *Ibid.*, {2.6.10}
14. *Ibid.*, {2.6.11}
15. *Ibid.*, {2.7.35}
16. *Ibid.*, {2.7.26-27}
17. *Ibid.*, {2.7.31}
18. *Ibid.*, {2.7.32}
19. *Ibid.*, {2.7.33}
20. *Ibid.*, {2.7.21-23, 39-40}
21. *Ibid.*, {2.7.19,20}
22. *Ibid.*, {2.7.22}
23. *Ibid.*, {2.7.25}
24. *Ibid.*, {2.7.35,36}
25. *Ibid.*, {2.7.18}
26. *Ibid.*, {2.7.17}
27. *Ibid.*, {2.7.17}
28. *Ibid.*, {2.7.21}
29. *Ibid.*, {2.7.34}
30. *Ibid.*, {2.7.19}
31. *Ibid.*, {2.7.39}
32. *Ibid.*, {2.7.40}
33. *Ibid.*, {2.7.40}
34. *Ibid.*, {2.7.22}
35. *Ibid.*, {2.7.23}
36. *Ibid.*, {2.7.25}
37. *Ibid.*, {2.8.3}
38. *Ibid.*, {2.8.4}
39. *Ibid.*, {1.19.34}

Note :

* Arabic numerals indicate the number of the verse. For example {1.1.1}

Book 1, Chapter 1, Verse number 1.

* Double braces { }enclose verse numbers.

* Sanskrit words are in italics.

Copyright © 2020 Authors

प्रमाण–पत्र

(शोध पत्र वाचन)

CDGCS

24-25 January 2018

International Seminar on

CONVERGENCE OF DEVELOPMENT, GOVERNANCE AND CIVIL SOCIETY: CHANGING ROLE OF THE STATE

Department of Public Administration

In Collaboration with

Certificate

This is to certify that Prof. /Dr./Shri/Ms. MEENA AGARWAL, RESEARCH SCHOLAR, GOVERNMENT ARTS COLLEGE, KOTA

has participated in the conference and also contributed a paper titled कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में सुशासन एवं वर्तमान भारतीय प्रशासन में महत्त्व

~~He~~/She has acted as Member Organising Committee / Volunteer

Dr. Om Mahala	D.Sudhir	Ekta Meena	C.B. YADAV
CONVENER	CO-CONVENER	ORGANISING SECRETARY	ORGANISING SECRETARY

International Conference

On

India as an Emerging Power in 21st Century: Possibilities and Challenges before Indian Foreign Policy

(January 29-31, 2013)

Organised by

Department of Political Science, Government College, Kota (Rajasthan)

Sponsored by

Indian Council of Social Science Research, New Delhi

Indian Council of Social Science Research

Certificate

This is to certify that Prof./Dr./Mr./Ms. MEENA AGRAWAL

University/Institute GOVT. P.G. COLLEGE, KOTA

has participated in the conference held at Department of Political Science, Government College, Kota (Raj.) and presented a paper entitled भारतीय विदेशनीति : कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में वर्णित विचारों का विश्लेषण एवं इसकी आधुनिक भारत में प्रासंगिकता

Dr. Dilip Goyal
Organising Secretary

Dr. Manju Malav
Head of Department

Prof. Sunil Bhargava
Principal

National Seminar

On

Administrative Culture in India:Transparency and Accountability

[In Present Statutory Perspective]

February 20-21, 2015

Organized by

Department of Social Science

University of Kota, Kota

Sponsored by : ICSSR, New Delhi

Certificate

Certified that Prof./Dr./Mr./Ms. Meena Agrawal

of (Name of the Institution) Govt. College, Kota (Research Scholars)

has participated in the National Seminar organised by Department of Social Science, University of Kota.

He/She also acted as a key Speaker/Chairperson/Paper Presenter on the following topic (title)-

"कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में निहित प्रशासकीय नीतिशास्त्र"

Prof. Ravindra Shrama
Patron

Dr. J.P.Sharma
Co-Convener

Dr. Vikrant Kumar Sharma
Convener & Organizing Secretary

CERTIFICATE

2nd INTERNATIONAL CONFERENCE

On

"Innovative Research In Science, Technology and Management" (IC-IRSTM-2019)

Venue: Modi Institute of Management & Technology, Kota, Rajasthan, India

Organised by	In Association With	Supported By	Sponsored by
Modi Institute of Management & Technology, Kota, Rajasthan	Research Foundation of India रिसर्च फाउंडेशन ऑफ इंडिया	Scopus	WFST

It is Certified that Prof./Dr./Mr./Ms./Mrs. Kumari Meena Agarwal (Research Scholar)

of

Participated in The 2nd International Conference on "Innovative Research In Science, Technology and Management" (IC-IRSTM-2019) held at Modi Institute of Management & Technology, Kota, Rajasthan India on 20-21 April 2019 as Session Chairperson / Co-chairperson / Resource Person / Invited Guest / Invited Speaker / Delegate and Presented / Participated Paper title " Kautilya's Arthashastra : Role And Status Of Women In Mauryan Society. "

shared in technical session III

T2F /6180-MISMI-31

Dr. Ashok Kumar Gupta
South Asia Chapter Head
Research Foundation of India

P. Agnihotri
Dr. Priyadarshini Agnihotri
Organising Secretary IC-IRSTM-2019
Chapter Head, MP
Research Foundation of India

N. Joshi
Prof. N. K. Joshi
Chairman IC-IRSTM-2019
Director, MIMT, Kota, Raj.

20-21 April 2019